"भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा
राजस्थान शैली के संदर्भ में "

कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्ष एवं निर्देशक
असि प्रो. श्री महेश धीमान
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री
अंजली
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)

Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्ड़ा)

2025–2026

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **अंजली**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा – राजस्थानी शैली के संदर्भ में** " शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करता हूँ।

मैं इसके उज्जवल भविष्य एंव सफल जीवन की कामना करता हूँ।

दिनांक : 8/7/026

सहायक प्रोफेसर
श्री महेश धीमान असि. प्रोफेसर

प्रमाण पत्र

मैं **अंजली**, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध " **भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा – राजस्थानी शैली के संदर्भ में** " विषय मेरे स्वंय के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है, लेखन में कम से कम आवश्यक सामग्री का उल्लेख किया गया है।

Anjali

शोधकर्त्री

अंजली

निर्देशक

सहायक प्रोफेसर

महेश धीमान

आर्य कन्या महाविद्यालय,

शाहाबाद (मा0)

कुरूक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **अंजली**, अनुक्रमांक न0. **240007005**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा – राजस्थानी शैली के संदर्भ में** " शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु–शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्जवल भविष्य एंव सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांक: 9/7/26

Aarti

प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

कला एक ऐसा विषय है, जिसके द्वारा हम अपनी भावनाओं को प्रकट कर सकते हैं। मेरी बचपन से ही कला के प्रति विशेष रुचि रही है और मैं हमेशा से कला का अध्ययन करना चाहती थी। कुछ समय से कला पर कुछ लिखने के लिए इच्छा थी, जो इस वर्ष सौभाग्य से पूर्ण हुई। प्रस्तुत विषय को मैंने अपनी रुचि, मेहनत से तथा मनोयोग से "भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा – राजस्थान शैली के संदर्भ में" लिखने का प्रयास किया है।

मुझे "भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा – राजस्थान शैली के संदर्भ में" पर लिखने के लिए प्रेरित करने का पूरा श्रेय आदरणीय महेश धीमान जी को जाता है। उन्होनें मेरी अभिरूचि और क्षमता के अनुकूल ही मुझे यह विषय प्रदान किया है, इसलिए मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

- ➡ प्रथम अध्याय – में मैंने कला, प्राचीन कला का इतिहास और लघु चित्रकला का इतिहास का वर्णन किया है।
- ➡ द्वितीय अध्याय में – लघु चित्रण के विषय वस्तु का वर्णन किया गया है।
- ➡ तृतीय अध्याय में – लघु चित्रण की विधि व प्रयोग होने वाली सामग्री का वर्णन किया है।
- ➡ चतुर्थ अध्याय में – विभिन्न क्षेत्रों की लघु चित्रकला का वर्णन किया गया है। मुगल लघुचित्र शैली, राजस्थानी लघुचित्र शैली का वर्णन किया गया है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची तथा चित्र संग्रह सूची को प्रस्तुत किया है।

इस लघु शोध के माध्यम से मैंने "भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा – राजस्थान शैली के संदर्भ में" के बारे में बताने का प्रयास किया है, कि प्राचीन भारत में किस तरह की चित्रकला की जाती थी, किस तरह का चित्रकार अपने हाथों से, ब्रश व कागज द्वारा चित्रों का चित्रण करते थे। प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैंने सावधानी पूर्वक करने की कोशिश की है। फिर भी कुछ अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि इस शोध प्रबंध में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उनके लिए मैं दोषी हूँ। इसलिए मैं विद्वानों से क्षमा प्रार्थी भी हूँ।

शोधकत्री

अंजली

आभार

मेरे इस लघु शोध प्रबंध का विषय "भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा – राजस्थान शैली के संदर्भ में" इस लघु शोध प्रबंध को इस रूप में परीक्षणार्थ करते हुए जिन महानुभावों का सहयोग रहा है, उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना यह शोध कार्य संपूर्ण नहीं हो सकता। मैं सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ, जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन व सहयोग से मैं इस कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हो सकी।

सर्वप्रथम मैं परमपिता के प्रति दोनों हाथ जोड़कर नतमस्तक हूँ, जिनकी अपार कृपा तथा दया दृष्टि से मुझे कला के क्षेत्र में इस विषय पर शोध करने का साहस मिला।

मैं आर्य कन्या महाविद्यालय में ललित कला विभाग अध्यक्ष महेश धीमान व आदरीणीय पुस्तकालय अध्यक्षा डॉ. राजिन्द्र कौर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस लघु शोध प्रबंध को पूर्ण करने में मेरा उचित मार्गदर्शन किया है। मैं अपने मित्रों तथा सहपाठियों की भी हार्दिक आभारी हूँ।

अंत में, मैं वर्तमान प्राचार्य महोदया आदरणीय डॉ. आरती त्रेहयन जी का भी आभार प्रकट करती हूँ, जो ललित कला विषय को सुचारु रूप से चलाने में ललित कला विभाग का सहयोग कर रही हैं।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेव भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस शोध प्रबंध पाठक व अन्य शोधार्थियों के लिए भविष्य में सहायक व लाभप्रद हुआ, तो मैं स्वयं के इस प्रयास को सफल मानूँगी।

शोधकत्री

अंजली

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन पृष्ठ संख्या

आभार

प्रथम अध्यायः **01 – 22**

– कला का इतिहास

– चित्रकला का इतिहास

– लघु चित्रकला का इतिहास

द्वितीय अध्याय : **23 – 36**

– लघु चित्रण के विषयवस्तु

तृतीय अध्यायः **37 – 46**

– लघु चित्रण की विधि व प्रयोग होने वाली सामाग्री

चतुर्थ अध्यायः **47 – 70**

– विभिन्न क्षेत्रों की लघु चित्रकला

– राजस्थानी लघुचित्र शैली

– उपसंहार **71 – 71**

– संदर्भ ग्रंथ सूची **72 – 74**

– चित्र संग्रह सूची **75 – 75**

– चित्र सूची **76 – 98**

प्रथम अध्याय

- कला एवं लघु चित्रकला का इतिहास

कला का इतिहास

कला का इतिहास बहुत पुराना है, माना जाता है कि मनुष्य के अंदर कला बचपन से ही विद्यमान होती है। कला के इतिहास को समझने से पहले हमें इसके अर्थ को समझ लेना अति आवश्यक है।

- कला : –

कला मानव जीवन या (सभ्यता) का एक महत्वपूर्ण भाग है जब से मनुष्य ने अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करना शुरू किया, तभी से कला का विकास होने लगा। कला का इतिहास (**Art History**) एक अध्ययन है जिसमें प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक कला के विकास, शैलियों, कलाकारों और उनकी कृतियों का अध्ययन किया जाता है। कला के इतिहास से हमें यह पता चलता है कि अलग–अलग समय में समाज, धर्म, संस्कृति और राजनीति ने कला को किस प्रकार प्रभावित किया।

लाखों वर्ष पूर्व से ही मानव गुफावासी था। उसमें कलाभिरुचि भी थी, जिसका पता हमें उस समय के प्राप्त पत्थर के बने अस्त्र–शस्त्र आदि से चलता है, क्योंकि आदि काल में मानव पत्थर के बने अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग करता था। उस समय मनुष्य का जीवन बहुत सरल और सादा था।

मानव इतिहास का सबसे प्रारम्भिक समय पाषाण काल (**Stone Age**) कहलाता है और पाषाण काल को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जाता है।

1 पुरापाषाण काल
2 मध्यपाषाण काल
3 नवपाषाण काल

इन तीनों कालों में मनुष्य के जीवन में धीरे–धीरे विकास हुआ।

1) पुरापाषाण काल : – (Paleolithic Age) :-

पुरापाषाण काल के प्रमाण भारत में कई स्थानों पर मिले हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध स्थान (**Bhimbetka Rock Shelters**) भीमबेटका रॉक शेल्टर है। यहाँ गुफाओं की दीवारों पर बने प्राचीन चित्र मानव जीवन और शिकार के दृश्य दिखते हैं।

मुख्य विशेषताएँ : –

- ✓ मनुष्य गुफाओं और जंगलों में रहता था।
- ✓ भोजन के लिए शिकार और फल–फूल इकट्ठा करना पड़ता था।

1. शर्मा, लोकेश चन्द्र. भारत की चित्रकला. इंडियाः कृष्णा प्रकाशन मीडिया, 1970

DO NOT COPY

- ✓ पत्थर की कुल्हाड़ी, चाकू और विभिन्न तरह के औजार बनाना शुरू किया।
- ✓ गुफाओं की दीवारों पर जानवरों और शिकार के चित्र बनाये जाते थे।
- ✓ आग का उपयोग भी धीरे–धीरे शुरू हुआ।

भारत में इसके महत्वपूर्ण प्रमाण **Bhimbetka Rock Shelters** में मिले हैं।

2) मध्य पाषाण काल (Mesolithic Age) :–

मध्य पाषाण काल पाषाण युग का दूसरा चरण है। यह पुरापाषाण काल और नवपाषाण काल के बीच का काल माना जाता है। इस समय मानव जीवन में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जैसे छोटे पत्थर के औजारों का उपयोग किया, सामाजिक जीवन को विकसित किया और पशुपालन की शुरुआत की। यह काल आगे आने वाले नवपाषाण काल की उन्नत सभ्यता की नींव बना।

मुख्य विशेषताएँ :–

- ✓ इस समय छोटे पत्थर के औजार बनाए गए।
- ✓ लोग शिकार और मछली पकड़ने पर निर्भर थे।
- ✓ कुछ जानवरों को पालतू बनाना शुरू हुआ।
- ✓ चट्टानों पर नृत्य, शिकार और सामाजिक जीवन के चित्र बनाए गए।

3) नवपाषाण काल (Neolithic Age) :–

नवपाषाण काल पाषाण युग का अंतिम और सबसे उन्नत चरण है। "नवपाषाण" का अर्थ है नया पत्थर। इस समय मानव जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। मनुष्य ने खेती करना, पशुपालन करना और स्थायी घरों में रहना शुरू किया। इस समय के कई पुरातात्विक स्थल भारत में पाए गए हैं, जैसे (**Mehrgarh**) मेहरगढ़ जहाँ प्रारम्भिक कृषि और पशुपालन के प्रमाण मिले हैं।

मुख्य विशेषताएँ :–

- ✓ मनुष्य ने खेती करना शुरू किया।
- ✓ पशुपालन का विकास हुआ।
- ✓ लोग स्थायी घर बनाकर रहने लगे।
- ✓ पत्थर के औजार घिसकर चिकने बनाये जाने लगे।
- ✓ मिट्टी के बर्तन (**Pottery**) बनाना।
- ✓ गाँव और समाज का विकास हुआ।

DO NOT COPY

पुरापाषाण, मध्यपाषाण और नवपाषाण काल मानव सभ्यता के विकास के तीन महत्वपूर्ण चरण हैं। इन चरणों में मनुष्य ने शिकार से खेती तक, घूमंतू जीवन से स्थायी जीवन तक और साधारण औजारों से उन्नत औजारों का प्रयोग किया।

हमारे देश के भिन्न–भिन्न भागों में मध्य पाषाण काल का अंत तथा नवपाषाण काल का प्रारम्भ अलग–अलग समय में हुआ। उपरोक्त कालक्रम भारत को ध्यान में रखकर ही दिया गया है।

प्राचीन समय से ही कला का क्षेत्र बहुत बड़ा रहा है। जब हम हमारे प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करते हैं तो उस समय छोटे–छोटे प्रदर्शन जो दर्शकों को आकर्षित करता हो उसे कला कहा जाता था। हमारे विद्वानों का यह मानना है कि हमारी प्राचीन कला के विषय धार्मिक विचारों से संबंधित रहे होंगे। या शायद उस समय के चित्रकारों ने धार्मिक चित्रों को अधिक महत्व दिया होगा। परंतु समय के साथ–साथ भारतीय चित्रकारों की मनों स्थिति भी बदलती चली गई तथा उन्होंने अपने आस–पास की चीजों को जिस रूप में देखा उन्हें उसी रूप में उनका चित्रण किया।

➢ कला का अर्थ :–

ऐसा माना जाता है कि संस्कृत भाषा में "कला" शब्द की उत्पत्ति "कल" धातु से हुई है, जिसका अर्थ है शोभा या अलंकरण। "कला" के संबंध में "पाश्चात्य दृष्टिकोण" भी कुछ इसी प्रकार का है। अंग्रेजी भाषा में कला को (**Art**) कहा जाता है। "आर्ट" का संबध पुरानी फ्रेंच आर्ट और लैटिन आर्टेस या आर्स से जोड़ा जाता है, जिसका अर्थ बनाना, पैदा करना है।

यह शारीरिक व मानसिक कौशल आर्ट माना गया है। अंग्रेजी में **Art** शब्द का प्रयोग 13वीं शताब्दी से होने लगा था, जिसका मुख्य अर्थ कौशल मात्र था। 17वीं शताब्दी में कला का प्रयोग काव्य, संगीत, चित्र, वस्तु आदि ललित कलाओं के लिए भी होने लगा, जो मनुष्य के जीवन में आनंद प्रदान करती है और कला कहलाती है।

"कला" न ज्ञान है, न शिल्प है, न विद्या है, बल्कि जिसके द्वारा हमारी आत्मा परमानंद का अनुभव करती है, वही कला है।

परम आनंद की प्राप्ति मनुष्य के जीवन का उद्देश्य होता है और इसे प्राप्त करने की इच्छा हमारी आत्मा की होती है। कला वस्तु के प्रति भावनात्मक अनुभूति को उत्पन्न कर आत्मिक सुख प्रदान करती है। ब्रह्म द्वारा रचित इस सृष्टि में किसी भी देश की संस्कृति का सम्यक ज्ञान वहां की ललित कलाओं से होता है। भारत की ललित कलाओं का अपना अलग महत्व है।

DO NOT COPY

2. What is art and why do I find Mona Lisa Bring – Art Goda Art https://share-google/ TWCMhg UofIPYiMAAO

चित्रकला सभी कलाओं में श्रेष्ठ है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाली है। जैसे – पर्वतों में सुमेरू श्रेष्ट है, पक्षियों में गरूड़ प्रधान है और मनुष्यों में राजा उत्तम है। उसी प्रकार कलाकारों में चित्रकला उत्कृष्ट है।

कला का संबंध केवल सुंदरता से ही नहीं, बल्कि रचनात्मकता, कल्पना और अनुभूति से भी होता है। कलाकार अपनी कल्पना, शक्ति और अनुभवों का उपयोग करके नई–नई रचनाएँ करता है। जब कोई कलाकार चित्र बनाता है, मूर्ति बनाता है या कोई गीत रचता है, तो वह अपने मन की भावनाओं को एक रूप देता है। यही प्रक्रिया कला कहलाती है।

कला मानव सभ्यता और संस्कृति का भी महत्वपूर्ण दर्पण है। किसी भी देश या समाज की कला को देखकर उसकी संस्कृति, परंपरा, जीवन शैली और इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है। प्राचीन काल की गुफा चित्रकला, मंदिरों की मूर्तियाँ और ऐतिहासिक चित्र हमें उस समय के जीवन और समाज के बारे में बताते हैं। इसलिए कला केवल सौंदर्य का साधन नहीं, यह इतिहास और संस्कृति को समझने का भी माध्यम है।

कला का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं होता, बल्कि यह मनुष्य को आनंद, प्रेरणा और ज्ञान भी प्रदान करती है। कला के माध्यम से मनुष्य अपने विचारों और भावनाओं को बेहतर तरीके से व्यक्त कर सकता है। कला मनुष्य के जीवन को सुंदर बना सकती है। कला मनुष्य के जीवन को अधिक संवेदनशील, सुखद और समृद्ध बनाती है।

अतः में कह सकती हूँ कि कला मनुष्य की रचनात्मक शक्ति, भावनाओं और कल्पना की सुंदर अभिव्यक्ति है, जो जीवन को सुंदर बनाती है और समाज की संस्कृति तथा परंपराओं को भी दर्शाती है। इसलिए कला मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग है।

➢ कला के प्रकार :–

इस प्रकार से कला कई रूपों में दिखाई देती है। मुख्य प्रकार इस प्रकार हैं–

- दृश्य कला (**Visual Art**)– जिस कला को हम अपनी आँखों से देख सकते हैं। जैसे – चित्रकला, मूर्तिकला, रेखांकन, फोटोग्राफी
- प्रदर्शन कला (**Performing Art**) – जिस कला का प्रदर्शन किया जाता है। जैसे – उचसम, नृत्य, संगीत, नाटक, रंगमंच।
- साहित्यिक कला (**Literary Art**) – शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति की कला। जैसे– कविता, कहानी, नाटक, रंगमंच।

DO NOT COPY

- प्रयोगात्मक कला (**Applied Art**) – ऐसी कला जिसमें सौंदर्य के साथ–साथ उपयोगिता भी होती है। जैसे– वास्तुकला, डिजाइन, हस्तशिल्प।

➢ कला की परिभाषा :–

मनुष्य की रचनात्मक शक्ति और कल्पना की रचनात्मक शक्ति और कल्पना की अभिव्यक्ति है। इसके माध्यम से मनुष्य अपने भाव, विचार, कल्पना और अनुभव को विभिन्न रूपों में व्यक्त करता है। जब कलाकार रेखा, रंग, आकार, ध्वनि, शब्द या अन्य माध्यमों का उपयोग करके सौंदर्य और भावनाओं को प्रकट करता है, तो उसे कला (**Art**) कहा जाता है।

कला केवल सुंदर वस्तु बनाना ही नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के आंतरिक भावों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति भी है। कलाकार अपनी कल्पना और अनुभव के आधार पर किसी विषय को नए और आकर्षक रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार कला में सृजनात्मकता (**creativity**) और सौंदर्य–बोध (**sense of beauty**) दोनों शामिल होते हैं।

प्रसिद्ध रूसी लेखक स्मवजवसेजंल के अनुसार – "कला वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कलाकार अपनी भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाता है।"

इसी प्रकार भारतीय कवि और कलाकार **Rabindranath Tagore** के अनुसार – "कला मनुष्य के आंतरिक जीवन और भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति है।"

कला का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है, बल्कि मानव जीवन को सुंदर, संवेदनशील और अर्थपूर्ण बनाना भी है। कला के माध्यम से समाज की संस्कृति, परंपराएँ और जीवन–मूल्य भी प्रकट होते हैं। चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य और साहित्य आदि सभी कला के रूप हैं।

1) रवीन्द्रनाथ टैगोर – ''कला में मनुष्य स्वयं अपनी अभिव्यक्ति करता है।''

2) जयशंकर प्रसाद – ''ईश्वर को वकत्त्व, शक्ति का वह संकुचित रूप जो हमें बोध के लिए प्राप्त होता है, वही कला है।''

3) महात्मा गांधी – ''कला आत्मा का ईश्वर – रोय संगीत है।''

4) प्लेटो – ''कला, सत्य के अनुकृति की अनुकृति है। ''

5) अरस्तु – ''कला, प्रकृति का अनुकरण है।''

6) हीगल – ''हीगल ने कला को आदि भौतिक सता को व्यक्त करने का माध्यम माना है।''

7) रस्किन – ''कला, ईश्वरीय कृति के प्रति मानव के आहलाद की अभिव्यक्ति करता है।''

8) फ्रायड – ''कला के माध्यम से मानव अपनी दमित वासनाओं और कुण्ठाओं की अभिव्यक्ति करता है।''

3. **https://share-google/jioKYYNPHclNTAz1n**
4. **https://share-google/PpgIC85101WrWSUcl**

DO NOT COPY

"मानव की वह रचना जो उसके जीवन में आनंद प्रदान करती है, कला कहलाती है।"

कला हर चीज में व्याप्त होती है, इसे पहचानने की जरूरत होती है। जैसे लिखने–पढ़ने, बोलने, उठने–बैठने आदि।

➢ कला का महत्व :–

कला मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की भावनाओं, विचारों और संस्कृति को व्यक्त करने का माध्यम भी है।

1. भावनाओं की अभिव्यक्ति – कला के माध्यम से मनुष्य अपनी भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं को व्यक्त करता है। चित्रकला, संगीत, नृत्य आदि के द्वारा कलाकार अपने मन की बात दूसरों तक पहुँचाता है।

2. सौंदर्य की अनुभूति – कला हमें सुंदरता को देखने और महसूस करने की क्षमता देती है। अच्छी कला मन को आनंद और शांति प्रदान करती है।

3. संस्कृति और परंपरा का संरक्षण – कला के माध्यम से किसी भी समाज की संस्कृति, परंपरा और इतिहास सुरक्षित रहते हैं। पुराने चित्र, मूर्तियाँ और स्थापत्य हमें हमारे अतीत के बारे में जानकारी देते हैं।

4. मानसिक और बौद्धिक विकास – कला मनुष्य की कल्पना शक्ति, रचनात्मकता और सोचने की क्षमता को विकसित करती है। इससे मन का विकास होता है।

5. समाज को संदेश देना :– कई कलाकार अपनी कला के माध्यम से समाज की समस्याओं और विचारों को प्रस्तुत करते हैं।

जैसे – भारतीय कलाकार **M.F. Hussain** ने अपनी चित्रकला में भारतीय संस्कृति और समाज को दर्शाया।

इस प्रकार, कला मानव जीवन को सुंदर, संवेदनशील और रचनात्मक बनाती है। यह मनुष्य के भावनात्मक, मानसिक और सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

➢ कला के तत्व (Elements of Art) :–

वे मूलभूत घटक हैं जिनसे किसी भी कला कृति (**Artwork**) का निर्माण होता है। जैसे भाषा में शब्द और वाक्य होता हैं, उसी प्रकार चित्रकला में रेखा, रंग, आकार आदि तत्व मिलकर एक संपूर्ण

5. **https://share-google/szA4KP5NXaj94PrU3**
6. **https://share-google/LjlswfzoZO41zV3YQ**

DO NOT COPY

कला रचना बनाते हैं। किसी भी कलाकार के लिए इन तत्वों की समझ होना बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से हम भावनाओं, विचारों और सौंदर्य को व्यक्त करते हैं। मुख्य रूप से कला के 7 तत्व माने जाते हैं।

- रेखा (**Line**):– रेखा दो बिंदुओं को जोड़ने से बनती है। यह कला का सबसे मूल तत्व है।

✓ सीधी रेखा

✓ टेढ़ी (बनतअमक) रेखा

✓ तिरछी (कपंहवदंस) रेखा

✓ जिग–जैग (**zig & zag**) रेखा

रेखा के माध्यम से कलाकार आकार, गति, दिशा और भावनाओं को व्यक्त करता है।

- आकार (**Shape**) :– जब रेखाएँ मिलकर कोई बंद आकृति बनाती हैं, तो उसे आकार कहते हैं।

✓ ज्यामितीय आकार – जैसेः वृत्त, वर्ग, त्रिकोण

✓ प्राकृतिक आकार – जैसेः पेड़, पत्ते, मनुष्य, पशु

आकार से चित्र में संरचना और पहचान बनती है।

- रूप (**Form**) :– जब आकार को तीन आयाम (**3D**) में दिखाया जाता है, तो उसे रूप कहते हैं।

✓ गोला (**sphere**)

✓ घन (**cube**)

✓ बेलन (**cylinder**)

रूप चित्र में गहराई और वास्तविकता लाता है।

- रंग (**Color**) :– रंग चित्रकला का सबसे आकर्षक तत्व होता है। रंगों से चित्र में भावनाएँ, ऊर्जा और सौंदर्य आता है। मुख्य रंगः–

✓ प्राथमिक रंग – लाल, पीला, नीला

✓ द्वितीयक रंग – हरा, नारंगी, बैंगनी

रंगों से खुशी, शांति, दुख या ऊर्जा जैसी भावनाएँ भी व्यक्त की जा सकती हैं।

DO NOT COPY

- बनावट (**Texture**) :– किसी वस्तु की सतह कैसी महसूस होती है, उसे बनावट कहते हैं।

✓ चिकनी (**Smooth**)

✓ खुरदरी (**Rough**)

✓ मुलायम (**Soft**)

चित्रकला में बनावट को देखकर ऐसा लगता है जैसे वस्तु को छू सकते हैं।

- मान (**Value**) :– किसी रंग की हल्कापन और गहराई को मान कहते हैं।

✓ हल्का रंग (**Light tone**)

✓ गहरा रंग (**Dark tone**)

मान के द्वारा चित्र में प्रकाश और छाया दिखाई जाती है।

- स्थान (**Space**) :– चित्र में वस्तुओं के बीच की दूरी या खाली जगह को स्थान कहते हैं।

✓ सकारात्मक स्थान (**Positive Space**) – जहाँ वस्तु दिखाई देती है

✓ नकारात्मक स्थान (**Negative Space**) – खाली जगह स्थान से चित्र में गहराई और संतुलन आता है।

कला के तत्व किसी भी कला कृति की आधारशिला होते हैं। रेखा, आकार, रूप, रंग, बनावट, मान और स्थान मिलकर किसी चित्र को सुंदर, संतुलित और प्रभावशाली बनाते हैं।

➢ कला के सिद्धांत (**Principles of Art**) :–

कला के सिद्धांत वे नियम या तरीके हैं जिनकी सहायता से कलाकार कला के तत्वों (**Elements of Art**) को व्यवस्थित करता है। इन सिद्धांतों से आकर्षण और प्रभाव पैदा किया जाता है। सामान्यतः कला के 7 मुख्य सिद्धांत माने जाते हैं।

1. संतुलन (**Balance**) – जब चित्र में सभी भाग समान रूप से व्यवस्थित होते हैं और किसी एक भाग का वजन अधिक नहीं लगता, तो उसे संतुलन कहते हैं। जैसे –

✓ सममितीय संतुलन (**Symmetrical balance**)

✓ असममितीय संतुलन (**Asymmetrical balance**)

7. https://share-google/ppglc8510/wrwsxel.

DO NOT COPY

- ✓ रेडियल संतुलन (**Radial balance**)

संतुलन से चित्र स्थिर और व्यवस्थित दिखाई देता है।

2. विरोध / कंट्रास्ट (Contrast) :– जब चित्र में दो विपरीत तत्वों का उपयोग किया जाता है, तो उसे कंट्रास्ट कहते हैं। जैसे –

- ✓ हल्का और गहरा रंग
- ✓ बड़ा और छोटा आकार
- ✓ चिकना और खुरदरा

कंट्रास्ट से चित्र अधिक आकर्षक और प्रभावशाली बनता है।

3. प्रमुखता (Emphasis) :– चित्र में किसी एक भाग को सबसे अधिक महत्वपूर्ण बनाना प्रमुखता कहलाता है। यह वह स्थान होता है जहाँ दर्शक की नजर सबसे पहले जाती है। जैसे

- ✓ चमकीला रंग
- ✓ बड़ा आकार
- ✓ विशेष प्रकाश
- ✓ गति (**Movement**)

चित्र में ऐसा प्रभाव पैदा करना जिससे दर्शक की आँखें एक भाग से दूसरे भाग तक चलती रहें, उसे गति कहते हैं। रेखाओं, आकारों और रंगों के प्रयोग से चित्रों में गति दिखाई जा सकती है।

4. पैटर्न (Pattern) :– किसी आकार, रेखा या रंग का बार–बार दोहराव पैटर्न कहलाता है। जैसे–

- ✓ कपड़ों के डिजाइन
- ✓ सजावटी चित्र

5. लय (Rhythm) :– जब चित्र में तत्वों का नियमित और तालबद्ध दोहराव होता है, तो उसे लय कहते हैं। यह संगीत की तरह चित्र में भी प्रवाह और ताल उत्पन्न करता है।

6. एकता / सामंजस्य (Unity / Harmony) :– जब चित्र के सभी भाग मिलकर संपूर्ण और एक जुट प्रभाव उत्पन्न करते हैं, तो उसे एकता कहते हैं। इससे चित्र संतुलित, सुंदर और पूर्ण दिखाई देता

DO NOT COPY

है। कला के सिद्धांत कलाकार को यह सिखाते हैं कि वह कला के तत्वों को कैसे व्यवस्थित करे ताकि चित्र संतुलित, आकर्षक और प्रभावशाली बने।

➢ कला का वर्गीकरण :–

कला का क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। कुछ विद्वान कला को केवल दो श्रेणियों में मानते हैं–

1. उपयोगी कला – इसके अंतर्गत रंगाई, छपाई, बढ़ाई विधि, मिस्त्री विधि, सुनार आदि माने गये हैं।

2. ललित कला – ललित कलाओं के अंतर्गत पाँच कलाएँ प्रमुख होती हैं, जो निम्नलिखित हैं –

वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला, काव्य कला, दृश्य कला

दृश्य कला तीन प्रकार की होती है –

मूर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला

श्रव्य कला :– श्रव्य कला दो प्रकार की होती है –

संगीत कला, काव्य कला

➢ कला का विशेष :–

कला मानव की रचनात्मक अभिव्यक्ति है। इसके माध्यम से मनुष्य अपने विचार, भावनाएँ और अनुभव व्यक्त करता है। कला की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. रचनात्मकता (**Creativity**) – कला में नई कल्पना और सृजन की क्षमता होती है। कलाकार अपनी कल्पना से नए रूप और विचार प्रस्तुत करता है।

2. भावनाओं की अभिव्यक्ति – कला के माध्यम से प्रेम, दुख, खुशी, शांति आदि भावनाएँ व्यक्त की जाती हैं।

3. सौंदर्य का अनुभव – कला का मुख्य उद्देश्य सौंदर्य (**Beauty**) को प्रकट करना और लोगों को सौंदर्य का अनुभव कराना है।

4. सांस्कृतिक प्रतिबिंब – कला किसी समाज की संस्कृति, परंपरा और जीवन शैली को दर्शाती है।

5. संचार का माध्यम – कला बिना शब्दों के भी संदेश देने का शक्तिशाली माध्यम है।

6. कल्पनाशक्ति पर आधारित – कला में कलाकार की कल्पना और सोच का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

7. आनंद और संतोष प्रदान करना – कला देखने या बनाने से मन को आनंद और संतोष मिलता है।

8. समय और समाज का दर्पण – कला अपने समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों को भी दर्शाती है।

DO NOT COPY

8. **https://share-google/Blp1smZNTdwAiWZ3**

निष्कर्षः –

कला मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि भावनाओं, विचारों और संस्कृति को व्यक्त करने का प्रभावशाली माध्यम भी है।

➢ भारतीय चित्रकला (Indian Painting) :–

कला के अध्ययन के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन समय से ही कला का क्षेत्र कितना महत्वपूर्ण रहा है। इस क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान चित्रकला का भी है। इस लघु शोध में हमारे अध्ययन का विषय भी चित्रकला से ही संबंधित है। चित्रकला मानव आँखों को सुख पहुचाने वाली होती है। भारतीय चित्रकला के इतिहास को जानने के लिए हमें कला की तरह चित्रकला का भी इतिहास जानना होगा। यद्यपि, चित्रकला की शुरुआत कहाँ से हुई, इसके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। परंतु हम कुछ प्राचीन ग्रंथों में लिखी गई बातों का वर्णन करेंगे, जिनमें चित्रकला के विकास के बारे में बताया गया है।

DO NOT COPY

9. सिंह, डॉ. रेखा कुमारी. चित्रण के सिद्धान्त. इलाहाबाद – साहित्य संगम, 2015

लघु चित्रकला का इतिहास

➢ चित्रकला का अर्थ :–

चित्रकला मानव की सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण कलाओं में से एक है। यह एक दृश्य कला (**Visual Art**) है।

अर्थ और परिभाषा – चित्रकला का शाब्दिक अर्थ है – तस्वीर बनाने की विधा या हुनर। यह अमूर्त विचारों या यथार्थवादी दृश्यों को चित्रित कर सकती है जिसमें कलाकार रंगों, रेखाओं, आकृतियों और रूपों के माध्यम से अपने भावनाओं और अनुभवों को किसी सतह पर व्यक्त करता है। यह सतह कागज, कपड़ा, दीवार, लकड़ी या कैनवास हो सकती है। सरल शब्दों में, रंगों और रेखाओं द्वारा किसी विषय को चित्र के रूप में व्यक्त करने की प्रक्रिया को चित्रकला कहते हैं।

चित्रकला के माध्यम से कलाकार प्रकृति, मनुष्य, पशु–पक्षी, धार्मिक कथाएँ, ऐतिहासिक घटनाएँ और अपनी कल्पना को चित्रित करता है। जब कलाकार रंगों और रेखाओं का संतुलित उपयोग करके किसी विषय को सुंदर रूप में प्रस्तुत करता है, तो उसे चित्रकला कहा जाता है। चित्रकला केवल वस्तुओं की नकल करना नहीं है, बल्कि इसमें कलाकार की कल्पना, भावनाएँ और सौंदर्यबोध भी शामिल होता है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य चित्रकला का प्रयोग करता आया है। आदिमानव ने गुफाओं की दीवारों पर शिकार, पशुओं और दैनिक जीवन के दृश्य बनाकर अपनी भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त किया। इससे स्पष्ट होता है कि चित्रकला मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ आगे बढ़ती रही है। समय के साथ चित्रकला की शैली, तकनीक और विषयों में भी परिवर्तन हुआ।

चित्रकला का मुख्य उद्देश्य सौंदर्य की अभिव्यक्ति करना और समाज, संस्कृति तथा जीवन के विभिन्न विचारों और दृष्टिकोणों को लोगों तक पहुँचाना है। इसलिए चित्रकला केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह शिक्षा, संस्कृति और इतिहास को समझने का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

इस प्रकार, रंगों, रेखाओं और आकृतियों के माध्यम से किसी विषय, भावना या दृश्य की कलात्मक रूप में व्यक्त करने की कला को चित्रकला कहा जाता है। यह मानव की रचनात्मकता, कल्पना और सौदर्यबोध का सुंदर रूप है।

➢ चित्रकला की खोज :–

भारत में प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला की खोज सर्वप्रथम अंग्रेजों के समय में हुई जब वो यहां पर शासन करने आए थे। हमारी संस्कृति और कला को समझने की जिज्ञासा से प्रेरित होकर अंग्रेजों ने

DO NOT COPY

10. प्रताप, डॉ. रीता. भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास. राजस्थान– हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2009
11. https://share-google/XlHc54VUNKC1laS4lHd

यह खोज प्रारंभ की। ज्ञात तथ्यों के आधार पर जॉन कॉकबर्न और आर्चिबाल्ड कार्लाइस को सर्वप्रथम शिलाचित्रों की खोज का श्रेय दिया जाता है। इन दोनों ने ही 1880 ई. में केमूर की पहाड़ियों (मिर्जापुर क्षेत्र के पास) में गुफा चित्रों का परिचय कराया। इन चित्रों में शिकार के दृश्य, पशु–पक्षी, नृत्य करते हुए समूह और दैनिक जीवन की गतिविधियाँ दर्शाई गई हैं। इससे पता चलता है कि आदिम मानव अपने अनुभवों और भावनाओं को चित्रों के माध्यम से व्यक्त करता था। 17 मार्च 1883 ई0. को विचजयगढ़ दुर्ग से लगभग 3 मील और सोन नदी से 5 मील दूर घोड़मगर नामक स्थान पर गैण्ड़े के शिकार का चित्र मिला। भारत में शुरूआती चित्रकला भित्तिचित्रण के रूप में हुई होगी। ऐसी हमे हमारे ऐतिहासिक अध्ययन से पता चलता है। यहां की दीवारें धार्मिक संकेतों से सजा हुई है जो प्राचीन समय के कलाकारों के बीच लोक प्रिय हुआ करते है।

➢ चित्रकला के षडांग :–

अध्ययन से हमें चित्रकला के प्राचीन महत्व का पता चलता है। प्राचीन समय से ही चित्र बनाने के कुछ नियम होते थे। हमने इससे पूर्व अध्ययन में आचार्य वात्स्यायन द्वारा रचित 'कामसूत्र' ग्रथं के महत्व का जिक्र किया है। इसी ग्रंथ में बताई गई 64 कला में से चित्रकला भी एक है। जिसकों इस ग्रंथ ' आलेख्यम' कहा गया है। ''कामसूत्र'' के प्रसिद्व टीकाकार हुए है, यशोधर पंडित जयपुर के राजा जयसिंह प्रथम की सभा के विख्यात विद्वान थे। भारतीय चित्रकला का जयपुर प्राचीन केंद्र माना जाता है। इसलिए चित्रकला के षड़गों से पूर्णतया परिचित होना यशोधर पंडित ने चित्रकला के छह अंग बताए है :– चित्रकला के छह अंगः

रूप भेद, प्रमाण, भाव, लावण्य योजना, साधृश्य, वर्णिका भंग

1. रूप भेद (Rupbhed) :– अर्थः – रूपों का विभाजन या विविधता – यह सिद्धांत बताता है कि पेंटिंग में विभिन्न आकृतियों और रूपों को कैसे सही और स्पष्ट बनाया जाए। यह कलाकार की कल्पनाशीलता और पर्यवेक्षण कौशल को दर्शाता है। उदाहरण –

मानव और पशुओं के आकार, उनके हाव–भाव और मुद्राएँ

2. प्रमाण (Pramana) :– अर्थ – अनुपात और मापन – किसी आकृति या वस्तु के आकार और उसके विभिन्न अंगों के सही अनुपात को बनाए रखना। यह चित्र के सभी तत्वों के बीच संतुलन सुनिश्चित करता है। उदाहरणः–

मानव आकृति में शरीर के हिस्सों का सही अनुपात (सिर, धड़, हाथ, पैर)

12. शर्मा, डॉ. लोकेश चन्द्र. भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास. मेरठ – गोयल पब्लिशिंग हाउस, 2005
13. वर्मा, डॉ. अविनाश बहादुर और अमित वर्मा. कला एवं तकनीक. (बरेली– बड़ा बाजार), 1998

DO NOT COPY

3. भाव (Bhava) – अर्थ – भावनाएँ और अभिव्यक्ति। चित्र में दिखाई गई आकृतियों की भावनाएँ और उनके चेहरे के हाव–भाव। यह सिद्धांत चित्र को जीवंत बनाता है। जैसे –
माता यशोदा की ममता, कृष्ण का बाल स्वरूप, या युद्ध के दृश्यों में वीरता का भाव।

4. लावण्य योजना (Lavanya Yojana) :– अर्थ – सौंदर्य और सौंदर्य का संयोजन। यह चित्रकला के सजावट और सौंदर्यपूर्ण गुणों का प्रतिनिधित्व करता है। कलाकार को पेंटिंग में आकर्षक और मनमोहक सौंदर्य लाने की क्षमता होनी चाहिए। जैसे –
फूलों, आभूषणों और वस्त्रों का बारीक चित्रण।,

5. सादृश्य (Sadrishy) :– अर्थ – समानता या यथार्थता। यह सिद्धांत वस्तु के सही स्वरूप और उसकी समानता को दर्शाता है। चित्र वास्तविकता के निकट होना चाहिए। जैसे –
किसी राजा या देवी–देवता का चित्र उनके चरित्र और व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करे।

6. वर्णिका भंग (Varnikabhang) – अर्थ – रंगों का सामंजस्य और तकनीक। यह रंग संयोजन, रंगों के इस्तेमाल और उनकी स्थिरता पर आधारित है। रंगों का सही उपयोग चित्र को प्रभावी बनाता है। जैसे –
मोनोक्रोम और बहुरंगी पेंटिंग्स में रंगों का सही संतुलन।

- **शडंग का महत्व :–**
- ✓ सौंदर्य शास्त्र – पेंटिंग को सुंदर और प्रभावी बनाने में मदद करता है।
- ✓ कलात्मकता – यह कला में अनुशासन और संरचना प्रदान करता है।
- ✓ प्रभावशाली अभिव्यक्ति – यह चित्र को भावनात्मक रूप से दर्शकों के करीब लाता है।

निष्कर्षः चित्रकला के षडंग भारतीय कला के महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं। इनके आधार पर चित्रकला को सुंदर, संतुलित और प्रभावशाली बनाया जाता है।

प्राचीन समय से ही चित्र रचना करते हुए इन नियमों को खास रखा गया है। प्राचीन भारतीय चित्रकला ग्रंथों के अनुसार, यदि चित्रण में इन नियमों का पालन नहीं किया जाता, तो उसे चित्र नहीं कहा जा सकता। इन्हीं सब बातों से हमें भारतीय चित्रकला के षड़ाग के महत्व का पता चलता है।

DO NOT COPY

भारतीय चित्रकला के साथ–साथ पाश्चात्य विद्वानों ने भी चित्रकला के कुछ नियम बताए हैं। इनमें हरबर्ट रीड का नाम प्रमुख है। उन्होंने चित्रकला के निम्नलिखित पाँच तत्वों का वर्णन किया है:
रेखा प्रवाह, रूप योजना, स्थान, छाया प्रकाश , वर्ण
इस प्रकार हम कह सकते है कि चाहे भारीतय चित्रकला हो या पाश्चात्य चित्रकला दोनों में चित्र रचना के नियमों को बताया गया है। दोनों के नियमों से काफी समीपता भी दिखाई देती है।

- चित्रकला की विशेषताएँ :–

चित्रकला एक महत्वपूर्ण दृश्य कला है, जिसके माध्यम से कलाकार रंग, रेखाओं और आकृतियों का उपयोग करके अपने विचारों, भावनाओं और कल्पना को व्यक्त करता है। चित्रकला में कई ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जो इसे अन्य कलाओं से अलग और आकर्षक बनाती हैं:

1. दृश्य कला – चित्रकला एक दृश्य कला है, जिसे हम अपनी आँखों से देखते हैं और उसके सौंदर्य का अनुभव करते हैं। इसमें कलाकार रंगों और आकृतियों के माध्यम से किसी विषय को प्रस्तुत करता है।

2. भावनाओं की अभिव्यक्ति – चित्रकला कलाकार की भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है। कलाकार अपने अनुभव, कल्पना और मन की भावनाओं को चित्र के रूप में प्रकट करता है।

3. रंगों और रेखाओं का प्रयोग – चित्रकला में रंग, रेखा, आकार, रूप और बनावट का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन तत्वों के सही प्रयोग से चित्र सुंदर और प्रभावशाली बनता है।

4. सौंदर्य की अभिव्यक्ति – चित्रकला का मुख्य उद्देश्य सौंदर्य को प्रस्तुत करना है। कलाकार प्रकृति, मनुष्य, पशु–पक्षी और विभिन्न दृश्यों को सुंदर रूप में चित्रित करता है।

5. कल्पना और रचनात्मकता – चित्रकला में कलाकार की कल्पना और रचनात्मक शक्ति दिखाई देती है। कलाकार साधारण विषय को भी अपनी कल्पना से आकर्षक बना देता है।

6. संस्कृति और समाज का प्रतिबिंब – चित्रकला के माध्यम से किसी देश की संस्कृति, परंपरा, धर्म और समाज के जीवन का चित्रण होता है। इसलिए चित्रकला इतिहास और संस्कृति को समझने का भी माध्यम है।

DO NOT COPY

7. शिक्षा और संदेश का माध्यम :– चित्रकला केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से समाज को शिक्षा और संदेश भी दिया जा सकता है।

इस प्रकार चित्रकला की विशेषताएँ इसे एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली कला बनाती हैं। रंग, रेखा, कल्पना और भावनाओं के माध्यम से कलाकार समाज, प्रकृति और जीवन की सुंदरता को चित्रों में प्रस्तुत करता है।

DO NOT COPY

लघु चित्रकला का इतिहास

मेरे इस लघु शोध कार्य का मुख्य विषय लघु चित्रकला से संबंधित है। चित्रकला के इतिहास में देखा गया है कि भारतीय लघु चित्रकला ने भी कला की अहम भूमिका निभाई है और इस प्रकार हमें लघु चित्रकला को जानने का अवसर मिला।

"Miniature" अर्थात 'लघु' शब्द लैटिन शब्द "मिनियम" से लिया गया है। "मिनियम" गहरे लाल रंग का शीश होता हैं। इस रंग का उपयोग प्रायः पुनर्जागरण काल के दौरान प्राचीन पांडुलिपियों में किया जाता था। सामान्यतः "मिनियम" के अर्थ में थोड़ी असंगति पेदा होती है। जिसका अर्थ आकार में छोटा होता हैं। लघु चित्र छोटे और विस्तृत विवरण देने वाले होते हैं। भारतवर्ष में लघु चित्रों की लंबी परंपरा रही है।

"लघु का अर्थ" – आकार में छोटा चित्र होता हैं। किंतु इस शैली में बने चित्रों में लाक्षणिक विवरण विस्तार से दिए गए हैं। कपड़ा, ताड़पत्र, तथा बाद में कागज का प्रयोग चित्रों को बनाने के लिए किया जाता था। जोकि प्रायः पुस्तकों अथवा पांडुलिपियों के लिए उपयोग किया गया। ब्रिटिश शासन के दौरान ब्रिटिश लोगों द्वारा भारतीय कलाओं को काफी हानि पहुँचाई गई और यह भ्रम उत्पन्न किया गया कि भारतीय कलाओं में कोई विशेषता नहीं। हालांकि बहुत जल्द ही बंगााल कला शैली के भारतीय कलाओं ने अपने विशिष्ट प्रयासों से एक नई कला शैली की स्थापना की जो पश्चिमी अथवा यूरोपीय कला शैली के समक्ष थी। यह प्रवृति आगे भी जारी रही जो आज भी आधुनिक अथवा समकालीन भारतीय कला शैली के नाम से जानी जाती है।

चित्रकला मानव की सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण कलाओं में से एक है। यह एक दृश्य कला (**Visual Art**) है जिसमें कलाकार रंगों, रेखाओं, आकृतियों और रूप के माध्यम से अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को किसी सतह पर चित्र के रूप में व्यक्त करता है। यह सतह कागज, कपड़ा, दीवार, लकड़ी या कैनवास हो सकती है।

चित्रकला में माध्यम के कलाकार प्रकृति, मनुष्य, पशु–पक्षी, धार्मिक कथाएँ, ऐतिहासिक घटनाएँ और अपनी कल्पना को चित्रित करता है। जब कलाकार रंगों और रेखाओं का संतुलित उपयोग करके किसी विषय को सुंदर रूप में प्रस्तुत करता है, तो उसे चित्रकला कहा जाता है। चित्रकला केवल वस्तुओं की नकल करना नहीं, बल्कि उसमें कलाकार की कल्पना, भावनाएँ और सौंदर्यबोध भी झलकता है। प्राचीन काल से ही मनुष्य चित्रकला का प्रयोग करता आया है। आदिमानव ने गुफाओं की दीवारों पर शिकार, पशुओं और दैनिक जीवन के दृश्य बनाकर अपनी भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त किया।

15. **https://share-google/LdYbDYOGrOSNRL7T**

DO NOT COPY

इससे यह स्पष्ट होता है कि चित्रकला मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ आगे बढ़ती रही है। समय के साथ चित्रकला की शैली, तकनीक और विषयों में भी परिवर्तन हुआ।

चित्रकला का मुख्य उद्देश्य सौंदर्य की अभिव्यक्ति करना और समाज, संस्कृति तथा जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाना है। इसके माध्यम से कलाकार अपने विचारों और संदेशों को लोगों तक पहुँचाता है। इसलिए चित्रकला केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं है, बल्कि यह शिक्षा, संस्कृति और इतिहास को समझने का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

इस प्रकार, रंगों, रेखाओं और आकृतियों के माध्यम से किसी विचार, भावना या दृश्य को कलात्मक रूप में व्यक्त करने की कला को चित्रकला कहा जाता है। यह मानव की रचनात्मकता, कल्पना और सौंदर्यबोध का सुंदर रूप है। इस अवधि में भारतीयों ने विभिन्न कलाकारों ने विभिन्न माध्यमों, तकनीकों व विधियों का प्रयोग न केवल अपने विचारों व भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए किया, बल्कि सामाजिक जरूरतों को ध्यान में रखकर बनाते हुए भित्ति कला चित्रों की रचना की। किंतु उसमें दिखाई गई विभिन्न आकृतियों व विभिन्न लक्षणों को सूक्ष्मता को प्रदर्शित किया गया, वे उन्हें "लघुचित्र" कहा जाता है।

भारत में लघु चित्र शैली का आरंभ 10वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ। जब पाल शासक भारत के पूर्वी भाग पर शासन करते थे। पाल चित्रकला शैली की चित्रण बौद्ध धर्म से प्रभावित थी। पाल साम्राज्य के दौरान के चित्र बौद्ध धर्म से संबंधित थे। चित्र ताड़ के पत्तों पर निर्मित किया गया है। ताड़ पत्तों पर कम जगह में चित्रित होने के कारण ये चित्र आकार में छोटे हैं। अतः ये चित्र लघु चित्रकला के अंतर्गत माने जाने लगे। इसी प्रकार की चित्रकला भारत के पश्चिमी भागों में शुरू हुआ माना जाता है। पश्चिमी भारत में इसका शुरुआती कार्य चालुक्य साम्राज्य को जाता है। इस समय के दौरान लघु चित्रकला में मुख्यतः धार्मिक चित्रण ही किया जाता है।

"प्रज्ञापारमिता" एक ऐसी बौद्ध पांडुलिपि तथा पहला ऐसा ज्ञात स्त्रोत है, जिसे 999 ईस्वी के आस–पास लघु चित्रों के रूप में ताड़ पत्तों पर चित्रित किया गया था। 10वीं सदी से लेकर 14वीं सदी तक की कला विधि में चित्रित कुछ जैन कलाकृत चित्रों के अलावा कम ही लघु चित्र प्राप्त हुए थे। फिर भी कलाप्रेमी 15वीं सदी तक प्रज्ञापारमिता चित्रों की प्रशंसा करते लोग और लंबे जाने में अभिव्यक्ति रखते थे। इसलिए, व्यापारिक गुणियों, व्यवसायियों द्वारा इसके चित्रों (चित्रकार) को संरक्षण दिया गया। 1439 ईस्वी का "माडुक्लपसूत्र" एक प्रेम कथा के लिए तैयार किया गया था, परंतु जल्द ही इसे अन्य लोगों के लिए भी बनाया जाने लगा था।

14वीं सदी में ताड़पत्रों का स्थान कागज ने ले लिया। पुराने रंगों में कई नए रंग और स्वर्ण भी शामिल कर लिए गए। सख्त, चिकनी सतह तथा गर्मी को सहने की उपयुक्त क्षमता होने के कारण

DO NOT COPY

कागज के प्रयोग से सफल कला–जगत में क्रांति का संचार हुआ। भक्ति आंदोलन के उत्थान के साथ–साथ देवी – देवीताओं के चित्रों की मांग बढ़ने लगी। इससे चित्रों का उत्पादन तो बढ़ा ही, साथ ही देशी दीवारों के चित्रों की मांग बढ़ने लगी। इससे चित्रों का उत्पादन तो बढ़ा ही, चित्रकला एक लाभकारी व्यवसाय बन गई। परिणामस्वरूप अन्य कलाओं की विशेषण एवं चित्र कला के क्षेत्रों में रुचि लेने लगे। प्रतिस्पर्धा के चलते चित्रकारों को अपनी अलग पहचान बनाने पड़ी। साथ ही साथ वे रेखाओं में अपनी छवि, अभिरुचि एवं पसंद देखने के लिए आतुर हुए। मुस्लिम शासक अपने संरक्षण में अपनी अभिरुचियों के अनुसार चित्रांकन करवाने लगे। न केवल विभिन्न कला शैलियों का विकास हुआ, अपितु धर्म के साथ–साथ धार्मिक कलाकृतियों का उदय हुआ।

मुगल साम्राज्य के उदय के साथ लघु चित्रकला ने विकास करना शुरू कर दिया था। मुगल साम्राज्य उत्तर भारत में लघु चित्रकला के विकास में अत्यधिक योगदान दिया। ऐसा माना जाता है कि मुगलों के शासन काल में लघु चित्रकला सबसे ज्यादा विकसित हुई। मुगल शासकों के पतन के बाद भी लघु चित्रकला चलती रही। मुगलों के बाद भी लघु–चित्रकला को विकास में सबसे ज्यादा योगदान राजस्थानी के राजपूत शासकों ने दिया। राजस्थानी लघु चित्रकला में मुगलों का प्रभाव होने के बावजूद भी अपनी अलग विशेषताएं रही हैं। भारत के पश्चिमी में राजस्थान के साथ–साथ भारतीय लघु चित्रकला दक्षिण में भी फैली हुई थी, जिसे पहाड़ी शैली कहा जाता है। उड़ीसा स्कूल को भी भारतीय लघु चित्रकला का महत्वपूर्ण भाग माना जाता है।

लघु चित्रों का एक बड़ा हिस्सा व्यक्ति चित्रों के रूप में संरक्षित है क्योंकि चित्रों को सैकड़ों पहले अक्षर व प्रतीकात्मक किया गया था। व्यक्ति चित्रों को सबसे पहले अकबर ने प्रोत्साहित किया था। पंरतु ऐसा चित्रांकन केवल शाही लोगों तथा दरबारियों को शामिल था। उपर से नारी चित्रण को अभिव्यक्ति नहीं थी। मल्लिका नूरजहां के चित्रों के साथ–साथ जहांगीर ने स्त्री चित्रों को प्रोत्साहित किया।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भी लघु चित्रकला में विकास की यह यात्रा समाप्त नहीं हुई। इसके बाद यह चित्रकला राजपूत राजाओं के संरक्षण में फलीभूत हुई। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद तत्कालीन वातावरण राजस्थान की लघु चित्रकला की अपनी अलग विशेषताएं थी। राजस्थानी लघु चित्रकला में मुख्यतः शाही जीवन शैली तथा भगवान श्री कृष्ण और राधा की पौराणिक कथाओं का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त चित्रकारों ने राजपूत राजाओं की जीवन शैली तथा उनकी वीरता की गाथाओं को चित्रांकित किया गया है।

1. लघु चित्रकला (**Miniature Painting**) :–

DO NOT COPY

भारतीय चित्रकला की महत्वपूर्ण शैली है जिसमें बहुत छोटे आकार में अत्यंत सुंदर और बारीक चित्र बनाए जाते हैं। "लघु" का अर्थ छोटा होता है, लेकिन इन चित्रों में कला की गहराई और सुंदरता बहुत अधिक होती है। यह कला भारत की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परंपरा को दर्शाती है।

2. प्रारम्भ (**Origin of Miniature Painting**) :– लघु चित्रकला का प्रारम्भ प्राचीन काल में हुआ। इनके शुरुआती उदाहरण जैन पांडुलिपियों और बौद्ध ग्रंथों में मिलते हैं। पहले चित्र ताड़पत्र (**Palm Leaves**) पर बनाए जाते थे। बाद में कागज का प्रयोग शुरू हुआ। इन चित्रों का उद्देश्य धार्मिक ग्रंथों को सजाना और उन्हें समझाने में सहायता करना था।

3. मध्यकाल में विकास (**Development in Medieval Period**):– लघु चित्रकला का वास्तविक विकास मध्यकाल में हुआ, विशेषकर विभिन्न राजवंशों और साम्राज्यों के संरक्षण में।

1) मुगल शैली :–

- मुगल साम्राज्य के समय लघु चित्रकला अपने चरम पर पहुँची।
- इस शैली में यथार्थवाद (**Realism**), प्राकृतिक दृश्य और शाही जीवन को दर्शाया गया।
- चित्रों में चेहरे, भाव और वस्त्रों का बहुत बारीकी से चित्रण किया जाता था।

प्रमुख कलाकार : **Basawan, Daswanth.** उदाहरण : अकबरनामा, जहाँगीरनामा के चित्र।

2) राजपूत शैली :–

- यह शैली राजस्थान के विभिन्न राज्यों में विकसित हुई।
- इसमें धार्मिक विषय विशेषकर राधा–कृष्ण लीलाएँ और प्रेम कथाएँ प्रमुख थीं।
- रंग बहुत चमकीले और भावनात्मक होते हैं।
- इसमें कल्पनाशीलता और सजावटी शैली अधिक दिखाई देती है।

3) पहाड़ी शैली :–

- यह शैली हिमालय के क्षेत्रों (जैसे कांगड़ा, गढ़वाल) में विकसित हुई।
- इसमें प्रकृति, प्रेम और संगीत का सुंदर चित्रण मिलता है।
- चित्रों में कोमलता, शांति और भावनात्मक गहराई होती है।

विशेषताएँ :– लघु चित्रकला अपनी सूक्ष्मता, सुंदरता और तकनीकी कुशलता के लिए जानी जाती है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

16. शर्मा, लोकेश चन्द्र. भारत की चित्रकला. इंडिया: कृष्णा प्रकाशन मीडिया, 1970, 5

DO NOT COPY

1) लघु आकार (**Small Size**) – लघु चित्रकला बहुत छोटे आकार में बनाई जाती है।
इन्हें हाथ में पकड़कर या पुस्तक में देखकर आसानी से देखा जा सकता है।

2) सूक्ष्मता और बारीकी (**Fine Detailing**) – चित्रों में अत्यंत बारीक रेखाओं का प्रयोग होता है। चेहरे के भाव, वस्त्रों की डिजाइन और आभूषणों को बहुत विस्तार से दिखाया जाता है।

3) चमकीले और प्राकृतिक रंग – प्राकृतिक रंगों – खनिज, पौधे, पत्ते आदि से रंग बनाए जाते थे। लाल, नीला, हरा, सुनहरा आदि रंगों का सुंदर और संतुलित प्रयोग होता है।

4) सजावटी शैली (**Decorative Style**) – चित्रों में अलंकरण (**Decoration**) अधिक होता है। वस्त्र, आभूषण, पेड़–पौधे और पृष्ठभूमि को सुंदर कलात्मक रूप से सजाया जाता है।

5) धार्मिक और दरबारी विषय – विषय मुख्यतः धार्मिक (रामायण, महाभारत, राधा–कृष्ण) होते थे। मुगल काल में दरबार, युद्ध, शिकार और राजाओं का जीवन भी चित्रित किया जाता है।

6) प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण – पेड़–पौधे, नदियाँ, पहाड़ और पशुओं को सुंदर ढंग से दर्शाया जाता है। प्रकृति को प्रतीकात्मक और कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

7) प्रोफाइल (**Side Face**) चित्रण – अधिकांश आकृतियाँ साइड फेस (**Profile**) में बनाई जाती हैं। चेहरे की नाक और आँख प्रमुख रूप से दिखाई जाती हैं।

8) रेखाओं का महत्व – रेखाएँ स्पष्ट, पतली और नियंत्रित होती हैं। पूरी चित्रकला में रेखांकन (**Drawing**) की बहुत बड़ी भूमिका होती है।

9) भावनात्मक अभिव्यक्ति – चित्रों में प्रेम, भक्ति, वीरता और शांति जैसे भाव प्रकट होते हैं। विशेषकर राधा–कृष्ण चित्रों में भावनाओं की गहराई दिखाई देती है।

10) विशेष तकनीक – बहुत बारीक ब्रश (अक्सर गिलहरी के बालों से बने) का उपयोग। रंगों की कई परतें (**Layers**) चढ़ाई जाती हैं। धैर्य और कुशलता की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष :– लघु चित्रकला की विशेषताएँ इसे अन्य चित्रकलाओं से अलग और अनोखा बनाती हैं। इसकी सूक्ष्मता, रंगों की सुंदरता और भावनात्मक गहराई भारतीय कला की उत्कृष्टता को दर्शाती है।

DO NOT COPY

द्वितीय अध्याय

- लघु चित्रण के विषय वस्तु

लघु चित्रण के विषय वस्तु

चित्रकार प्रायः अपने चारों ओर के वातावरण से चित्रण योग्य विषय प्राप्त करता है। जिस आदिम अवस्था में मानवीय संस्कृति एवं कला का उदय हुआ, वह मानव की जंगली अवस्था थी। जब वह वनों में रहता था और शिकार करते हुए जीवन–यापन करता था, वह अपनी बात को अपने साथियों को बताने के लिए अपने भावों को शिलाओं पर चित्रांकित करके व्यक्त कर देता था। उसकी यह अभिव्यक्ति कला की रचना सोचकर नहीं की गई थी, जिसका कारण उसमें बुद्धि का अभाव होना था। किंतु फिर भी उसने अपनी बुद्धि से आड़ी–तिरछी रेखाओं में जो चित्रांकन किया है, वह विविधतापूर्ण है। मानव द्वारा जिन विषयों का चित्रण किया गया, वे इस प्रकार हैं।

- आखेट चित्रण (**Hunting Scenes**) :–

भारतीय कला परंपरा का एक अत्यंत प्राचीन और महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसमें शिकार के दृश्यों को चित्रित किया जाता है। यह कला पाषाण युग से लेकर राजस्थानी लघु चित्र शैली तक विभिन्न रूपों में देखने को मिलती है। भारतीय प्रागैतिहासिक काल के आखेट चित्रों में समूह रूप से पूर्व सभ्यता का चित्रण हुआ है। साथ ही आत्मरक्षा के लिए जानवरों को मारा। मानव ने गैंडा, हाथी, सूअर, मृग, बैल, हिरण, घोड़ा, बारहसिंगा आदि को चित्रकला में देखने को मिलता है। जिनमें काल्पनिक पशुओं की कल्पना की रचना भी की गई है, जैसे कनवला नामक स्थान पर एक दीर्घ पशु अंकित है, जिसमें छः पैर दो आगे और चार पैर पीछे हैं। शिकारी करने वाले आखेट को अलग–अलग प्रकार के अस्त्रों से अच्छे तरह से सजा कर बनाया गया है, जैसे भाला, ढाल, धनुष, बाण, काँटेदार फल आदि।
इन चित्रों में प्रमुख विशेषताएँ जोश, सरलता एवं स्वाभाविकता की प्रतीति है।

- प्रकृति चित्रण :–

प्राकृतिक चित्रों में पेड़–पौधों में पत्ते और फूल दिखाए गए हैं। उनमें पर्वत, जल की लहरें, वृक्ष, कहीं–कहीं प्राकृतिक दृश्यों में पशु–पक्षी या ग्रामीण दृश्य भी दिखाया गया है। क्षितिज रेखा का प्रयोग पृथ्वी और आकाश को दर्शाने के लिए किया जाता था। कुछ चित्रों में आकाश को अधिक प्रमुखता दी गई है तथा कई चित्रों में आकाश आवश्यकता अनुसार चित्रित किया गया है। रात का वातावरण दिखाने के लिए हल्के नीले रंग के आकाश में पक्षियों को उड़ते हुए दर्शाया जाता था। इसी प्रकार दिन

DO NOT COPY

का वातावरण दिखाने के लिए हल्के नीले रंग के आकाश में पक्षियों को उड़ते हुए दर्शाया जाता था। इसी प्रकार दिन का वातावरण दिखाने के लिए हल्के रंगों का प्रयोग किया जाता है। जहाँ प्रकाश कम होता जाता है वहाँ गहरे रंगों का प्रयोग किया जाता था और जहाँ प्रकाश बढ़ता जाता है वहाँ पर गहरे रंगों का प्रयोग किया जाता था। जहाँ अंधेरा दिखाना हो और नए सूर्य का प्रकाश वहाँ पर कम जमीन दिखाई जाती थी। चित्रकार ने आकाश में इंद्रधनुषी रंगों की आभा बिखेर दी है।

- मानव आकृतियाँ :–

कलाकारों ने पशु–पक्षियों के चित्रण के साथ–साथ मानव को भी चित्रित किया जाता है। यहाँ अलग–अलग प्रकार की आकृतियाँ पशुओं को आकेट करते हुए युद्धरत, नृत्यरत अथवा किसी कार्य को करते हुए स्वतंत्र रूप में चित्रित हैं। इसके अलावा कुछ चित्र ऐसे भी मिलते हैं जो मानव रूप में हैं, परंतु उन्हें मत्स्यकन्या कहा जाता है। आदमगढ़ तथा पंचमढ़ी से ऐसे चित्र मिलते हैं। कुछ चित्रों में मानव की कल्पना की गई है। हम देखते हैं कि प्रागैतिहासिक काल मानव के जन्म तथा विकास का काल था। उस समय जो मानव आकृतियाँ थीं उनमें स्त्री–पुरुष का विभेद भी दिखाया गया है। जिसे कहीं–कहीं शारीरिक अंगों तथा कहीं अनुपात में पुरुष की तुलना में छोटा बनाकर दर्शाया गया है। स्त्री–पुरुष के जोड़े का चित्र मिलता है जिसकी शैली अलकृंत है। स्त्री ने पुरुष का हाथ पकड़ा हुआ है। जिसका तिकोना सिर, खेड़ा लहराते दोहरी , रेखाओं से बने बल, पत्तों से वस्त्रों का आभास है। पुरुष का शरीर दोहरी रेखाओं द्वारा बना है। धड़ आयताकार है, जिस पर धारियां पड़ी हैं। चित्र की कल्पनिक कला तथा ज्यामितीयता विशेष जिग–जैग दर्शनीय है।

- हाशिए :–

हाशिए पर होने का तात्पर्य उन लोगों या समूहों से है जो सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक रूप से मुख्य धारा से अलग–अलग कर दिए गए हैं। इन्हें समाज में कमतर, उपेक्षित या शक्तिहीन माना जाता है जो संसाधनों व निर्णय लेने की प्रक्रिया से वंचित रहते हैं। इन्हें मुख्यधारा में वापस लाने के लिए समान अवसर और सुविधा आवश्यक है।

मुख्य विशेषताएँ –

1. उपेक्षित समूह :– इसमें आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक वर्ग तथा आर्थिक रूप से पिछड़े लोग शामिल हो सकते हैं।

17. किरण प्रदीप, भारतीय कला, इंडिया : कृष्णा प्रकाशन मीडिया, 2007. 22

DO NOT COPY

2. अवसरों से वंचित :– शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसे बुनियादी संसाधनों तक इनकी पहुँच बहुत सीमित होती है।

3. भेद भाव का सामना :– इन समहो को अक्सर पूर्वाग्रह, सामाजिक अलगाव और शोषण का सामना करना पड़ता है।

4. अधिकारहीनता – ये निर्णय लेने की प्रक्रिया (राजनीतिक या सामाजिक) अलगाव और भागीदारी नहीं कर पाते हैं, जिससे उनकी आवाज अनसुनी रह जाती है।

उदाहरण और कारण :– शहरों की ओर पलायन करने वाले आदिवासी अक्सर अपनी भाषा और परंपराओं के कारण हाशिए पर चले जाते हैं। जब किसी समूह को उनके पारंपरिक संसाधनों (जैसे जमीन, जंगल) से बेदखल किया जाता है, तब वे गरीबी के दुष्चक्र में फँस जाते हैं। यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ समुदाय समाज के केंद्र में न होकर किनारे (हाशिए) पर धकेल दिया जाता है।

सुंदर कलात्मक रंगों के माध्यम से हाशियों पर सज्जा की गई थी। ताड़पत्रीय ग्रंथों में स्थानाभाव की सज्जा नहीं हो पाई, परंतु कागज वाले चित्रों में हाशियों की कलात्मकता देखते ही बनती है। कल्पसूत्र नामक ग्रंथ में तीव्र रंगों के माध्यम से जो 76 हाशिए बनाए गए, उनमें कलाकार के कार्यकुशलता देखते ही बनती है।

- रागमाला चित्रकला :–

भारतीय लघु चित्रकला का एक रूप है, जिसमें रागमाला या "रागों की माला" को दर्शाने वाले चित्र शामिल होते हैं। जो भारतीय संगीत शैलियों के विभिन्न रूपों को चित्रित करते हैं। ये मध्यकालीन भारत में कला, काव्य और शास्त्रीय संगीत के संगम का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। रागमाला चित्रकला का सृजन भारतीय चित्रकला की अधिकतर विधायों में 16वीं और 17वीं शताब्दी में शुरू हुआ और आज इसे पहाड़ी रागमाला, राजस्थानी या राजपूत रागमाला, दक्कन रागमाला और मुगल रागमाला के नाम से जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति राजस्थान में हुई।

इन चित्रों में प्रत्येक राग को एक रंग, एक भाव और एक शलोक द्वारा मानवीकृत किया जाता है, जो नायक और नायिका की कहानी का वर्णन करता है। यह ऋतु और दिन–रात के समय को भी स्पष्ट करता है, जिसमें एक विशेष हिंदू देवताओं को भी दर्शाया जाता है, जैसे शिव के लिए भैरव या

18. किरण प्रदीप, भारतीय कला, इंडिया : कृष्णा प्रकाशन मीडिया, 2007. 22

DO NOT COPY

भैरवी, देवी के लिए श्री आदि। ये चित्र न केवल रागों को बल्कि उनकी पत्नियों (रागिनियों), उनके असंख्य पुत्रों (रागपुत्र) और पुत्रियों (रागपुत्री) को भी चित्रित करते हैं।

रागमाला में राग :– छह राग पुरूष (जनक राग) हैं। तीस रागिनियाँ उनकी पत्नियाँ हैं और शेष उनके पुत्र हैं: – भैरव राग, कौशिक राग, हिंदोल राग, दीपक राग, श्री राग, मेघ राग

- धार्मिकता (धार्मिक विषय) :–

भारतीय कला की मुख्य विशेषता उसके धर्म से जुड़ी हुई है। धार्मिकता कार्यों में वैष्णव मत में चित्र रचना का महत्वपूर्ण योगदान है। और भगवान विष्णु, कृष्ण, राम के दर्शन, भक्ति का मुख्य अंग माना जाता हैं। धार्मिक चित्रों में महाभारत, भागवत पुराण, रामायण और राधा–कृष्ण के लीलाओं को सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है।

चित्रकारों ने अपने चित्रों का मुख्य विषयवस्तु राधा–कृष्ण के लीलाओं को दर्शाया है। चित्रकारों ने चित्रों में राधा के रूप सौंदर्य में चार चाँद लगा दिए हैं। भारतीय कला में धार्मिकता एक आधारभूत तत्व है। यही तत्व वर्षों से हिन्दू, बौद्ध, जैन धार्मिक परंपराओं के माध्यम से आध्यात्मिक अनुभवों, पौराणिक कथाओं और पवित्र प्रतीकों को मूर्तियों, चित्रों और वास्तुकला (खजुराहों, कोणार्क) से लेकर लघु चित्रों और भित्ति चित्रों तक, कला के माध्यम से ईश्वरत्व और भक्ति को प्रकट किया जाता है।

- ✓ रामायण, महाभारत, भागवत पुराण आदि ग्रंथों के प्रसंग चित्रित किए गए।
- ✓ भगवान कृष्ण की लीलाएँ, रासलीला, राम के जीवन की घटनाएँ विशेष रूप से लोकप्रिय थीं।
- ✓ इन चित्रों का उद्देश्य धार्मिक भावनाओं को जागृत करना था।

- देवी–देवताओं का चित्रण :–

- ✓ कृष्ण के अलावा भगवान राम के जीवन की घटनाएँ भी चित्रित की गई।
- ✓ भगवान शिव, पार्वती और अन्य देवी–देवताओं के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है।
- ✓ इन चित्रों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में वैदिक, शैव और शाक्त परंपराएँ प्रचलित थीं।

19. लोकेश चन्द्र शर्मा, भारत की चित्रकला , इंडिया : कृष्णा प्रकाशन मीडिया, 1970. 68

DO NOT COPY

भारतीय लघु चित्रकला में केवल भगवान ही नहीं, बल्कि अन्य देवी–देवताओं का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। चित्रकारों ने विभिन्न धार्मिक मान्यताओं के अनुसार अनेक देवी–देवताओं के जीवन, स्वरूप और लीलाओं को अपने चित्रों में प्रस्तुत किया और उनकी भावनाओं को सुंदर रूप से व्यक्त किया है।

- सामाजिक चित्रण :–

भारतीय लघु चित्रकला में सामाजिक जीवन का चित्रण अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चित्रकारों ने केवल धार्मिक या दरबारी विषयों तक ही सीमित न रहकर सामान्य जनजीवन, दैनिक क्रियाओं और समाज की विविध गतिविधियों को भी अपने चित्रों में दर्शाया है। इससे उस समय के समाज, संस्कृति और जीवन शैली का सजीव चित्रण मिलता है।

- ✓ दैनिक जीवन का चित्रण
- ✓ व्यवसाय और कारीगर
- ✓ सामाजिक संबंध और वातावरण
- ✓ दैनिक क्रियाएँ और गतिविधियाँ
- ✓ उत्सव और परंपराएँ

सामाजिक चित्रों में कृषक, मंदिर, खलिहार, गृहस्थ, बाजार, विश्राम, सराय, यात्रा आदि का चित्रण है। एक चित्र में एक कारीगर को काम करते हुए दिखाया गया है। उसके पास उसके काम करने के औजार पड़े हैं तथा साथ ही उसके परिवार के सदस्यों का चित्रण के कारण एक अच्छा वातावरण प्रदान किया गया है। इसके अलावा चित्रों में कुएँ या तालाब से पानी भरना, गाय चराना, यात्रा पर जाना आदि दृश्यों को भी दिखाया गया है।

निष्कर्ष – सामाजिक चित्रण के माध्यम से लघु चित्रकला हमें उस समय के समाज का वास्तविक और जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है। यह केवल कला ही नहीं, बल्कि इतिहास और संस्कृति का महत्वपूर्ण स्रोत भी है, जो हमें लोगों के जीवन तथा परंपराओं की जानकारी देता है।

- बारहमासा चित्रण :–

भारतीय लघु चित्रकला में "बारहमासा" चित्रण एक अत्यंत महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विषय रहा है। "बारहमासा" का अर्थ है – वर्ष के बारह महीनों का चित्रण। इन चित्रों में प्रत्येक महीने के अनुसार

DO NOT COPY

प्रकृति, ऋतु परिवर्तन और नायक–नायिका की भावनाओं को अत्यंत सुंदर और भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

- बारहमासा की संकल्पना :–

बारहमासा भारतीय काव्य और संगीत से जुड़ा हुआ विषय है। इसमें वर्ष के 12 महीनों को अलग–अलग भावनाओं, वातावरण और गतिविधियों के साथ चित्रित किया जाता है। प्रत्येक माह का अपना विशेष मौसम, प्रकृति और मनोभाव होता है।

- ऋतु और प्रकृति का चित्र – लघु चित्रों में मौसम के अनुसार प्रकृति को दर्शाया जाता हैः

✓ ग्रीष्म में तेज धूप और गर्मी

✓ वर्षा में बादल, बारिश और हरियाली

✓ शीत ऋतु में ठंड और कुहासा

✓ वसंत में फूलों की बहार

पेड़–पौधे, नदियाँ, पशु–पक्षी आदि को भी ऋतु के अनुसार चित्रित किया जाता है।

- नायक–नायिका भावनाएँ :–बारहमासा चित्रों में नायक–नायिका के प्रेम, मिलन और विरह को दर्शाया जाता है–

✓ विरह (वियोग) में दुःख और प्रतीक्षा

✓ मिलन में आनंद और उत्साह इस प्रकार मानव भावनाओं को प्रकृति के साथ जोड़ा जाता है।

- दैनिक जीवन और गतिविधियाँ :–

✓ ग्रीष्म में पंखा झलना

✓ वर्षा में भीगना

✓ शीत में आग तापना

✓ वसंत में आनंद लेना

✓ वसंत में घूमना और आनंद लेना

DO NOT COPY

- **कला और भाव का समन्वय** – बारहमासा चित्रण में कला, प्रकृति और भावनाओं का अद्भुत मेल होता है। चित्रकार सूक्ष्म रंगों और रेखाओं के माध्यम से वातावरण और मनोदशी को जीवन बना देता है।

निष्कर्ष – बारहमासा चित्रण लघु चित्रकला की एक अनूठी विशेषता है जिसमें वर्ष के बारह महीनों के माध्यम से प्रकृति और मानव भावनाओं का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया जाता है। यह न केवल कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि भारतीय संस्कृति, काव्य और जीवन शैली को भी दर्शाता है।

- **पशु–पक्षी चित्रण :–**

भारतीय लघु चित्रकला में पशु–पक्षियों का चित्रण अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चित्रकारों ने अपने चित्रों में प्रकृति के साथ–साथ विभिन्न पशु–पक्षियों को भी सुंदर और जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है।

- ✓ विभिन्न पशु–पक्षियों का चित्रण
- ✓ धार्मिक और प्रतीकात्मक महत्व
- ✓ कल्पनात्मक और विशेष चित्रण
- ✓ यथार्थ और सौंदर्य

- शिकार और गतिविधियों का चित्रण :–

पशु–पक्षी चित्रण लघु चित्रकला का एक महत्वपूर्ण भाग है, जिसमें कलाकारों ने प्रकृति, प्रतीकात्मकता और सौंदर्य का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। ये चित्र न केवल कलात्मक रूप से सुंदर हैं, बल्कि उस समय की धार्मिक मान्यताओं और जीवन शैली को भी दर्शाते हैं।

- **दरबारी चित्र :–**

भारतीय लघु चित्रकला में "दरबारी चित्रण" का विशेष महत्व है। इन चित्रों में राजाओं, राजकुमारों, दरबारियों और शादी जीवन का अत्यंत सुंदर और भव्य चित्रण किया गया है। यह चित्र उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का सजीव दर्पण प्रस्तुत करते हैं।

DO NOT COPY

- राजाओं और राजपरिवार का चित्रण :–

✓ दरबारी चित्रों में राजा, रानी, राजकुमार और उनके परिवार के सदस्यों को प्रमुख रूप से दर्शाया गया है।

✓ राजा को भव्य वस्त्र, आभूषण और शाही आसन पर बैठे हुए दिखाया जाता है।

✓ इन चित्रों में उनकी प्रतिष्ठा और गरिमा को विशेष महत्व दिया जाता है।

- दरबार का वातावरण :–

✓ चित्रों में दरबार का पूरा दृश्य दिखाया जाता है, जिसमें दरबारी, सैनिक और सेवक उपस्थित होते हैं।

✓ दरबार की सजावट, वास्तुकला, कालीन, सिंहासन आदि का सुंदर चित्रण किया जाता है।

✓ यह उस समय की समृद्धि और वैभव को दर्शाता है।

- विशेष अवसर और समारोह :–

✓ दरबारी चित्रों में उत्सव, स्वागत समारोह और विशेष घटनाओं को चित्रित किया गया है।

✓ जैसे राजकुमार का स्वागत, किसी विशेष व्यक्ति का सम्मान देना या गले लगाना आदि।

✓ यह उस समय की समृद्धि और वैभव को दर्शाता है।

✓ इन चित्रों में सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ भी झलकती हैं।

- आकार और संरचना :–

✓ चित्रों में राजा की अन्य व्यक्तियों की तुलना में बड़ा दिखाया जाता है, ताकि उसकी महत्ता और पद का महत्व स्पष्ट हो।

✓ दरबारियों को व्यवस्थित ढंग से, अक्सर पंक्तियों में या झुकी हुई मुद्रा में दर्शाया जाता है।

✓ सभी पात्रों की स्थिति और स्थान का विशेष ध्यान रखा जाता है।

DO NOT COPY

- अनुशासन और मर्यादा :–

✓ दरबारी चित्रों में अनुशासन और मर्यादा का विशेष ध्यान रखा जाता है।

✓ कोई व्यक्ति यदि गलत स्थान पर दिखाया जाता, तो पूरे चित्र को बदलना पड़ सकता था।

✓ यदि किसी व्यक्ति को गलत स्थान पर दिखाया जाता, तो पूरे चित्र को बदलना पड़ सकता था।

दरबारी चित्रण भारतीय लघु चित्रकला का एक महत्वपूर्ण अंग है जो शाही जीवन, वैभव और अनुशासन को दर्शाता है। ये चित्र न केवल कला के दृष्टिकोण से सुंदर हैं, बल्कि इतिहास और संस्कृति की महत्वपूर्ण जानकारी भी प्रदान करते हैं।

- वेशभूषा और आभूषण :–

पुरुष चित्रों में चक्करदार पजामा, कमर पर संकरा पटका और सिर पर अधपट्टी, पगड़ी बांधे दिखाया गया है। शरीर का रंग गुलाबी दिखाया गया है। स्त्रियों के चेहरे गोल, लंबी और नुकीली आँखें, सिर अनुपात में छोटा व स्त्री आकृति बहुत कोमल सुंदर बनाई गई है। पहनावे में वक्षस्थल पर चोली, नीचे लहंगा और कमर पर पारदर्शी ओढ़नी दिखाई गई है। स्त्री के गले, हाथों, कानों में आभूषण बनाए गए हैं। कपड़ों पर सोने के रंग की बेल–बूटियाँ बनाई गई हैं। पुरुष हष्ट – पुष्ट तथा उनमें वीरता का भाव है।

भारतीय लघु चित्रकला में वेशभूषा और आभूषण का अत्यंत सुंदर और विस्तृत चित्रण मिलता है। यह उस समय के समाज की संस्कृति, फैशन और जीवन शैली को दर्शाता है।

- पुरुषों की वेशभूषा :–

1 पुरुषों को चकदार पजामा, कमर पर सकंरा पटका और सिर पर पगड़ी। अगंरखी के साथ दिखाया गया है।

2 शरीर का रंग प्रायः गुलाबी दिखाया गया है।

3 पुरुषों के वस्त्रों में सादगी के साथ वीरता और शौर्य का भाव झलकता है।

- स्त्रियों की वेशभूषा :–

1 स्त्रियों के चेहरे गोल, बड़ी और नुकीली आँखों के साथ कोमल बनाए गए हैं।

2 वे चोली, लहंगा और पारदर्शी ओढ़नी पहने हुई दिखाई गई हैं।

3 वस्त्रों पर सोने की बेल–बूटियों का सुंदर अलंकरण किया गया है।

DO NOT COPY

- आभूषणों का चित्रण :–

1 स्त्रियों के गले, हाथों, कानों में विभिन्न प्रकार के आभूषण दिखाए गए हैं।

2 आभूषणों का सूक्ष्म और आकर्षक चित्रण लघु चित्रकला की विशेषता है।

- आकृतियाँ :–

भारतीय लघु चित्रकला में मानव आकृतियों का चित्रण अत्यंत विशिष्ट और शैलीबद्ध होता है। चित्रकारों ने आकृतियों को केवल यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है, इन आकृतियों में सूक्ष्मता, संतुलन और कलात्मकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

- चेहरे की बनावट :–

1 लघु चित्रों में चेहरे प्रायः गोल और आकर्षक बनाए जाते हैं।

2 नाक लंबी, पतली और नुकीली होती है।

3 ठोड़ी छोटी और चेहरे का आकार संतुलित होता है।

- आँखों का चित्रण :–

1 आँखों को विशेष महत्व दिया गया है।

2 इन्हें मछली के आकार या वक्र रेखाओं के बीच बिंदी के रूप में बनाया जाता है।

3 आँखें बड़ी, कोमल और भावपूर्ण होती हैं, जो भावनाओं को व्यक्त करती हैं।

- शरीर की बनावट :–

1 पुरुष और स्त्री आकृतियों को आदर्श रूप में चित्रित किया गया है।

2 स्त्रियाँ छोटे कद, कोमल शरीर और सुंदर रूप में दिखाई जाती हैं।

3 पुरुष आकृतियाँ सशक्त और संतुलित दिखाई जाती हैं।

- सौंदर्य और शैली :–

DO NOT COPY

1 आकृतियों में प्राकृतिक यथार्थ के साथ–साथ आदर्श सौंदर्य का समावेश होता है।

2 रेखाओं का प्रयोग बहुत ही सूक्ष्म और नियंत्रित होता है।

3 आकृतियाँ सरल होते हुए भी अत्यंत आकर्षक और प्रभावशाली होती हैं।

- छाया और रंगों का प्रयोग :–

1 चेहरे और शरीर की गोलाई दिखाने के लिए हल्की छाया का प्रयोग किया जाता है।

2 रंगों का चयन सौंदर्य और संतुलन को ध्यान में रखकर किया जाता है।

लघु चित्रकला में आकृतियों का चित्रण उसकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है। इसमें कलाकार ने मानव रूप को सुंदर, भावपूर्ण और आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है।

- युद्ध दृश्य :–

भारतीय लघु चित्रकला में युद्ध दृश्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये चित्र मानव जीवन के संघर्ष, वीरता और गतिशीलता को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। चित्रकारों ने युद्ध के विभिन्न प्रसंगों को बड़ी कुशलता और सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

- संघर्ष का चित्रण :–

1 युद्ध दृश्यों में मानव और मानव के बीच संघर्ष को प्रमुख रूप से दिखाया जाता है।

2 सैनिकों की लड़ाई, आक्रमण और बचाव की मुद्राएँ स्पष्ट रूप से दर्शाई जाती हैं।

3 इन चित्रों में युद्ध की तीव्रता और ऊर्जा का अनुभव होता है।

- गतिशीलता :–

1 चित्रों में आकृतियाँ स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील दिखाई देती हैं।

2 योद्धाओं की चाल, दौड़, आक्रमण और युद्ध की क्रियाएँ जीवंत रूप में प्रस्तुत की जाती हैं।

3 इससे चित्रों में वास्तविकता और प्रभाव बढ़ता है।

- शिलाचित्रों से प्रमाण :–

1 होशंगाबाद और पंचमढ़ी के शिलाचित्रों में युद्ध दृश्यों का सुंदर चित्रण मिलता है।

2 इन स्थानों पर प्राचीन मानव जीवन के संघर्ष को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

DO NOT COPY

- दृश्य का स्वरूप :–

एक सामान्य युद्ध दृश्य में कई मानव आकृतियाँ अलग–अलग मुद्राओं में दिखाई देती हैं। जैसे –

1 एक व्यक्ति हथियार या वस्तु उठाए हुए।

2 अन्य लोग आक्रमण की मुद्रा में।

3 इससे युद्ध की स्थिति और वातावरण स्पष्ट होता है।

- रंगों और शैली का प्रयोग :–

1 युद्ध दृश्यों में लाल और गेरुआ आदि रंगों का अधिक प्रयोग किया गया है।

2 ये रंग ऊर्जा, क्रोध और संघर्ष की भावना को व्यक्त करते हैं।

- युद्ध दृश्य :–

मानव का जीवन द्वंद्वपूर्ण एवं संघर्षशील था। अतः युद्ध दृश्यों में मानव और मानव के संघर्ष को बहुत कुशलता से दर्शाया गया है। होशंगाबाद तथा पंचमढ़ी के विभिन्न शिलाचित्र इन दृश्यों को प्रदर्शित करते हैं। जहाँ युद्ध दृश्यों की प्रमुखता है। पंचमढ़ी के शिलाचित्रों में एक चित्र मिलता है, जिसमें तीन मानव आकृतियाँ गतिशील मुद्रा में पथर जैसी कोई गोलाकार वस्तु उठाए हुए हैं, तथा बांयी ओर वाली मानव आकृति की कमर में कपड़े जैसा कुछ बंधा है। चित्र का अंकन लाल गेरुआ रंग से हुआ है।

- संघर्ष का चित्रण :–

1 चित्रों में मानव और मानव के बीच संघर्ष को कुशलता से दिखाया गया है।

2 युद्ध की गतिविधियाँ और गतिशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

- शिलाचित्रों से प्रमाण :–

1 होशंगाबाद और पंचमढ़ी के शिलाचित्रों में युद्ध दृश्यों की प्रधानता मिलती है।

2 इन चित्रों में मानव आकृतियाँ गतिशील मुद्रा में दिखाई गई हैं।

DO NOT COPY

- **दृश्य का वर्णन :–** एक चित्र में तीन मानव आकृतियाँ दिखाई गई हैं –

1 एक व्यक्ति गोल वस्तु उठाए हुए।

2 दो व्यक्ति आक्रमण की मुद्रा में।

चित्रों में लाल और गेरुआ रंग का उपयोग किया गया है।

- **पारिवारिक दृश्य :–** लघु चित्रकला में पारिवारिक जीवन का भी सुंदर और भावपूर्ण चित्रण मिलता है।

- **परिवार का चित्रण :–**

1 चित्रों में स्त्री, पुरुष और बच्चों को एक समूह में दर्शाया गया है।

2 यह परिवार की अवधारणा और सामाजिक जीवन को दर्शाता है।

- **भावनाएँ और वातावरण :–**

1 चित्रों में प्रेम, स्नेह और अपनापन झलकता है।

2 परिवार के सदस्यों के बीच संबंधों को सहज और प्राकृतिक रूप में दिखाया गया है।

- **संगीत संबंधी चित्रण :–**

मानव में कला चेतना का बहुमुखी विकास हुआ है। चित्रों में ढोल, मृदंग जैसे वाद्यों को बजाते हुए चित्रित किया गया है। इन चित्रों में खेत रंग भरकर लाल रंग को बाह्य रेखा की गई है। चित्र में कुछ व्यक्ति संगीत का वातावरण का आनंद ले रहे हैं, व स्त्रियां नृत्य कर रही है।

DO NOT COPY

तृतीय अध्याय

- लघुचित्रण की विधि व प्रयोग होने वाली सामग्री

लघुचित्रण की विधि व प्रयोग होने वाली सामग्री

ऐसा जाना जाता है कि उस समय चित्रकार चित्रों में प्राकृतिक रंगों का प्रयोग करते थे। ये रंग प्रकृति से ही लेते थे। प्राकृतिक रंगों को प्रकृति के विभिन्न खनिज पदार्थों से बनाया जाता था।

चित्रकला का उद्‌भव मानव जीवन के इतिहास के समान ही अत्यंत प्राचीन है। उस समय से इसमें जिन जिन साधनों की उपलब्धि हुई, उसके अनुसार कार्य किया गया। हमारे पूर्वज अनगढ़ पत्थरों को तराश–तराश कर कला के सांचे में ढालकर उनमें रंगों का सयोजन करते थे। सभ्यता के विकास के साथ–साथ चित्रकला में धीरे–धीरे ताड़पत्र, अगरू वल्कल, भोजपत्र तथा कागज का आरंभ हुआ।

भारतीय चित्रकला के चित्रण का आधार भित्ति, ताड़पत्र, भोजपत्र, लकड़ी की फलक, कपड़ा, हाथी दांत तथा कागज रहा है, जो समय–समय पर भारत के विभिन्न प्रांतों में विकसित, सिंधु घाटी से कला से लेकर पश्चिमी भारतीय, पूर्वी भारतीय, उत्तर भारतीय (पहाड़ी और राजस्थानी) तथा दक्षिणी भारतीय चित्र शैलियों की विधाओं में विकसित होती रही है। अतः हम नीचे क्रमशः भित्ति चित्र, ताड़पत्र, कागज एवं अगरू वक्कल की पोथियों के चित्रण विधान की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे।

➢ रंग बनाने की विधि :–

1. सफेद रंग :–

चित्रकारों ने अपने चित्रों में जिस प्रकार सफेद रंग का प्रयोग किया है, वह रंग बनाने के लिए सफेदा को जमीन से निकाल कर बारीक कपड़े से छाना जाता था। इसके पश्चात् इस पाऊडर को चीनी मिट्टी के बर्तन में आवश्यकतानुसार नीम के गोंद में मिलाकर रखा जाता था। बाद में इसे पाउडर में थोड़ा सा पानी मिलाकर अंगुलियों से मिलाया जाता था तथा जब गोंद और पानी में पूरी तरह मिल जाता था तो उसमें गाढ़ा दूध मिलाकर एक कप में रखा जाता था, जिससे उसके सारे अशुद्ध तत्व कप की तली में रह जाते थे। इसके बाद, इसको एक कप में बदल दिया जाता था। यह प्रक्रिया तब तक की जाती थी, जब तक गोंद की सारी अशुद्धियाँ समाप्त न हो जाएँ। अंत में पानी निकाल दिया जाता था। पाउडर सुखाकर प्रयोग किया जाता था। लेकिन चमकीला सफेदा रंग बनाने के लिए अधजले शंख रूप सीपों का चूर्ण करके उसे सिलबट्टे पर बारीक घोटा जाता था। ज्यादा घोटने से उसकी आँच बढ़ती जाती थी। अंत में उसे गोंद मिलाकर चित्रण कार्य में प्रयोग किया जाता था।

20. डॉ. करुण दीवा. चित्रकला (दिल्ली– एलायंस प्रिन्टोग्राफिक्स), 2012 – 73

DO NOT COPY

2. लाल रंग :–

लाल रंग प्राकृतिक का सबसे महत्वपूर्ण रंग है। प्रकृति से प्राप्त लाल पत्थर, गेरू से लाल रंग तैयार किया जाता था। लाल रंग में हिंगलू रंग को सभी रंगों में श्रेष्ठ माना जाता है। यही कारण है कि खनिज पत्थर से प्राप्त हिंगलू रंग का प्रयोग पूर्व, पश्चिम भारतीय शैली में प्रमुखता से होता रहा है। रासायनिक क्रिया से बेर, बरगद और पीपल की लाख द्वारा लाल रंग तैयार करने की विधि –

इस विधि में भिन्न–भिन्न पात्रों के परिवर्तन से ही उसमें मेहदीं, हरा, व बैंगनी रंग चित्रकार अपने आप बनाते रहे हैं। हिंगलू रंग में पीले रंग की मात्रा मिलाने से लाल रंग बन जाता है। हिंगलू रंग लघु चित्रों के उत्तम तथा चमकीले रंगों में काम आते रहे हैं। लाख से लाल रंग बनाने के लिए सबसे पहले इसके चूर्ण को मिट्टी के बर्तन में साधा पानी डालकर भिगो दिया जाता है। 24 घंटे भीगने पर बिना हिलाए ऊपर से रंगीन पानी अलग ले लिया जाता है। फिर किसी खुले मुख वाले मिट्टी के बर्तन में रख कर आग पर उबालने की क्रिया की जाती है। उबालते समय उसमें एक चम्मच पठानी लोद के साथ एक चम्मच सुहागा मिला दिया जाता है। गाढ़ा होने तक उसे गर्म किया जाता है। फिर उसे सुखाया जाता है। इसमें बिना कुछ मिलाए उपयोग के लिए सुरक्षित रख दिया जाता है। इसी प्रकार यदि लाख से हरा रंग प्राप्त होता है। लाख से ही काला, लाल व बैंगनी रंग बनाने के लिए यह क्रिया लोहे के बर्तन में की जाती है।

पीपल आदि के वृक्षों की टहनियों पर कई प्रकार की लाख की कीड़ों की कुछ प्राकृतिक क्रियाओं से बनता है और जिनका प्रयोग चूड़ियाँ आदि बनाने, पत्थर और लोहे को जोड़कर एक करने तथा रंग बनाने में काम में होता है।

3. नीला रंग :–

नीले रंग का निर्माण वनस्पति तथा खनिज दोनों से किया जाता था। देशी नील नामक वनस्पति नीला रंग बनाने में काम आती रही है। डलीदार नील तो प्राचीन काल से ही कपड़ों की रंगाई तथा चित्रण के काम आता रहा है। (मयूर) नर मोर – की गहरी जैसा गहरा रंग उसी रंग के एक खनिज को पीसकर तैयार किया जाता था।

इसके अलावा लोहे की वस्तुओं के बर्तन में डालकर उसके मुख को गाय के गोबर से बंद करके जमीन में कई दिनों के लिए गाड़ कर यह रंग तैयार किया जाता था। यह रंग कपड़ों को गाढ़े रंग में रंगने के काम आता था।

21. डॉ. करुण दीवा. चित्रकला (दिल्ली– एलायंस प्रिन्टोग्राफिक्स), 2012 – 73

DO NOT COPY

4. पीला रंग :–

पीला रंग बनाने के लिए पीले रंग के फूलों का उपयोग करते हैं। तथा प्राचीन चित्रों में यही रंग अधिक प्रयोग में आया है। तथा गाय को नीम की पत्तियां खिलाकर पीली मिट्टी पर गोमूत्र कराने की विधि से तैयार रंग से एक अन्य प्रकार का पीला रंग बनाया जाता था। यह रंग प्राप्त करने के लिए गाय के मूत्र को इकट्ठा करके ठंडा होने के लिए रखा जाता था। फिर उसे पकाया जाता था और उसकी छानस को बड़े बर्तन में कोयले की आंच पर पकाया जाता था और फिर धूप में सुखाया जाता था। वर्तमान समय में यह अत्यंत दुर्लभ सामग्री है।

5. काला रंग – काले रंग के लिए कोयला व काजल का प्रयोग किया जाता था।

6. संदूरी रंग – थाल शीश को भी बारीकी से कुटकर यह रंग बनाया जाता था। परीक्षा के लिए उसमें थोड़ा गुड़ मिला देने पर यह रंग नारंगी रंग का हो जाता है।

- मिश्रित रंगों की प्रक्रिया :–

1 कुमकुम रंग के निर्माण के लिए हल्दी को नींबू के रस में बार–बार डालकर मिलाया जाता है तथा कुछ दिन बाद सुखाने पर पीस दिया जाता है।

2 सफेद और लाल रंग को मिलाकर गोरा रंग बनता है।

3 सफेद, काला तथा पीला रंग बराबर मात्रा में मिलाकर भूरा रंग तैयार किया जाता है।

4 सफेद तथा काले रंग को समान मात्रा में मिलाकर हाथी के शरीर की तरह काला रंग तैयार किया जाता है।

5 नारंगी रंग तैयार करने के लिए एक भाग पीला तथा दो भाग लाल रंग मिलाया जाता है।

इसी प्रकार या कई अन्य रंगों के मिलाने से अलग–अलग रंग बनाए जाते हैं और इस तरह से रंग निर्माण में स्वर्ण, तांबा, चांदी, सिन्दूर, चूना, लाख, हिंगलू, नील आदि अनेकों द्रव्य अलग–अलग रूपों में काम करते आते रहे हैं।

- तुलिका (ब्रश) निर्माण :–

DO NOT COPY

तुलिका अर्थात ब्रश चित्रकला का एक अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है, जिसके बिना किसी भी चित्र का निर्माण संभव नहीं माना जाता। प्राचीन काल के चित्रकार तुलिका के निर्माण और उपयोग के प्रति बहुत सजग और सावधान रहते थे। वे तुलिकाएँ प्रायः जानवरों के मुलायम बालों, पक्षियों के पंखों तथा वनस्पति रेशों से बनाते थे। इन बालों को लकड़ी या बाँस की डंडी में मजबूती से बाँधकर तुलिका तैयार की जाती थी।

तुलिका का चयन चित्र के प्रकार और कार्य की सूक्ष्मता के अनुसार किया जाता था। महीन और कोमल रेखाएँ खींचने के लिए पतली तुलिका का प्रयोग किया जाता था, जबकि मोटी और गहरी रेखाओं के लिए मोटी तुलिका उपयोग में लाई जाती थी। लघु चित्रकला में विशेष रूप से अत्यंत बारीक तुलिकाओं का उपयोग किया जाता था।

➢ ताड़पत्री पोथी चित्रों को बनाने की तकनीक :–

आरंभ से लेकर बारहवीं शती तक भारतीय पोथी लेखन तथा चित्रण का मुख्य साधन ताड़पत्र ही था। कश्मीर तथा आसाम को छोड़कर भारत के बाकी सभी स्थानों पर यह एकमात्र लेखन सामग्री का साधन था। ताड़ पत्र में चिकनापन तथा लचीलापन दोनों होने के कारण इसका प्रयोग अधिक व्यापकता के साथ किया गया था।

12वीं सदी के पश्चात धीरे–धीरे पश्चिमी भारत में कागज का प्रचलन आरंभ हो गया और 15वीं सदी तक आते–आते कागज का प्रचलन इतना व्यापक हो गया कि पोथियों तथा उत्कृष्ट चित्रों को बनाने के लिए ताड़पत्र के स्थान पर कागज का प्रयोग अधिक होने लगा। वैसे तो ताड़पत्र पर भी चित्र टिकाऊ बनते थे जैसा कि हम 10वीं–11वीं सदी के पाल कालीन में बने पाथियों में देख सकते हैं। इसी तरह कर्नाटक के जैन शैली के लोग भी ताड़पत्रों पर अनेक सुंदर चित्रों का निर्माण कर रहे थे।

कागज का प्रयोग हो जाने पर भी प्राप्त चित्रों के अध्ययनों के आधार पर ताड़पत्र का प्रयोग पोथियों की लिखाई तथा चित्रण दोनों के लिए किया जाता था क्योंकि पोथियों की लिखाई के लिए ताड़पत्र का प्रयोग प्राचीन काल से चलता आ रहा था, जिनका धार्मिक महत्व भी था। लोग इसे पवित्र और शुद्ध भी मानते थे।

भारत के कई स्थानों में जैसे उड़ीसा तथा केरल में 19वीं सदी तक पोथियों को ताड़पत्र पर ही बनाया जाता था। उड़ीसा में ताड़पत्र पर चित्रित पोथी प्रस्तुत करना आज भी एक जीवित कला है।

22. डॉ. करुण दीवा. चित्रकला (दिल्ली– एलायंस प्रिन्टोग्राफिक्स), 2012 – 73

DO NOT COPY

पोथी चित्रण के लिए ताड़पत्र का इतना व्यापक प्रयोग और इतने समय तक शायद ही और कहीं हुआ हो।

ताड़पत्र पोथी चित्रण परंपरा में एक बहुत कमी यह है कि इसका आकार तय है, विशेषकर चौड़ाई। इसलिए बहुत बड़े चित्र इन ताड़पत्रों पर नहीं बनाए जा सकते थे। ताड़पत्र पर पोथी बनाना भारत अक्सर दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों में भी भारतीय संस्कृति के साथ–साथ फैल गई। भारतीय शैली की सबसे प्राचीन पोथियां जो 10वीं शताब्दी की हैं, नेपाल से प्राप्त हुई हैं, जिन पर बने चित्र आज भी सुरक्षित और सुंदर हैं। लंका में ताड़पत्र के साथ–साथ ओला (एक प्रकार का वृक्ष) के पत्ते भी इस्तेमाल किए जाते थे। उन्हें भी ताड़पत्र के आकार में काट दिया जाता था।

ताड़पत्रों के साथ एक धार्मिक महत्व जुड़ा होने से जब ताड़पत्र का प्रयोग बंद हो गया, उस समय भी कागज को ताड़पत्र के आकार में काट लिया जाता था। इस आयतन व आकार की परंपरा का व्यापक प्रभाव भारतीय लघु चित्रों पर पड़ा, जिसका कारण मुगल शैली से पूर्व तक भारतीय लघु चित्रों का ओरिएंटल ढंग से बनाया जाना था और उनमें चौड़ाई कम होती थी।

भारतीय चित्रकार ताड़पत्रीय पन्नों के सीमित क्षेत्र में काम करने के अभ्यस्त हो गए थे, कि जब उन्होंने कागज को अपनाया तब भी पहले 2 कागज के बड़े पन्नों को दो या तीन समान बड़ी पट्टियों में अलग करने के बाद ही चित्र को संयोजित करते थे। ताड़पत्र दो प्रकार के होते हैं:

1. श्री ताड़
2. खर ताड़

श्री ताड़ के पन्ने अधिक चिकने और लचीले होते हैं, जिसके कारण इस पर चित्र आसानी से बनते हैं और अधिक टिकाऊ भी बनते हैं। श्री ताड़ मद्रास, लंका, बर्मा तथा बंगाल में लगाया जाता था और इन्हीं स्थानों पर मध्यकाल में श्री ताड़ के पन्ने सारे भारत को निर्यात किए जाते थे। इनमें निकाले गए टुकड़े 3 इंच चौड़े और 36 इंच लंबे होते हैं। लंबाई अधिक होने के कारण अच्छे आकार के पन्ने इनमें से काटकर निकाले जाते थे।

ताड़पत्र के साथ एक कमी यह है कि अगर कागज या कपड़ा इसके संपर्क में अधिक दिनों तक रहता है तो इससे निकलने वाले रस के कारण कागज या कपड़ा काला हो जाता है और धीरे–धीरे उसका असर ताड़पत्र पर भी आ जाता है। मुनि पुष्य विजय के अनुसार पश्चिम भारत में प्रयोग स्याही में ऐसा कोई अम्ल पदार्थ रहता था, जिसके ऊपर से आने से ताड़पत्र, कागज तथा कपड़े को नुकसान पहुँचता था और उसकी सारी पोथी नष्ट हो जाती थी।

23. द्विवेदी, डॉ. प्रेमशंकर. भारतीय चित्रकला को बनाने की पद्धति. बी.एच.यू. वाराणसी– कला प्रकाशन, 2011

DO NOT COPY

लेकिन पूर्व भारत की पोथियों में इस प्रकार की कोई समस्या नहीं देखी गई है। ऐसा माना जाता है कि बहुत सी पोथियाँ नष्ट हो गई हैं। ताड़पत्र का रंग हल्का पीला होता है। लेकिन इसे कीटाणुओं से बचाने के लिए इस पर हल्दी का लेप भी चढ़ाया जाता है। उड़ीसा में कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए करैले की पत्तियों को पीसकर उसका रस भी ताड़पत्रीय पोथियों में लगाया जाता था।

- कागज के पोथियों को बनाने की तकनीक :–

कागज पर लिखी पोथियों का प्रचलन भारत में प्रारंभिक काल में नहीं था। प्राचीन समय में लोग मुख्य रूप से ताड़पत्र और अन्य प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग करते थे। बाद में, विशेष रूप से इस्लाम धर्म के आगमन के पश्चात, मध्य एशिया और ईरान से कागज बनाने की तकनीक भारत में आई। इतिहासकारों के अनुसार लगभग 105 ई. में चीन में कागज का उपयोग शुरू हुआ और वहीं से यह तकनीक धीरे–धीरे अन्य देशों तक पहुँची। भारत में कागज का प्रयोग बाद के काल में बढ़ा।

- कागज बनाने की विधिः–

1 कागज रेशेदार पदार्थों से बनाया जाता था।
2 पुराने कपड़े, सन, रूई आदि को पानी में भिगोकर गलाया जाता था।
3 फिर इन्हें कूटकर गूदा बनाया जाता था।
4 इस गूदे को फैलाकर और सुखाकर कागज तैयार किया जाता था।

- कागज के प्रकार : –

1 रेशमी कागज – सन के रेशों से बनाया जाता था।
2 महाजाल कागज – मछली पकड़ने के जाल को कूटकर बनाया जाता था।
3 नेपाली कागज – नेपाल से मंगवाया जाता था और बहुत शुद्ध माना जाता था।

विशेषः –

1 असम और अरुणाचल प्रदेश में आज भी रेशेदार कागज बनाए जाते हैं।
2 ग्रामीण क्षेत्रों में कागज के लिए "तुलपात" शब्द का प्रयोग होता था।

24. द्विवेदी, डॉ. प्रेमशंकर. भारतीय चित्रकला को बनाने की पद्धति. बी.एच.यू. वाराणसी – कला प्रकाशन, 2011 , 108

DO NOT COPY

3 यह कागज ताड़पत्र की तुलना में कम टिकाऊ होता था, इसलिए धीरे–धीरे कई परंपराएँ समाप्त हो गईं।

➢ चित्र तैयार करने की विधि –

लघु – छोटा अर्थात छोटे आकार का चित्र सामान्य तौर पर ऐसे पर ऐसे चित्र कागजों पर बनाये जाते हैं। सामान्य चित्र की तरह यह तुरंत नहीं बनता।

'लघु चित्र' बनाने के लिए एक खास किस्म का कागज हाथ से बनाया जाता था। चित्रकार कागज का सर्वप्रथम वसली पर जमा कर चित्रण कार्य करता था। वसली बनाते समय एक पाटिये पर देसी कागज की एक परत पर दूसरी परत, दूसरी परत पर आटे की लेई से चिपकाकर बनाया जाता था। जितने अधिक कागज जोड़ दिए जाते थे, वसली उतनी ही मोटी बनती थी। यह पटलियां (पाट्ली) जैसी मोटी तक बनाई जाती थी।

अब चित्रकार सर्वप्रथम वे अपने विषय व विषयवस्तु को साकार रूप में अंकित करना शुरू कर देता था। उसकी साधना, चित्रण विचार व कल्पनाएं चित्र संयोजन में विशेष प्रभाव रखती थी। उसका अंकन करके अक्षी कागज जो हिरण की पतली खाल से बनाया जाता था रेखांकन कर लेता था। शीट चिपकाते समय जो अधिक गोंद लग जाता था। यदि वसली का बॉर्डर फूल जाता था, तो 41 घंटे बाद वही ठीक हो जाता था। यदि वसली पर पेस्ट सही मात्रा में नहीं लगाया जाता था, तो उसमें बुलबुले आ जाते थे। यदि वसली को बरसात के दिनों में बनाया जाता था, तो उसे सूखे स्थान पर रखा जाता था ताकि बुलबुले स्वतः समाप्त हो जाते थे।

चित्रकारों ने सीधे वसली पर चित्रण कभी नहीं किया बल्कि उन्होंने पेस्ट की हुई पेंटिंग को अलग कागज पर चिपकाया। इस पर बारीक रेखाओं से बाहरी आकार बनाकर उसे प्राकृतिक रंगों से रंगा जाता था। उस पर फिर बारिकीयां दिखाते थे और सबसे आखिर में सुनहरे रंग का लेपन होता था। इसके लिए खरा सोना इस्तेमाल करते थे। चित्र के सभी रंग एक दूसरे में घुलमिल कर सही हो जाये और चित्र थोड़ा चमकीला लगे, इसके लिए इसके ऊपर चिकने पत्थर से चित्र पर घिसाई होती थी।

लघुचित्र का आकार कम से कम 8 गुना 10 सेंटीमीटर और अधिक से अधिक 70 गुणा 50 सेंटीमीटर होता था। आकारों की लयदार बाहरी रेखाएं और सपाट रंग–लेपन लघुचित्र शैली की विशेषता मानी जाती है। भारतीय चित्रकारों की यह विशेष शैली मुगल चित्रकारों ने स्वीकार की और

DO NOT COPY

मुगलों की पारसी चित्रकारों ने। इससे इसका अंदाजा लगाया जाता है कि यह परंपरा कितनी पुरानी है और कितनी दूर तक फैली हुई है।

➢ चित्र चित्रित करने की विधि –

चित्रकार चित्रों को चित्रित करने के लिए कलाकार अच्छे कागज का चुनाव कर बाद ध्यानपूर्वक चित्रण कार्य प्रारंभ करते थे। चित्रण कार्य का मन बनाकर कलाकार पालथी मारकर बैठते थे और अंगूठे तथा चारों उंगलियों की सहायता से सबसे पहले ब्रश की पकड़ को माथे से लगाते थे, फिर अपना कार्य शुरू करते थे।

यदि कलाकार कोई काल्पनिक चित्र बनाते थे, तो उसे विषय से संबंधित प्रत्येक विवरण एक कागज पर स्केच करके अपने पास रखते थे। पेंटिंग का सारा विवरण पेंसिल से स्केच करके अपने पास रखते थे। चित्र को पेंसिल द्वारा या कोयले द्वारा किया जाता था। अंत में सही रेखाओं का चित्रण ब्रश द्वारा किया जाता था।

➢ कलाकार रूपरेखा :–

वह हल्की रेखाओं के माध्यम से आकृतियों का ढांचा बनाता है। कई बार सही अनुपात बनाकर रखने के लिए गोल आकृतियों या सरल रेखाओं का सहारा लिया जाता है। इससे चित्र संतुलित और सही आकार में बनता है।

इसके बाद रेखांकन किया जाता है। जिसमें आकृतियों को स्पष्ट और गहरी रेखाओं में उकेरा जाता है। इस चरण में चित्र की वास्तविक आकृति उभरकर सामने आती है। कलाकार इस समय विशेष सावधानी बरतता है, ताकि चित्र में कोई त्रुटि न हो।

रेखांकन पूर्ण होने के बाद रंग भरने की प्रक्रिया शुरू होती है। कलाकार उपयुक्त रंगों का चयन करता है और उन्हें सावधानीपूर्वक चित्र में भरता है। रंगों का संयोजन चित्र को जीवंत और आकर्षक बनाता है। इस दौरान हल्के और गहरे रंगों का संतुलन भी बनाए रखा जाता है।

अंतिम चरण में चित्र को अंतिम रूप दिया जाता है। इसमें छोटे–छोटे सुधार किए जाते हैं, जैसे छाया, प्रकाश और बारीक विवरण जोड़ना। इससे चित्र अधिक सुंदर, स्पष्ट और प्रभावशाली बन जाता है।

DO NOT COPY

25. द्विवेदी, डॉ. प्रेमशंकर. भारतीय चित्रकला को बनाने की पद्धति. बी.एच.यू. वाराणसी – कला प्रकाशन, 2011 , 110
26. डॉ. करुण दीवा. चित्रकला (दिल्ली– एलायंस प्रिन्टोग्राफिक्स), 2012 – 77

इस प्रकार, चित्र चित्रित करने की यह विधि कलाकार को एक व्यवस्थित और क्रमबद्ध तरीके से कार्य करने में सहायता करती है। इससे चित्र में संतुलन, सौंदर्य और सटीकता बनी रहती है। यही कारण है कि यह विधि प्राचीन काल से आज तक चित्रकला में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

DO NOT COPY

27. द्विवेदी, डॉ. प्रेमशंकर. भारतीय चित्रकला को बनाने की पद्धति. बी.एच.यू. वाराणसी – कला प्रकाशन, 2011 , 112

चतुर्थ अध्याय

- विभिन्न क्षेत्रों की लघु चित्रकला
- राजस्थानी लघु चित्र शैली

विभिन्न क्षेत्रों की लघु चित्रकला

➢ मुगल लघुचित्र शैली :– (उद्भव एवं विकास)

मुगलकालीन लघुचित्र कला को मध्ययुगीन भारत में उच्च वर्ग की कला समझा जाता था। इस शैली का उद्भव सीधे तौर पर मुगल शासकों के साथ–साथ विदेशी (विशेषकर ईरानी) कला के प्रभाव से हुआ। प्रारंभिक दौर में यह कला पूर्णतः भारतीय न होकर एक मिश्रित स्वरूप में विकसित हुई, जिसमें इस्लामी, ईरानी तथा धीरे–धीरे भारतीय तत्वों का समावेश देखने को मिलता है।

सबसे पहले, मुगल चित्रकला पर ईरानी (पर्शियन) शैली का गहरा प्रभाव पड़ा। ईरानी चित्रकला अपनी सूक्ष्मता, बारीक रेखांकन, सजावटी शैली और चमकीले रंगों के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध थी। इस शैली में चित्रों की पृष्ठभूमि प्रायः समतल होती थी और उसमें प्रकृति का चित्रण वास्तविकता से अधिक सजावटी रूप में किया जाता था। मुगल चित्रकला ने प्रारंभ में इसी शैली को अपनाया, जिससे उनके चित्र अत्यंत सुंदर, संतुलित और आकर्षक दिखाई देते हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव मुगल सम्राट हुमायूँ के समय देखने को मिलता है। हुमायूँ जब अपने निर्वासन काल में ईरान गया, तब वह वहाँ की चित्रकला से अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने वहाँ के दो प्रसिद्ध चित्रकार – मीर सैय्यद अली और अब्दुस्समद – को अपने साथ भारत लाकर मुगल दरबार में नियुक्त किया। इन कलाकारों ने भारत में मुगल लघुचित्र शैली की नींव रखी और ईरानी शैली के अनुसार चित्र निर्माण प्रारंभ किया। इस प्रकार, मुगल चित्रकला का प्रारंभ विदेशी कलाकारों के मार्गदर्शन में हुआ।

तीसरा, प्रारंभिक मुगल चित्रकला पर इस्लामी कला का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस्लामी कला में सजावट, ज्यामितीय, आकृतियों और सूक्ष्म डिजाइनों का विशेष महत्व होता है। चित्रों में मानव आकृतियों को आदर्शवादी (**idealized**) रूप में बनाई जाती थी और शाही घटनाएँ होती थीं। इस प्रकार प्रारंभिक मुगल चित्रों में एक शाही और औपचारिक स्वरूप दिखाई देता है।

इसके बाद धीरे–धीरे भारतीय तत्वों का समावेश प्रारंभ हुआ। जब भारतीय कलाकार इस शैली से जुड़े, तब चित्रों में भारतीय प्रकृति, लोक जीवन, वेशभूषा और सामाजिक विषयों का प्रवेश हुआ। भारतीय कलाकारों ने रंगों के प्रयोग, भावों की अभिव्यक्ति और प्राकृतिक चित्रण में अपनी मौलिकता

28. **https://share-google/L9XqNAbC1LObBOhQ**

DO NOT COPY

जोड़ी। परिणामस्वरूप मुगल चित्रकला केवल ईरानी शैली तक सीमित नहीं रही, बल्कि एक नई मिश्रित और समृद्ध शैली के रूप में विकसित हुई।

अंततः कहा जा सकता है कि मुगल लघुचित्र शैली का प्रारंभिक प्रभाव ईरानी और इस्लामी कला से प्रेरित था, जिसे हुमायूँ के प्रयासों से भारत में स्थापित किया गया। बाद में भारतीय कलाकारों के योगदान से यह शैली अधिक जीवंत, समृद्ध और विविधतापूर्ण बन गई। यही प्रारंभिक प्रभाव आगे चलकर मुगल चित्रकला के उत्कर्ष का आधार बना।

➢ अकबर कालीन लघु चित्र शैली :–

अकबर को मुगल का जनक माना जाता है। अकबर उसके पिता हुमायूँ की मृत्यु के बाद 13 वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। अकबर ने इसके बाद कला व संस्कृति के विकास में रुचि ली।

अकबर का दृष्टिकोण था कि श्रेष्ठ भारतीय व श्रेष्ठ इस्लामी कला तत्वों का ऐसा विकास हो, जिससे कला को नई दिशा मिल सके और ऐसा ही हुआ। अकबर महान साहित्यकारों, दार्शनिकों, संगीतज्ञों एवं कलाकारों का बहुत सम्मान करता था।

अकबर के समय में मुगल कला का बहुत विकास हुआ। अकबर के दरबार में हिंदू चित्रकार अधिक थे, मुस्लिम भी अच्छे चित्रकार थे, जिन पर ईरानी कला का प्रभाव था। हिंदू और मुस्लिम चित्रकारों ने मिलकर भारतीय कला और ईरानी कला को मिश्रित रूप देकर "मुगल कला" का नया नाम देकर इसे उच्च कोटि की कला बनाया, जो आज भी विश्व में मशहूर कला है।

अकबर ने शिक्षा ग्रहण नहीं की थी, इसलिए उसे अशिक्षित बादशाह कहा जाता है, इसके बावजूद भी उसने श्रेष्ठ भारतीय साहित्य ग्रंथों का पर्शियर भाषा में तथा श्रेष्ठ पर्शियन साहित्य का हिंदुस्तानी भाषा में अनुवाद करवाया था। ऐसा माना जाता है जिस समय अकबर की मृत्यु हुई उसके किताब घर में विश्व प्रसिद्ध साहित्य की करीब 24000 पांडुलिपियाँ मौजूद थीं।

प्रमुख विषय – अकबर का शासन काल 'मुगल कला' का आरंभिक काल था। फिर भी इस काल में रामायण, महाभारत, हरिवंश पुराण, हमजानामा, तूतिनामा, बाबरनामा व हुमांयूनामा जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों के क्रमबद्ध, धारावाहिक चित्रण को प्राथमिकता दी गई। इस काल में व्यक्ति चित्र बहुत ही कम बनाए गए थे।

DO NOT COPY

विशेषताएँ –

इस काल के चित्रों में हर प्रकार का संयोजन देखने को मिलता है, जैसे – रंगों का संयोजन, सीधा–सपाट निष्पादन, बारीक से बारीक चित्रण, सुंदर गोल चेहरे आदि इस काल के चित्रों की विशेषताएँ हैं।

- जहाँगीर कालीन लघुचित्र शैली :– (परिचय)

जहाँगीर अकबर का पुत्र था और एक कुशल शासक के साथ–साथ महान कला–प्रेमी भी था। उसने चित्रकला को बहुत प्रोत्साहन दिया। जहाँगीर को बचपन से ही भारतीय कला का ज्ञान था। वह इतना पारखी था कि किसी चित्र को देखकर बता देता था कि उसे किस कलाकार ने बनाया है। उसकी आत्मकथा 'तुझुक–ए–जहाँगीरी' इस बात का प्रमाण है कि वह कला का गहरा जानकार था।

प्रमुख विषय –

1. प्राकृतिक चित्रण (पेड़–पौधे, फूल)
2. पशु–पक्षियों के चित्र
3. शिकार दृश्य
4. भावनात्मक दृश्य (क्रोध, करुणा आदि)

→ जहाँगीर काल के चित्रों में अकबर काल की अपेक्षा अधिक बारीकी और सौंदर्य मिलता है।

विशेषताएँ –

1. सूक्ष्म चित्रण और यथार्थवाद
2. रंगों का सुंदर संयोजन
3. प्रकृति का सजीव चित्रण
4. यूरोपीय प्रभाव (प्रकाश–छाया, 3डी जैसा प्रभाव)
5. कलाकारों को विशेष सम्मान

DO NOT COPY

29. https://share-google/a4HM7YKXPz2ynCrOz4

➢ शाहजहाँ कालीन लघुचित्र शैली :– (परिचय) :–

शाहजहाँ ने चित्रकला की तुलना में वास्तुकला को अधिक महत्व दिया (जैसे ताजमहल)। इसलिए उसके समय में चित्रकला का विकास पहले जैसा प्रभावशाली नहीं रहा।

प्रमुख विशेषताएँ –

1 चित्रकला जारी रही, लेकिन प्रभाव कम हो गया
2 दरबारी जीवन और प्रेम कथाओं पर चित्र, जैसे – दराशिकोह, राग–रागिनी, प्रेम दृश्य
3 भौतिक विषयों की प्रधानता
4 पहले की तरह विविध विषयों का अभाव

➢ पतनोन्मुख मुगल कला (Aurangzeb Period) :–

औरंगजेब एक कट्र शासक था और उसे कला में विशेष रुचि नहीं थी।

मुख्य बिंदु :–

1 उसके शासनकाल में कला (विशेषकर चित्रकला) को संरक्षण नहीं मिला।
2 मुगल दरबार में चित्रकारों के लिए काम कम हो गया।
3 कलाकारों ने अन्य राज्यों और दरबारों की ओर जाना शुरू कर दिया।

परिणाम :–

1 कलाकार जहाँ भी गए, वहाँ मुगल शैली के तत्व साथ ले गए।
2 स्थानीय शैलियों (राजस्थानी, पहाड़ी आदि) के साथ मिलकर नई शैलियाँ बनीं।
3 इस मिलन से विकसित शैली को "उत्तर मुगल शैली" कहा गया।

➢ राजस्थानी चित्रकला शैली :–

राजस्थानी चित्रकला शैली का तात्पर्य चित्रकला की उस शैली से है जो मुख्य रूप से राजस्थान एवं वर्तमान समय के मध्य प्रदेश के कुछ शाही राज्यों एवं ठिकानों में पाई जाती थी। जैसे – मेवाड़,

DO NOT COPY

बूंदी, कोटा, जयपुर, बीकानेर, किशनगढ़, जोधपुर (मारवाड़), सिरोही व ऐसी अन्य प्रमुख रियासतों में सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के मध्य इस शैली का विकास हुआ।

कलाविद् आनंद कुमारस्वामी ने 1916 में 'राजपूत चित्रकला' का नाम दिया, क्योंकि इन राज्यों के अधिकांश शासक एवं संरक्षक राजपूत थे। उन्होंने यह नामकरण इन चित्रों को उस समय की मुगल चित्रकला शैली से अलग दिखाने के लिए किया।

इसलिए मालवा शैली, जिसमें मध्य भारत की रियासतें और पहाड़ी शैली और भारत के उत्तर–पश्चिम हिमालय के पहाड़ी क्षेत्र सम्मिलित हैं, को भी उन्होंने राजपूत शैली के ही अंतर्गत रखा।

राजस्थान एक बहुत विस्तृत क्षेत्र है। प्राकृतिक दृष्टि से यह प्राकृतिक संसाधनों, विभिन्न प्रकार के धरातलों, विभिन्न ऋतुओं, प्राकृतिक खनिज वस्तुओं की उपलब्धता के कारण देश का प्रसिद्ध क्षेत्र है। विभिन्न प्रकार के पहाड़ी क्षेत्रों, उदयपुर का मेवाड़ क्षेत्र झीलों की नगरी के नाम से सुप्रसिद्ध है। झीलों से हरे–भरे खेतों में सिंचाई की अच्छी व्यवस्था है। सहेलियों की बाड़ी, बिना बादल बरसात देश का प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान है।

महाराज उदयपुर के महल, विभिन्न प्राकृतिक झीलें, झीलों के मध्य में रंग–बिरंगे फूलों से सुशोभित और पौधों पर बनाई गई मूर्तियाँ, चित्रकारी, आकर्षक बेल–बूटियाँ आज भी झीलों और घाटों के आसपास देखी जाती हैं, जो राजस्थानी कला का प्रमाण हैं।

माउंट आबू क्षेत्र इतना हरा–भरा होता है, इसे कश्मीर घाटी का स्वरूप माना जाता है। माउंट आबू की पहाड़ी घाटी पर नकी झील, शीतलता प्रदान करने वाली मनोरम है।

DO NOT COPY

राजस्थानी लघु चित्र शैली

➢ उदय और विकास :–

राजस्थानी कला शैली का आरम्भ 15वीं सदी के आरम्भ में राजस्थान के मेवाड़ (उदयपुर) क्षेत्र में हुआ था। वहाँ के चित्रों में लोक कलाओं, अजंता व गुजरात की परम्परा का वर्णन देखने को मिलता है। इस कला का सबसे बड़ा विकसित रूप सन 1555 के "पालम भागवत" के चित्रों में देखा गया था, जिनमें राजस्थान की कला शैली को प्रस्तुत किया गया और फिर यह अन्य केन्द्रों में फैलती गई।

➢ राजस्थानी चित्रों की विशेषताएँ :–

राजस्थानी चित्रकला भारतीय लघुचित्र परम्परा की एक अत्यंत समृद्ध और विशिष्ट शैली है, जिसका विकास मुख्यतः राजस्थान के विभिन्न राजपूत राज्यों – जैसे मेवाड़, मारवाड़, बूंदी, कोटा, किशनगढ़ और जयपुर में हुआ। यह कला अपनी मौलिकता, सजावटी स्वरूप और सांस्कृतिक गहराई के लिए जानी जाती है।

1. चमकीले और आकर्षक रंगों का प्रयोग :–

राजस्थानी चित्रों में गहरे, चमकीले और प्रभावशाली रंगों का उपयोग किया जाता है। लाल, पीला, हरा, नीला और सुनहरा रंग विशेष रूप से प्रमुख होते हैं। ये रंग प्राकृतिक स्रोतों से बनाए जाते थे, जिससे चित्रों में स्थायित्व और चमक बनी रहती थी। रंगों का प्रयोग केवल सजावट के लिए नहीं, बल्कि भावनाओं और वातावरण को व्यक्त करने के लिए भी किया जाता है।

2. धार्मिक एवं पौराणिक विषयवस्तु :–

इस शैली में धार्मिक और पौराणिक कथाओं का अत्यधिक प्रभाव दिखाई देता है। भगवान कृष्ण की लीलाएँ, रासलीला, रामायण और महाभारत के प्रसंग, देवी–देवताओं के चित्र प्रमुख विषय होते हैं। विशेष रूप से कृष्ण–भक्ति से जुड़ी चित्रों में प्रेम, भक्ति और सौंदर्य का अद्भुत संगम देखने को मिलता है।

31. डॉ. जयसिंह नीरज. राजस्थानी चित्रकला (राजस्थानरू हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2009) – 27

DO NOT COPY

3. राजदरबारी और सामाजिक जीवन का चित्रण :–

राजस्थानी चित्रों में उस समय के राजाओं, रानियों और दरबार के जीवन का भी सजीव चित्रण मिलता है। दरबारी दृश्य, शिकार के दृश्य, युद्ध, उत्सव और विवाह समारोह आदि को बड़े ही विस्तार और सुंदरता से दर्शाया गया है। इससे उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक झलक भी मिलती है।

4. प्रकृति का सजावटी और प्रतीकात्मक चित्रण :–

प्रकृति को राजस्थानी चित्रों में यथार्थवादी रूप में नहीं, बल्कि सजावटी और प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पेड़–पौधे, फूल, नदियाँ, पहाड़ और पशु–पक्षियों को सुंदर और अलंकारिक शैली में दिखाया जाता है। बादल, वर्षा, चाँद और रात के दृश्य भावनात्मक वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5. आकृतियों की विशेष शैली :–

मानव आकृतियाँ इस शैली की एक प्रमुख पहचान हैं। स्त्रियों को सुंदर पतली कमर, लंबी गर्दन, बड़ी और कमल जैसी आँखें तथा नुकीली नाक के साथ दिखाया जाता है। आकृतियों में आदर्श सौंदर्य को महत्व दिया जाता है, न कि यथार्थ को।

6. बारहमासा और रागमाला चित्रण :–

राजस्थानी चित्रकला में "बारहमासा" (बारह महीनों का वर्णन) और "रागमाला" (संगीत के रागों का चित्रण) विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। बारहमासा चित्रों में प्रत्येक महीने के मौसम और उससे जुड़े भावों को दिखाया जाता है, जबकि रागमाला चित्रों में संगीत के रागों को मानवीय रूप और दृश्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

7. सजावटी पृष्ठभूमि और अलंकरण :–

DO NOT COPY

32. https://share-google/1bgschF1IM06RynB9

चित्रों की पृष्ठभूमि अत्यंत सजावटी होती है। महल, बाग–बगीचे, झीलें, फव्वारे आदि को बारीकी से दर्शाया जाता है। वस्त्रों, आभूषणों और वस्तु–तत्वों में भी अत्यधिक अलंकरण किया जाता है, जिससे चित्र और अधिक भव्य और आकर्षक बनते हैं।

8. सूक्ष्मता और लघुचित्र शैली :–

राजस्थानी चित्रकला मुख्यतः लघुचित्र शैली में बनाई जाती है। इसमें बहुत छोटे आकार में अत्यधिक बारीक और सूक्ष्म विवरण होते हैं। कलाकार पतली तूलिका का उपयोग करके महीन रेखाएँ और डिजाइन बनाते हैं, जिससे चित्र अत्यंत जीवंत और सजीव प्रतीत होते हैं।

9. क्षेत्रीय विविधता :–

राजस्थान के अलग–अलग क्षेत्रों में इस कला की अलग–अलग उपशैलियाँ विकसित हुईं, जैसे – मेवाड़ शैली (सरल और भावनात्मक), किशनगढ़ शैली (अत्यंत सौंदर्यपूर्ण और रूमानी), बूंदी–कोटा शैली (प्रकृति और शिकार दृश्य) और जयपुर शैली (दरबारी वैभव)। प्रत्येक शैली में अपनी विशिष्ट विशेषताएँ दिखाई देती हैं।

निष्कर्ष :–

राजस्थानी चित्रकला अपनी रंगीनता, भावनात्मक गहराई, धार्मिकता और सजावटी सौंदर्य के कारण भारतीय कला की एक अनमोल धरोहर है। यह केवल चित्रकला नहीं, बल्कि राजस्थान की संस्कृति, परंपरा और जीवन शैली का सजीव दस्तावेज भी है।

➢ मेवाड़ (उदयपुर) लघु चित्र शैली :–

मेवाड़ शैली राजस्थानी लघुचित्र कला की सबसे प्राचीन और आधारभूत मानी जाती है। इसका विकास राजस्थान के उदयपुर क्षेत्र में 16वीं शताब्दी के आसपास हुआ। इस शैली पर प्राचीन जैन चित्रकला और पश्चिमी भारतीय परंपरा का प्रभाव देखने को मिलता है। यह शैली अपनी सादगी,

33. **https://share-google/SUEP1flYHMMeWtRpg**

DO NOT COPY

धार्मिकता और लोक जीवन के चित्रण के कारण विशेष स्थान रखती है। इस शैली का सबसे विकसित रूप "पालम" चित्रों में देखा जाता है, जिसे उदयपुर शैली के नाम से भी जाना जाता है।

प्रमुख विषय :– मेवाड़ शैली के चित्रों में मुख्य धार्मिक और पौराणिक विषयों का अत्यधिक महत्व है–

1. भागवत पुराण के प्रसंग
2. भगवान कृष्ण की बाल लीलाएँ और रासलीला
3. रामायण और महाभारत के दृश्य
4. देवी–देवताओं का चित्रण
5. लोक जीवन और ग्रामीण परिवेश

इससे यह स्पष्ट होता है कि यह शैली भक्ति और धर्म से गहराई से जुड़ी हुई है।

विशेषताएँ :–

1. रंगों का प्रयोग :– मेवाड़ शैली में गहरे और चमकदार रंगों का उपयोग किया जाता है। जैसे – लाल, पीला, हरा और नीला। रंग सपाट होते हैं, उनमें अधिक छायांकन नहीं होता, जिससे चित्र स्पष्ट और प्रभावशाली दिखते हैं।

2. आकृतियों की बनावट :– मानव आकृतियाँ सरल लेकिन प्रभावपूर्ण होती हैं।

1. बड़ी और आकर्षक आँखें
2. नुकीली नाक
3. गोल चेहरा
4. शरीर का अनुपात साधारण

इन आकृतियों में यथार्थवाद से अधिक भावनात्मक अभिव्यक्ति पर ध्यान दिया जाता है।

3. प्रकृति का चित्रण :– प्रकृति को सजावटी और प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पेड़–पौधे, पहाड़, नदी आदि को सरल रेखाओं और चमकीले रंगों के साथ दिखाया जाता है।

DO NOT COPY

4. लोक शैली का प्रभाव :– इस शैली में लोक कला का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। चित्रों में सरलता, स्पष्टता और सीधे भाव होते हैं, जिससे आम व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है।

5. भावनात्मक अभिव्यक्ति :– भक्ति, प्रेम, शांति और समर्पण जैसे भाव चित्रों में प्रमुखता से दिखाई देते हैं। विशेषकर कृष्ण–भक्ति के चित्रों में गहरी भावनात्मक अभिव्यक्ति मिलती है।

6. रचना :– चित्रों की संरचना सरल और संतुलित होती है। मुख्य विषय को केंद्र में रखा जाता है और अनावश्यक विवरण कम होते हैं।

मेवाड़ शैली अपनी सादगी, धार्मिकता और लोक आधाशिला मानी जाती है।

➢ मेवाड़ (उदयपुर) लघुचित्र शैली :–

मेवाड़ शैली की पेंटिंग में मुख्यतः धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विषयों का चित्रण किया जाता है:

1 भगवान कृष्ण की बाल लीलाएं और रासलीला
2 रामायण और महाभारत के दृश्य
3 देवी–देवताओं का चित्रण
4 लोक जीवन और ग्रामीण दृश्य
5 त्योहार और सामाजिक गतिविधियां

➢ बूँदी लघुचित्र शैली :–

बूँदी शैली का विकास राजस्थान के बूँदी राज्य में 17वीं शताब्दी के आसपास हुआ। रागमाला के चित्रों के रूप में बूँदी के आरंभिक लघुचित्र 'चुनार' में बने। यह शैली अपनी प्राकृतिक सुंदरता, सजावटी प्रभाव और गतिशीलता के लिए प्रसिद्ध है। इसमें मुगल कला का भी कुछ प्रभाव दिखाई देता है।

मुख्य विषय :– बूँदी शैली में विविध विषयों का चित्रण मिलता है:

1 रागमाला चित्र

34. https://share-google/1AmHiFeyiwsbCSvn.

DO NOT COPY

2 रासिकप्रिया

3 कृष्ण लीला

4 शिकार और युद्ध दृश्य

5 राजदरबारी जीवन

6 वर्षा और प्रकृति के दृश्य

विशेषताएँ :–

1. प्रकृति का जीवंत चित्रण :–

1 बूँदी शैली की सबसे बड़ी विशेषता इसका प्राकृतिक चित्रण है।

2 घने पेड़–पौधे

3 बादल और वर्षा

4 पहाड़ और झरने

इन सभी को अत्यंत सुंदर और विस्तृत रूप में दिखाया जाता है।

2.गतिशीलता :– चित्रों में गति का भाव स्पष्ट दिखाई देता है – जैसे दौड़ते हुए पशु, बहते हुए झरने, उड़ते बादल आदि। यह शैली चित्रों को जीवंत बना देती है।

3. रंगों का संतुलन :– रंग चमकीले होते हैं, लेकिन उनका प्रयोग संतुलित और सामंजस्यपूर्ण होता है। मेवाड़ की तुलना में रंग अधिक कोमल और परिष्कृत लगते हैं। हरे, नीले और सुनहरे रंगों का विशेष प्रयोग किया जाता है। रंग चमकीले होते हुए भी आँखों को सुखद लगते हैं।

4. मानव आकृतियों का सुंदर चित्रण :– बूँदी शैली में मानव आकृतियाँ अधिक सजीव और आकर्षक होती हैं –

1 स्त्रियों को कोमल, नाजुक और सुंदर रूप में दर्शाया जाता है।

2 पुरुषों को वीर, राजसी और प्रभावशाली रूप में दिखाया जाता है।

3 आकृतियों में भाव और अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

DO NOT COPY

5. वास्तुकला और सजावटी पृष्ठभूमि :– चित्रों में महल, किले, बाग–बगीचे, फव्वारे और जलाशयों का सुंदर चित्रण किया जाता है। वास्तुकला के ये तत्व चित्रों को भव्य और आकर्षक बनाते हैं।

बूँदी लघुचित्र शैली :– बूँदी शैली की पेंटिंग्स में विविध चित्रणः

1. रागमाला चित्रण
2. कृष्ण लीला और रासलीला
3. नायक–नायिका भेद
4. शिकार और दरबारी दृश्य
5. वर्षा ऋतु और प्राकृतिक दृश्य

6. रागमाला और प्रेम विषयक चित्रण :– बूँदी शैली में रागमाला चित्रों का विशेष स्थान है। संगीत के रागों को मानवीय रूप देकर प्रेम, विरह और सौंदर्य के भाव व्यक्त किए जाते हैं।

7. प्रकाश और वातावरण का प्रभाव :– चित्रों में दिन–रात, मौसम और वातावरण को दर्शाने के लिए रंगों और प्रकाश का सुंदर उपयोग किया जाता है। विशेषकर वर्षा ऋतु के चित्र अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

महत्त्व :–

बूँदी लघुचित्र शैली राजस्थानी कला में प्रकृति और भावनाओं के सुंदर समन्वय का उदाहरण है। यह शैली न केवल कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजसी जीवन का भी चित्रण करती है।

निष्कर्ष :–

बूँदी लघुचित्र शैली अपनी प्राकृतिक सुंदरता, गतिशीलता, रंग–संतुलन और सजावटी प्रभाव के कारण राजस्थानी चित्रकला में एक विशिष्ट स्थान रखती है। यह शैली भारतीय कला की समृद्ध परंपरा को दर्शाती है और आज भी कला प्रेमियों को आकर्षित करती है।

DO NOT COPY

➢ जोधपुर (मारवाड़) लघुचित्र शैली :–

जोधपुर लघुचित्र शैली, जिसे मारवाड़ शैली भी कहा जाता है, राजस्थान के जोधपुर क्षेत्र में विकसित हुई। यह शैली मेवाड़ चित्रकला से प्रभावित होकर विकसित हुई, लेकिन समय के साथ इसने अपनी अलग पहचान बना ली। इसका विकास मुख्यतः 17वीं शताब्दी में हुआ।

प्रारंभिक विकास –

इस शैली के प्रारंभ में रागमाला चित्रों का विशेष महत्व था। धीरे–धीरे इसमें धार्मिक, दरबारी और लोक जीवन के विषय शामिल होते गए। जोधपुर शैली मालदेव के समय में स्वतंत्र अस्तित्व में आई। पहले इस पर मेवाड़ शैली का स्पष्ट प्रभाव था। इस काल के प्रतिनिधि चित्र शैली के उदाहरण चोखे का महल व चित्रित उत्तराध्ययन सूत्र से प्राप्त होते हैं। जोधपुर में सूरसिंह के समय ढोला–मारू प्रमुख चित्रित ग्रंथ है। इन चित्रों में शीर्षक नागरी लिपि व गुजराती भाषा में लेखन मिलता है। पाली का रागमाला सम्पुट मारवाड़ का प्राचीनतम तिथियुक्त कृति के रूप में महत्वपूर्ण रखता है। मुगल शैली का प्रभाव राजा उदयसिंह के समय पड़ा।

मुख्य विषय – जोधपुर शैली में निम्नलिखित विषय प्रमुख हैं –

1 रागमाला चित्र
2 भगवान कृष्ण की लीलाएँ
3 राजदरबार और शाही जीवन
4 युद्ध और शिकार दृश्य
5 लोक जीवन और सामाजिक गतिविधियाँ

इन विषयों में वीरता, प्रेम और शाही वैभव का चित्रण मिलता है।

विशेषताएँ –

1. चमकीले और गहरे रंग :– मारवाड़ शैली में लाल, पीला, नीला और काला जैसे गहरे और चमकीले रंगों का प्रयोग अधिक होता है। रंगों की तीव्रता चित्रों को आकर्षक बनाती है।

35. https://share-google/dGVMhS12uAEX8BWZR

DO NOT COPY

2. आकृतियों की विशिष्ट बनावट :– मानव आकृतियों की अपनी अलग पहचान होती है –

- बड़ी और तीखी आँखें
- लंबा चेहरा
- मजबूत शरीर
- पुरुषों में वीरता का भाव

चित्रों का पारंपरिक ढंग से सुंदर रूप में चित्रण किया जाता है।

3. राजसी जीवन का प्रभाव :– इस शैली में राजाओं, दरबार, युद्ध और शिकार के दृश्य बहुत अधिक मिलते हैं। इससे उस समय के शाही जीवन का स्पष्ट चित्रण होता है।

4. सजावटी पृष्ठभूमि :– चित्रों में पृष्ठभूमि के सजावटी रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

1 महल और किले
2 बाग–बगीचे
3 समतल रंगीन पृष्ठभूमि

5. लोक कला का प्रभाव :– मारवाड़ शैली में लोक कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। चित्र सरल, स्पष्ट और सीधे होते हैं।

6. भावनात्मक और वीर रस :– चित्रों में विशेष रूप से वीररस और शौर्य का चित्रण मिलता है। साथ ही प्रेम और भक्ति भाव भी दिखाई देते हैं।

7. सीमित प्राकृतिक चित्रण :– बूंदी शैली की तुलना में यहाँ प्रकृति का चित्रण कम विस्तृत होता है। ध्यान अधिकतर मानव आकृतियों और घटनाओं पर होता है।

महत्त्व :–

DO NOT COPY

जोधपुर (मारवाड़) शैली राजस्थानी चित्रकला में वीरता, शाही संस्कृति और लोक जीवन के चित्रण के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती है। यह शैली उस समय के सामाजिक और राजनीतिक जीवन का सजीव दस्तावेज है।

जोधपुर (मारवाड़) लघुचित्र शैली :– जोधपुर शैली की पेंटिंग में निम्नलिखित चित्रण –

1 रागमाला चित्र

2 भगवान कृष्ण की लीलाएँ

3 राजदरबार और शाही जीवन

4 युद्ध और शिकार दृश्य

5 लोक जीवन और सामाजिक गतिविधियाँ

जोधपुर लघुचित्र शैली अपनी चमकीले रंगों, वीरता के चित्रण और राजसी जीवन की झलक के कारण विशेष स्थान रखती है। यह मेवाड़ से प्रभावित होकर विकसित हुई, लेकिन अपनी अलग पहचान बनाकर राजस्थानी कला को समृद्ध करती है।

➢ बीकानेर लघुचित्र शैली :–

बीकानेर लघुचित्र शैली राजस्थानी चित्रकला की महत्वपूर्ण शैलियों में से एक है। इसका विकास राजस्थान के बीकानेर में 17वीं शताब्दी के आसपास हुआ। इस शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस पर मुगल चित्रकला का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। इसका कारण यह था कि कई चित्रकार मुगल दरबार से बीकानेर आकर यहाँ बस गए और उन्होंने स्थानीय शैली के साथ मुगल तकनीकों का समन्वय किया।

➢ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

बीकानेर के शासकों, विशेषकर राजा राय सिंह और अनूप सिंह के संरक्षण में इस कला का विकास हुआ। मुगल दरबार से जुड़े कलाकारों के आने से इस शैली में बारीकी, सूक्ष्मता और परिष्कृतता आई, धीरे–धीरे यह शैली राजस्थानी और मुगल कला का सुंदर मिश्रण बन गई।

DO NOT COPY

36. https://share-google/bGSChf-lMD6RynBg.

प्रमुख विषय :– बीकानेर शैली में धार्मिक, साहित्यिक और दरबारी विषयों का चित्रण मिलता है –

1 देवी–देवताओं के चित्र

2 भगवान कृष्ण की लीलाएँ

3 रामायण और महाभारत के दृश्य

4 रागमाला चित्र

5 बारहमासा चित्रण

6 हिंदू त्योहार और सामाजिक जीवन

विशेषताएँ :–

1. बारीक और सूक्ष्म रेखांकन :– इस शैली की सबसे प्रमुख विशेषता इसकी बारीकी है। रेखाएँ बहुत पतली और सटीक होती हैं, जिससे चित्र अत्यंत सुंदर और स्पष्ट दिखाई देते हैं।

2) रंगों का कोमल और संतुलित प्रयोग :– बीकानेर चित्रों में रंगों का प्रयोग बहुत ही संतुलित और सौम्य होता है। मुगल प्रभाव के कारण रंग अधिक प्राकृतिक और हल्के दिखाई देते हैं।

बीकानेर लघुचित्र शैली (पेंटिंग) :– बीकानेर शैली की पेंटिंग में विविध चित्रण–

1 देवी–देवताओं के चित्र

2 भगवान कृष्ण की लीलाएँ

3 रामायण और महाभारत के दृश्य

4 रागमाला चित्र

5 बारहमासा चित्रण

6 त्योहार और सामाजिक जीवन

3. मुगल प्रभाव :–

1 वस्त्रों और आभूषणों की सजावट

2 चेहरे की यथार्थता

DO NOT COPY

3 दरबारी दृश्य

इन सभी में मुगल शैली का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

4. परिष्कृत शैली :– इस शैली में चित्र बहुत सुसस्कृंत और संतुलित होते हैं। हर तत्व को सावधानी से बनाया जाता है, जिससे चित्रों में नजाकत आती है।

5. लय और गति का भाव :– चित्रों में केवल स्थिरता ही नहीं बल्कि हल्की गति और लय भी दिखाई देती है, जिससे वे जीवंत लगते हैं।

6. मानव आकृतियों का चित्रण :–

1 चेहरे कोमल और संप्रेषणीय होते हैं।

2 भाव स्पष्ट रूप से व्यक्त होते हैं।

3 स्त्री और पुरुष दोनों का चित्रण संतुलित और सुंदर होता है।

महत्व :–

बीकानेर लघुचित्र शैली राजस्थानी और मुगल कला के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह शैली उस समय की सांस्कृतिक और कलात्मक आदान–प्रदान को दर्शाती है।

बीकानेर लघुचित्र शैली अपनी सूक्ष्मता, रंगों के संतुलन और मुगल प्रभाव के कारण विशेष स्थान रखती है। यह शैली भारतीय लघुचित्र परंपरा की समृद्धि और विविधता को दर्शाती है।

- किशनगढ़ लघुचित्र शैली :–

किशनगढ़ लघुचित्र शैली राजस्थान की चित्रकला की अत्यंत प्रसिद्ध और विशिष्ट शैली है, जिसका विकास राजस्थान के किशनगढ़ में 18वीं शताब्दी में हुआ। यह शैली अपने आदर्श नारी–सौंदर्य और श्रृंगारिक भावों के लिए जानी जाती है। इसे राजकुमार सावंत सिंह (नगरीदास) के संरक्षण में विशेष उन्नति मिली।

37. https://share-google15vePlflyHMMCwtRpq

DO NOT COPY

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :– किशनगढ़ शैली का उत्कर्ष राजा सावंत सिंह (नगरीदास) के समय हुआ, जो स्वयं कवि और कृष्ण–भक्त थे। उनके दरबार में इस शैली को प्रोत्साहन मिला। इस शैली में भक्ति (कृष्ण–राधा प्रेम) और श्रृंगार का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है।

प्रमुख विषय :– किशनगढ़ शैली में मुख्य रूप से प्रेम और भक्ति (राधा–कृष्ण प्रेम) तथा श्रृंगार का उत्कृष्ट समन्वय दिखाई देता है –

1 राधा–कृष्ण का प्रेम
2 कृष्ण लीला
3 रासलीला
4 नायक–नायिका भेद
5 श्रृंगारिक भावों का चित्रण

विशेषताएँ :–

1. आदर्श नारी– सौंदर्य : – इस शैली की सबसे बड़ी पहचान स्त्री चित्रण है –

1 लंबी, पतली और लचीली आकृति
2 लंबी नुकीली नाक
3 बड़ी कमल जैसी आँखें
4 पतले होंठ और उभरी हुई ठुड्डी

यह आदर्श सौंदर्य "बनी–ठनी" चित्र में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

2. "बनी–ठनी" चित्र :– किशनगढ़ शैली की सबसे प्रसिद्ध कृति है – बनी–ठनी। इसे "भारतीय मोनालिसा" भी कहा जाता है। यह चित्र नारी सौंदर्य का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है।

3. भावनात्मक और श्रृंगारिक अभिव्यक्ति :– चित्रों में प्रेम, विरह, भक्ति और श्रृंगार के भाव अत्यंत सूक्ष्म और प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किए जाते हैं।

DO NOT COPY

4. रंगों का कोमल और आकर्षक प्रयोग :– किशनगढ़ शैली में हल्के, कोमल और संतुलित रंगों का प्रयोग किया जाता है, जिससे चित्रों में शांति और सौंदर्य झलकता है।

5. प्रकृति का सजीव चित्रण :– चित्रों में पृष्ठभूमि में – झीलें, पहाड़, पेड़–पौधे की बहुत ही सुंदर और सजावटी रूप में दिखाया जाता है।

किशनगढ़ लघुचित्र शैली पेंटिंग :– किशनगढ़ शैली की पेंटिंग में मुख्य निम्न चित्रण –

1 राधा–कृष्ण का दिव्य प्रेम
2 कृष्ण लीला और रासलीला
3 नायकदृनायिका भेद
4 श्रृंगारिक और भावनात्मक दृश्य

6. आध्यात्मिकता और भक्ति – कृष्ण भक्ति इस शैली का मुख्य आधार है। चित्रों में राधा – कृष्ण को केवल प्रेमी – प्रेमिका नहीं, बल्कि दिव्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

7. महत्व :– किशनगढ़ लघुचित्र शैली भारतीय कला में नारी सौंदर्य और श्रृंगारिक भावों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति मानी जाती है। यह शैली भक्ति और प्रेम का सुंदर संयोजन प्रस्तुत करती है।

किशनगढ़ शैली अपनी कोमलता, आदर्श सौंदर्य और भावनात्मक गहराई के कारण राजस्थानी चित्रकला में विशिष्ट स्थान रखती है। "बनी – ठनी" जैसी कृतियाँ इसे अमर बनाती हैं।

➢ जयपुर लघुचित्र शैली :–

जयपुर लघुचित्र शैली राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख शैलियों में से एक है, जिसका विकास राजस्थान के जयपुर में हुआ। 18वीं शताब्दी में इस शैली को विशेष उन्नति मिली। इस पर मुगल चित्रकला का गहरा प्रभाव दिखाई देता है, जिसके कारण इसमें बारीकी, यथार्थता और सुसंस्कृतता हुई।

• ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

जयपुर राज्य के शासकों, विशेषकर सवाई जयसिंह के संरक्षण में इस शैली का विकास हुआ। मुगल दरबार से जुड़े कलाकारों के प्रभाव के कारण जयपुर शैली में तकनीकी निपुणता और सूक्ष्मता आई।

DO NOT COPY

दरबारी संस्कृति और वैज्ञानिक दृष्टिकोण (जैसे खगोलशास्त्र में रुचि) का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव चित्रों में दिखाई देता है।

प्रमुख विषय :– जयपुर लघुचित्रों में विविध कलाविषय विषयों का चित्रण मिलता है –

1. व्यक्तिचित्र
2. राग–रागिनी चित्र
3. धार्मिक विषय (कृष्णलीला, रामायण आदि)
4. दरबारी जीवन और राजसी दृश्य
5. उत्सव, जुलूस और सामाजिक जीवन

विशेषताएँ :–

1. यथार्थवादी चित्रण :– जयपुर शैली की प्रमुख विशेषता इसका यथार्थवादी दृष्टिकोण है। चेहरे, भाव, वस्त्र और वातावरण को वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

2. बारीक रेखांकन और सूक्ष्मता :– चित्रों में अत्यंत बारीक और साफ रेखाओं का प्रयोग किया जाता है, जिससे हर छोटी–सी वस्तु भी स्पष्ट दिखाई देती है।

3. रंगों का संतुलित प्रयोग :– इस शैली में रंग न तो बहुत चटकीले होते हैं और न ही बहुत फीके, बल्कि संतुलित और सौम्य होते हैं। रंगों में सामंजस्य दिखाई देता है।

4. मुगल प्रभाव :– इन सभी में मुगल कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।
   1. वस्त्रों और आभूषणों की बारीकी
   2. दरबारी दृश्य
   3. यथार्थवादी चेहरे

5. वास्तुकला का सुंदर चित्रण :– महल, किले, बाग–बगीचे और जुलूसों का चित्रण बहुत ही सुंदर और विस्तार से किया जाता है, जिससे चित्रों में भव्यता आती है।

6. व्यक्तिचित्र की विशेषता :– जयपुर शैली में राजा–महाराजाओं और दरबारियों के व्यक्तिचित्र विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

DO NOT COPY

7) सजावटी और संतुलित संरचना :– चित्रों की संरचना बहुत संतुलित और व्यवस्थित होती है, हर तत्व सही स्थान पर रखा जाता है।
जयपुर लघुचित्र शैली दृ च्ंपदजपदह

जयपुर लघुचित्र शैली की पेंटिंग्स चित्रण :–

1 व्यक्तिचित्र
2 राग–रागिनी चित्र
3 कृष्ण लीला और धार्मिक दृश्य
4 दरबारी जीवन (राजा, रानी, दरबार)
5 जुलूस, उत्सव और सामाजिक दृश्य
6 रंगों का संतुलित प्रयोग
7 बारीक रेखांकन और सूक्ष्मता
8 पेंटींग में चेहरों, भावों और वस्त्रों को वास्तविक रूप से दिखाया गया है।

महत्त्व :– जयपुर लघुचित्र शैली अपनी सादगी, बारीकी और मुगल प्रभाव के कारण विशेष महत्व रखती है। यह उस समय के राजसी जीवन, संस्कृति और समाज का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है।
निष्कर्षः :– जयपुर शैली राजस्थानी चित्रकला में परिष्कृत और यथार्थवादी शैली के रूप में जानी जाती है। यह मुगल और राजस्थानी कला का सुंदर समन्वय है, जो इसे अन्य शैलियों से अलग बनाता है।

➢ कोटा लघुचित्र शैली :–

कोटा लघुचित्र शैली राजस्थानी चित्रकला की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जिसका विकास राजस्थान के कोटा क्षेत्र में 17वीं शताब्दी के आसपास हुआ। यह शैली बूँदी चित्रकला से अत्यंत प्रभावित है, इसलिए दोनों में कई समानताएँ देखने को मिलती हैं। कोटा शैली विशेष रूप से शिकार और गतिशील चित्रण के लिए प्रसिद्ध है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

कोटा राज्य, बूँदी से अलग होने के बाद अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने लगा। शासकों के संरक्षण में कलाकारों ने इस नई शैली विकसित की, जिसमें राजसी जीवन, विशेषकर शिकार और मनोरंजन के दृश्य प्रमुख बन गए। इस शैली में प्राकृतिक वातावरण और दरबारी गतिविधियों का सुंदर समन्वय मिलता है।

DO NOT COPY

प्रमुख विषय (कोटा लघुचित्र शैली में):–

1. शिकार दृ य (हाथी, बाघ, हिरण आदि का शिकार)
2. राजाओं का जीवन और दरबारी दृ य
3. उत्सव और वन्य जीवन
4. प्रकृति और वन्य जीवन
5. पशु–पक्षियों का चित्रण

विशेषताएँ :–

1. शिकार दृश्यों की प्रमुखता :– कोटा शैली की सबसे बड़ी पहचान इसके शिकार चित्र हैं। राजाओं को घोड़े या हाथी पर सवार होकर बाघ या अन्य पशुओं का शिकार करते हुए दिखाया जाता है। ये दृश्य बहुत ही जीवंत और रोमांचक होते हैं।

2. गतिशीलता :– चित्रों में गति और ऊर्जा का अद्भुत प्रभाव दिखाई देता है।

1. दौड़ते हुए घोड़े
2. भागते हुए जानवर
3. संघर्ष के दृश्य

इससे चित्र जीवंत और प्रभावशाली बनते हैं।

3. प्रकृति का विस्तृत चित्रण :– वन, पेड़–पौधे, नदियाँ और पहाड़ों का अत्यंत सुंदर और विस्तृत चित्रण किया जाता है। प्राकृतिक वातावरण चित्रों का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है।

4. पशु–पक्षियों का यथार्थ चित्रण :– कोटा शैली में जानवरों को बहुत ही सजीव और यथार्थ रूप में दिखाया जाता है। उनकी गति, भाव और शरीर की बनावट को बारीकी से दर्शाया जाता है।

5. राजसी जीवन का चित्रण :– राजाओं के मनोरंजन, शिकार और उत्सव के दृश्य चित्रों में प्रमुखता से दिखाई देते हैं, जिससे शाही जीवन का स्पष्ट चित्रण होता है।

6. रंगों का प्रभावशाली प्रयोग :– हरे, भूरे और प्राकृतिक रंगों का अधिक उपयोग होता है। रंगों से वातावरण और गहराई का प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।

DO NOT COPY

7. बूँदी शैली से समानता :–

1 प्राकृतिक दृश्य

2 सजावटी शैली

3 गतिशीलता

इन सभी में कोटा, बूँदी शैली से मिलती–जुलती है, लेकिन शिकार दृश्यों के कारण इसकी अलग पहचान बनती है।

महत्व :– कोटा लघुचित्र शैली राजस्थानी कला में प्रकृति, पशु–पक्षियों और शिकार दृश्यों के यथार्थ चित्रण के लिए विशेष महत्व रखती है। यह शैली उस समय के राजसी जीवन और मनोरंजन को दर्शाती है।

कोटा लघुचित्र शैली पेंटिंग :–

1 शिकार दृश्य (बाघ, हाथी, हिरण आदि)

2 राजा और सैनिकों के युद्ध व अभ्यास

3 वन और प्राकृतिक वातावरण

4 पशु–पक्षियों का जीवन

5 राजसी मनोरंजन और उत्सव

निष्कर्ष :– कोटा लघुचित्र शैली अपनी गतिशीलता, प्राकृतिक सौंदर्य और शिकार दृश्यों के कारण राजस्थानी चित्रकला में विशिष्ट स्थान रखती है। यह बूँदी शैली से प्रभावित होकर विकसित हुई, लेकिन अपनी अलग पहचान बनाने में सफल रही।

DO NOT COPY

38. **https://share-google/dGvMhSl24Aev8BwzR**
39. **https://share-google/caVcpLGolPJEML8f**

उपसंहार

इस लघु शोध में मैंने भारतीय लघु चित्रकला की परंपरा का अध्ययन किया है। इसके आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि कला जीवन के रूप सौंदर्य की वृद्धि करने व मानवीय भावनाओं की पूर्ति करने का अनुपम साधन है। कला उतनी ही पुरानी है जितना मानवीय जीवन। यह मानव जीवन की अभिव्यक्ति भी है तथा संप्रेषण का माध्यम भी। हर संस्कृति में मानव की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ कला जुड़ी हुई है। इससे मनुष्य अपने भावों को व्यक्त करता है, धारणाओं को बनाता है, आशाओं को संजोता है तथा भय की अभिव्यक्ति का यह माध्यम है। यह मानव की आत्मा से जुड़ी हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य भारतीय कला के विभिन्न क्षेत्रों की प्राचीन लघु शैली चित्रों का अध्ययन है। इस अध्ययन से हमें पता चलता है कि प्राचीन समय के चित्रकार अपने चित्रों में अपने आसपास घट रही घटनाओं को देखकर अपने चित्रों के विषयों का वर्णन करते थे। इनके विषय मुख्य रूप से महाभारत के दृश्य, आखेट चित्र, प्राकृतिक चित्र, व्यक्ति चित्र, पशु–पक्षी का चित्रण थे। इस पुस्तक में पाल शैली, जैन शैली, अपभ्रंश शैली, पश्चिमी भारत शैली, राजस्थान शैली आदि की चर्चा की गई है।

इस पुस्तक में यह भी बताया गया है कि प्राचीन समय के चित्रकार कैसे अपने हाथों से चित्रों में प्रयोग होने वाली सामग्री को अपने हाथों से तैयार करते थे और अपने चित्रों में प्रयोग करते थे। एक क्षेत्र के चित्रकार कैसे दूसरे क्षेत्रों के चित्रकारों को चित्र बनाना सिखाते थे। भारतीय चित्रकारों को यह चित्र शैली मुगल चित्रकारों ने सिखाई और मुगल चित्रकारों को पारसी चित्रकारों ने। इससे हम इसका अंदाजा लगा सकते हैं कि यह परंपरा कितनी पुरानी है, कितनी दूरी तय करके आई है।

DO NOT COPY

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 शर्मा, लोकेश चन्द्र. भारत की चित्रकला. इंडियाः कृष्णा प्रकाशन मीडिया, 1970

2 **What is art and why do I find Mona Lisa Bring – Art Goda Art https://share-google/TWCMhgUofIPYiMAAO**

3 **https://share-google/jioKYYNPHclNTAz1n**

4 **https://share-google/PpgIC85101WrWSUcl**

5 सिंह, डॉ. रेखा कुमारी. चित्रण के सिद्धान्त. इलाहाबादरू साहित्य संगम, 2015

6 प्रताप, डॉ. रीता. भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास. राजस्थानरू हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2009

7 वर्मा, डॉ. अविनाश बहादुर और अमित वर्मा. कला एवं तकनीक. (बरेलीरू बड़ा बाजार), 1998

8 **https://share-google/OPP4tinUOQVXcGRwc**

9 **https://share-google/LjlswfzoZO41zV3YQ**

10 **https://share-google/Blp1smZNTdwAiWZ3**

11 **https://chatgpt-com/share/69b167e0&b538&8005&b841&7664c6ed**

12 **https://share-google/szA4KP5NXaj94PrU3**

13 **https://share-google/XlHc54ÛUNKC1laS4lHd**

14 **https://share-google/LdYbDYOGrOSNRL7T**

15 द्विवेदी, डॉ. प्रेमशंकर. भारतीय चित्रकला को बनाने की पद्धति. बी.एच.यू. वाराणसीरू कला प्रकाशन, 2011

16 शर्मा, डॉ. लोकेश चन्द्र. भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास. मेरठरू गोयल पब्लिशिंग हाउस, 2005

17 द्विवेदी, डॉ. प्रेमशंकर. भारतीय चित्रकला के विविध आयाम. बी.एच.यू. वाराणसीरू कला प्रकाश, 2007

18 नीरज, डॉ. जयसिंह. राजस्थानी चित्रकला. राजस्थानरू हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2009

19 डॉ. करुण दीवा. चित्रकला (दिल्लीरू एलायंस प्रिन्टोग्राफिक्स), 2012

20 डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी. भारतीय चित्रकला को बनाने की पद्धति (बी.एच.यू. वाराणसीरू कला प्रकाश, 2001)

DO NOT COPY

21 डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी. भारतीय चित्रकला को बनाने की पद्धति (बी.एच.यू. वाराणसीरू कला प्रकाश, 2007)

22 डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी. भारतीय के विविध आयाम (बी.एच.यू. वाराणसीरू कला प्रकाश, 2007)

23 **https://share-google/L9XqNAbC1LObBOhQ**

24 **https://share-google/CVs31EXTCgYfiXgAJ**

25 **https://share-google/YNIMYJSRcHNVqZW5S**

26 **https://share-google/MKH9bWgz31favNPI**

27 शंडग **ART. Docx**

28 **https://share-google/6EjGQnkRgBLml49MZ**

29 **https://share-google/ZR4DYt035JNI2aÛVd**

30 **https://share-google/KV1A9PWa8qLVVGUUR**

31 **https://dict-hinkhoj-com/:ED:A4:AE:E0:4ABR&meaning&in&english-words**

32 **https://dl-flipkart-com/s/dTmiGkuuN**

33 **https://share-google/1bgschF1IM06RynB9**

34 **https://share-google/SUEP1flYHMMeWtRpg**

35 **https://share-google/JWcOzSPÛELmURZtQ**

36 **https://share-google/a4HM7YKXPz2ynCrOz4**

37 **https://share-google/msMdPld7bÛ5e0SgfY**

38 **https://share-google/PmkvKNPQvWJbYbPÛ1**

39 डॉ. जयसिंह नीरज. राजस्थानी चित्रकला (राजस्थानरू हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2009)

40 गोयल, वाचस्पति. भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास. इलाहाबादरू महात्मा गांधी मार्ग, 2009

41 शेखावत प्रमोद. भारतीय चित्रकला. उत्तर प्रदेशरू शिखादीप प्रकाशन, 2015

42 गुप्त, डॉ. लक्ष्मी. प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला. दिल्लीरू वैष्णवी पब्लिशिंग हाउस, 1960

43 जोशी, महेश चन्द्र. रंग–रंगीली भारतीय कला. जोधपुररू राजस्थान ग्रन्थागार, 1995

44 गोयल, वाचस्पति. भारतीय चित्रकला. इलाहाबादरू मीत प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1969

DO NOT COPY

45 गौरवानी, डॉ. प्रेमचंद. आधुनिक चित्रकला के आधार स्तम्भ. जयपुररू हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2011

46 **https://www-rajras-in/rajasthan/art/painting/**

47 **https://www-hisour-com/hi/miniature&art**

48 **https://share-google/AmHIFcYiWSbUCSUN**

49 **https://share-google/dGVMhS12uAEX8BWZR**

50 लिलित कला **(Laxmi) Fine Art 12th Class — Inder Singh Fogat**

51 **Rajput Painting — Ananda Coomaraswamy**

DO NOT COPY

चित्र सूची

क्र. न0.	चित्र का नाम
1	प्रागैतिहासिक काल की कला
2	शिकार का दृश्य, प्रागैतिहासिक काल
3	प्राचीन काल के अस्त्र–शस्त्र
4	सफेद रंग, लाल रंग, नीला रंग
5	पीला रंग, काला रंग, सदूंरी रंग
6	तुलिका – ब्रश, ताड़ पत्र चित्रकारी
7	गीत गोविंद लाड़–पत्र चित्रकारी
8	कागज के पाशिये को बनाने की तकनीक
9	अष्ठ सास्त्रिका प्रज्ञापारनिता, पाल शैली 1075 – 80 ई0.
10	पंचरक्षा, पाल शैली, रामपाल के 9वें राज्यवर्ष, भारत काल भाव वाराणसी
11	पश्चिमी भारत में कल्पसूत्र की जैन पाड्लिपि से अप्सरों का नृत्य
12	बाबरनामा, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली
13	रज्मनामा, 17वीं शाब्दिक, राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली
14	अकबर कालीन लघुचित्र शैली
15	जाहगीर कालीन लघुचित्र शैली
16	मेवाड़ की चित्रकला – भारत कोश ज्ञान का हिन्दी
17	महासागर
18	बूंदी लघु चित्रकला की कला – केसोरि
19	जौधपुर महाराजा तरण्य सिंह
20	किशनगढ़ की लघु चित्रकारी
21	जयपुर शैली की चित्रकला
22	कोटा शैली – हाड़ोती शैली
23	बणी – ठणी – किशनगढ़ शैली

DO NOT COPY

चित्र

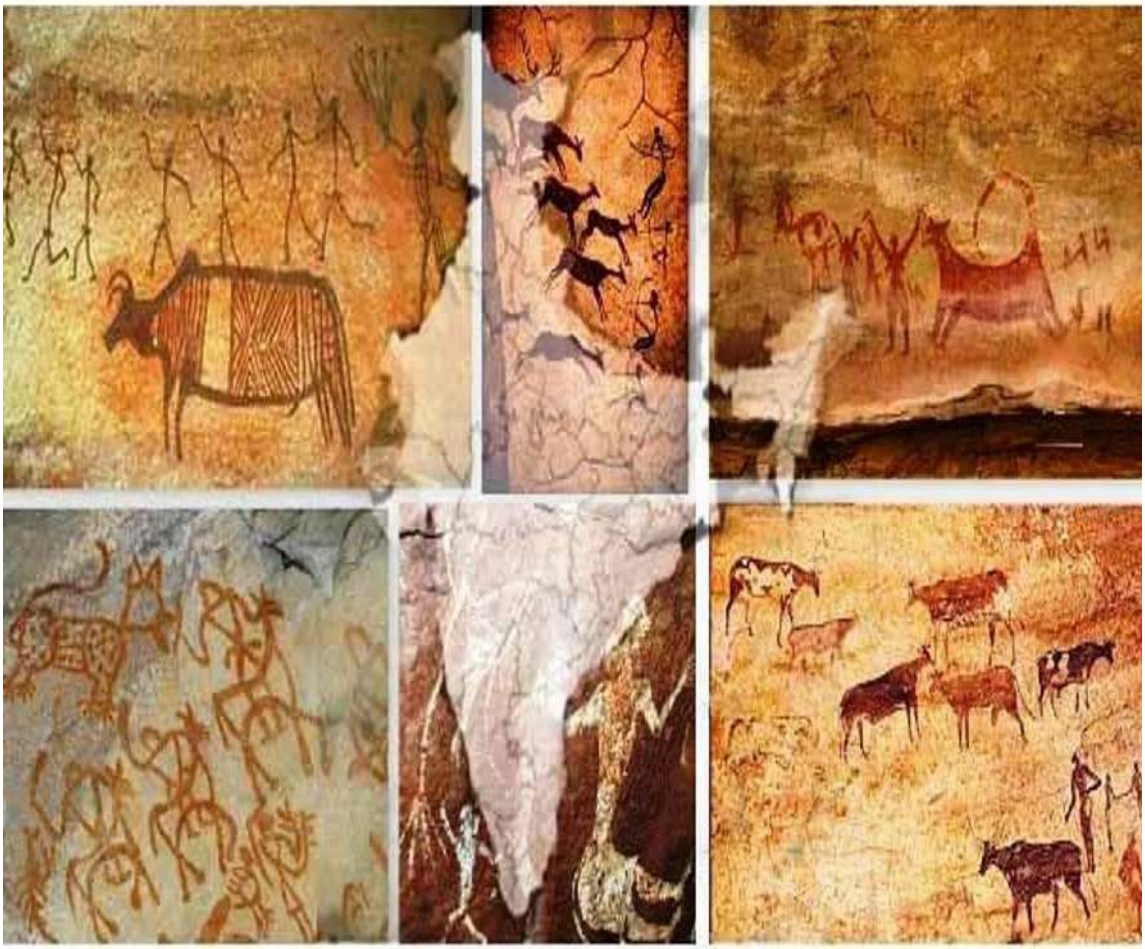

प्रागैतिहासिक काल की कला



शिकार का दृश्य, प्रागैतिहासिक काल

DO NOT

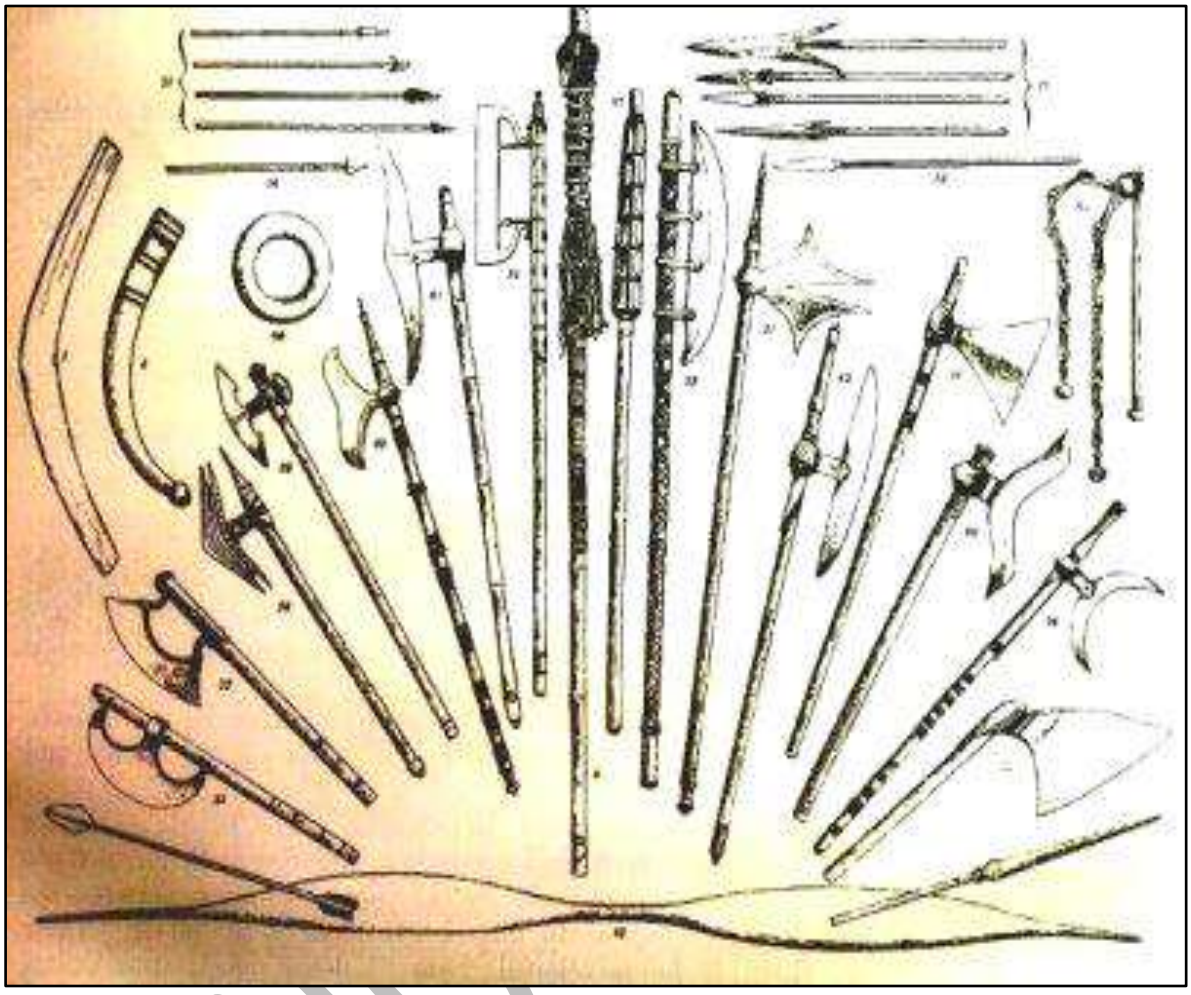

प्राचीन काल के अस्त्र–शस्त्र

DO NOT











सफेद रंग, लाल रंग, नीला रंग







नीला रंग, काला रंग, सदूंरी रंग, पीला रंग

DO NOT





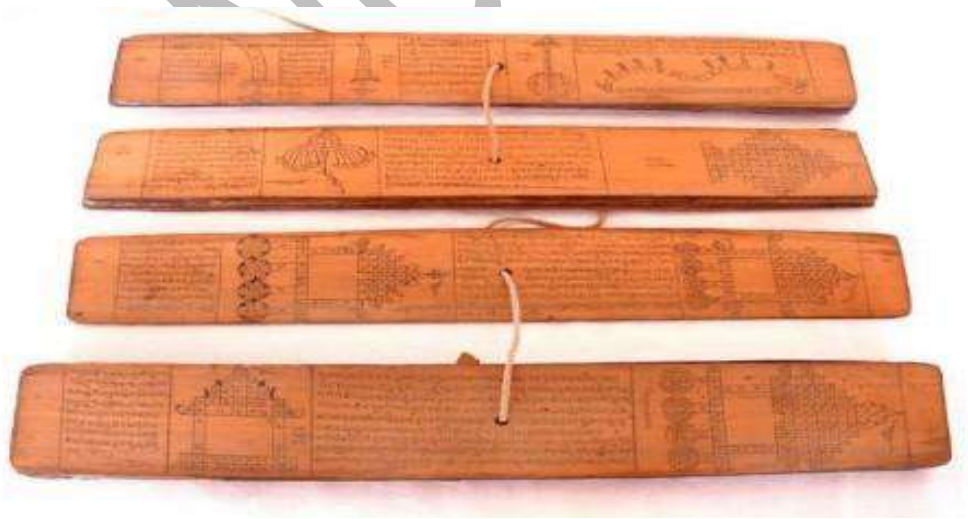

तुलिका – ब्रश, ताड़ पत्र चित्रकारी

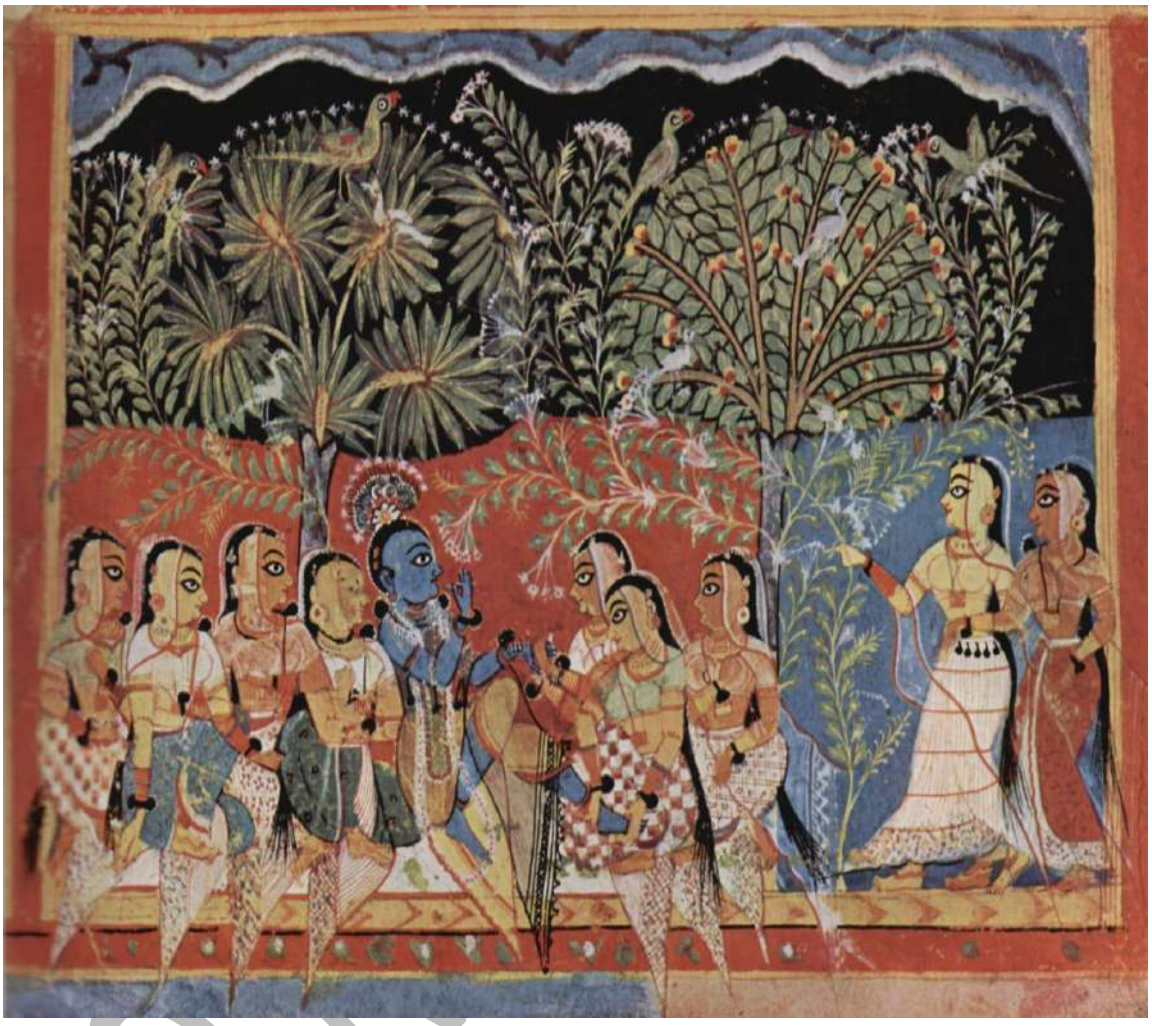

गीत गोविंद लाड़–पत्र चित्रकारी





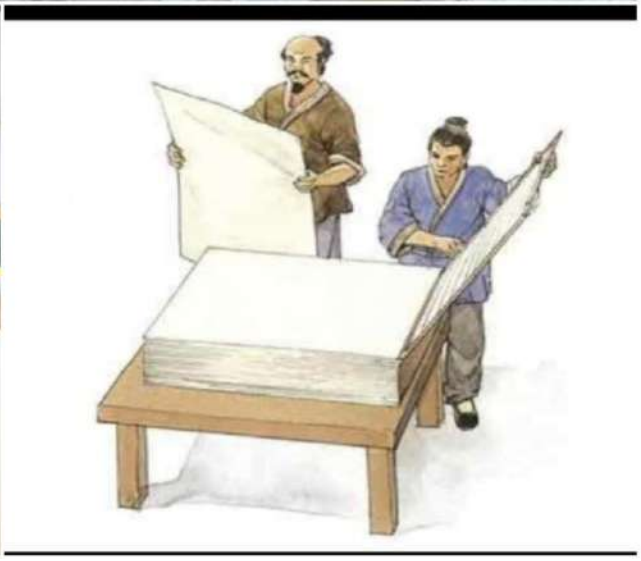

कागज के पाशिये को बनाने की तकनीक

DO



अष्ठ सास्त्रिका प्रज्ञापारनिता, पाल शैली 1075 – 80 ई0.

DO NOT C



पंचरक्षा, पाल शैली, रामपाल के 9वें राज्यवर्ष, भारत काल भाव वाराणसी

DO NOT



पश्चिमी भारत में कल्पसूत्र की जैन पाड्लिपि से अप्सरों का नृत्य

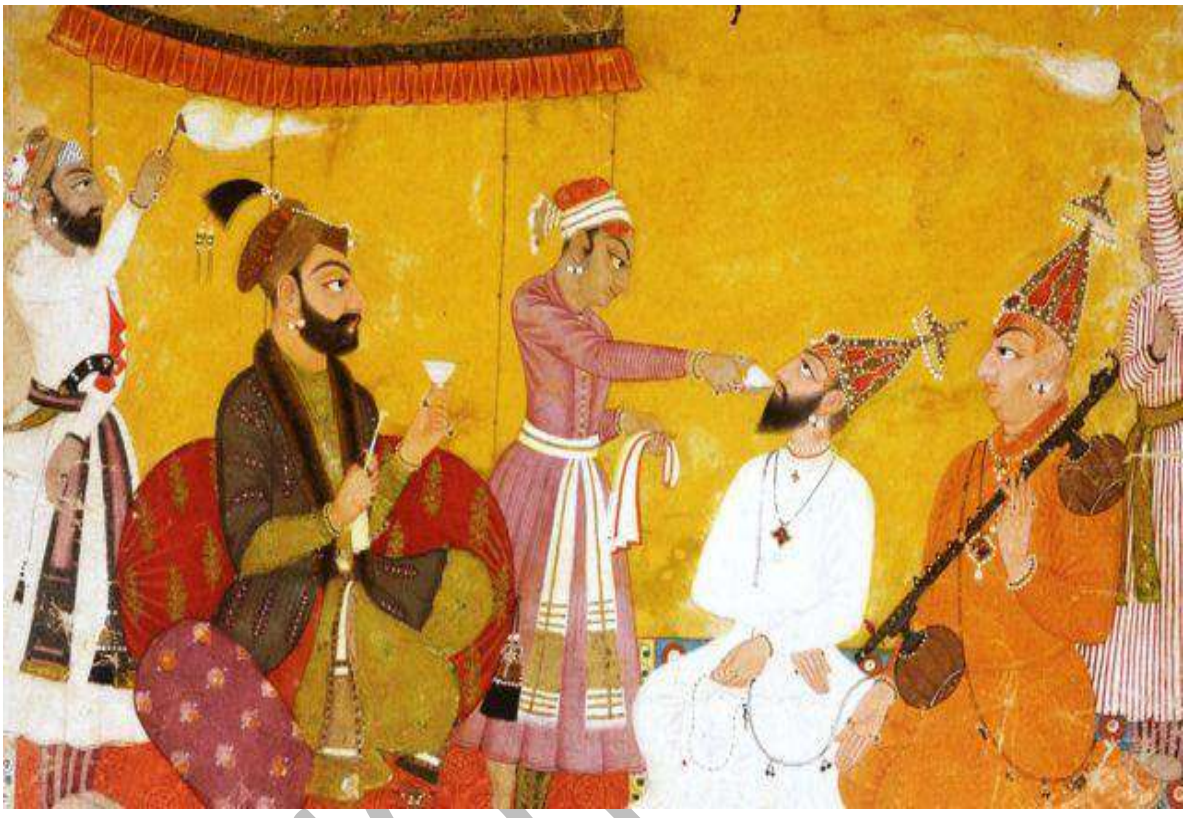

बाबरनामा, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

DO NOT

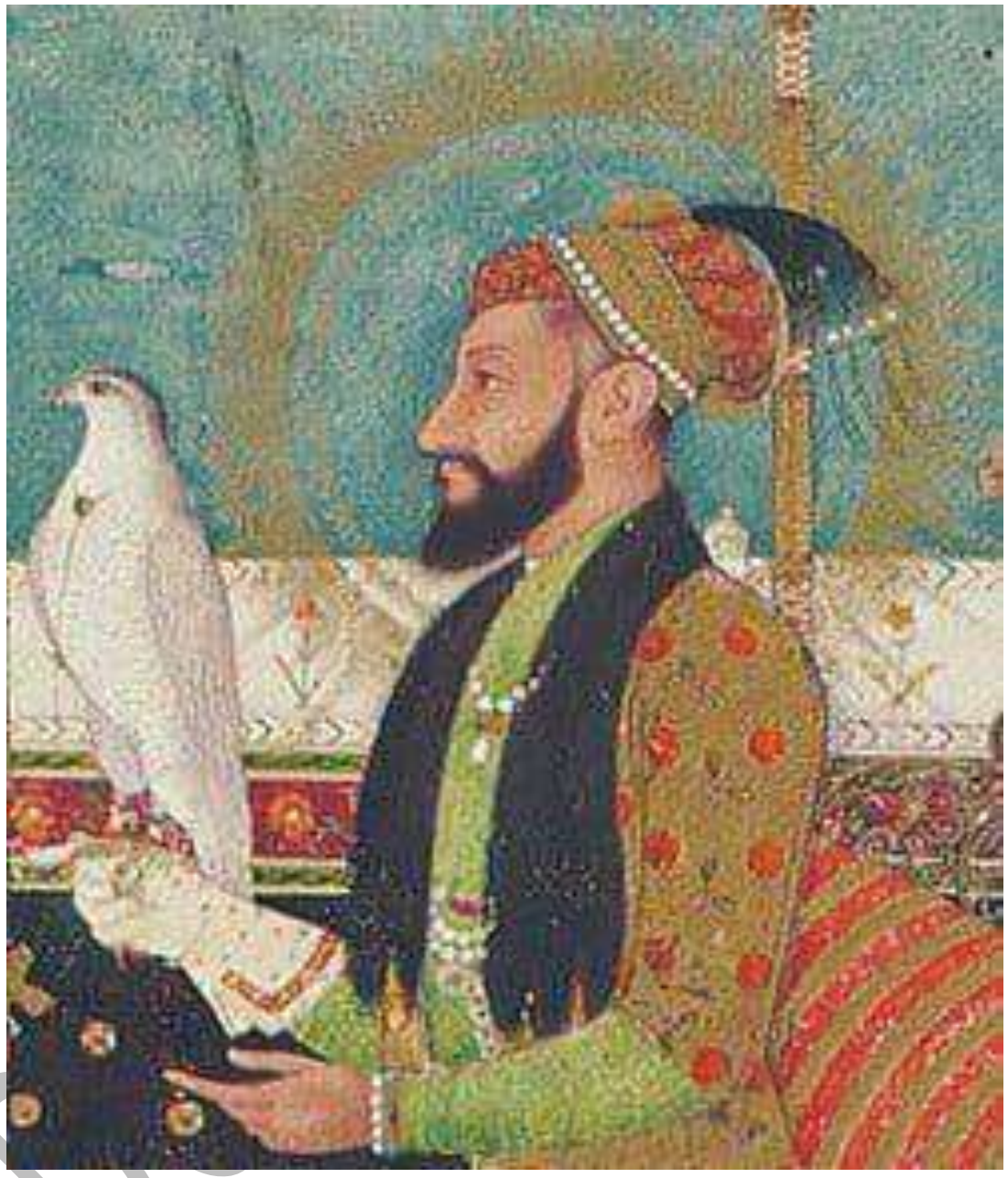

रज्मनामा, 17वीं शाब्दिक, राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली



अकबर कालीन लघुचित्र शैली

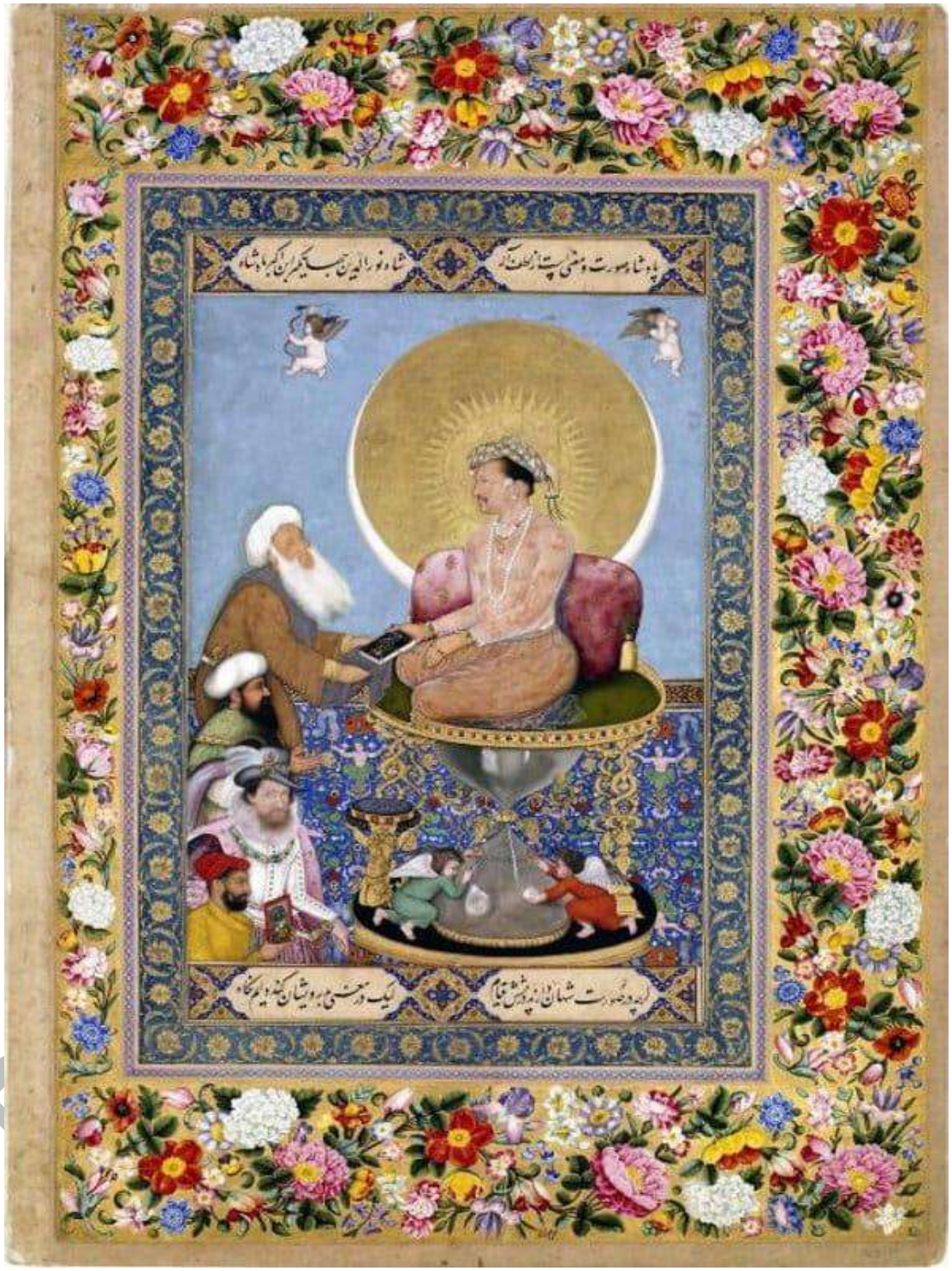

जाहगीर कालीन लघुचित्र शैली



जयपुर शैली की चित्रकारी

DO NOT

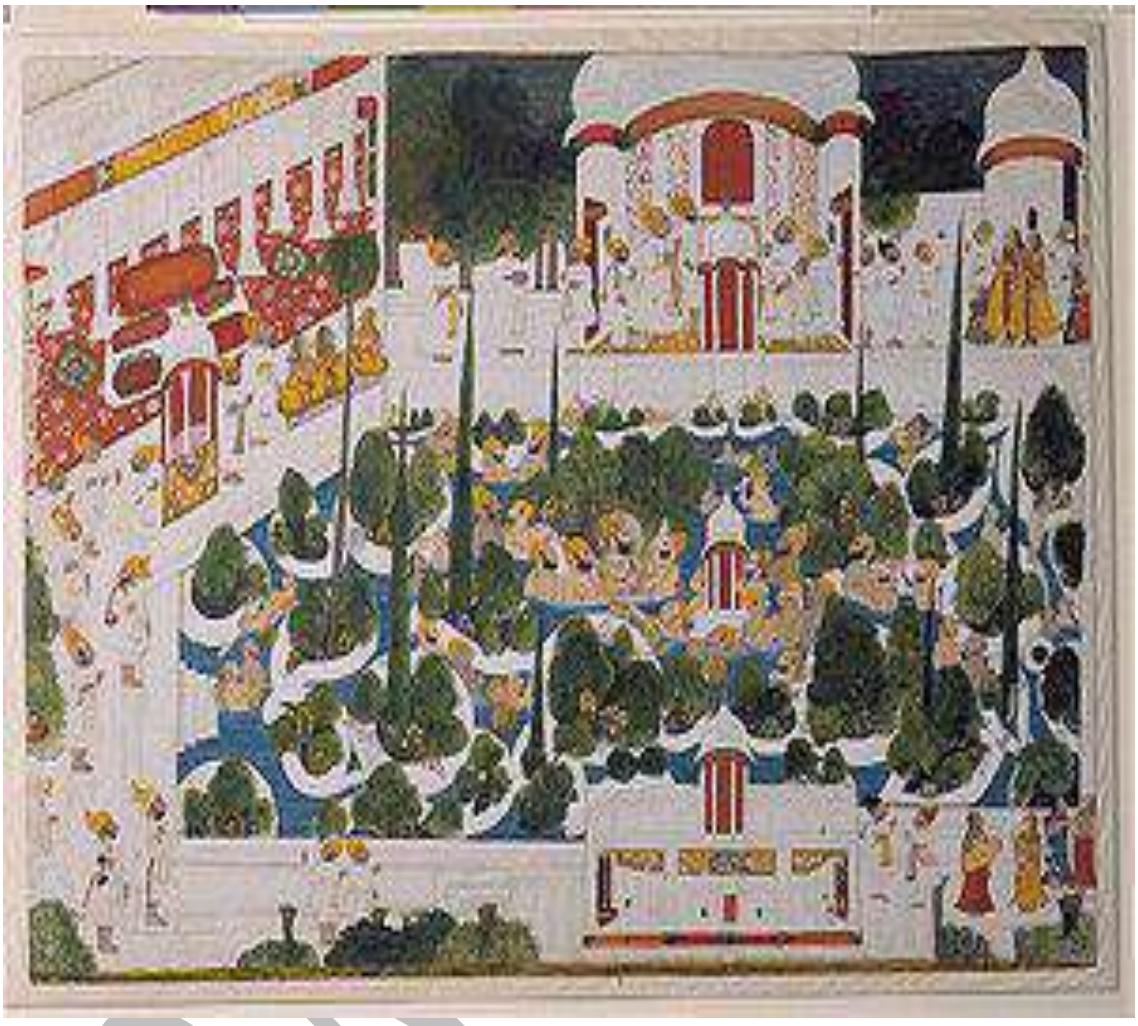

मेवाड़ की चित्रकला – भारत कोश ज्ञान का हिन्द महासागर

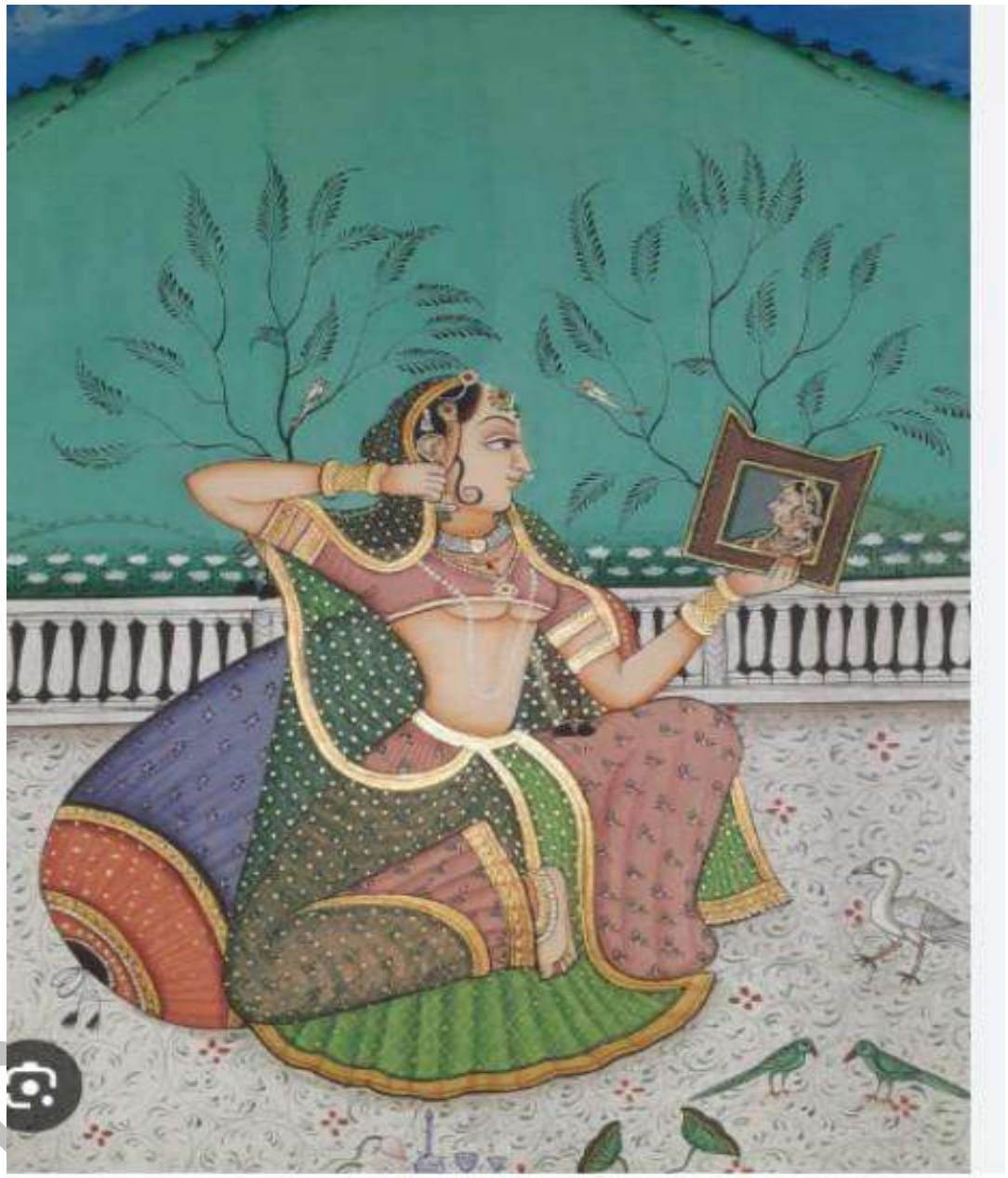

बूंदी लघु चित्रकला की कला – केसोरि

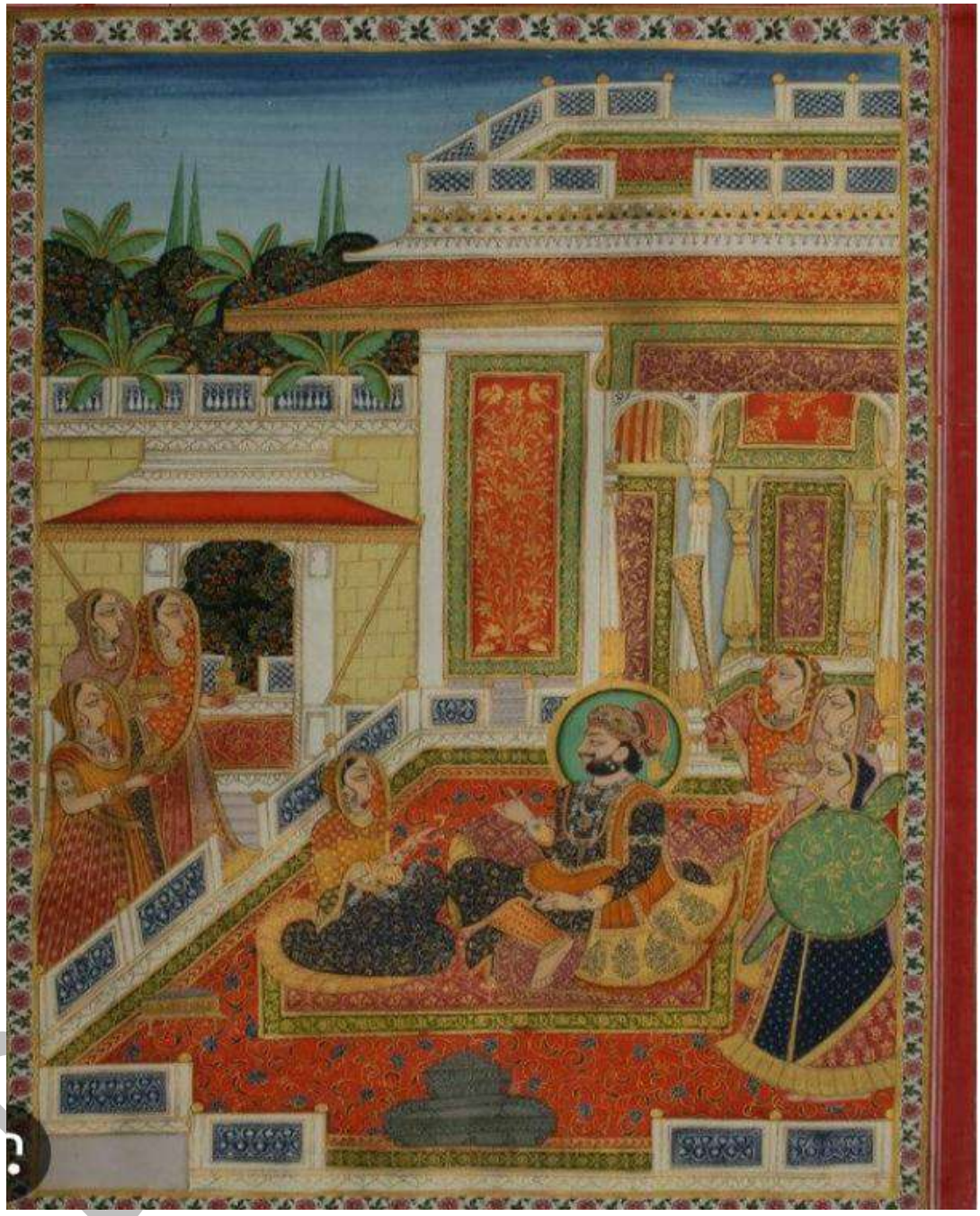

जौधपुर महाराजा तरण्य सिंह



किशनगढ़ की लघु चित्रकारी



जयपुर शैली की चित्रकला

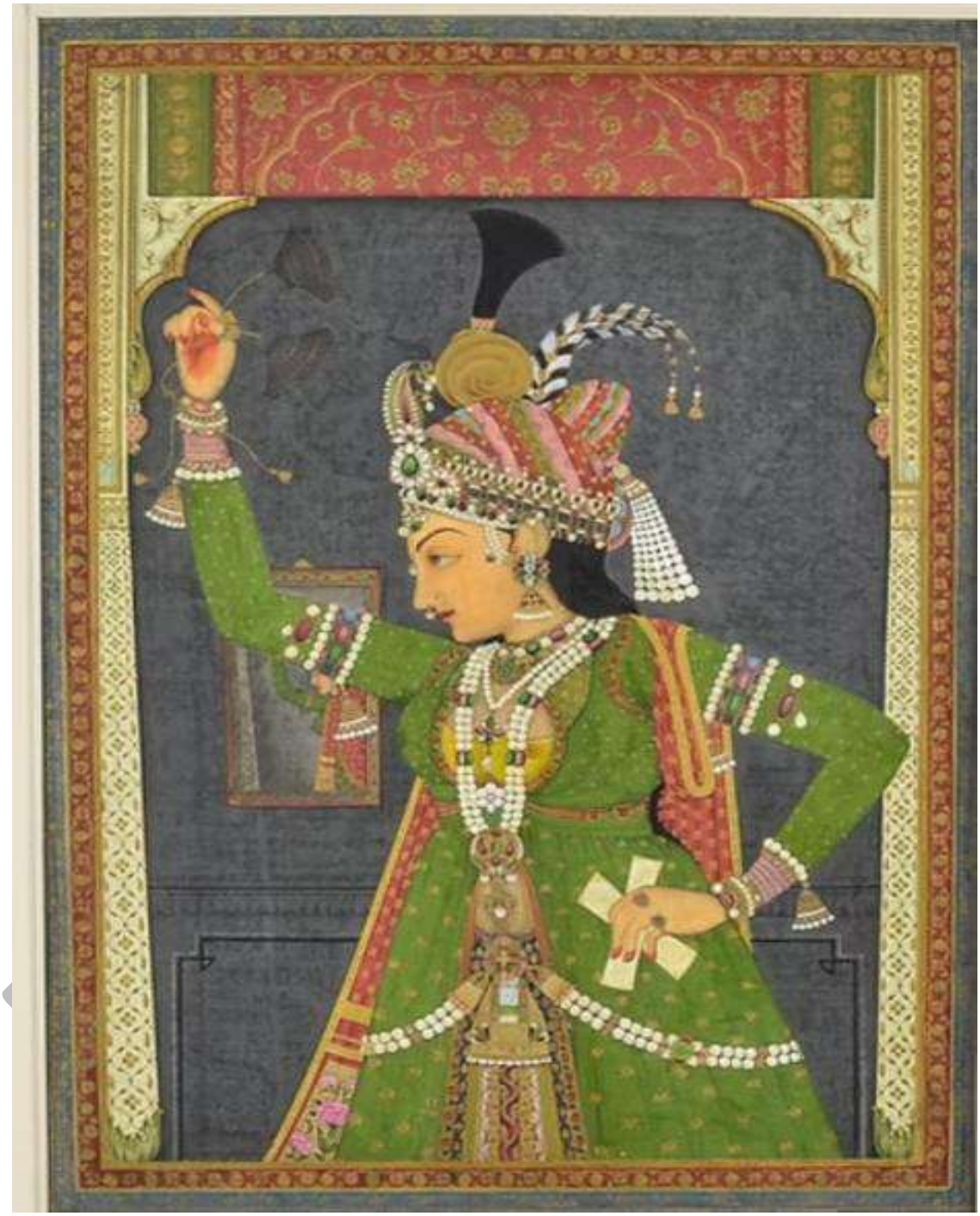

कोटा शैली – हाड़ोती शैली

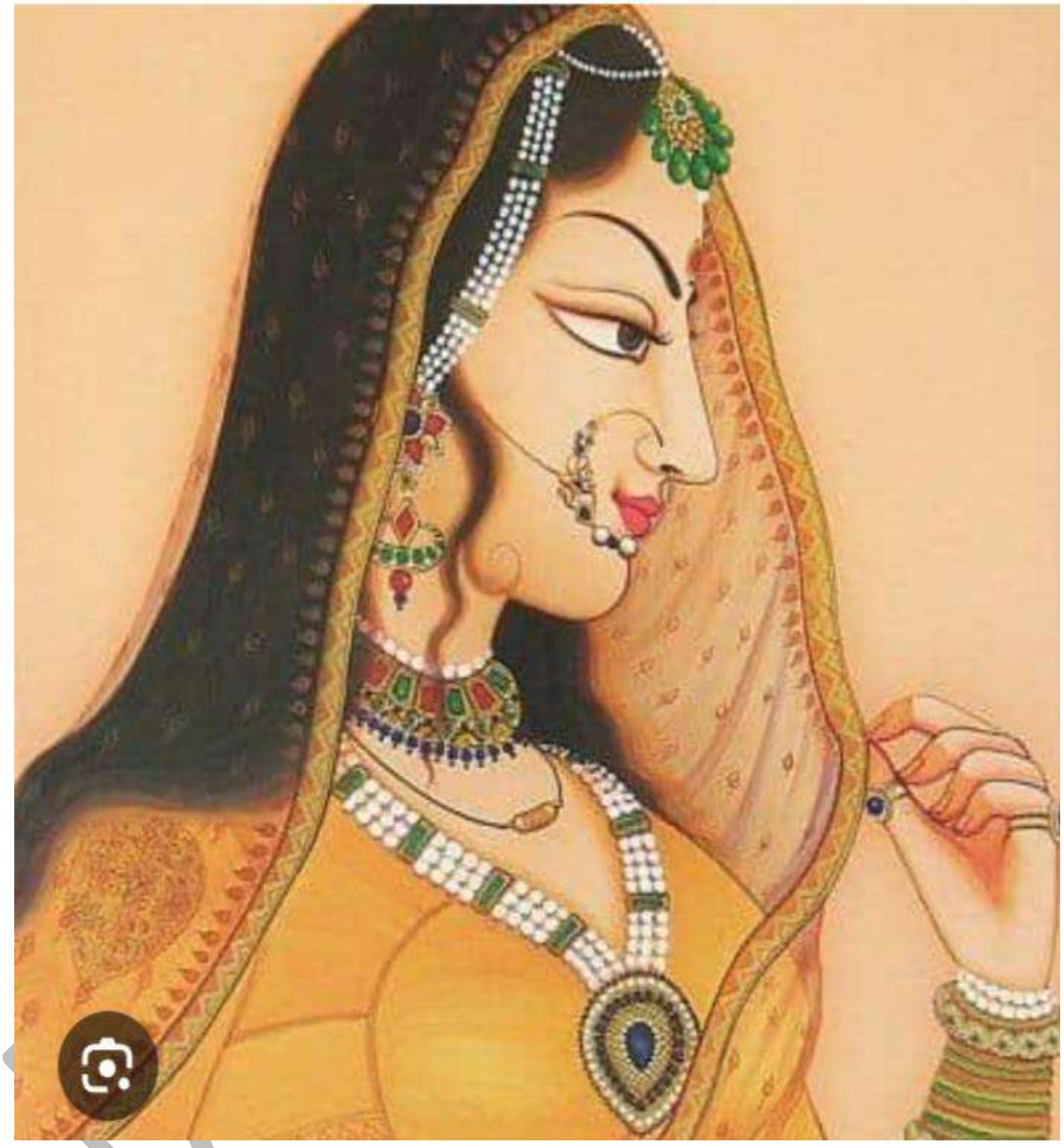

बणी – ठणी – किशनगढ़ शैली

"चित्रण सामग्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन "

कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्ष एवं निर्देशक
असि प्रो. श्री महेश धीमान
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री
कुलविन्द्र कौर
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)

Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्ड़ा)

2025–2026

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कुलविन्द्र कौर**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **चित्रण सामग्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन** " शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करता हूँ।

मैं इसके उज्जवल भविष्य एंव सफल जीवन की कामना करता हूँ।

दिनांक : 8/7/026

सहायक प्रोफेसर
श्री महेश धीमान असि. प्रोफेसर

प्रमाण पत्र

मैं **कुलविन्द्र कौर**, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध " **चित्रण सामग्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन** " विषय मेरे स्वंय के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है। यह अप्रकाशित कृति है, लेखन में कम से कम आवश्यक सामग्री का उल्लेख किया गया है।

Kulvinder Kaur

शोधकर्त्री

कुलविन्द्र कौर

निर्देशक

सहायक प्रोफेसर

महेश धीमान

आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)
कुरूक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कुलविन्द्र कौर**, अनुक्रमांक न0. **240007003**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **चित्रण सामग्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन** " शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु–शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्जवल भविष्य एंव सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांकः 9/7/26

प्राचार्या
डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

कला हमारे जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और अभिन्न हिस्सा है, जो भावनात्मक अभिव्यक्ति, मानसिक शांति, सांस्कृतिक पहचान और रचनात्मकता को बढ़ावा देती है। यह सिर्फ मनोरंजन का साधन नहीं , बल्कि हमारे जीने के तरीके को संवारती है, तनाव कम करती है। यह हमारे लिए अमूल्य आंनद की अनुभूति है। जिसके बिना जीवन नीरस प्रतीत होती है। ठीक उसी प्रकार कला में चित्रण सामग्री का होना भी आवश्यक है।

मैंने अपने इस लघु – शोध में चित्रण सामग्री के बारे में बताने का प्रयास किया है, कि चित्रण सामग्री कब, कैसे और कहाँ बनी और चित्रण सामग्री का प्रयोग हम अपनी कला में कैसे कर सकते है। इस लघु शोध को मैंने पूरी मेहनत और लग्न के साथ पूरा किया है। प्रस्तुत लघु – शोध कार्य को मैंने पांच अध्यायों में प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है :–

➔ प्रथम अध्याय – इस अध्याय में कला, कला में चित्रण सामग्री की भूमिका, चित्रण सामग्री का इतिहास व उसके प्रभावों का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

➔ द्वितीय अध्याय – इस अध्याय में कला में चित्रण सामग्री के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

➔ तृतीय अध्याय – इस अध्याय में चित्रण में रंगों का मनोविज्ञान व हमारे रोजमर्रा की जिंदगी में रंगों का मनोविज्ञान और कला में रंगों के भावनात्मक जुड़ाव का उल्लेख किया है।

➔ चतुर्थ अध्याय – इस अध्याय में चित्रण सामग्री व ब्रांड का विवरण किया गया है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और चित्र संग्रह सूची को प्रस्तुत किया गया है। इस लघु–शोध प्रबंध के माध्यम से स्थापित की गई मौलिक मान्यताओं को प्रतिपादित किया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र को सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि विद्वान समीक्षक उन्हें अलक्ष्य करने की कृपा करें। इस शोध पत्र में

जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उसके लिए केवल मैं दोषी हूँ। अंत में इसके लिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

कुलविन्द्र कौर

शोधकर्त्री

आभार

मेरे इस लघु शोध कार्य को करने में जिन महानुभावों का सहयोग रहा है उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मेरे इस शोध कार्य का उल्लेख संपूर्ण नहीं होगा। मैं आपको आपके द्वारा दिए गए मार्गदर्शन और समर्थन के लिए धन्यवाद देना चाहती हूँ। आपकी सलाह अमूल्य रही है और आपको मार्गदर्शक के रूप में पाकर बहुत आभारी हूँ। आप सभी की प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को साकार रूप दे पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकंडा, के ललित कला विभाग, के अध्यक्ष आदरणीय श्री महेश धीमान जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होनें समय–समय पर लघुशोध कार्य करने में सहयोग और प्रेरणा दी।

मैं ललित कला विभाग कुरूक्षेत्र विशविद्याल, कुरूक्षेत्र की धन्यवादी हूँ कि उन्होंने इस विषय को सफलतापूर्वक चलाने में आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद – मारकंडा की सहायता की।

इसके साथ–साथ में अपने परिवार जनों का भी हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के कारण ही मैं इस शोध कार्य को संपूर्ण करने में सक्षम हो पाई।

मैं अपने गुरू आदरणीय असि प्रौ0. श्री महेश धीमान व आदरणीय पुस्तकालय अध्यक्षा डॉ. राजिन्द्र कौर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य के दौरान मेरी शंकाओं और समस्याओं का निदान किया तथा निरंतर प्रोत्साहित करते रहे। मैं अपने मित्रों तथा सहपाठियों की भी हार्दिक आभारी हूँ।

मैं अंत में, मैं वर्तमान प्राचार्या महोदया आदरणीय डॉ0. श्रीमती आरती त्रेहन जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पूरे शोध कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया व ललित कला विषय में स्नातकोत्तर कक्षाएं प्रांरभ कर हमारे चिरलंवित स्वपन को साकार करने का मौका प्रदान किया।

मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धेय भाव प्रस्तुत करती हूँ। इन्हीं की प्रेरणा व निर्देशन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यदि इस लघु शोध – प्रबंध से पाठक वर्ग का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं इसे अपना सफल प्रयास मांनूगी।

कुलविन्द्र कौर

शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन पृष्ठ संख्या

आभार

प्रथम अध्यायः **01 – 19**

– कला

– कला का अर्थ

– कला का महत्व

– चित्रण

– चित्रण सामग्री की भूमिका

– चित्रण सामग्री का इतिहास

– प्रारंभिक चित्रकारी के तरीके

द्वितीय अध्याय : **20 – 62**

– चित्रण सामग्री के विभिन्न प्रकार

– पेंसिल

– क्रियान

– पेस्टल

– चारकोल

– ब्रश

– कैनवास

– वाटर कलर

– तेल चित्रण

– ऐक्रेलिक पेंट

तृतीय अध्यायः **63 – 68**

– चित्रण में रंगों का मनोविज्ञान

– रंग मनोविज्ञान के पीछे का विज्ञान

– रोजमर्रा की जिंदगी में रंग का मनोविज्ञान

– कला में रंगों का भावनात्मक जुड़ाव

चतुर्थ अध्यायः **69 – 72**

– चित्रण सामग्री व ब्रांड का विवरण

– उपसंहार **73 – 74**

– संदर्भ ग्रंथ सूची **75 – 76**

– चित्र संग्रह सूची **77 – 77**

– चित्र सूची **78 – 98**

प्रथम अध्याय

- कला और चित्रण सामग्री का इतिहास

कला और चित्रण–सामग्री का इतिहास

➢ कला :–

कला एक सार्वभौमिक मानवीय क्रिया है जो हर युग, हर स्थान, हर समय में पाई गई है। चाहे वह अभिव्यक्ति के रूप में हो, संप्रेषण के रूप में हो, या मनोरंजन के रूप में हो।

कला का मूल्य यद्यपि सार्वभौमिक है परंतु इसकी जड़ें उस समाज, उस संस्कृति में रहती हैं, जहाँ से वह उपजती है। कला को समाज और संस्कृति से कभी अलग नहीं किया जा सकता। कला, मानव कल्पना, भावनाओं और रचनात्मक कौशलों की एक सचेत अभिव्यक्ति है, जो दृश्य (पेंटिंग, मूर्तिकला), श्रव्य (संगीत), या प्रदर्शन (नृत्य, नाटक) माध्यमों से विचारों को साकार करती है। यह संस्कृति, इतिहास और आत्म–अभिव्यक्ति का एक सशक्त साधन है। जिसमें रेखा, रंग, रूप, बनावट और स्थान जैसे तत्व शामिल हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य सृजन के लिए अंतर्निहित है। सबसे प्रारंभिक मानव और यहाँ तक कि आदि मानव बस्तियों के स्थलों से ऐसी वस्तुएँ मिली हैं जो दुनिया को चित्रित करने के प्रयासों का प्रमाण प्रतीत होती हैं। ये छवियाँ और वस्तुएँ सदियों से मनुष्यों के साथ रही हैं। जिन रूपों, माध्यमों और तकनीकों से हमने अपनी दुनिया को चित्रित किया है, वे मनुष्यों के साथ–साथ बदलती रही हैं, लेकिन उस दुनिया को चित्रित करने की उनकी सहज प्रवृत्ति नहीं बदली है।

➢ कला का इतिहास :–

मानव की उत्पत्ति 3.5 लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर हुई और वह स्वयं को प्रकृति के अनुरूप बनाने में दिन–प्रतिदिन परिश्रम करता रहा। मानव ने शारीरिक विकास और मानसिक स्तर पर स्वयं को विकसित किया। मानव अपनी जरूरतों के अनुरूप संसाधनों को भी सफलता की ओर अग्रसर करता रहा। मानसिक और शारीरिक विकास के साथ उसका भावात्मक विकास भी हुआ। उसके अंदर विभिन्न–भिन्न प्रकार के भाव उत्पन्न होने लगे व अपने विचारों को उसने सर्वप्रथम चट्टानों पर व्यक्त किया। जो मानव की उस स्थिति को उजागर करता है जो लाखों वर्ष पूर्व थी। भाव को शरीर द्वारा व्यक्त करना एक रस को परिभाषित करता है, और सर्वप्रथम मानव ने अपने भावों को व्यक्त करने के लिए ऐसी क्रिया को जन्म दिया जो आज के युग में कला के नाम से जानी जाती है।

1. कला दर्शन, प्रकाश वीरश्वर, नूपुर शर्मा, पृष्ठ सं. – 3

DO NOT COPY

कला का इतिहास मानव द्वारा अनेक आध्यात्मिक, कथात्मक, दार्शनिक, प्रतीकात्मक, वैचारिक, दस्तावेजी, सजावटी और कार्यात्मक तथा अन्य उद्देश्यों के लिए निर्मित वस्तुओं पर केंद्रित है, लेकिन इसका प्राथमिक जोर उनके सौंदर्यपरक दृश्य रूप पर होता है। दृश्य कला को विविध तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे– ललित कलाओं को अनुप्रयुक्त कलाओं से अलग करना, मानव रचनात्मकता पर समग्र रूप से ध्यान केंद्रित करना या वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, फिल्म, फोटोग्राफी और ग्राफिक कला जैसे माध्यमों पर ध्यान केंद्रित करना। हाल के वर्षों में, तकनीकी प्रगति ने वीडियो कला, कंप्यूटर कला, प्रदर्शन कला, एनीमेशन, टेलीविजन और वीडियो गेम को जन्म दिया है।

कला के इतिहास को अक्सर प्रत्येक सभ्यता के दौरान निर्मित उत्कृष्ट कृतियों के कालक्रम के रूप में बताया जाता है। इस प्रकार से उच्च संस्कृति की कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसका सार विश्व के अजूबों में निहित है। दूसरी ओर, लोक कला अभिव्यक्तियों को भी कला इतिहास के वृतांतों में शामिल किया जा सकता है, जिन्हें लोक कला या शिल्प कहा जा सकता है। कला के इतिहासकार निम्न संस्कृति के इन रूपों से जितना गहराई से जुड़ते हैं, उतनी ही अधिक संभावना है कि वे अपने कार्य को दृश्य संस्कृति या भौतिक संस्कृति के अध्ययन के रूप में, या कला इतिहास से संबंधित क्षेत्रों जैसे मानव विज्ञान या पुरातत्व में योगदान के रूप में पहचानेंगे। बाद के मामलों में, कला वस्तुओं को पुरातात्विक कलाकृतियाँ कहा जा सकता है।

विश्व की विशाल और सबसे पुरानी सभ्यताएँ, हड़प्पा, मिस्र, मेसोपोटामिया, यूनानी, चीन, केल्टिक, रोम आदि उस समय की व्यापक कला पर प्रकाश डालते हैं, और समाज के साथ–साथ कला भाव को दार्शनिक रूप दिया गया। खुदाई में मिले विभिन्न अवशेष, मूर्तियाँ, सिक्के, बर्तनों, मृदभांडों, अभिलेखों से उस समय की कला तथा उसके विकास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। उस समय के कला संबंधी विकास और कला के ज्ञान को भी इन अवशेषों के माध्यम से देखा जा सकता है, उदाहरण के लिए हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त सामग्री उस समय के सांस्कृतिक जीवन व जीवन शैली को प्रकट करती है। विद्वानों ने कला भावों को गहराई से समझा और व्यक्त करने के तरीकों को दर्शन से जोड़ उसे एक नया अर्थ प्रदान किया।

➢ कला का अर्थ :–

DO NOT COPY

कला शब्द इतना व्यापक है कि विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ केवल एक विशेष पक्ष को छूकर रह जाती हैं। कला शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। इसके अतिरिक्त कला शब्द का प्रयोग सतपथ, ब्राह्मण, आरण्यक तथा अथर्ववेदों में मिलता है। भारतीय इतिहास में कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग "भरतमुनि" ने अपने "नाट्यशास्त्र" में प्रयुक्त किया है। "न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला"। श्लोक का तात्पर्य है– ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जिसमें कोई शिल्प नहीं, कोई विद्या नहीं, जो कला न हो। कला संस्कृत भाषा से संबंधित शब्द है। इसकी उत्पत्ति "कल्" धातु से मानी गई है। जिसका अर्थ है – प्रेरित करना।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति "क" धातु से मानी है – कं लाति इति कलम्, कं आनन्द लाति इति कला। इस प्रकार कला के अनेक अर्थ माने गए हैं।

कला का अर्थ अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है यद्यपि इसकी हजारों परिभाषाएँ दी गई हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार कला उन सारी क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो। यूरोपीय शास्त्रियों ने भी कला में कौशल को महत्वपूर्ण माना है। कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है, जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है।

मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में – "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही कला है" (साकेत, पंचम सर्ग)
दूसरे शब्दों में – मन के अंतःकरण की सुंदर प्रस्तुति ही कला है।

कला का अर्थ – सुंदर, मधुर, कोमल और सुख देने वाली एवं शिल्प हुनर अथवा कौशल भी माना गया है। भारतीय विद्वानों ने कला दृष्टिकोण के साथ–साथ कला के संबंध में पाश्चात्य दृष्टिकोण भी कुछ इसी प्रकार है। पश्चिम की विभिन्न भाषाओं में कला के लिए विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो आपस में समानता लिए हुए हैं। अंग्रेजी भाषा में कला को "आर्ट" कहा जाता है। फ्रेंच और लैटिन में "आर्टम" और "आर्स" कहा जाता है। "अर" का अर्थ है बनाना, पैदा करना या रचना करना। यह शारीरिक और मानसिक कौशल आर्ट माना जाता है। इन अर्थों के अंतर्गत कुछ सुखद, सुंदर एवं मधुर सृजन है। दूसरे शब्दों में "सत्यम् शिवम् सुंदरम" की अभिव्यक्ति ही कला है।

- **कला का वर्गीकरण :–**

DO NOT COPY

मध्य युग में, यूरोपीय मध्ययुगीन विश्वविद्यालयों में उदार कलाओं को ट्रिवियम के भाग के रूप में पढ़ाया जाता था, जो व्याकरण, अलंकारशास्त्र और तर्कशास्त्र से संबंधित एक परिचयात्मक पाठ्यक्रम था, और क्वाड्रिवियम के भाग के रूप में, जो अंकगणित, ज्यामिति, संगीत और खगोल विज्ञान की "गणितीय कलाओं" से संबंधित एक पाठ्यक्रम था। आधुनिक अकादमिक जगत में, कलाओं को मानविकी के साथ समूहितकृत किया जा सकता है, या उसका एक उपसमूह माना जा सकता है।

कलाओं को सात रूपों में वर्गीकृत किया गया हैः चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला, साहित्य, संगीत, रंगमंच और फिल्म निर्माण। कुछ कलाएँ एक दूसरे से व्युत्पन्न हो सकती हैं, उदाहरण के लिए, नाटक अभिनय के साथ साहित्य है, नृत्य गति के माध्यम से व्यक्त संगीत है और गीत साहित्य और मानवीय आवाज के साथ संगीत है। फ्रांसीसी भाषी विद्वानों ने टेलीविजन को कभी–कभी "आठवीं" और कॉमिक्स को "नौवीं कला" कहा जाता है, जो पारंपरिक "सात कलाओं" में जुड़ती हैं। गैस्ट्रोनॉमी जैसे सांस्कृतिक क्षेत्रों को कभी–कभी ही कला माना जाता है।

अगर सीधे तौर पर परिभाषित करें तो जिस वस्तु, रूप अथवा तत्व का निर्माण किया जाता है, उसी के नाम पर उस कला का प्रकार कहा गया है। जैसे – वास्तुकला या स्थापत्य कला अर्थात भवन निर्माण कलाय जैसे– दुर्ग, प्रसाद, मंदिर, स्तूप, चैत्य, मकबरे आदि। मूर्तिकला, चित्रकला, गुप्तकला, मुद्रकला, धातु कला, दंतकला, मृत्तिका कला, दृश्य कला आदि।

➢ अवधारणाएँ :–

पाश्चात्य विद्वानों और भारतीय विद्वानों की कला के प्रति भिन्न–भिन्न अवधारणाएँ रही हैं, और वे कई पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं।

→ "प्लेटो" के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति सुंदर वस्तु को अपना प्रेमास्पद चुनता है। अतः कला का प्राण सौंदर्य है। उन्होंने कला को सत्य की अनुकृति माना है।

→ "हीगल" ने कला को आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम माना है।

→ "अरस्तु" ने कला को अनुकरण तो माना, लेकिन उसे सृजनात्मक कहा। उन्होंने कला का मुख्य उद्देश्य 'भावविरेचन' यानी भावनाओं को बाहर निकालकर मानसिक शुद्धि करना बताया।

DO NOT COPY

3. **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/The_arts ⇒ 2:23 pm, 5 March 2026**

→ इमैनुएल कांट (**Immanuel Kant**) कांट ने कला को "सौंदर्यात्मक आनन्द" के रूप में देखा, जो स्वार्थ रहित और तटस्थ होती है। उन्होंने कला के लिए 'रुचि' (**Taste**) के महत्व पर जोर दिया।

→ "टॉलस्टॉय" की दृष्टि में चित्र, रेखा, रंग, ध्वनि, शब्द आदि के द्वारा भावों की वह अभिव्यक्ति जो श्रोता, दर्शक और पाठक के मन में भी वही भाव जागृत कर दे, कला है।

➢ भारतीय विद्वानों द्वारा :–

→ "टैगोर" के अनुसार – मनुष्य कला के माध्यम से अपने गंभीरतम अंतर की अभिव्यक्ति करता है।

→ "प्रसाद जी" के अनुसार – ईश्वर कर्तव्य शक्ति का मानव द्वारा शारीरिक तथा मानसिक कौशल पूर्ण निर्माण कला है।

→ "अबनींद्रनाथ टैगोर (आधुनिक)" – इन्होंने षडंग (कला = के 6 अंग) के माध्यम से पुरूजीवनवादी कला का समर्थन किया।

→ "डॉ. श्याम संदुर दास " के अनुसार – जिस गुण या कौशल के कारण किसी वस्तु में उपयोगी गुण और सुंदरता आ जाती है, उसे कला की संज्ञा दी जाती है।

➢ कला का महत्व :–

कला अनादिकाल से मानव संस्कृति का अभिन्न अंग रही है, जो समाज के मूल्यों, विश्वासों और सामूहिक अनुभवों को प्रतिबिंबित करती है। इसकी भूमिका मात्र सौंदर्यबोध तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह हमारे दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं में व्याप्त है और दुनिया को देखने के हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित करती है। कला हमारी रचनात्मक क्षमताओं को बढ़ाती है और रचनात्मकता को को पोषित करती है। कला जीवन को "सत्यम् शिवम् सुंदरम" से समन्वित करती है। इसके द्वारा ही बुद्धि और आत्मा का सत्य स्वरूप झलकता है। कला उस सागर की भांति है जिसका कोई छोर नहीं, इतनी विशाल इतनी विस्तृत अनेक विधाओं को अपने में समेटे हुए है, तभी तो कवि का मन कह उठाः

"साहित्य संगीत कला विहीनः

साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।।"

DO NOT COPY

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मुख से निकला – "कला में मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है।" तो प्लेटो ने कहा – "कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है।"

टॉलस्टॉय के शब्दों में अपने भावों की क्रिया रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करना कि उसे देखने या सुनने में भी वही भाव उत्पन्न हो जाए, कला है। ह्रदय की गहराइयों में निकली अनुभूति जब कला का रूप ले लेती है तो कलाकार का अन्तर्मन मानो मूर्त ले उठता है, चाहे लेखनी उसका माध्यम हो या फिर रंगों से भरी तूलिका या सुरों की पुकार या वाद्यों की झंकार। कला ही आध्यात्मिक शांति का माध्यम है। यह कठिन तपस्या है और साधना है। इसी के माध्यम से कलाकार सुनहरी और इन्द्रधनुषी आत्मा से स्वमिल विचारों को साकार रूप देता है।

कला में ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि वह लोगों को संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठाकर उसे ऐसे ऊँचे स्थान पर पहुँचा दे जहाँ मनुष्य केवल मनुष्य रह जाता है। कला व्यक्ति के मन में बनी स्वार्थ, परिवार, क्षेत्र, धर्म, भाषा और जाति आदि की सीमाएँ मिटाकर विस्तृत और व्यापकता प्रदान करती है। व्यक्ति के मन को उदात्त बनाती है। वह व्यक्ति को "स्व" से निकालकर "वसुधैव कुटुम्बकम" से जोड़ती है।

कलाओं में कला, श्रेष्ठ कला, वह है चित्रकला। मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरण की प्रवृत्ति रखता है। जैसा देखता है उसी प्रकार अपने आपको ढालने का प्रयास करता है। यही उसकी आत्म अभिव्यंजना है। अपनी रंगों से भरी तूलिका से चित्रकार जन भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है तो दर्शक हतप्रभ रह जाता है। पाषाण युग से ही जो चित्र पारितोषिक होते रहे हैं, ये मात्र एक विधा नहीं, अपितु वे मानवता के विकास का एक निश्चित सोपान प्रस्तुत करते हैं। चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाले आदिम मानव ने न केवल अपने संवेगों को बल्कि रहस्यमय प्रकृति और जंगल के खूंखार प्रवासियों के विरुद्ध अपने अस्तित्व के लिए किए गए संघर्ष को भी अभिव्यक्त किया है। धीरे–धीरे चित्रकला शिल्पकला का सोपान चढ़ी। सिंधुघाटी सभ्यता में पाए गए चित्रों में पशु–पक्षी, मानव आकृति, सुंदर प्रतिमाएँ, ज्यादातर नमूने भारत की आदि सभ्यता की कलाप्रियता का द्योतक हैं।

अजन्ता, बाघ आदि के गुफा चित्रों की कलाकृतियाँ पूर्व बौद्धकाल के अंतर्गत आती हैं। भारतीय कला का उज्ज्वल इतिहास भित्ति चित्रों से ही प्रारम्भ होता है और संसार में इनके समान चित्र कहीं नहीं बने ऐसा विद्वानों का मत है। अजन्ता के कला मंदिर प्रेम, धैर्य, उपासना, भक्ति, सहानुभूति, त्याग तथा शांति के अद्‌भुत उदाहरण हैं।

DO NOT COPY

मधुबनी शैली, पहाड़ी शैली, तंजौर शैली, मुगल शैली, बंगाल शैली अपनी–अपनी विशेषताओं के कारण आज जनशक्ति के मन चिन्हित हैं। यदि भारतीय संस्कृति की मूर्तिकला व शिल्पकला के दर्शन करने हों तो दक्षिण के मंदिर अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। जहाँ के मीनाक्षी मंदिर, वृहदीश्वर मंदिर, कोणार्क मंदिर अपनी अनूठी पहचान के लिए प्रसिद्ध हैं।

यही नहीं भारतीय संस्कृति में लोक कलाओं की सुगंध की महक आज भी अपनी प्राचीन परम्परा से समृद्ध है। जिस प्रकार आदिकाल से अब तक मानव जीवन का इतिहास क्रमबद्ध नहीं मिलता उसी प्रकार कला का भी इतिहास क्रमबद्ध नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि सहचारी के रूप में कला सदा से ही साथ रही है। लोक कलाओं का जन्म भावनाओं और परम्पराओं पर आधारित है क्योंकि यह जन सामान्य की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। यह वर्तमान शास्त्रीय और व्यावसायिक कला की पृष्ठभूमि भी है।

- चित्रण :–

चित्रण से तात्पर्य लिखित सामग्री को बढ़ाने या उसके साथ जोड़ने वाली दृश्य प्रस्तुतियों के निर्माण की कला से है। इसमें विचारों, अवधारणाओं या कथाओं को चित्रों के माध्यम से संप्रेषित करने के लिए विभिन्न तकनीकों और माध्यमों का उपयोग किया जाता है।

चित्रण रेखांकन, चित्रकारी, छायांकन या कला के अन्य कार्यों के रूप में प्रस्तुत प्रदर्शित मानसदर्शन का एक रूप है, जिसे ग्राफिक रूप से दृश्य प्रस्तुति देकर केन्द्रिक जानकारी की स्पष्ट व्याख्या करने या निर्धारित करने के लिए बनाया जाता है। चित्रण का उपयोग विचारों, अवधारणाओं और सूचनाओं को उपयोगकर्ता तक दृश्य रूप में पहुँचाने के लिए किया जाता है। चित्रों का उपयोग उत्पाद या वेबसाइट की समग्र सौंदर्य अपील बढ़ाने के लिए एक डिजाइन तत्व के रूप में भी किया जाता है। चित्रण के छह अंग हैं – रूपभेद, प्रमाण, लावण्य, भाव योजना, सादृश्य और वर्णिकाभंग। षडंग कला के निर्माण और मूल्यांकन के लिए एक विस्तृत ढांचा प्रदान करते हैं, जिसमें तकनीकी दक्षता और सौंदर्यबोध दोनों पर जोर दिया गया है। प्रत्येक अंग कलात्मक प्रक्रिया के एक विशिष्ट पहलू का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि कलाकृति सामंजस्यपूर्ण, अभिव्यंजक और दृष्टिगत रूप से आकर्षक हो।

चित्रण एक दृश्यकला विधा है जो विचारों, कहानियों और सूचनाओं को स्पष्ट करने, सजाने या उनका समर्थन करने का काम करती है। सरल शब्दों में कहें तो, यह अवधारणाओं को ऐसे दृश्यों में

DO NOT COPY

बदल देती है जो लोगों को समझने में मदद करते हैं। ललित कला के विपरीत, जिसकी व्याख्या स्वतंत्र रूप से की जा सकती है, चित्रण एक उद्देश्यपूर्ण और सोची–समझी रचना होती है।

➢ चित्रण की भूमिका :–

चित्रण सामग्री (**Illustration Materials**) कला में वे सभी साधन और माध्यम होते हैं जिनकी सहायता से कलाकार अपनी कल्पना, विचार और भावनाओं को चित्र के रूप में प्रस्तुत करता है। चित्रकला में इन सामग्रियों की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि इनके बिना चित्र बनाना संभव नहीं होता। चित्रण सामग्री दृश्यों, रेखाचित्रों और चित्रों के माध्यम से जानकारी को सरल, रोचक और स्पष्ट बनाने की एक दृश्य कला है। यह जटिल विषयों को समझाने, रचनात्मकता विकसित करने और दर्शकों को गहराई से जोड़ने में मदद करती है। यह शिक्षा, कला और संचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

चित्रण सामग्री कलाकार की शैली और तकनीक को विकसित करने में मदद करती है। हर कलाकार अलग–अलग माध्यम का प्रयोग करके अपनी विशिष्ट शैली बनाता है। उत्तम गुणवत्ता की सामग्री चित्र को लंबे समय तक सुरक्षित रखती है। अच्छी कागज, कैनवास, रंग और वार्निश चित्र की उम्र बढ़ाते हैं। विभिन्न प्रकार की सामग्री कलाकार को नए प्रयोग करने का अवसर देती है, जिससे उसकी रचनात्मकता और कल्पनाशक्ति बढ़ती है। चित्रण सामग्री कला का आधार होती है। इनके माध्यम से कलाकार अपनी कल्पना को दृश्य रूप देता है और कला को प्रभावशाली तथा आकर्षक बनाता है।

चित्रकला में आवश्यक सामग्री जैसे – पेंसिल (**6H–6B**), आर्टिस्ट पेन, और चारकोल विचारों को कागज पर उतारने के लिए आधार स्तम्भ हैं। उच्च गुणवत्ता वाली सामग्री (जैसे– ड्राइंग पेपर, रबर) रेखाओं की स्पष्टता, छायांकन (**Shading**) और विवरण (**Detailing**) सुनिश्चित करती है, जो कलाकति को जीवंत बनाती है। इन सभी सामग्रियों का सही चयन रचनात्मकता को निखारता है और कला के अंतिम परिणाम को बेहतर बनाने के लिए महत्वपूर्ण है। प्रत्येक सामग्री के विभिन्न गुणों और कार्यों को समझना, जैसे कि कैनवास की बनावट या पेंट की अपारदर्शिता, कलाकृति के परिणाम को बहुत प्रभावित कर सकता है। विविधता कला सामग्री का उपयोग न केवल रचनात्मकता को बढ़ाता है बल्कि उन तकनीकों की सीमा को भी बढ़ाता है जिनमें आप महारत हासिल कर सकते हैं।

DO NOT COPY

➢ चित्रण सामग्री का इतिहास :–

चित्रण सामग्री का इतिहास प्रागैतिहासिक गुफाओं की दीवारों पर कोयले तथा प्राकृतिक रंगों (खनिजों) से शुरू होकर आज के आधुनिक डिजिटल माध्यमों तक विकसित हुआ है। प्राचीन काल में सरकंडों की कलम, ताड़ के पत्ते, मिट्टी की गोलियाँ और प्राकृतिक रंगों का प्रयोग होता था, जो बाद में (मध्यकाल में) कागज, स्याही और ब्रश में बदल गया। मुगल काल में सूक्ष्मांकन (**Miniature**) और औपनिवेशिक काल में पाश्चात्य शैली ने चित्रण तकनीकों को समृद्ध किया तथा तेल रंगों व सिंथेटिक रंगों ने चित्रण की तकनीकों को बदला।

➢ प्रागैतिहासिक काल (**Prehistoric Era**) :–

चित्रकला का उद्भव प्रागैतिहासिक काल में हुआ था, जब खानाबदोश लोग चट्टानी दीवारों पर प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग कर चित्र बनाते थे। वे कोयले, लाल, पीले गेरू (**Ochre**) और मैंगनीज जैसे खनिज रंगों का भी इस्तेमाल करते थे। इन रंगों को जानवरों की चर्बी या गोंद में मिलाकर गुफाओं की दीवारों और चट्टानों पर उंगलियों, टहनियों या ब्रश से चित्रकारी की जाती थी। वे जिन गुफाओं से गुजरते थे, उनमें निशान छोड़ जाते थे। स्पेन में हाल ही में हुई खोज में पता चला कि अब तक खोजी गई सबसे पुरानी मानव निर्मित पेंटिंग 42,000 साल से भी अधिक पुरानी है।

प्रागैतिहासिक काल की चित्रकारी आमतौर पर चट्टानों पर की जाती थी और इन चट्टानों पर की गई नक्काशी को पेट्रोग्लिफ कहा जाता है। प्रागैतिहासिक चित्रों को सर्वप्रथम वर्ष 1957–58 में मध्य प्रदेश में भीम–बेटका गुफाओं में खोजा गया था। इन चित्रों में "चिड़िया घर रॉक शेल्टर" प्रमुख है, जिसमें हाथी, गैंडा, मवेशी, सांप, चितदार हिरण, बारहसिंगा आदि का चित्रण है।

➢ प्राचीन काल (**Ancient Era**) :–

उच्च पाषाण काल (40,000 – 10,000 ई.पू.) में शैलाश्रय गुफाओं की दीवारों पर क्वार्टजाइट से चित्रकारी की गई थी, इसलिए उनमें रंगद्रव्य के लिए खनिजों का प्रयोग किया जाता था। सबसे मुख्य खनिज गेरू था, जिसे चूने और पानी के साथ मिलाया जाता था। सफेद, गहरे लाल और हरे रंग का उपयोग बड़े जानवरों जैसे – बाइसन, हाथी, गैंडा, बाघ आदि को चित्रित करने के लिए किया जाता

DO NOT COPY

था। मानव मूर्तियों के लिए लाल रंग का प्रयोग, शिकारियों के लिए और हरे रंग का उपयोग अधिकतर नर्तकियों के लिए किया जाता था।

मध्यपाषाण काल (10,000 – 4000 ई.पू.) में मुख्यतः लाल रंग का प्रयोग देखा गया। उच्च पुरापाषाण काल की तुलना में इस काल में चित्रों का आकार सबसे छोटा हो गया। इन चित्रों में चित्रित सबसे आम दृश्य समूह शिकार के हैं और कई अन्य चित्रों में चराई गतिविधि तथा सवारी के दृश्य दर्शाए गए हैं।

ताम्र–पाषाण काल (3500 ई.पू. – 1000 ई.पू.) में हरे और पीले रंग का उपयोग करने वाली पेंटिंग्स युद्ध के दृश्यों को चित्रित करने पर केंद्रित हैं। ताम्र–पाषाण काल की कुछ पेंटिंग्स छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले में रामगढ़ पहाड़ियों में जोगीमारा गुफाओं में देखी जा सकती हैं। इन्हें लगभग 1000 ई.पू. निर्मित किया गया माना जाता है।

प्राकृतिक खनिज जैसे हेमेटाइट (लाल/गेरू), चूना पत्थर (सफेद), और कोयला या काजल (काला) प्रमुख रंग थे। इनके अलावा पीला, हरा और बैंगनी रंग भी खनिजों से तैयार किए जाते थे। सरकंडे (**Reed**), बाँस की छड़ें, जानवरों के बाल, या उंगलियों का उपयोग सीधे रंग लगाने के लिए किया जाता था। गुफाओं की खुरदरी दीवारें, पत्थर की शिलाएं, मिट्टी के बर्तन, और बाद के काल में ताड़ के पत्ते (ताल पत्र), चर्म पत्र (**Parchment**) तथा पपाइरस का उपयोग किया जाता था। चित्रों को चिरस्थाई बनाने के लिए रसायनों (जैसे चूना) से पलस्तर, और पत्थर को घिसकर चिकना करने जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता था।

- **मध्यकाल (Middle Ages):**

मध्यकाल (लगभग 5वीं–16वीं शताब्दी) में चित्रण सामग्री में मुख्य रूप से ताड़ के पत्ते, चर्मपत्र (**Animal Skin**) और बाद में कागज का उपयोग किया गया। कलाकार प्राकृतिक रंगों, खनिज पिगमेंट (जैसे– लाजवर्द), और सोने–चाँदी के वर्क का उपयोग करते थे। ब्रश पशुओं के बालों से बनाए जाते थे, और चित्र भित्ति (दीवार) या पांडुलिपियों पर धार्मिक विषयों को दर्शाते थे। चीन और जापान में लकड़ी के साँचों (**Wood block**) द्वारा छपाई शुरू हुई। इस दौरान प्राकृतिक पिगमेंट (**Mineral and Plant&based)** का इस्तेमाल किया गया था।

DO NOT COPY

मध्यकालीन कला कई माध्यमों में निर्मित की गई थी, और मूर्तिकला, अलंकृत पांडुलिपियाँ, रंगीन कांच, धातु शिल्प और मोज़ाइक में बड़ी संख्या में कृतियाँ बची हुई हैं, जिनमें सभी उत्तरजीविता दर भित्ति, कीमती धातुओं या वस्त्रों, जिनमें टेपेस्ट्री भी शामिल है, जैसे अन्य माध्यमों की तुलना में अधिक रही है। विशेष रूप से इस काल के आरंभिक भाग में तथाकथित "लघु कलाएं" या सजावटी कलाएं, जैसे धातु शिल्प, हाथी–दांत की नक्काशी, कांच के तामचीनी और कीमती धातुओं का उपयोग करके बनाई गई कृतियों को संभवतः चित्रकला या स्मारकीय मूर्तिकला की तुलना में अधिक महत्व दिया जाता था। यह काल शास्त्रीय कला के कौशल और मूल्यों की स्व – अनुभूत पुनर्जागरण (पुनर्प्राप्ति) के साथ समाप्त हुआ और मध्य युग की कलात्मक विरासत को कुछ शताब्दियों तक उपेक्षित किया गया। 19वीं शताब्दी में रुचि और समझ के पुनरुद्धार के बाद से इसे एक विशाल उपलब्धि का काल माना जाता है जो बाद की पश्चिमी कला के विकास का आधार है।

- **15वीं – 18वीं सदीः :–**

15वीं सदी के दौरान लकड़ी के सांचे के चित्रणों द्वारा चित्रित पुस्तकों उपलब्ध थी। 17वीं और 18वीं सदी के दौरान उत्कीर्णन और नक्काशी चित्रों के पुनर्निर्माण के लिए उपयोग की जाने वाली प्रमुख प्रक्रियाएं थीं। 18वीं सदी के अंत में, पाषाण लेखन द्वारा बेहतर चित्रण पुनर्निर्मित किए गए। इस युग के सबसे उल्लेखनीय चित्रकार विलियम ब्लेक थे, जिन्होंने अपने चित्रणों को राहत नक्काशी के माध्यम से प्रस्तुत किया। 15वीं से 18वीं सदी के दौरान मुख्य रूप से पारंपरिक और प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग किया जाता था। इनमें खनिज, वनस्पति, और कीड़ों से बने प्राकृतिक रंग, कागज, ताड़ के पत्ते, कपड़े (जैसे पटचित्र) और सूक्ष्म ब्रश (बालों से निर्मित) प्रमुख थे, जिनका उपयोग विशेष रूप से मुगल और राजस्थानी चित्रकला शैलियों में किया जाता था।

ब्रश बहुत ही महीन थे, जो अक्सर गिलहरी या अन्य जानवरों के बालों से बनाए जाते थे, का उपयोग सूक्ष्म विवरणों के लिए उपयोग किए जाते थे। रंगों को चिपकाने के लिए गोंद या लेप का प्रयोग किया जाता था। चित्रों के लिए रंग बनाने के लिए खनिजों, कीमती पत्थरों (जैसे लाजवर्द), पौधों, फूलों और कीड़ों का उपयोग किया जाता था। चित्रों के लिए कागज (विशेषकर मुगल काल में), ताड़ के पत्ते और कपड़े (जैसे पटचित्र) का उपयोग किया जाता था। यह काल मुख्य रूप से लघु चित्रों

DO NOT COPY

(**Miniature Paintings**) के लिए जाना जाता है, जिनमें बारीक विवरण और टिकाऊ प्राकृतिक रंगों की प्रधानता थी।

➢ आधुनिक युग (19वीं – 20वीं सदी) :–

आधुनिक काल में चित्रकला अर्ध–पाश्चात्य स्थानीय शैलियों पर आधारित थी, जिसका ब्रिटिश निवासियों और ब्रिटिश आगन्तुकों ने संरक्षण प्रदान किया। इन चित्रों की विषयवस्तु भारतीय सामाजिक जीवन, लोकप्रिय पर्व और मुगलकालीन दरबारों पर आधारित होती थी। इन चित्रों में परिष्कृत मुगल परंपराओं को प्रतिबिंबित किया गया था। इस काल की सर्वोत्तम चित्रकला के कुछ उदाहरण हैं – लेडी इम्पे के लिए शेख जियाउद्दीन के पक्षी अध्ययन, विलियम फ्रेजर और कर्नल स्किनर के लिए गुलाम अली खाँ के प्रतिचित्र आदि।

धीरे–धीरे अंग्रेजी पढ़े–लिखे शहरी मध्यवर्गीय लोगों की सोच में भारी परिवर्तन आने लगा और यह परिवर्तन कलाकारों की अभिव्यक्ति में दिखाई देने लगा। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बढ़ती जागरूकता, राष्ट्रीयता की भावना और एक राष्ट्रीय पहचान की तीव्र इच्छा ने ऐसी कलाकृतियों को जन्म दिया जो पूर्ववर्ती कला की परंपराओं से कुछ अलग थीं। आधुनिक भारतीय चित्रकला के रूप में जिन कलाकारों ने अपनी पहचान बनाई वे हैं – तैयब मेहता, सतीश गुजराल, कृष्ण खन्ना, मनजीत बावा, के. जी. सुब्रह्मण्यम, रामकुमार, अंजलि इला मेनन, अकबर पद्मसी, जतिनदास, जहांगीर सबावाला एवं ए. रामचन्द्रन आदि।

आधुनिक युग में चित्रण (**Illustration**) के लिए पारंपरिक और डिजिटल दोनों प्रकार की सामग्री का उपयोग किया जा रहा है। इसमें मुख्य रूप से पेंसिल, कोयला (**Charcoal**), जलरंग (**Water colour**), ऐक्रिलिक रंग, कलम और स्याही का प्रयोग प्रमुख रहा है।

➢ डिजिटल युग :–

आज चित्रण केवल रंगों, कैनवास, पेंसिल, कोयला (**Charcoal**), जलरंग, ऐक्रिलिक रंग, तेल रंग (**Oil colour**) आदि माध्यमों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि अब डिजिटल टैबलेट (जैसे **Wacom/ iPad**), स्टाइलस और सॉफ्टवेयर (जैसे **Adobe Illustrator/ Photoshop**) के साथ डिजिटल माध्यमों का भी प्रयोग प्रमुखता से हो रहा है। वर्तमान में चित्रकारी के लिए सिंटिक (**Cintiq**), वैकॉम

DO NOT COPY

(**Wacom**), आईपैड (**iPad**) और सरफेस प्रो पैड (**Surface Pro Pad**) जैसे डिजिटल टैबलेट्स का उपयोग किया जाता है। यद्यपि कलाकार अभी भी पेंसिल, कोयला, स्याही, कलम और ब्रश का उपयोग भी करते हैं, और जलरंग, ऐक्रिलिक (**Acrylic**) और तेल रंग (**Oil colour**) का उपयोग चित्रण के लिए व्यापक रूप से हो रहा है। आधुनिक कलाकार पत्थर, सिरेमिक, कांच, गोले और मोतियों का उपयोग करके मोजेक चित्रण (**Mosaic Illustration**) भी करते हैं। ये सामग्रियां डिजिटल और पारंपरिक कला के मिश्रण से चित्रों में एक अनोखी चमक और अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं।

- प्रारंभिक चित्रकारी के तरीके :–

पेंटिंग सामग्री और तकनीकों के इतिहास को समझने के लिए कुछ बुनियादी शब्दों को जानना चाहिए। पेंट पिगमेंट, बारीक जमीन रासायनिक या खनिज पाउडर और एक बांधने की मशीन, एक चिपचिपा या तरल पदार्थ से बने होते हैं जो पेंट को फैलाने की अनुमति देता है। कई लोकप्रिय रंजक सदियों तक अपरिवर्तित रहे हैं और आज भी उपयोग किए जाते हैं, लेकिन समय के साथ बांध बदल गए, कलाकारों को अपील करने वाले विभिन्न गुण प्रदान किए। एक अन्य विकसित तत्व समर्थन था, या जिस सतह पर पेंटिंग बनाई गई थी, सामान्य समर्थन में लकड़ी का पैनल, फैला हुआ कैनवास और कागज शामिल हैं।

प्रारंभिक चित्रकारी के तरीकों में अवलोकन (**Observation**), कल्पना, स्केचिंग और प्राकृतिक रंगों (जैसे गेरू, चूना) का उपयोग शामिल है। यह तकनीकें कल्पनाशीलता को जगाती हैं और मानसिक शांति प्रदान करती हैं। आप लाइव ड्रॉइंग / आकृतियों और सीमित रंगों के पैलेट के साथ शुरुआत कर सकते हैं। इसके अलावा, अंडरपेंटिंग (आधार परत) और परतदार चित्रकारी का भी उपयोग किया जा सकता है। अपने आस–पास की वस्तुओं, दृश्यों या लोगों को देखकर रेखाचित्र बनाना यह अवलोकन कौशल को बढ़ाता है, जिसमें व्यक्ति रेखाओं, आकृतियों और हल्की शेडिंग का अभ्यास करता है। रेखाचित्र में केवल रेखाओं की सहायता से चित्र बनाया जाता है। इसमें मोटी–पतली रेखाओं से वस्तु का आकार और रूप दिखाया जाता है। आकृतियों के माध्यम से चित्र बनाने के लिए पहले गोल, चौकोर, त्रिकोण जैसी साधारण आकृतियाँ बनाकर उनसे पूरा चित्र तैयार किया जाता है, जैसे – मानव आकृति, पशु या वस्तु आदि के चित्र तैयार किए जा सकते हैं।

DO NOT COPY

स्केचिंग में हल्की और तेज रेखाओं से जल्दी–जल्दी चित्र का प्रारूप बनाया जाता है। बाद में उसे साफ और स्पष्ट किया जाता है। चित्र में प्रकाश और छाया दिखाने के लिए पेंसिल से हल्का और गहरा प्रभाव बनाया जाता है, जिसे शेडिंग (***Shading***) कहते हैं। इससे चित्र में गहराई और वास्तविकता आती है। हैचिंग और क्रॉस हैचिंग में समानांतर रेखाओं या एक–दूसरे को काटती रेखाओं से छाया और बनावट बनाई जाती है। इसी प्रकार स्टिपलिंग भी एक प्रकार की विधि है जिसमें छोटे–छोटे बिंदुओं से चित्र में छाया और टेक्सचर (***Texture***) बनाया जाता है। सतत रेखाचित्र में चित्र बनाते समय ड्राइंग उपकरण को पृष्ठ से हटाया नहीं जाता। इससे धाराप्रवाह, त्वरित और आत्मविश्वासपूर्ण चित्र बनते हैं।

चित्रकला, रंग का उपयोग करने की एक प्रक्रिया है, जो अक्सर रंगीन और वर्णन पदार्थ होता है। एक चित्रकार एक निश्चित क्रम में सतह पर रंग फैलाता है या लगाता है, फिर यह सूख जाता है, जिससे सतह पर एक सजावटी या कार्यात्मक परत बन जाती है। कला के रूप में चित्रकला, रंगों के सुनियोजित उपयोग द्वारा विचारों, भावनाओं और छवियों की अभिव्यक्ति है। चित्रकला कई अलग–अलग तरीकों से कला का निर्माण कर सकती है, जिसमें छवियों का चित्रण और रंगों का रणनीतिक उपयोग शामिल है। दुनियाभर के कलाकार और चित्रकार विभिन्न प्रकार की चित्रकला तकनीकों का उपयोग करते हैं। विशिष्ट तकनीक आवश्यक रंग के प्रकार पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, तेल चित्रकार अक्सर सतह पर रंग लगाने के लिए कठोर ब्रश का उपयोग करते हैं, लेकिन वे पैलेट नाइफ, स्पंज और एयर ब्रश जैसे अन्य उपकरणों का भी प्रयोग करना चुन सकते हैं।

➢ चित्रण सामग्री के प्रभाव :

चित्रण सामग्री दृश्यों के माध्यम से जानकारी को स्पष्ट, आकर्षक और प्रभावशाली बनाती है। यह जटिल विचारों को समझने में आसान बनाती है, भावनाओं को जगाती है, और विज्ञापनों में ब्रांडिंग व स्मृति को बढ़ाती है। पोस्टर, विज्ञापन, फिल्मों व पुस्तकों के माध्यम से संस्कृति को प्रदर्शित करती है। उपयोग की जाने वाली सामग्री (कागज, स्याही, डिजिटल टूल) कलाकृति के स्थायित्व और पर्यावरणीय प्रभाव को भी प्रभावित करती है। चित्रण या चित्र जटिल या तकनीकी जानकारी को आसानी से समझने में मदद करते हैं, जिससे पाठक या दर्शक उसे जल्दी समझ सके। यह सारी जानकारी को दृश्य रूप में प्रस्तुत कर उसे याद रखने में आसान और अधिक आकर्षक बनाती है। चित्र सीधे भावनाओं को प्रभावित करते हैं। वे एक कहानी या संदेश को शब्दों से ज्यादा प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत कर सकते

DO NOT COPY

हैं, जिससे दर्शकों का जुड़ाव गहरा होता है। चित्र सांस्कृतिक प्रतीकों और शैलियों के माध्यम से भावनाओं को व्यक्त करते हैं। आकर्षक चित्र लोगों का ध्यान खींचते हैं (जैसे विज्ञापनों में) और जानकारी को याद रखने में मदद करते हैं। चित्रण भारतीय या किसी भी संस्कृति के विभिन्न पहलुओं जैसे – परंपरा, वेशभूषा और कला को जींवत रूप में सामने लाते हैं। रेखांकन, छायांकन और रंगों का उपयोग करके द्विआयामी (2डी) चित्र को त्रिआयामी (3डी) आभास दिया जाता है, जिससे वे वास्तविक लगते हैं। कागज, स्याही और रासायनिक सॉल्वेंट्स का उपयोग करने वाली पारंपरिक ग्राफिक सामग्री का पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। चित्रण सामग्री न केवल जानकारी को आसान बनाती है, बल्कि इसे अधिक कलात्मक और यादगार भी बनाती है।

- **चित्रण के तत्व :**

चित्रण के मूल तत्व वे आधारभूत घटक हैं जिनसे कोई चित्र बनता है। प्रमुख तत्व रेखा, रूप, रंग, मान (***Value***), पोत (***Texture***), अंतराल (***Space***) और आकार हैं। ये तत्व चित्र की संरचना, गहराई, भावना और जीवंतता प्रदान करते हैं। सही संयोजन से चित्र आकर्षक और प्रभावी बनता है। रेखा कला का मूल आधार है, जो चित्र में सीमा, दिशा और गति (गतिशील, स्थिर) को दर्शाती है। रूप त्रिआयामी (3डी) आकार है, जो लंबाई, चौड़ाई और गहराई (आयतन) दिखाता है। रंग चित्र में मनोदशा (***Mood***) और भावनाओं को व्यक्त करते हैं, जो दृश्य प्रभाव को बढ़ाते हैं। रंग, जो स्वर (***Hue***), संतृप्ति (***Saturation***) और मूल्य (***Value***) से बनता है, और किसी सतह पर फैलता है। चित्रकला का सार है। ठीक वैसे ही जैसे स्वर (***Pitch***) और लय (***Rhythm***) संगीत का सार हैं। रंग आंतरिक व्यक्तित्व होता है, लेकिन इसके प्रभाव मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी होते हैं। हालांकि ये एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न हो सकते हैं। पश्चिम में काला रंग शोक से जुड़ा है, जबकि पूर्व में सफेद रंग शोक से जुड़ा है। कुछ चित्रकारों, सिद्धांतकारों, लेखकों और वैज्ञानिकों, जिनमें गोएथे, कैंडिंस्की और न्यूटन ने अपना रंग सिद्धांत लिखा है। टोन (***Tone***) / मूल्य (***Value***) रंग के हल्केपन या गहरेपन (सफेद से काले के पैमाने) को दर्शाता है, जो प्रकाश और छाया का आभास देता है। पोत (***Texture***) सतह की बनावट यानी खुरदरा या चिकना होने का आभास कराता है, जिससे चित्र प्रभावशाली बनता है। अंतराल (***Space***) चित्र की वह सतह (***Surface***) है जहाँ कलाकार आकृतियों को व्यवस्थित करता है, जिसमें सकारात्मक (सक्रिय) और नकारात्मक स्थान शामिल हैं। आकार (***Shape***) वे द्वि–आयामी (2डी) रूप

DO NOT COPY

होते हैं, जो रेखाओं के मिलने से बनते हैं (जैसे ज्यामितीय या स्वतंत्र)। इन सभी तत्वों को कला के सिद्धांतों (जैसे – संतुलन, लय, एकता) के साथ मिलाकर एक बेहतरीन रचना तैयार की जाती है।

➢ चित्रण के गैर–पारंपरिक तत्व :–

आधुनिक कलाकारों ने चित्रकला के अभ्यास को काफी हद तक विस्तारित किया है, जिसमें उदाहरण के तौर पर कोलाज भी शामिल है, जिसकी शुरुआत क्यूबिज्म से हुई थी, परंतु यह कड़ाई से चित्रकला नहीं है। कुछ आधुनिक चित्रकार बनावट के लिए धातु, प्लास्टिक, रेत, सीमेंट, पुआल, पत्तियां या लकड़ी जैसी विभिन्न सामग्रियों का उपयोग करते हैं। इसके उदाहरण जीन डुबुफेट और एंसलम कीफर की रचनाएं हैं। कलाकारों का एक बढ़ता हुआ समुदाय है जो एडोब फोटोशॉप, कोरल पेंटर और कई अन्य कार्यक्रमों का उपयोग करके डिजिटल कैनवास पर रंग "पेंट" करने के लिए कंप्यूटर का उपयोग करता है। आवश्यकता पड़ने पर इन छवियों को पारंपरिक कैनवास पर प्रिंट किया जा सकता है।

2018 तक, सबसे पुराने ज्ञात चित्रों की आयु लगभग 32,000 साल पुरानी मानी जाती थी, फ्रांस के ग्रोटे–चौवे में। वे लाल गेरू और काले वर्णक का उपयोग करके उत्कीर्ण और चित्रित किए गए हैं, और वे घोड़े, गैंडे, शेर, भैंस, विशाल, सार डिजाइन और संभवतः आंशिक रूप से मानव आकृतियों को दिखाते हैं। गुफा चित्रों की इंडोनेशिया में लुबांग जेरीजी सालेह गुफा में पाया गया था, माना जाता है कि 40,000 साल पुरानी है। हालांकि, पेंटिंग के कार्य का सबसे पहला प्रमाण अर्नहमें लैंड में दो रॉक–शेल्टर में खोजा गया है। उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में, इन साइटों पर सामग्री की सबसे निचली परत में 60,000 वर्ष पुराने अनुमानित गेरू के टुकड़े का उपयोग किया जाता है। पुरातत्वविदों की उत्तर–पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के किम्बरली क्षेत्र में चूना पत्थर के एक आश्रय में संरक्षित रॉक पेंटिंग का एक टुकड़ा भी मिला है, जो 40,000 साल पुराना है।

दुनिया भर में फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, चीन, ऑस्ट्रेलिया, मैक्सिको आदि में गुफा चित्रों के उदाहरण हैं। पश्चिमी संस्कृतियों में तेल चित्रकला और जल रंग चित्रकला शैली में समृद्ध और जटिल परम्पराएं हैं, और विषय रूप से, स्याही और रंगीन जटिल परम्पराओं के साथ, मीडिया की पसंद को प्रबल किया।

➢ सौंदर्यशास्त्र और सिद्धांत :–

DO NOT COPY

सौंदर्यशास्त्र कला और सुंदरता का अध्ययन है। यह अठारहवीं (18वीं) और उन्नीसवीं (19वीं) शताब्दी में दार्शनिकों जैसे – कांट और हेगेल के लिए एक महत्वपूर्ण विषय था। प्लेटो और अरस्तू जैसे शास्त्रीय दार्शनिकों ने भी कला और विशेष रूप से चित्रकला के बारे में सिद्धांत दिए। प्लेटो ने अपने दार्शनिक तंत्र में चित्रकारों (साथ ही मूर्तिकारों) को नजरअंदाज किया। उनका मानना था कि चित्रकला सत्य को चित्रित नहीं कर सकती। यह वास्तविकता की एक प्रतिलिपि (विचारों की दुनिया की एक छाया) है और जूते बनाने और लोहे की ढलाई के समान एक शिल्प मात्र है। लियोनार्डो के समय तक, चित्रकला प्रचीन ग्रीस की तुलना में सत्य का अधिक सटीक प्रतिनिधित्व करने लगी थी। इसके विपरीत, लियोनार्डो दा विंची ने कहा था कि "इतालवीः ला पिट्टुरा ए कोसा मेंटल" ("चित्रकला मन की वस्तु है")। काँट ने सौंदर्य और उदात्तता के बीच अंतर स्पष्ट किया, ऐसे शब्दों में जो स्पष्ट रूप से सौंदर्य को प्राथमिकता देते थे। हालांकि उन्होंने विशेष रूप से चित्रकला का उल्लेख नहीं किया, लेकिन इस अवधारणा को जे. एम. डब्ल्यू. टर्नर और कैस्पर डेविड फ्रेडरिक जैसे चित्रकारों ने अपनाया।

हेगल ने सौंदर्य की सार्वभौमिक अवधारणा प्राप्त करने में विफलता को स्वीकार किया और अपने सौंदर्य संबंधी निबंध में लिखा कि चित्रकला कविता और संगीत के साथ, तीन रोमांटिक कलाओं में से एक है, क्योंकि इसका प्रतीकात्मक और अत्यंत बौद्धिक उद्देश्य है। चित्रकला पर सैद्वांतिक रचनाएं लिखने वाले चित्रकारों में कैंडिंस्की और पॉल क्ली शामिल हैं। अपने निबंध में कैंडिंस्की का मानना है कि चित्रकला का एक आध्यात्मिक मूल्य है, और वे प्राथमिक रंगों को आवश्यक भावनाओं या अवधारणाओं से जोड़ते हैं, ऐसा कुछ जो गोएथे और अन्य लेखकों ने पहले ही करने का प्रयास किया था।

सौंदर्यशास्त्र, सौंदर्य–मीमांसा, या सौंदर्य का सिद्धांत, दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जो सुंदरता, कला और स्वाद के अनुभव के स्वभाव के अध्ययन तथा उनके सैद्धांतिक समीक्षाओं से संबंधित है। सौंदर्यशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें कलात्मक कृतियों, रचना आदि से अभिव्यक्त होने वाले अथवा उसमें निहित रहने वाले सौंदर्य का तात्विक और मार्मिक विवेचन होता है। यह सौंदर्य–परक मूल्यों पर विचार है जो विवेक, रस की परीक्षा (***Judgement of Taste***) में अभिव्यक्त होता है। इसे कलादर्शन शास्त्र के नाम से भी जानते हैं। हालांकि कुछ दार्शनिकों का मानना है कि इसमें कुछ भिन्नता है। किसी वस्तु को देखकर हमारे मन में जो आनंददायक अनुभूति होती है, उसके स्वभाव और स्वरूप का विवेचन तथा

DO NOT COPY

जीवन का अन्यान्य (***Other side of life***) अनुभवों के साथ उसका समन्वय स्थापित करना इसका मुख्य उद्देश्य होता है।

चित्रकला में सौंदर्यशास्त्र (***Aesthetics***) दृश्य, तत्वों जैसे – रेखा, रंग, रूप और बनावट के माध्यम से प्रभावशाली कलाकृति रचने का दर्शन है। यह कलाकृति में भावनाओं का संतुलन और अर्थ को गहराई देता है। भारतीय परंपरा में रस–सिद्धांत (भावनाओं का अनुभव) और षडंग (छह अंग) प्रमुख सिद्धांत हैं, जो कला को आध्यात्मिक और भावनात्मक अनुभव से जोड़ते हैं। चित्रकला में सौंदर्यशास्त्र का अर्थ केवल सुंदर वस्तु बनाना नहीं है, बल्कि यह दर्शक को एक गहरे दार्शनिक और संवेदनात्मक अनुभव (अनुभूति) से जोड़ता है।

1890 में, पेरिस में चित्रकार मॉरिस डेनिस ने प्रसिद्ध रूप से कहा – "याद रखें कि एक चित्र – युद्ध के दौड़, नग्न महिला या किसी कहानी से पहले अनिवार्य रूप से एक सपाट सतह है, जो एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित रंगों से ढकी होती है।" इस प्रकार, चित्रकला में 20वीं शताब्दी के कई विकास जैसे कि घनवाद, बाहरी दुनिया– प्रकृति के बजाय चित्रकला के साधनों पर प्रतिबिंब थे, जो पहले इसका मुख्य विषय था। चित्रकार और लेखक जूलियन बेल ने चित्रकला के बारे में चिंतन में हाल ही में योगदान दिया है। अपनी पुस्तक "व्हाट इज पेंटिंग" में बेल इतिहास के माध्यम से इस धारणा के विकास पर चर्चा करते हैं कि चित्र भावनाओं और विचारों को व्यक्त कर सकते हैं। "मिरर ऑफ द वर्ल्ड " में बेल लिखते हैं –

"कला का कार्य आपका ध्यान आकर्षित करने और उसे स्थिर रखने का प्रयास करता है, कला का इतिहास इसे आगे बढ़ाता है, कल्पना के घरों के माध्यम से एक राजमार्ग को बुलडोज करता है।"

DO NOT COPY

8. Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Aesthetics ⇒ 4:25 pm, 20 March 2026

द्वितीय अध्याय

- चित्रण सामग्री के विभिन्न प्रकार

चित्रण सामग्री के विभिन्न प्रकार

चित्रण सामग्री (**Art Materials**) वे उपकरण और साधन हैं जिनका उपयोग कला कृतियाँ बनाने के लिए किया जाता है। मुख्य प्रकारों में कैनवास /कागज (सतह), रंग (तेल, एक्रिलिक, जलरंग), ब्रश, पेंसिल/चारकोल (रेखांकन के लिए), पैलेट (रंग मिलाने के लिए), और चित्रफलक (ईजल) शामिल हैं। ये सामग्रियाँ चित्र के माध्यम, बनावट और शैली को निर्धारित करती हैं।

- **पेंसिल (Pencil):**

एक पेंसिल एक लेखन या चित्रण का उपकरण है जिसमें एक ठोस रंग द्रव्य कोर होता है जो एक सुरक्षात्मक आवरण में होता है, जो कोर टूटने के जोखिम को कम करता है। पेंसिल चित्रकार की रेखा खींचने के लिए सर्वसुलभ आवश्यक सामग्री है। पेंसिलें भौतिक घर्षण द्वारा निशान बनाती है, जिससे ठोस पदार्थ की एक लकीर बनाती है जो कागज या किसी अन्य सतह पर चिपक जाती है। यह पेन से भिन्न होती है, जो तरल या जेल स्याही को सतह पर फैलाती है।

पेंसिल के आविष्कार के पूर्व लोग शीशे की पतली सलाई से कागज आदि पर रेखाएँ खींचते थे, लेकिन जब से पेंसिल का आविष्कार हुआ तभी से इसका प्रचलन सामान्य हो गया। पेंसिल के उस भाग को लेड ही कहा जाता है, परंतु वह लेड नहीं है। 1662 में पहली ग्रेफाइट पेंसिल बनी। इंग्लैंड में 1761 ई. में फैबर ने पेंसिल कम्पनी स्थापित की।

पेंसिल का लेड ग्रेफाइट (सूरमा) नामक मुलायम पत्थर होता है। ग्रेफाइट को बारीक पीसकर उसमें उचित मात्रा में मिट्टी मिलाकर पतली बत्ती बनाते हैं। इसके बाद उसको पकाया जाता है। पकने के बाद उसे लकड़ियों के ढ़ाचे के अंदर रखा जाता है। लकड़ी क ढ़ाचा को दो भागों में विभक्त होता है। जिनमें लेड की बत्ती रखकर चिपकाई जाती है। लेड का ग्रेड दो प्रकार का होता हैः

1 कठोर

2 मुलायम

बीच का ग्रेड **HB** होता है। **H** कठोरता का द्योतक होता है। **H** की ओर जाने वाला (**H, 2H, 3H, 4H, 5H**) कठोर अथवा कड़ा होता है।

B की ओर जाने वाला मुलायम व क्रमशः अधिक काला होता है (**B, 2B, 3B, 4B, 5B, 6B**) इत्यादि। **HB** पेंसिल बीच की होती है, अतः ये न अधिक कठोर होती है न अधिक मुलायम। प्रारंभिक रेखांकन के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। पेंसिल का ग्रेड ग्रेफाइट में जितना अधिक मिट्टी का मिश्रण किया जाता है वह उतना ही कड़ा हल्का लेड बनता है। जितना कम मिट्टी का मिश्रण किया जाए वह उतना ही काला व मुलायम होता है। मिट्टी मिलाना इसलिए आवश्यक है क्योंकि ग्रेफाइट को

DO NOT COPY

9. चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 1, 2

बत्ती के रूप में खड़ा किया जा सके, ग्रेफाइट का भुसभुसापन या धूल की तरह बिखरने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। मिट्टी चिपकने के माध्यम का भी कार्य करती है।

सामान्यतः हल्की व कड़ी पेंसिल '**6H**' तक की जा जाती है तथा काली व मुलायम पेंसिल '**10B**' तक की जा सकती है। किसी भी पेंसिल की लकड़ी उसकी गुणवत्ता का निर्धारण करती है। पेंसिल का लेड जितना बढ़िया क्यों न हो, लकड़ी खराब होने पर वह कष्टदायक व अनुपयोगी होता है। अच्छी कम्पनियों की पेंसिलें लेड व लकड़ी दोनों दृष्टि से उत्तम होती हैं। खराब लकड़ियों से बनाई हुई पेंसिलें जल्दी ही टूटती हैं, कुछ बनाने समय टूट जाती हैं व कुछ छीलते समय टूट जाती हैं। पेंसिल छीलते समय आसानी से बिना रेशा छोड़े एक झटके में छीलने में लकड़ी की परत उतार देती है तथा लेड पर जोर नहीं पड़ता तो वह उत्तम पेंसिल होती है। लकड़ी रेशेदार मुलायम होनी चाहिए, जिससे छीलने में आसानी हो। इसके लिए अमेरिकी रेसीदार नामक वृक्ष की लकड़ी सर्वोत्तम होती है। भारतीय गंभार भी श्रेष्ठ होता है। पेंसिल का आम आवरण आमतौर पर षट्भुजाकार भी होता है, लेकिन कभी–कभी बेलनाकार या त्रिकोणाकार भी होता है और यह लेड से स्थाई रूप से जुड़ा होता है। आवरण लकड़ी के अलावा प्लास्टिक और कागज जैसी सामग्रियों से भी हो सकते हैं।

यांत्रिक पेंसिलों के आवरण अधिक जटिल होते हैं और लेड (कोर) से जुड़े नहीं होते, इसके बजाय इनमें अलग, गतिशील पिगमेंट लेड (कोर) होते हैं जिन्हें आवश्यकता अनुसार (आवरण पर बढ़ाया या घटाया जा सकता है।) इन आवरणों में पिछले लेड (आमतौर पर ग्रेफाइट) के खत्म होने पर नए लेड (कोर) भरे जा सकते हैं।

- इतिहास :

1. ऊंट के बाल पेंसिल : –

पेंसिल, पुराने फ्रांसीसी पिनसेल (**Pinel**), से लैटिन पेनिसिलस (**Penicillus**) से "छोटी पूंछ" (पेंटिंग देखें – पिनसेलस) मूल रूप से ऊंट के बालों से बने कलाकार के महीन ब्रश को संदर्भित करता है, जिसका उपयोग आधुनिक सीसा या चॉक पेंसिल से पहले लिखने के लिए भी किया जाता था।

हालांकि आदर्श पेंसिल एक कलाकार का ब्रश था, स्टाइलस, पपाइरस या मोम की गोलियों में खरोंच करने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली एक पतली धातु की छड़ी, जो पपीरस या मोम की गोलियों में खरोंच के लिए इस्तेमाल की जाती थी। रोमनों और ताड़ के पत्तों की पांडुलिपियों के लिए बड़े पैमाने पर इस्तेमाल की जाती थी।

2. ग्रेफाइट जमाव की खोज :–

रेखाचित्र बनाने की तकनीक के रूप में, पेंसिल का सबसे निकटतम पूर्ववर्ती सिल्वरपॉइंट या लेडपॉइंट था, जब तक कि 1565 में (कुछ स्रोत 1500 की शुरुआत भी कहते हैं), इंग्लैंड के कम्ब्रिया में

DO NOT COPY

बेरोडेल पैरिश के सीथवेट गांव से ग्रे नॉट्स तक जाने वाले मार्ग पर ग्रेफाइट का एक बड़ा भंडार खोजा गया। ग्रेफाइट का यह विशेष भंडार अत्यंत शुद्ध और ठोस था, और इसे आसानी से छड़ियों में काटा जा सकता था। यह भंडार इस ठोस रूप में पाए गए ग्रेफाइट का एकमात्र बड़ा पैमाने पर बनाया हुआ है। उस समय रसायन विज्ञान अपने प्रारंभिक चरण में था, और इस पदार्थ को सीसे का एक रूप माना जाता था। परिणामस्वरूप, इसे प्लंबैगो (लैटिन में "सीसा अयस्क" कहा गया।

क्योंकि पेंसिल के लेड (कोर) को अभी भी "सीसा" या "लेड" कहा जाता है, इसलिए कई लोगों को यह गलतफहमी है कि पेंसिल में मौजूद ग्रेफाइट सीसा है, और पेंसिल के काले लेड (कोर) को अभी भी सीसा ही कहा जाता है, भले ही उसमें कभी सीसा तत्व न रहा हो। जर्मन में (**Bleistif**), आयरिश में (**Peann Luaidhe**), अरबी और कुछ अन्य भाषाओं में पेंसिल के लिए शब्द का शाब्दिक अर्थ सीसा कलम है।

ग्रेफाइट की महत्व जल्द ही अपार रूप से सिद्ध हो गया, क्योंकि इसका उपयोग तोप के गोलों के सांचों में परत चढ़ाने के लिए किया जा सकता था। खानों को राजशाही ने अपने कब्जे में ले लिया और उनकी सुरक्षा की। जब ग्रेफाइट का पर्याप्त भंडारण हो गया, तो चोरी रोकने के लिए खानों में पानी भर दिया गया ताकि जरूरत पड़ने पर और ग्रेफाइट प्राप्त किया जा सके।

पेंसिलों के लिए ग्रेफाइट की उपयोगिता का भी पता चला, लेकिन शुरुआती रूप से इसे इंग्लैंड से तस्करी करके लाना पड़ता था। क्योंकि ग्रेफाइट नरम होता है, इसलिए इसे किसी प्रकार के आवरण की जरूरत होती है। स्थिरता के लिए ग्रेफाइट की छड़ियों को शुरुआत में धागे या भेड़ की खाल में लपेटा जाता था। 1662 में जर्मनी में ग्रेफाइट पाउडर को पुनर्गठित करने की विधि की खोज होने तक इंग्लैंड पेंसिल उत्पादन पर एकाधिकार का आनंद लेता रहा। हालांकि विशेष रूप से चौकोर अंग्रेजी पेंसिलें 1860 के दशक तक प्राकृतिक ग्रेफाइट से काटी गई छड़ियों से बनी रहती थीं। इसके अलावा ग्रेफाइट की मूल खोज के पास स्थित केस्विक शहर में आज भी पेंसिलें बनाई जाती हैं, और कारखानों में ही डेरवेंट पेंसिल संग्रहालय भी स्थित है। "ग्रेफाइट लेखन उपकरण" का अर्थ स्पष्ट रूप से 16वीं शताब्दी के अंत में विकसित हुआ।

3. लकड़ी के आवरण का प्रयोग : –

लगभग 1560 में, एक इतालवी दंपति, सिमोनियो और लिंडियाना बर्नाकोटो ने आधुनिक लकड़ी के आवरण वाली बढ़ईगीरी पेंसिल के लिए संभवतः पहले ब्लूप्रिंट बनाए। उनका संस्करण एक सपाट, अंडाकार, अधिक कॉम्पैक्ट प्रकार की पेंसिल थी। उनकी अवधारणा में जुनिपर लकड़ी की एक छड़ी को खोखला करना शामिल था। इसके तुरंत बाद, एक बेहतर तकनीक की खोज की गई, लकड़ी के दो हिस्सों को तराशा गया, एक ग्रेफाइट स्टिक डाली गई, और फिर दोनों हिस्सों को एक साथ चिपका दिया गया– अनिवार्य रूप से वही विधि जो आज भी उपयोग में है।

DO NOT COPY

पेंसिल में लकड़ी का आवरण (**asing**) मुख्य रूप से अंदर के नाजुक ग्रेफाइट (लेड) को सुरक्षित रखता है, उसे पकड़ने में आसान बनाता है और शार्प (नोकदार) करने के लिए किया जाता है। आमतौर पर देवदार (**Cedar**) जैसी नरम लकड़ी का उपयोग किया जाता है। नरम लकड़ी ग्रेफाइट को टूटने से बचाती है। लकड़ी के आवरण के कारण पेंसिल अधिक टिकाऊ बनती है और लंबे समय तक इस्तेमाल की जा सकती है। इसके अलावा, यह पर्यावरण अनुकूल (**eco-friendly**) होती है क्योंकि यह एक प्राकृतिक और बायोडिग्रेडेबल सामग्री है।

4. ग्रेफाइट पाउडर, ग्रेफाइट और मिट्टी का प्रयोग :–

पाउडर ग्रेफाइट से ग्रेफाइट स्टिक बनाने का पहला प्रयास 1662 में जर्मनी के नूर्नबर्ग में किया गया था। इसमें ग्रेफाइट, सल्फर और एंटिमनी के मिश्रण का उपयोग किया गया था।

नेपोलियन युद्धों के दौरान फ्रांस की अंग्रेजी और जर्मन पेंसिल उपलब्ध नहीं थीं, ग्रेट ब्रिटेन द्वारा लगाए गए नौसैनिक नाकाबंदी के कारण फ्रांस ब्रिटिश ग्रे नॉट्स खानों से शुद्ध ग्रेफाइट की छड़ों का आयात करने में असमर्थ था – जो दुनिया में एकमात्र स्रोत था। फ्रांस घटिया जर्मन ग्रेफाइट पेंसिल विकल्प का भी आयात करने में असमर्थ था। नेपोलियन की सेना के एक अधिकारी के प्रयासों से यह स्थिति बदली। 1795 में, निकोलस–जैक्स कॉन्टे ने पिसे हुए ग्रेफाइट को मिट्टी के साथ मिलाकर छड़ें बनाने की विधि का पता लगाया, जिन्हें बाद में भट्टी में पकाया जाता था। ग्रेफाइट और मिट्टी के अनुपात को बदलकर ग्रेफाइट की छड़ की कठोरता को भी बदला जा सकता था। निर्माण की यह विधि, जिसकी खोज पहले 1790 में वियना की कोह–आई–नूर कंपनी के संस्थापक ऑस्ट्रियाई जोसेफ हार्डटमुथ ने की थी, आज भी उपयोग में है। 1802 में, कोह–आई–नूर ने ग्रेफाइट और मिट्टी से ग्रेफाइट लीड के उत्पादन का पेटेंट कराया।

इंग्लैंड में, पेंसिलें अभी भी पूरे कटे हुए ग्रेफाइट से बनाई जाती थीं। हेनरी बेसमर का पहला सफल आविष्कार (1838) ग्रेफाइट पाउडर को ठोस ग्रेफाइट में संपीड़ित करने की एक विधि थी, जिससे बर्बाद हो जाने वाले कचरे का पुनः उपयोग संभव हो गया।

5. इरेजर लगाव (**Eraser attachment**) :–

आजकल इस्तेमाल होने वाले रबर के इरेजर से पहले, कागज से सीसे या कोयले के निशान मिटाने के लिए मोम की गोलियों का इस्तेमाल किया जाता था। स्याही से लिखे कागज या पपाइरस दस्तावेजों से छोटी–मोटी गलतियों मिटाने के लिए बालुआ पत्थर या प्यूमिस जैसे खुरदरे पत्थरों के टुकड़ों का इस्तेमाल किया जाता था। बिना पड़ी वाली रोटी का इस्तेमाल किया जाता था। मेइजी काल (1868–1912) के टोक्यो के एक छात्र ने कहाः "रबर के इरेजर की जगह रोटी के टुकड़ों का इस्तेमाल

DO NOT COPY

किया जाता था, और वे हमें बिना किसी संकोच के देते थे। इसलिए हम इसे लेने और थोड़ा–बहुत खाकर अपनी भूख मिटाने में कोई बुराई नहीं समझते थे।"

सन 1770 में, अंग्रेज ऑष्टिशियन और वैज्ञानिक उपकरण निर्माता एडवर्ड नैर्न ने कथित तौर पर एक अविष्कार प्रतियोगिता के लिए पहला व्यापक रूप से विपणन किया जाने वाला रबर इरेजर विकसित किया। उस समय तक इस सामग्री को गम इलास्टिक या इसके फ्रांसीसी नाम 'कौचुक' के नाम से जाना जाता था, जो क्वेशुआ से लिया गया था। नैर्न के अनुसार, उन्होंने अनजाने में ब्रेडक्रम्ब्स के बजाय रबर का टुकड़ा उठा लिया, जिससे रबर के मिटाने के गुणों की खोज हुई और रबर इरेजर बनना शुरू हो गया। 1770 में "रबर" शब्द का प्रयोग रगड़ने के लिए उपयोग की जाने वाली किसी भी वस्तु के लिए सामान्य रूप से किया जाता था – यह शब्द 1770 और 1778 के बीच किसी समय नई सामग्री से जुड़ गया।

हालांकि कच्चा रबर जल्दी खराब हो जाता था। 1839 में चार्ल्स गुडइयर ने वल्कनीकरण की प्रक्रिया की खोज की, जो रबर को टिकाऊ बनाने और उसे स्थिर बनाने की एक विधि थी। वल्कनीकरण के आगमन के साथ ही रबर इरेजर आम हो गए। 30 मार्च 1858 को, संयुक्त राज्य अमेरिका में फिलाडेल्फिया के हायमन लिपमैन को पेंसिल के सिरे पर इरेजर लगाने का पहला पेटेंट प्राप्त हुआ। 1862 में, लिपमैन ने अपना पेटेंट जोसेफ रेकेंडोर्फर को 100,000 डॉलर में बेच दिया, जिन्होंने उल्लंघन के लिए पेंसिल निर्माता फेबर–कैस्टेल पर मुकदमा दायर किया। बाद में (1875) में, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने रेकेंडोर्फर के खिलाफ फैसला सुनाते हुए पेटेंट को अमान्य घोषित कर दिया।

6. पेंसिल एक्सटेंडर (पेंसिल लेंथनर) :–

पेंसिल एक्सटेंडर एक छोटा उपकरण (धातु या लकड़ी से बना) है जो छोटी पेंसिलों के लंबा करने की अनुमति देता है, ताकि उनका उपयोग आसान हो सके। इतिहासकार हेनरी पेट्रोस्की बताते हैं कि पेंसिल के बड़े पैमाने पर उत्पादन के अधिक कुशल साधनों के कारण पेंसिल बदलने की लागत कम हो गई थी, फिर भी लोग कुछ समय तक पेंसिल के बचे हुए हिस्सों का इस्तेमाल करते रहे। जिन लोगों को पेंसिल के बचे हुए हिस्सों का इस्तेमाल करने में असुविधा महसूस होती थी, उनके लिए पेंसिल एक्सटेंडर बेचे जाते थे। ये उपकरण पार्ट–क्रेयॉन की तरह काम करते थे। पेंसिल के बचे हुए हिस्सों को एक्सटेंडर में डालकर उपयोग किया जा सकता है। एक्सटेंडर विशेष रूप से इंजीनियरों और ड्राफ्टर्स के बीच आम थे, जिनकी पसंदीदा पेंसिलें महंगी होती थीं। एक्सटेंडर के इस्तेमाल का एक फायदा यह भी है कि घिसने पर पेंसिल का वजन उल्लेखनीय रूप से नहीं बदलता। कलाकार अपनी रंगीन पेंसिलों का अधिकतम उपयोग करने के लिए एक्सटेंडर का इस्तेमाल करते हैं।

DO NOT COPY

- पेंसिल के प्रकार :–

1. ग्रेफाइट पेंसिल :–

ग्रेफाइट (सीसा) पेंसिल सबसे सामान्य प्रकार की पेंसिल हैं और ये लकड़ी के आवरण में लिपटी होती हैं। ये मिट्टी और ग्रेफाइट के मिश्रण से बनी होती हैं, और इनका रंग हल्के भूरे से लेकर काले तक होता है। इनकी संरचना के कारण उनसे सबसे चिकने स्ट्रोक बनाए जा सकते हैं।

2. ठोस ग्रेफाइट पेंसिल :–

ठोस ग्रेफाइट पेंसिलें ग्रेफाइट और मिट्टी के मिश्रण से बनी ठोस छड़ें होती हैं (जैसा कि एक ग्रेफाइट पेंसिल में पाया जाता है), जिनका व्यास लगभग पेंसिल के बराबर होता है और इन पर केवल एक रैपर या लेबल होता है। इन्हें अक्सर "लकड़ी रहित" पेंसिलें कहा जाता है। इनका उपयोग मुख्य रूप से कलात्मक उद्देश्यों के लिए किया जाता है, क्योंकि आवरण न होने के कारण ये बड़े क्षेत्रों को आसानी से कवर कर सकती हैं, विभिन्न प्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं और अधिक टिकाऊ भी होती हैं, क्योंकि पूरी पेंसिल का उपयोग किया जा सकता है। ये लकड़ी की पेंसिलों के समान ही गहरे रंग में भी उपलब्ध होती हैं।

3. तरल ग्रेफाइट पेंसिल :–

तरल ग्रेफाइट पेंसिलें ऐसी पेंसिलें होती हैं जो पेन की तरह लिखती हैं। इस तकनीक का आविष्कार सबसे पहले 1955 में स्क्रिप्टो और पार्कर पेंस द्वारा किया गया था। स्क्रिन्टो का तरल ग्रेफाइट फॉर्मूला पार्कर के लिक्विड लेड फॉर्मूले से लगभग तीन महीने पहले आया था। पेटेंट विवाद से बचने के लिए, दोनों कंपनियों ने अपने फॉर्मूले साझा करने पर सहमति जताई।

4. चारकोल पेंसिल :–

चारकोल पेंसिलें चारकोल (लकड़ी के कोयले) से बनी होती हैं और ग्रेफाइट पेंसिलों की तुलना में अधिक गहरा काला रंग देती हैं, लेकिन फैल जाती हैं और ग्रेफाइट की तुलना में अधिक खुरदरी होती हैं। डयूओटोन तकनीक के लिए सेपिया–टोन और सफेद पेंसिलें भी उपलब्ध हैं।

5. कार्बन पेंसिल :–

कार्बन पेंसिलें आमतौर पर मिट्टी और दीपक के मिश्रण से बनी होती हैं, लेकिन कभी–कभी इनमें चारकोल या ग्रेफाइट भी मिलाया जाता है। ये ग्रेफाइट पेंसिलों की तुलना में गहरा काला रंग

DO NOT COPY

देती हैं, चारकोल से अधिक चिकनी होती हैं और इनमें धूल और धब्बे भी बहुत कम होते हैं। ये चारकोल के सामान बहुत ही अच्छे तरीके से मिश्रित हो जाती हैं।

6. रंगीन पेंसिलः–

रंगीन पेंसिलें या पेंसिल क्रेयॉन, मोम जैसे कोर वाली होती हैं जिनमें पिगमेंट और अन्य फिलर होते हैं। कई रंगों की विविधता में मिलती हैं। ये ड्राइंग और स्केचिंग के लिए एक बेहतरीन, पोर्टेबल और कम गंदगी फैलाने वाला माध्यम हैं, जिसमें लकड़ी के खोल के अंदर मोम (**Wax**) या तेल (**Oil**) आधारित पिगमेंट कोर होता है। ये मुख्य रूप से वैक्स–बेस्ड (सॉफट और ब्लेंडिंग के लिए बेहतरीन) और ऑयल–बेस्ड (टिकाऊ और स्मज–प्रतिरोधी) प्रकार में आती हैं, जो कलाकारों को शेडिंग, लेयरिंग और विवरण देने की स्वतंत्रता देती हैं। इन्हें बच्चों के कलरिंग बुक से लेकर प्रोफेशनल पोर्ट्रेट (**Portraits**) और लैंडस्केप बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

7. ग्रीस पेंसिल :–

ग्रीस पेंसिल को एक ऐसे अंकन उपकरण के रूप में परिभाषित किया जाता है जो मोम–आधारित या ग्रीस (तेल) आधारित रंगद्रव्य का उपयोग करता है, जिसका उपयोग लगभग किसी भी सतह (कांच, प्लास्टिक, धातु और तस्वीरों सहित) किया जा सकता है। सबसे आम ग्रीस पेंसिलें कागज में लिपटी होती हैं (बेरोल और सैनफोर्ड पील – ऑफ), लेकिन इन्हें लकड़ी में भी लिपटाया जा सकता है। यह पेंसिल आमतौर पर गैर–विषैले पदार्थों (जैसे पैराफिन, मधुमक्खी का मोम, सेरेसिन, कार्नाउबा या स्पर्मेसेटी मोम) से बनी होती है, जो क्रेयॉन के समान होती है लेकिन अधिक मजबूत होती है। ग्रीस पेंसिल से बने निशान नमी प्रतिरोधी होते हैं और आसानी से कागज के तौलिये से पोंछकर साफ किया जा सकता है।

8. जलरंग पेंसिल :–

जलरंग पेंसिलें जलरंग तकनीकों के साथ उपयोग के लिए डिजाइन की गई हैं। ये पानी में घुलनशील रंजक (**Pigments**) से बनी होती हैं, जो सामान्य रंगीन पेंसिलों जैसी दिखती हैं पर पानी के संपर्क में आने पर वाटरकलर पेंट जैसा प्रभाव देती हैं। इनके कोर को पानी से पतला किया जा सकता है। पेंसिलों का उपयोग बोल्ड रेखाओं के लिए अकेले भी किया जा सकता है। पेंसिल के द्वारा बनाए गए स्ट्रोक को पानी से संतृप्त करके ब्रश से फैलाया भी जा सकता है। ये चित्रकारी में नियंत्रण और पेंटिंग की जीवंतता दोनों प्रदान करती हैं। इन्हें सूखे (**dry**) या गीले (**wet**) तरीके से उपयोग किया जा सकता है।

DO NOT COPY

- उपयोग द्वारा :–

1. बढ़ईगीरी (Carpentry) की पेंसिल :

बढ़ई की पेंसिल दो मुख्य भागों वाली पेंसिल होती है। ये चपटी, अंडाकार या आयताकार आकार की होती हैं, जो इसे गोल पेंसिल की तरह लुढ़कने से रोकता हैं। उनका ग्रेफाइट लीड (सीसा) बहुत मजबूत तथा हार्ड होता है, ताकि खुरदरी लकड़ी पर निशान लगाते समय वह टूटे नहीं। यह अक्सर लाल या नारंगी रंग की होती है ताकि औजारों के बीच आसानी से मिल जाए। सबसे पुरानी जीवित पेंसिल 17वीं शताब्दी की एक जर्मन बढ़ई की पेंसिल है और अब फेबर–कास्टेल संग्रह में है।

2. प्रतिलिपि बनाई जा रही (Coping) पेंसिल :–

कॉपी करने वाली पेंसिलें ही ग्रेफाइट पेंसिलें होती हैं, जिनमें एक रंग मिलाया जाता है जिससे एक अमिट निशान बनता है। इनका आविष्कार 19वीं सदी के उत्तरार्ध में प्रेस कॉपी करने के लिए और फाउंटेन पेन के व्यावहारिक विकल्प के रूप में किया गया था। इनके निशान अक्सर मानक ग्रेफाइट पेंसिलों से देखने में अलग होते हैं, लेकिन गीला करने पर रंगीन स्याही में घुल जाते हैं, जिसे फिर कागज के दूसरे टुकड़े पर दबाया जाता है। इनका व्यापक रूप से उपयोग 20वीं सदी के मध्य तक किया गया, जब धीरे–धीरे बॉल पेन ने इनकी जगह ले ली। इटली में, चुनावों और जनमत संग्रहों में कागजी मतपत्रों पर मतपत्रों पर मतदान के लिए इनका उपयोग अभी भी कानून द्वारा अनिवार्य है।

3. आईलाइनर पेंसिल (Eyeliner Pencil) :–

आईलाइनर पेंसिल का उपयोग मेकअप के लिए किया जाता है। यह एक कॉस्मेटिक उत्पाद है जिसका उपयोग आंखों को उभारने के लिए किया जाता है। इसे आंखों के पास किनारों पर लगाया जाता है। इसका उपयोग अक्सर विभिन्न सौंदर्य प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। पारंपरिक कॉपी पेंसिल के विपरीत, आईलाइनर पेंसिल में आमतौर पर गैर–विषैले रंग होते हैं।

आईलाइनर का सबसे पहला प्रयोग प्राचीन भारत, प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया में आंखों के चारों ओर एक गहरी काली रेखा के रूप में किया गया था। इसका उपयोग 10,000 वर्ष पहले, मिस्र और मेसोपोटामिया के लोग न केवल सौंदर्य के लिए बल्कि रेगिस्तान की धूल से त्वचा की रक्षा के लिए भी आईलाइनर लगाते थे। शोधों से यह भी अनुमान लगाया गया है कि आईलाइनर का उपयोग बुरी नजर से बचाव के लिए भी किया जाता था। वे तांबे के अयस्क और एंटीमनी सहित विभिन्न सामग्रियों से आईलाइनर बनाते थे। प्राचीन मिस्र के काजल में गैलेना होता था, जिसे पुंट, कॉस्मेटिक्स और पश्चिमी एशिया के आसपास के स्रोतों से आयात किया जाता था। परन्तु आज के समय में बाजार में विभिन्न प्रकार के आईलाइनर उपलब्ध हैंय जिनमें लिक्विड (तरल) आईलाइनर, पाउडर आईलाइनर

DO NOT COPY

पेंसिल, वैक्स आधारित आई पेंसिल, काजल आईलाइनर, जेल आईलाइनर, केक आईलाइनर, फेल्ट टिप आईलाइनर आदि।

4. मिटाने योग्य रंग पेंसिल (Erasable coloring pencil):–

मोम आधारित रंगीन पेंसिल के विपरीत, मिटाने योग्य पेंसिल को आसानी से मिटाया जा सकता है। इसका मुख्य उपयोग रेखाचित्र बनाने में होता है, जहाँ उद्देश्य उसी रंग का उपयोग करके रूपरेखा तैयार करना होता है जिसे अन्य माध्यम (जैसे मोम पेंसिल या जलरंग) भरते हैं। या जब उद्देश्य रंगीन रेखाचित्र को स्कैन करना होता है।

कई एनिमेटर ग्रेफाइट पेंसिल के बजाय मिटाने योग्य रंगीन पेंसिल को पसंद करते हैं क्योंकि ये आसानी से फैलती नहीं हैं और विभिन्न रंग रेखाचित्र में वस्तुओं को बेहतर ढंग से अलग करने में मदद करते हैं। कॉपी–एडिटर भी इन्हें उपयोगी पाते हैं, क्योंकि इनके निशान ग्रेफाइट की तुलना में अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं, लेकिन इन्हें मिटाया जा सकता है।

5. गैर पुनरुत्पादन (Non&reproduction):–

नॉन–फोटो ब्लू पेंसिल के रूप में भी जाना जाता है, नॉन–रीप्रोड्यूसिंग (गैर पुनरूत्पादन) भी कहा जाता है। ये ऐसे निशान बनाते हैं जो फोटोकॉपी द्वारा प्रतिलिपि प्रस्तुत करने योग्य नहीं होती हैं। उदाहरणों में स्टेनफोर्ड द्वारा "कॉपी–नॉट" और स्टैडलर द्वारा "मार्स नॉन–फोटो" या ब्लूप्रिंट कॉपियर (जैसे स्टेडटलर द्वारा "मार्स नॉन–प्रिंट") द्वारा उत्पादित नहीं होती हैं।

6. स्टेनोग्राफर की पेंसिल (Stenography):

स्टेनोग्राफर की पेंसिलें जिन्हें स्टेनो पेंसिल भी कहा जाता है, बहुत ही विश्वसनीय मानी जाती हैं और इनकी लीड टूटने से सुरक्षित होती है। फिर भी विश्वसनीयता बढ़ाने के लिए स्टेनो पेंसिलों को कभी–कभी दोनों सिरों से तेज किया जाता है। ये पेंसिलें विशेष रूप से हाई–स्पीड राइटिंग के लिए डिजाइन की जाती हैं, जो आमतौर पर गोल आकार, **HB** से **2B** की सॉफ्ट ग्रेफाइट और बेहतर टिकाउ लेड के साथ आती हैं। ये पेंसिलें लंबी और निरंतर राइटिंग के लिए उपयुक्त होती हैं। इनके लोकप्रिय विकल्पों में **Apsara Steno HB Pencil** (हरी या काली बॉडी) और **Faber&Castell 9008** शामिल हैं, जो बिना टूटे तेज गति से लिखने में मदद करती हैं।

7. गोल्फ पेंसिल (Golf Pencil):–

गोल्फ की पेंसिलें आमतौर पर छोटी होती हैं (सामान्य लंबाई 9 सेमी या 3.5 इंच होती है) और बहुत सस्ती होती हैं। इन्हें लाइब्रेरी पेंसिल भी कहा जाता है, क्योंकि कई पुस्तकालय इन्हें

DO NOT COPY

उपयोगकर्ताओं को लेखन उपकरण के रूप में प्रदान करते हैं। साथ ही नोट्स बनाने के लिए एक रफ पेपर भी देते हैं, जैसे कि कार्ड कैटलॉग में सामग्री ढूंढना या उसका स्थान नोट करना। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इनका उपयोग गोल्फ के खेल में स्कोर लिखने के लिए किया जाता है, क्योंकि ये इतनी छोटी और सस्ती होती हैं। इसलिए ये छोटे बच्चों के लिए अच्छी हैं क्योंकि वे इनका उपयोग उन्हें अक्षरों और अंकों को लिखने का अभ्यास करने के लिए कर सकते हैं।

8. आकार के अनुसार (By Shape) :–

- ✓ त्रिकोणीय (अधिक सटीक रूप से एक सिलवट त्रिकोण)
- ✓ षट्कोणीय (षट्कोणीय और अर्ध–षट्कोणीय)
- ✓ गोल
- ✓ मोड़ने योग्य (लचीला प्लास्टिक)

➢ निर्माण द्वारा (By manufacture) :–

1. यांत्रिक (Mechanical):–

यांत्रिक पेंसिलें लेड को सिरे पर बने छेद से धकेलने के लिए यांत्रिक विधियों का उपयोग करती हैं। इन्हें दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है: 1. प्रोपेलिंग पेंसिल, जिनमें एक आंतरिक तंत्र लेड को आंतरिक डिब्बे से बाहर धकेलने के लिए उपयोग किया जाता है। 2. जबकि क्लच पेंसिलें केवल लेड को अपनी जगह पर रखती हैं (लेड को बाहर निकालने के लिए इसे छोड़ना पड़ता है और किसी बाहरी बल, आमतौर पर गुरुत्वाकर्षण, द्वारा इसे बाहर खींचा जाता है)।

इरेज़र (बड़े आकार के लीड वाली पेंसिलें) में कभी–कभी शार्पनर द्वारा प्रतिस्थापित भी हटाने योग्य (और इस प्रकार बदले जाने योग्य) होते हैं, और आमतौर पर प्रतिस्थापन लेड रखने के लिए एक स्थान होता है। मैकेनिकल पेंसिलें अपनी लंबी आयु और इस तथ्य के कारण लोकप्रिय हैं कि उन्हें शायद ही कभी शार्प करने की आवश्यकता होती है। लेड के प्रकार ग्रेड और आकार पर आधारित होते हैं– आमतौर पर 2.00 मिमी (0.079 इंच), 1.40 मिमी (0.055 इंच), 1.00 मिमी (0.039 इंच), 0.70 मिमी (0.028 इंच), 0.50 मिमी (0.020 इंच), 0.35 मिमी (0.014 इंच), 0.25 मिमी (0.0098 इंच), 0.18 मिमी (0. 0071 इंच) और 0.13 मिमी (0.0051 इंच) होते हैं।

2. एक बिंदु फोड़ें (Pop a Point):–

DO NOT COPY

1970 के दशक की शुरुआत में ताइवान की स्टेशनरी निर्माण कंपनी बेन्सिया पायनियर इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन द्वारा विकसित "पॉप–ए–पॉइंट" पेंसिलें, बेन्सिया पेंसिल स्टैकेबल पेंसिंल या बिना शार्प किए इस्तेमाल होने वाली पेंसिल के नाम से भी जानी जाती हैं। यह एक प्रकार की पेंसिल है जिसमें कई छोटी नोकें एक कार्ट्रिज–शैली के प्लास्टिक होल्डर में लगी होती हैं। कुंद नोक को पेंसिल के लिखने वाले सिरे से खींचकर निकाला जाता है और पेंसिल के खुले पिछले सिरे में वापस डाला जाता है, जिससे एक नई नोक ऊपर आ जाती है।

3. प्लास्टिक की पेंसिल (Plastic Pencil):–

प्लास्टिक पेंसिल का आविष्कार 1967 में एम्पायर पेंसिल कंपनी के लिए हेरोल्ड ग्रॉसमैन ने किया था। 1969 से 1970 के दशक की शुरुआत में डॉ. आर्थर डी. लिटिल ने इसमें और सुधार किए। इन पेंसिलों का कोर एल्यूमिनियम, फस्टीयरेट, लकड़ी के बुरादे और एबीएस प्लास्टिक से बना होता है। ये पेंसिलें बहुत लचीली होती हैं और बिना टूटे आसानी से मुड़ सकती हैं। मशीन द्वारा निर्मित होने के कारण इनमें कोई जोड़ या रेशा नहीं होता है। एम्पायर ने प्लास्टिक पेंसिल को "ईपीकॉन" (**EPCON**) पेंसिल के रूप में व्यावसायिक रूप से लॉन्च किया।

4. स्वास्थ्य (Health): –

पेंसिल की तीली से बचा हुआ ग्रेफाइट जहरीला नहीं होता है, और इसके सेवन से कोई नुकसान नहीं होता है। हालांकि प्राचीन काल से लेखन में सीसे का उपयोग किया जाता रहा है, जैसे कि रोमन कलमों में, फिर भी पेंसिल से सीसे की विषाक्तता ज्ञात होती थी। 20वीं शताब्दी के मध्य तक, पेंसिल की बाहरी परत के लिए उपयोग किए जाने वाले पेंट में सीसे की उच्च सांद्रता हो सकती थी, और पेंसिल को चूसने या चबाने पर यह सीसा शरीर में प्रवेश कर सकता था और जिसे चबाने से विषाक्तता हो सकती थी। पेंसिल से त्वचा के छिदने पर ग्रेफाइट के छोटे टुकड़े अंदर रह सकते हैं, जो बाद में संक्रमण का कारण बन सकते हैं। 20वीं सदी के मध्य के बाद, पेंसिल के पेंट में सीसे का उपयोग लगभग समाप्त हो गया था, जिससे अब पुरानी पेंसिल चबाना भी सुरक्षित माना जाता है।

5. उत्पादन (Manufacture):–

पेंसिल की नोक बारीक पिसे हुए ग्रेफाइट और मिट्टी के पाउडर का मिश्रण होती है। दोनों पदार्थों को मिलाने से पहले, उन्हें अलग–अलग साफ करके उनकी अशुद्धियाँ हटा दी जाती हैं और सुखाकर बड़े चोकोर केक बना दिया जाता है। केके पूरी तरह सूख जाने के बाद ग्रेफाइड और मिट्टी के चौकोर टुकड़ों को पानी के साथ मिलाया जाता है। ग्रेफाइट में मिलाई जाने वाली मिट्टी की मात्रा पेंसिल की कठोरता पर निर्भर करती है (मिट्टी की कम मात्रा से नोक नरम हो जाती है), और मिश्रण

12. Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Pencil ⇒7:47 pm, 7 April 2026
13. Visit to: https://www.britannica.com/technology/pencil-writing-implement ⇒7:52 pm, 7 April 2026
14. चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 6

DO NOT COPY

को पीसने में लगने वाला समय नोक की गुणवत्ता निर्धारित करता है। फिर मिश्रण को स्पेगेटी जैसी लंबी डोरियों का आकार दिया जाता है, फिर सीधा किया जाता है और सुखाकर काटा जाता है। फिर इसे भट्ठी में तपाकर सख्त किया जाता है। बाद में इन्हें तेल या पिघले हुए मोम में डुबोया जाता है, जो सामग्री के छोटे छिद्रों में समा जाता है और पेंसिल को सुगमता से लिखने में सक्षम बनाता है।

जुनिपर या धूप–देवदार की लकड़ी के एक तख्ते को लंबी समानांतर खाँचों में काटकर "स्लैट" बनाया जाता है, और ग्रेफाइट/मिट्टी की डोरियों को खाँचों में डाला जाता है। एक और खाँचेदार तख्त ऊपर चिपकाया जाता है, और फिर पूरे संयोजन को अलग–अलग पेंसिल में काटा जाता है, जिन पर वार्निश या पेंट किया जाता है। प्रत्येक पेंसिल के एक सिरे पर एक छोटा कट होता है ताकि धातु की फेरुल को लकड़ी से जोड़ा जा सके। फिर पेंसिल के सिरे पर एक कार्यात्मक इरेजर प्रदान करने के लिए फेरुल में एक रबर प्लग डाला जाता है।

6. क्रेयॉन (Crayons):–

क्रेयॉन मोम (**Wax**), रंजक (**Pigment**) और बाइंडिंग एजेंटों से बनी रंगीन छड़ें होती हैं, जिनका उपयोग मुख्य रूप से ड्राइंग और रंग भरने के लिए किया जाता है। ये बच्चों के लिए सुरक्षित, गैर–विषाक्त और उपयोग में आसान होते हैं, जो कागज पर जीवंत रंग छोड़ते हैं। सबसे आमतौर पर ये पैराफिन मोम से बने होते हैं और लगभग 3.5 इंच लंबे होते हैं। वैक्स क्रेयॉन पेस्टल से भिन्न होते हैं, जिनमें रंग को गोंद अरबी जैसे सूखे बाइंडर के साथ मिलाया जाता है, और ऑयल पेस्टल से भी भिन्न होते हैं, जिनमें बाइंडर मोम और तेल का मिश्रण होता है।

क्रेयॉन विभिन्न कीमतों में उपलब्ध हैं और इनका उपयोग करना आसान है। ये पेंट और मार्कर की तुलना में कम गंदे होते हैं, इनकी नोक कुंद होती है, जिससे पेंसिल या पेन के इस्तेमाल में मौजूद नुकीले सिरे का खतरा नहीं रहता। आमतौर पर विषैले नहीं होते और कई रंगों में उपलब्ध हैं। इन विशेषताओं के कारण ये छोटे बच्चों को चित्रकारी सीखने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं, साथ ही इनका उपयोग छात्र और पेशेवर कलाकार भी बड़े पैमाने पर करते हैं। आधुनिक क्रेयॉन में कुछ कृत्रिम मोम जैसे पदार्थों का भी उपयोग किया जाता है। मोम को पिघलाया जाता है और सूखे रंग को लगातार मिलाते हुए तब तक मिलाया जाता है जब तक कि वह पूरी तरह से घुल न जाए। आमतौर पर चित्र बनाने की प्रक्रिया के दौरान घर्षण के क्रेयॉन पूरी तरह से खत्म हो जाता है। यदि विद्यार्थियों को क्रेयॉन द्वारा कार्य करना हो तो सर्वप्रथम पेंसिल द्वारा रेखाओं को खींच लेना चाहिए जो हल्की हो। क्रेयॉन द्वारा खींची हुई रेखाएं चारकोल के समान आसानी से घिसता व पुछता नहीं हैं, लेकिन घिसन अधिक हो तो कुछ फैल जाती हैं। इस प्रकार यह ड्राइंग के लिए स्थायी माध्यम है। आजकल यह विभिन्न प्रकार के आकारों में तथा सुविधा के लिए पेंसिल के रूप में भी आने लगा है।

DO NOT COPY

7. सतह या धरातल :–

क्रेयॉन का प्रयोग हम मैटलिक तथा कंचित धरातलों के अतिरिक्त सभी धरातलों पर कर सकते हैं, जैसे कागज, कैनवास, लकड़ी, दीवार, चमड़ा आदि। इसमें ऐसे कागज़ जो हल्का, सस्ता और सुलभ हो तथा नमी आदि से प्रभावित नहीं होते हैं। स्थायी रेखांकन के लिए उपयोगी होते हैं। चिकने तथा खुरदरे कागज का व्यवहार रेखाओं के विभिन्न प्रभाव के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। दफ्ती हाईबोर्ड का भी उपयोग हो सकता है। यदि पृष्ठभूमि रंगीन रखना हो तो पेस्टल पेपर या सामान्य जलरंग के प्रयोग में आने वाले कागजों को टिन्टेड करके भी किया जा सकता है। यदि दानेदार प्रभाव उत्पन्न करना हो तो सेन्डर्स पेपर पर किया हुआ रेखांकन का अलग आनंद मिलता है।

8. क्रेयॉन का आविष्कार व उत्पादन :–

क्रेयॉन का आविष्कार 1903 में एडविन बिन्नी और सी. हैरोल्ड स्मिथ ने बच्चों के लिए सुरक्षित और किफायती रंगीन मोम की छड़ें बनाकर किया था, जिसे क्रेयॉला नाम दिया गया। यह उत्पाद सूखे कार्बन ब्लैक और विभिन्न प्रकार के मोम के मिश्रण से बनाया गया है। शुरुआती क्रेयॉन में आठ रंग (लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, बैंगनी, भूरा और काला) शामिल थे। आधुनिक क्रेयॉन का विकास यूरोप में कोयले और तेल के मिश्रण से हुआ, जिसे बाद में पाउडर पिगमेंट के साथ मोम का उपयोग करके विकसित किया गया।

एडविन बिन्नी की पत्नी, एलिस बिन्नी ने "क्रेयॉला" नाम दिया, जो फ्रांसीसी शब्द "क्रे" (चॉक) और "ओला" (तैलीय) से मिलकर बना है। 1903 में बिन्नी एंड स्मिथ ने बच्चों के लिए 5 सेंट में आठ रंगों का पहला डिब्बा जारी किया। क्रेयॉला क्रेयॉन मुख्य रूप से पैराफिन वैक्स और रंगीन पिगमेंट से बनाए जाते हैं। क्रेयॉला ब्रांड ने 2003 के दौरान अपनी 100वीं वर्षगांठ मनाई और हर साल 3 बिलियन से अधिक क्रेयॉन का निर्माण करते है।

आज क्रेयॉला द्वारा एक सौ से अधिक विभिन्न प्रकार के क्रेयॉन बनाए जा रहे हैं, जिनमें वे क्रेयॉन शामिल हैं, जो चमक के साथ चमकते हैं, फलों की तरह गंध करते है, रंग बदलते हैं और दीवारों और अन्य सतहों और सामग्रियों को धोते हैं। बिन्नी एंड स्मिथ के रसायन कार्मिक स्नोडेकर ने दागदार कपड़ों और दीवारों के बारे में उपभोक्ताओं की शिकायतों के जवाब में पहले धोने योग्य क्रेयॉन विकसित किए। धोने योग्य क्रेयॉन में उपयोग किए जाने वाले धाने योग्य ठोस अंकन मिश्रण के लिए स्नेडेकर को 1990 में पेटेंट प्रदान किया गया।

➢ क्रेयॉन का इतिहास (History of Crayons):–

मोम को रंगद्रव्य के साथ मिलाने की अवधारणा हजारों साल पुरानी है। एनकॉस्टिक पेंटिंग एक ऐसी तकनीक है जिसमें गर्म मोम को रंगीन पदार्थ के साथ मिलाकर पत्थर पर रंग जमाया जाता है,

DO NOT COPY

फिर चित्र को "जलाकर" स्थिर करने के लिए ऊष्मा स्रोत का उपयोग किया जाता था। माना जाता है कि रोमन विद्वान प्लिनी द एल्डर ने मोम क्रियॉन रेखाचित्रों की पहली तकनीकों का वर्णन किया था।

मिस्रवासियों, रोमनों, यूनानियों और फिलीपींस के स्वदेशी लोगों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली यह विधि आज भी प्रचलित है। हालांकि इस प्रक्रिया का उपयोग क्रेयॉन को ऐसे रूप में बनाने के लिए नहीं किया जाता था जिसे पकड़ा जा सके और रंग भरा जा सके, इसलिए यह कक्षा में या बच्चों के लिए शिल्प के रूप में उपयोग के लिए अनुपयुक्त थी।

आधुनिक क्रेयॉन की उत्पत्ति यूरोप से मानी जाती है, जहाँ कुछ पहले बेलनाकार क्रेयॉन चारकोल और तेल से बनाए गए थे। पेस्टल एक कला माध्यम है जिसकी जड़ें आधुनिक क्रेयॉन से मिलती–जुलती हैं और इसका इतिहास 1495 में लियोनार्डो दा विंची तक जाता है। पेरिस के कॉन्टे क्रेयॉन, पेस्टल और पारंपरिक क्रेयॉन का मिश्रण हैं, जिनका उपयोग 1790 के दशक के उत्तरार्ध से कलाकारों द्वारा ड्राइंग क्रेयॉन के रूप में किया जाता रहा है।

बाद में, पाउडर पिगमेंट के विभिन्न रंगों ने अंततः 19वीं सदी के शुरुआती अधिकांश उत्पादों में पाए जाने वाले प्राथमिक चारकोल घटक का स्थान ले लिया। साहित्य में क्रेयॉन का उल्लेख जॉन ऑस्टिन की "प्राइड एंड प्रेजुडिस" में 1813 में ही मिलता है। फ्रांसीसी लिथोग्राफर जोसेफ लेमर्सिएर भी आधुनिक क्रेयॉन के आविष्कारकों में से एक थे। लगभग 1826 में अपने पेरिस स्थित व्यवसाय के माध्यम से, उन्होंने विभिन्न प्रकार के क्रेयॉन और रंग संबंधी उत्पादों का उत्पादन किया। लेकिन यूरोप में लोग यह खोज रहे थे कि तेल के स्थान पर मोम का उपयोग करने से क्रेयॉन मजबूत हो जाते हैं, वहीं संयुक्त राज्य अमेरिका में भी विभिन्न प्रयास विकसित हो रहे थे।

मोम के क्रेयॉन के शुरुआती दौर में कई कंपनियां और उत्पादों ने आकिर्षत शिक्षा और कलाकार बाजारों के लिए प्रतिस्पर्धा की। फ्रैंकलिन मैन्युफैक्चरिंग कंपनी, जिसकी स्थापना 1876 में रोचेस्टर, न्यूयॉर्क में हुई थी, मोम के क्रेयॉन बनाने और बेचने वाली पहली कंपनियों में से एक थी, और 1883 में वे उस वर्ष के विश्व कोलंबिया प्रदर्शनी में क्रेयॉन के प्रदर्शन के साथ दिखाई दिए।

आधुनिक पैराफिन वैक्स क्रेयॉन की शुरुआती रिकार्ड मैसाचुसेट्स के चार्ल्स ए. बाउली से मिलते है, जिन्होंने 1850 के दशक के अंत में वैक्स कलरिंग क्रेयॉन विकसित किए थे। उन्होंने क्रेयॉन को पेंसिल के समान अधिक प्रबंधनीय बेलनाकार आकार में ढाला। उन्होंने अपने क्रेयॉन को सजावटी बक्सों में पैक किया और उन्हें अपने परिचित स्टेशनरी ग्राहकों के माध्यम से पेश किया। उनके क्रेयॉन की मांग जल्दी ही उनके उत्पादन क्षमता से अधिक हो गई और उन्होंने 1902 में अमेरिकन क्रेयॉन कंपनी के साथ साझेदारी की, जो चॉक क्रेयॉन का उत्पादन कर रही थी।

सैकड़ों कंपनियों ने क्रेयॉन बाजार में प्रवेश किया, लेकिन आज उनमें से कुछ ही बची हैं, जिनमें से क्रेयॉला संयुक्त राज्य अमेरिका में बाजार पर हावी है। यह ब्रांड एक सामान्य ट्रेडमार्क बन गया है, जिसका उपयोग अन्य ब्रांडों के क्रेयॉन का वर्णन करने के लिए भी किया जाता है। कुल मिलाकर,

DO NOT COPY

संयुक्त राज्य अमेरिका में 300 से अधिक विभिन्न क्रेयॉन निर्मित थे और अन्य देशों में इतनी संख्या कहीं अधिक थी।

➢ पेस्टल :–

पेस्टल एक कला माध्यम है जिसमें शुद्ध रंगद्रव्य और एक बंधनकारी पदार्थ होते हैं। यह कई रूपों में मौजूद हो सकता है, जिनमें एक छड़ी, एक वर्ग, एक स्क्वायर, और रंग की एक पैन आदि शामिल हैं। पेस्टल एक ऐसा रंगों का स्टिक है जो प्राकृतिक रूप से अपने वास्तविक रंग को प्रदान करता है, इसमें बंधन माध्यम का रंग पेस्टल के रंग की उसके अपवर्तन सूचकांक को बदलता नहीं है।

अतः पेस्टल का रंग प्राकृतिक रूप से प्रस्तुत होता है। जब कोई भी रंग चूर्ण या रंग का ढेला बिना किसी माध्यम के प्रयोग में लाया जाता है तो वह वास्तविक या प्राकृतिक वर्ण में दिखाई देता है। जब इसे किसी भी प्रकार के बंधन माध्यम जैसे फिक्स करने या स्थिर रखने के लिए मिलाया जाता है तो उसका वर्ण या उसकी रंगतें परिवर्तित हो जाती हैं, इसी को अपवर्तन सूचकांक का परिवर्तन कहते हैं। यह परिवर्तन वस्तु के खुरदरे या चिपकने के बदलाव से होता है। जैसे यदि किसी सतह पर पानी या तेल पोत दिया जाए तो उस पदार्थ का अपवर्तन सूचकांक बदल जाता है और वस्तु चमकदार या धुंधली दिखाई देने लगती है। लेकिन पेस्टल में बंधन माध्यम न होने के कारण वह अपने वास्तविक वर्ण में दिखाई देता है। इस प्रकार यदि हम ऐसे पेस्टल लें जिनमें अत्यंत स्थायी पिगमेंट का व्यवहार किया जाता है और उन्हें सीलन, घिसन तथा फफूंदी लगने की क्रिया से दूर रखा जाए तो ये चित्र बहुत ही स्थायी होते हैं। इनके स्थायित्व के लिए एक स्थायी सपोर्ट तथा ग्राउंड की आवश्यकता पड़ती है।

पेस्टल एक सूखा ड्राइंग माध्यम है जिसे उँगली के आकार की नाजुक छड़ियों से बनाया जाता है। ये पाउडर पिगमेंट से बने होते हैं, जिनमें बहुत कम मात्रा में चिकनाई रहित बाइंडर मिलाया जाता है। पारंपरिक रूप से गोंद, ट्रैगाकेंथ जैसे बाइंडर का उपयोग किया जाता था। 20वीं सदी के मध्य में मिथाइल सेलुलोज को बाइंडर के रूप में शामिल किया गया। अक्सर इसमें चाक (जिप्सम) भी मौजूद होता है। ये कई रंगों में उपलब्ध होते हैं, जिनमें प्रत्येक रंग का सबसे गहरा रंग शुद्ध पिगमेंट और बाइंडर से बना होता है, जबकि अन्य रंगों में अधिक सफेद रंग का मिश्रण होता है। कागज पर लगाने के बाद रंग ताजा और चमकदार दिखाई देते हैं क्योंकि इनका रंग नहीं बदलता, इसलिए अंतिम प्रभाव तुरंत देखा जा सकता है। पेस्टल कागज की सतह पर बना रहता है और इसे कांच या गोंद के घोल के फिक्सेटिव स्प्रे से सुरक्षित किए बिना आसानी से मिट सकता है, लेकिन फिक्सेटिव का एक नुकसान यह है कि वे पेस्टल ड्राइंग के टोन को बदल देते हैं और उसकी बनावट को प्रभावित करते हैं।

जब पेस्टल को छोटे स्ट्रोक में या सीधी रेखाओं में लगाया जाता है, तो इसे आमतौर पर ड्राइंग माना जाता है, जबकि जब इसे रगड़कर, फैलाकर और मिलाकर पेंटिंग जैसा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है, तो इसे पेंटिंग माध्यम माना जाता है। बाद वाली तकनीक मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी के अंत तक

16. Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Pastel ⇒8:51 pm, 10 April 2026
17. चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 7

DO NOT COPY

उपयोग किया जाता था। जब रेखीय विधि को प्राथमिकता दी जाने लगी। पेस्टल के लिए विशेष कागज 18वीं शताब्दी से ही बनाए जा रहे हैं, जिनकी बनावट अलग–अलग होती है। कुद महीन सैंड पेपर की तरह, कुछ रोंएँदार या सूडेल जैसी सतह होती हैं, कुछ पर उभरी हुई धारियाँ होती हैं या सूखने वाले फेल्ट से उन पर गहरे निशान बने होते हैं। पेस्टल अलग–अलग कठोरता में उपलब्ध होते हैं, जिनमें से नरम किस्मों के कागज में लपेटा जाता हैं। कुछ पेस्टल बाइंडर में प्यूमिस का उपयोग करते हैं ताकि कागज को घिसकर अधिक खुरदरा बनाया जा सके।

शुष्क पेस्टल माध्यमों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है : –

1. सॉफ्ट पेस्टल (Soft Pastel) :–

यह पेस्टल का सबसे ज्यादा उपयोग किया जाने वाला रूप है। इन स्टिक्स में पिगमेंट की मात्रा अधिक और बाइंडर की मात्रा कम होती है। इससे बनी ड्राइंग को आसानी से स्मज और ब्लैंड किया जा सकता है, लेकिन इससे धूल की मात्रा अधिक हो जाती है। सॉफ्ट पेस्टल से बनी ड्रॉइंग को सुरक्षित रखना आवश्यक है, या तो इसे काँच के फ्रेम में लगाकर या स्मजिंग से बचाने के लिए फिक्सेटिव का छिड़काव करके सुरक्षित रखा जा सकता है। हालांकि फिक्सेटिव ड्रॉइंग के रंग या बनावट को प्रभावित कर सकते हैं। हालांकि संभव है, लेकिन हेयर स्प्रे को फिक्सेटिव के रूप में उपयोग करने की सलाह नहीं दी जाती है, क्योंकि यह pH न्यूट्रल नहीं हो सकता है और इसमें ऐसे तत्व हो सकते हैं जो ड्रॉइंग को लंबे समय तक सुरक्षित नहीं रख सकते। सफेद चाक का उपयोग हल्के और चमकीले रंगों को अधिक चाक के साथ बनाने के लिए फिलर के रूप में किया जा सकता है।

2. पेन पेस्टल (Pen Pastel) :–

ये फ्लैट कॉम्पैक्ट (कुछ मेकअप उत्पादों के समान) में न्यूनतम बाइंडर के साथ तैयार किए जाते हैं और इन्हें विशेष मुलायम माइक्रोपोर्स स्पंज टूल से लगाया जाता है। इनमें किसी भी प्रकार के तरल पदार्थ का उपयोग नहीं होता है। 21वीं सदी का यह आविष्कार पेन पेस्टल का उपयोग पूरी पेंटिंग के लिए या मुलायम और कठोर स्टिक के साथ मिलाकर किया जा सकता है।

3. हार्ड पेस्टल (Hard Pastel) :–

इनमें बाइंडर की मात्रा अधिक और पिगमेंट की मात्रा कम होती है, जिससे ये बारीक रेखाचित्रों के लिए उपयुक्त और स्पष्ट होते हैं। इनका उपयोग अन्य पेस्टल के साथ रूपरेखा बनाने और रंग भरने के लिए किया जा सकता है। हार्ड पेस्टल का उपयोग परंपरागत रूप से स्केच का प्रारंभिक खाका

DO NOT COPY

तैयार करने के लिए किया जाता है। हालांकि, सॉफ्ट पेस्टल की तुलना में इनके रंग कम चमकीले होते हैं और इनकी रेंज भी सीमित होती है।

4. पेस्टल पेंसिलें (Pastel Pencils) :–

ये पेस्टल रंग की लीड वाली पेंसिलें होती हैं। ये बारीक विवरण जोड़ने के लिए उपयोगी होती हैं। इसके अलावा, निर्माण के लिए एक अलग दृष्टिकोण का उपयोग करके पेस्टल विकसित किए गए हैं।

5. ऑयल पेस्टल (Oil Pastel) :–

इनमें मुलायम, चमकदार जैसी बनावट और तीव्र रंग होते हैं। ये घने होते हैं और कागज के रेशों को भर देते हैं और सॉफ्ट पेस्टल की तुलना में इन्हें मिलाना थोड़ा मुश्किल होता है, लेकिन इन्हें फिक्सेटिव की आवश्यकता नहीं होती है। इन्हें तारपीन से पतला करके कार्य सतह पर फैलाया जा सकता है।

6. जल–घुलनशील पेस्टल :–

ये सॉफ्ट पेस्टल के समान होते हैं, लेकिन इनमें पॉलीइथिलीन ग्लाइकोल जैसा जल–घुलनशील घटक होता है। इससे पानी से धोने पर रंगों को पतला करके एक समान, अर्ध–पारदर्शी स्थिति प्राप्त की जा सकती है। जल–घुलनशील पेस्टल गाढ़े रंगों की सीमित श्रृंखला में उपलब्ध होते हैं। इनके तरलता के गुणों के कारण रंगों को आसानी से मिलाना और मिश्रित करना संभव होता है, साथ ही ब्रश से सतह पर लगाये गए पानी की मात्रा के आधार पर विभिन्न प्रकार के रंग प्रभाव उत्पन्न किए जा सकते हैं।

7. उत्पादन (Manufacture) :–

कठोर और नरम पेस्टल बनाने के लिए, रंगों को पानी और गोंद के साथ पीसकर पेस्ट बनाया जाता है और फिर उसे रोल करके, दबाकर या एक्सट्रूड करके (बाहर निकालकर) छड़ियों में ढाला जाता है। पेस्टल नाम मध्यकालीन लैटिन शब्द "पेस्टेलम" (गेड पेस्ट) से लिया गया है, जो लैटिन शब्द "पेस्टलस" (पेस्ट) से आया है। फ्रांसीसी शब्द "पेस्टल" पहली बार 1662 में दिखाई दिया।

अधिकांश ब्रांड एक ही रंग के विभिन्न शेड्स बनाते हैं, जिनका मूल पिगमेंट आमतौर पर गहरा होता है। शुद्ध पिगमेंट से लेकर लगभग सफेद रंग तक के शेड्स बनाने के लिए वे अलग–अलग मात्रा में चाक मिलाते हैं। पिगमेंट को चाक के साथ मिलाने की इसी प्रक्रिया से 'पेस्टल' शब्द का जन्म हुआ है, जिसका प्रयोग कॉस्मेटिक और फैशन के संदर्भ में हल्के रंगों के लिए किया जाता है।

DO NOT COPY

पेस्टल बनाने के लिए, स्टिक्स को खुरदरी सतह पर घुमाया जाता है, जिससे पेंटिंग की सतह पर रंग लग जाता है। जब पेंटिंग की सतह पूरी तरह से पेस्टल से ढकी होती है, तो उसे पेस्टल पेंटिंग कहते हैं अन्यथा, उसे पेस्टल स्केच या ड्रॉइंग कहते हैं। पेस्टल पेंटिंग में सबसे अधिक पिगमेंट सांद्रता होती है, इसलिए यह प्रकाश को बिना धुंधला किए परावर्तित करती है, जिससे बहुत ही चटख रंग प्राप्त होते हैं।

➢ इतिहास :–

पेस्टल का निर्माण 15वीं शताब्दी में शुरू हुआ। पेस्टल माध्यम का उल्लेख लियोनार्डो दा विंची ने किया था, जिन्होंने 1499 में मिलान पहुँचने के बाद फ्रांसीसी कलाकार जीन पेरेल से इसके बारे में सीखा था। पेस्टल का उपयोग कभी–कभी 16वीं शताब्दी के कलाकारों द्वारा प्रारंभिक अध्ययन के लिए एक माध्यम के रूप में किया जाता था। विशेष रूप से फेडरिको बारोनी द्वारा पेस्टल पोर्ट्रेट में विशेषज्ञता हासिल करने वाले पहले फ्रांसीसी कलाकार जॉसेफ विवियन थे।

18वीं शताब्दी तक, चित्र–चित्रण के लिए पेस्टल एक लोकप्रिय माध्यम बन गया, कभी–कभी गोचे के साथ मिश्रित तकनीक में भी इसका प्रयोग किया जाता था। जीन–बैप्टिस्ट पेरोनो, मॉरिस क्वेंटिन डी ला टूर (जिन्होंने कभी तेल रंगों में चित्रकारी नहीं की) और रोजाल्बा कैरिएरा जैसे कलाकारों के लिए पेस्टल एक महत्वपूर्ण माध्यम था।

फ्रांस में, पेस्टल संक्षेप में क्रांति के दौरान और बाद में अलोकप्रिय हो गया, क्योंकि माध्यम की पहचान एंसीन रेजीम की कठोरता के साथ की गई थी। 19वीं शताब्दी के मध्य तक, यूजीन डेलाक्रॉइक्स और विशेष रूप से जीन–फ्रांस्वा मिलेट जैसे फ्रांसीसी कलाकार फिर से पेस्टल का महत्वपूर्ण उपयोग कर रहे थे। उनके देश में एडवर्ड मेनेट ने कैनवास पर पेस्टल में कई चित्रों को चित्रित किया, जो माध्यम के लिए एक अपरंपरागत जमीन है।

एडगर देगास पेस्टल तकनीक में एक प्रवर्तक थे और लगभग 1885 के बाद प्रभाववादी शैली के साथ इसका इस्तेमाल किया, जब यह उनका प्राथमिक माध्यम बन गया। ओडिलॉन रेडोन ने पेस्टल में कार्यों का एक बड़ा निकाय तैयार किया।

संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तट पर पेस्टल चित्रकारों की सोसायटी की स्थापना 1883 में विलियम मेरिट चेस, रॉबर्ट ब्लम और अन्य ने की थी। पिथेलिस्टस लियोन डाबो के नेतृत्व में, 1910 के अंत में न्यूयॉर्क में आयोजित किया गया था और इसके रेंकों में एवरेट शिन और आर्थर बोवेन डेविस शामिल थे। अमेरिकन वेस्ट कोस्ट पर प्रभावशाली कलाकार और शिक्षक जोसेफ डी लेमोन्स, जिन्होंने सैन फ्रांसिस्को आर्ट इंस्टिट्यूट के मुख्य प्रशासक और स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी संग्रहालय आर्ट गैलरी के निदेशक के रूप में कार्य किया, ने पेस्टल प्रदर्शनों में पेस्टल को लोकप्रिय बनाया। 1919 में डे लेमोस ने पेस्टल के साथ "पेंटिंग" पर लेखों की एक श्रृंखला प्रकाशित की, जिसमें इस तरह के उल्लेखनीय

DO NOT COPY

18. Visit to: https://www.britannica.com/art/pastel-art ⇒ 11:40 am, 11 April 2026
19. Visit to: https://www.wisdom.com/hi/data/Pastel/ ⇒ 11:45 pm, 11 April 2026

नवाचार शामिल थे, जो विषय पर प्रकाश की तीव्रता को निर्धारित करने के लिए विभिन्न पेपर के अलग–अलग रंगों का उपयोग और रात के स्केच बनाने के लिए विशेष प्रकाश का उपयोग शामिल करते थे। "शहरी और ग्रामीण दोनों सेटिंग्स में उनके रात के दृश्य, जिन्हें अक्सर प्रेस में "सपने" कहा जाता था, फ्रेंच प्रभाववाद और विशेष रूप से ओडिलॉन रेडॉन से प्रभावित थे।"

पेस्टल रंगों की व्यापक श्रृंखला के कारण कई आधुनिक और समकालीन कलाकारों ने पेस्टल को प्राथमिकता दी है। हाल के उल्लेखनीय कलाकारों में फर्नांडो बोटेरो, फ्रांसेस्को क्लेमेंटे, डेनियल ग्रीन, वुल्फ कान, पाउला रेगो और आर.बी. किताज शामिल हैं, जिन्होंने पेस्टल में व्यापक रूप से काम किया है।

- **चारकोल (Charcoal) :–**

लकड़ी का कोयला, या कोठकोयला या चारकोल, काला–भूरा, सछिद्र, ठोस पदार्थ होता है जो लकड़ी को ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में गर्म करके उससे जल एवं अन्य वाष्पशील पदार्थों को निकालकर बनाया जाता है। इस क्रिया को "उष्मापघटन" कहते हैं। चारकोल में कार्बन की उच्च मात्रा (लगभग 60 प्रतिशत) होती है।

कला के क्षेत्र में चारकोल एक अत्यंत लोकप्रिय, प्राचीन और बहुउपयोगी माध्यम (**Medium**) है, जो अपनी गहरी काली टोन, बोल्ड स्ट्रोक्स और स्मज (**Smudge**) तकनीक के लिए जाना जाता है। यह जली हुई लकड़ी (**Vine/Willow**) या संपीड़ित कार्बन से बनता है, जो स्केचिंग (**Sketching**), रेखाचित्रण, शेडिंग (**Shading**) और तीव्र कंट्रास्ट (**Chiaroscuro**) के लिए उत्कृष्ट है। यह कलाकारों को बनावट (**Texture**) और भावनाओं को तीव्रता से व्यक्त करने की स्वतंत्रता देता है।

कलाकारों द्वारा कला के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाने वाला चारकोल एक शुष्क कला माध्यम है। इसे संपीड़ित चारकोल (गोंद या मोम के बंधन से बंधा हुआ) और चारकोल स्टिक्स (बिना डाले गए लकड़ी की छड़ें) दोनों का उपयोग किया जाता है। कागज पर इससे बने निशान ग्रेफाइट जैसे अन्य माध्यमों की तुलना में बहुत कम स्थायी होते हैं, इसलिए रेखाओं को आसानी से मिटाया और मिलाया जा सकता है।

चारकोल से बहुत हल्की या गहरी काली रेखाएं बनाई जा सकती हैं। इस शुष्क माध्यम को लगभग किसी भी सतह पर, चिकनी से लेकर बहुत खुरदरी तक, लगाया जा सकता है। चारकोल चित्रों में फिक्सेटिव का उपयोग किया जाता है ताकि चारकोल की धूल को गिरने या रगड़ने से रोका जा सके।

कलाकारों के लिए चारकोल बनाने की विधि अन्य क्षेत्रों में उपयोग की जाने वाली विधि के समान है, जैसे कि बारूद और खाना पकाने में ईंधन का उत्पादन। लकड़ी की सामग्री का प्रकार और तैयार विधि विभिन्न प्रकार के चारकोल और बनावट के उत्पादन की अनुमति देती है।

DO NOT COPY

➢ चारकोल के प्रकार :–

कला के माध्यम के रूप में चारकोल के कई प्रकार और उपयोग हैं, लेकिन आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले प्रकार हैंः संपीडित, वेल और पेंसिल।

अंगूर की बेलों को हवा रहित भट्टी में जलाकर बनी बेल का कोयला एक लंबी और पतली लकड़ी की छड़ी होती है। यह भूरे रंग के विभिन्न शेड्स में आती है। विलो चारकोल एक लंबी और पतली लकड़ी की छड़ी है जो बिना हवा के भट्टी में विलो की टहनियों को जलाने का प्रतिफल है। यह बेल के चारकोल की तुलना में गहरे रंग का होता है।

विलो और अंगूर की बेल की लकड़ी से बने कोयले को झाड़कर मिटाकर असानी से हटाया जा सकता है। यही कारण है कि कलाकार प्रारंभिक रेखांकन या बुनियादी स्केच बनाने के लिए इसे इस्तेमाल करना पसंद करते हैं। इसलिए यह चारकोल पेस्टल चित्र बनाने के लिए कम उपयुक्त होता है।

➢ संपीडित चारकोल :–

संपीडित चारकोल (जिसे चारकोल स्टिक भी कहा जाता है) को ब्लॉक या स्टिक के आकार में ढाला जाता है। रंग की तीव्रता कठोरता द्वारा निर्धारित होती है। उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उपयोग किए जाने वाले गोंद या मोम बाइंडर की मात्रा इसकी कठोरता को प्रभावित करती है। नरम बाइंडर से गहरे काले निशान बनते हैं जबकि सख्त बाइंडर से हल्के निशान बनते हैं।

➢ चारकोल पेंसिलें :–

चारकोल पेंसिल लकड़ी के आवरण में बंद संपीडित चारकोल से बनी होती हैं। ग्रेफाइट पेंसिल के समान डिजाइन की गई ये पेंसिलें चारकोल के अधिकांश गुणों को बनाए रखते हुए अधिक बारीक और स्पष्ट रेखाचित्रों के लिए उपयोग की जाती हैं, जबकि उपयोगकर्ता के हाथ पर निशान पड़ने से बचाती हैं।

कलाकारों के लिए इस्तेमाल होने वाले अन्य प्रकार के चारकोल, जैसे कि चारकोल क्रेयॉन, 19वीं शताब्दी में विकसित किए गए और इनका उपयोग कैरिकेचरिस्टों द्वारा किया जाता था। चारकोल पाउडर का उपयोग पैटर्न बनाने और पोसिंग के लिए किया जाता है, जो एक सतह से दूसरी सतह पर पैटर्न स्थानांतरित करने की एक विधि है।

सामग्री के अनुपात के आधार पर कलाकारों के चारकोल में व्यापक विविधताएं होती हैं, जो सामग्री के अनुपात पर निर्भर करती हैंः जली हुई लकड़ी से बना संपीडित चारकोल, मिट्टी, लैम्प ब्लैक, पिगमेंट

DO NOT COPY

और थोड़ी मात्रा में अल्ट्रारीन। इस मिश्रण को जितना अधिक गरम किया जाता है, यह उतना ही नरम हो जाता है।

➢ कला तकनीकें :–

कलाकारों के चारकोल के साथ उपयोग किया जाने वाला कागज गुणवत्ता में भिन्न हो सकता है। खुरदरी बनावट वाले कागज पर चारकोल की मात्रा अधिक हो सकती है। टोन वाले पेपर का उपयोग करने से विभिन्न संभावनाएं खुलती हैं, क्योंकि सफेद ऑयल पेस्टल का उपयोग चारकोल के साथ मिलकर कंट्रास्ट बनाने के लिए किया जा सकता है।

1. हैचिंग (Hatching) :–

हैचिंग एक ऐसी विधि है जिसमें पतली, गहरी रेखाएं लगातार एक दूसरे के समानांतर खींची जाती हैं। चारकोल से करने पर यह अधिक चिकनी और गहरी दिखाई देती है।

2. रबिंग (Rubbing) :–

रगड़ने की प्रक्रिया में कागज की एक शीट को बनावट वाली सतह पर दबाया जाता है, फिर सतह की बनावट को दृश्य बनाने के लिए कागज के खिलाफ लकड़ी का कोयला रगड़ा जाता है।

3. सम्मिश्रण (Blending) :–

एक ड्राइंग के गहरे और हल्के दोनों के बीच सहज बदलाव लाने के लिए ब्लेंडिंग की जाती है। इससे छाया का प्रभाव भी दिखाया जा सकता है। ब्लेंडिंग की दो सामान्य विधियाँ हैं:– कागज पर लगाए गए चारकोल को उंगली से रगड़कर या फैलाकर ब्लेंड करना या टॉर्टिलॉन नामक पेपर ब्लेंडिंग स्टंप का उपयोग करना शामिल है। कई लोग चमड़े के मुलायम चौकोर टुकड़े, जिसे शैमोइस कहते हैं, का उपयोग करना पसंद करते हैं।

4. मिटाना (Erasing) :–

मिटाने का काम अक्सर गूंथे हुए रबर इरेजर से किया जाता है। यह एक लचीला इरेजर होता है जिसे अक्सर स्वयं साफ होने वाला बताया जाता है। इसे हाथों से हल्के से गूंथकर आकार दिया जा सकता है, छोटे क्षेत्रों के लिए नुकीला बनाया जा सकता है या साफ करने के लिए इसे अंदर से बाहर की ओर पटला जा सकता है। चारकोल के साथ इस्तेमाल होने वाले अन्य मिटाने के उपकरण इलेक्ट्रिक इरेजर तथा पेंसिल इरेजर हैं।

DO NOT COPY

20. Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Charcoal_(art) ⇒ 9:41 pm, 12 April 2026

➢ चारकोल का इतिहास (History of Charcoal) :–

गुफा चित्रकला में चारकोल अक्सर एक प्रमुख घटक होता था, जिसके उदाहरण कम से कम 28,000 साल पहले के हैं। सबसे पुराने चित्रों में एक जैबरा का चित्र है, जो नामीबिया की अपोलो गुफा में पाया गया था। लकड़ी के जलने से बने कोयले का उपयोग कर, गुफा मानव ने दीवारों पर गहरी, बोल्ड और सशक्त ग्रेडिएंट वाली रेखाएं बनाई, जो आज भी उनके कलात्मक दृष्टिकोण को दर्शाती हैं। गुफा चित्रों से ही हमें कला माध्यम के रूप में चारकोल के मानव उपयोग का सबसे प्रारंभिक प्रमाण मिलता है। संभवतः सबसे प्राचीन चित्र फ्रांस में स्थित हैं। अधिकांश इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि ये चित्र आग में जली हुई लकड़ियों से बनाए गए थे, न कि कृत्रिम रूप से तैयार किए गए चारकोल से।

पुनर्जागरण काल में : चारकोल (कोयले) का व्यापक रूप से उपयोग होता था और मुख्यतः इसका प्रयोग प्रारंभिक रेखाचित्र बनाने के लिए किया जाता था। लेकिन कैनवास से कोयले के कण झड़ जाने के कारण कला की कुछ ही कृतियाँ बच पाईं। 15वीं शताब्दी के अंत तक ही कोयले को झड़ने से बचाने के लिए चित्रों को गोंद के घोल में डुबोने की प्रक्रिया अपनाई गई। वास्तव में 20वीं शताब्दी तक यह एक स्वतंत्र माध्यम के रूप में पूरी तरह विकसित नहीं हो पाया था। अधिकांश कलाकार चारकोल का प्रारंभिक रेखाचित्रों की रूपरेखा बनाने के लिए ही उपयोग करते थे। चारकोल को प्राथमिक माध्यम के रूप में उपयोग करने वाले पहले प्रसिद्ध कलाकारों में अल्ब्रेक्ट ड्यूरर थे। हालांकि वे स्याही और लकड़ी की नक्काशी के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध थे, लेकिन उनके चारकोल के चित्र उनके सबसे प्रारंभिक और उत्कृष्ट चित्रों में से हैं। यह कलाकृति 'नाइट' डेथ, एंड द डेविल, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान विशेष रूप से कुख्यात हो गई, जब नुरेमबर्ग में नाजी रैली में एडॉल्फ हिटलर को इसकी एक प्रति भेंट की गई थी। जैसे ही 20वीं सदी की शुरुआत हुई, मनुष्य ने मातिस और पिकासो को चारकोल को अधिक प्रसिद्धि दिलाते हुए देखा, जिसके बाद कई अन्य प्रतिभाशाली कलाकारों ने इस माध्यम का उपयोग किया।

➢ ब्रश (Brushes):–

कला (**Painting**) में ब्रश सबसे महत्वपूर्ण उपकरण हैं, जो रंगों को कैनवास या कागज पर उतारने का काम करते हैं। ये मुख्य रूप से हैंडल, फेरूल (धातु का हिस्सा) और ब्रिसल्स (बालों) से बने होते हैं। ब्रश का चयन रंग के प्रकार (जैसे ऑयल, वॉटरकलर, एक्रिलिक) और कलाकार की तकनीक (जैसे विवरण, ब्लेंडिंग, मोटा स्ट्रोक) के आधार पर किया जाता है।

ब्रश एक आम औजार है जिसमें रेशे (कृत्रिम या प्राकृतिक), तार या अन्य धागे लगे होते हैं। इसमें अक्सर एक हैंडल या ब्लॉक होता है, जिस पर रेशे समानांतर या लंबवत रूप से लगे होते हैं।

DO NOT COPY

21. Visit to: https://nitramcharcoal.com/blogs/blog/history-charcoal ⇒ 5:45 pm, 14 April 2026

यह इस बात पर निर्भर करता है कि ब्रश को इस्तेमाल करते समय कैसे पकड़ा जाएगा। इनकी सामग्री इस तरह चुनी जाती है कि वे इस्तेमाल के दौरान होने वाले खतरों जैसे संक्षारक रसायन, गर्मी या घर्षण को सहन कर सकें। ब्रश का उपयोग सफाई, बालों की देखभाल, मेकअप पेंटिंग, सतह को चमकाने और कई अन्य कार्यों के लिए किया जाता है। यह आज के समय में इस्तेमाल होने वाले सबसे बुनियादी और महत्वपूर्ण औजारों में से एक है। और एक औसत घर में इसकी कई किस्में हो सकती है।

ब्रश का उपयोग मानव द्वारा पाषाण युग (लगभग 2,500,000 वर्ष पूर्व) से ही रंग लगाने के लिए किया जाता रहा है, जैसे कि स्पेन की अल्टामिरा और फ्रांस की पेरिगोर्ड की गुफा चित्रों से पता चलता है। ऐतिहासिक काल में, प्रांरभिक मिस्रवासियों ने सुंदर और विस्तृत दीवार चित्रों को बनाने के लिए ब्रश का उपयोग किया। जबकि चीनी लोगों ने अपनी लेखन शैली के जटिल अक्षरों को बनाने के लिए लंबे बालों वाले ब्रशों का उपयोग किया, यह प्रथा आज भी पूर्वी देशों में जारी है।

ब्रश बनाने में उपयोग होने वाली सामग्रीः ब्रश का प्रकार और डिजाइन उसके इच्छित उपयोग के आधार पर तय होता है। उदाहरण के लिए, सुअर के बाल लंबे समय से पेंटब्रश और कला ब्रशों में उपयोग किए जाते रहे हैं क्योंकि ये पशु रेशे लचीले और टिकाऊ होते हैं और पेंट को अच्छी तरह से सोख लेते है। प्रत्येक रेशे का आधार चौड़ा और मजबूत होता है और नोक नुकीली होती है जो कई महीन रेशों में विभाजित होत जाती है। अन्य जानवरों जैसे घोड़े, ऊंट, गिलहरी और बिज्जू जैसे अन्य जानवरों के बाल भी कुछ इस प्रकार के घरेलू और शौचालय ब्रशों में उपयोग किए जाते है। साथ ही विभिन्न प्रकार के पौधों के रेशों का उपयोग भी किया जाता है, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण हैं– ब्राजील के ताड़ से प्राप्त पियासावा और पामिरा बेसिन अफ्रीका और श्रीलंका में पाए जाने वाले ताड़ के पेड़ों से प्राप्त होता है। ऐसे पौधों के रेशों को भिगोकर, पीटकर और सुखाकर ब्रश सामग्री में परिवर्तित किया जाता है। ब्रश के ब्रिसल्स के लिए कपास के रेशों का भी उपयोग किया जा सकता है। इन्हें एसिटिड एसिड से भी उपचारित किया जाता है, जिसके बाद एसीटोन में एसिटिलेटेड उत्पाद तैयार किया जाता है। परिणामी घोल को स्पिनेट नामक उपकरण के छोटे छिद्रों से घुमाकर प्रक्षेपित किया जाता है और जमने दिया जाता है। कृत्रिम ब्रश फाइबर आमतौर पर नायलॉन और पॉलिइथिलीन से बने होते हैं, हालांकि कुछ अनुप्रयोगों के लिए विनाइल और स्टील के तार का भी उपयोग किया जाता है। नायलॉन फाइबर या पेंटब्रश में उपयोग के लिए हॉग ब्रिसल्स की इस तरह नुकीले और विभाजित होते हैं या सफाई ब्रश, हेयर ब्रश और टूथब्रश बनाने के लिए बिना नुकीले छोड़े जा सकें।

➢ इतिहास (History):–

ब्रश का इतिहास लगभग 25 लाख साल पहले पुरापाषाण युग का माना जाता है, जब गुफाओं द्वारा रंग लगाने के लिए ब्रश का उपयोग किया जाता था। आधुनिक दक्षिण अफ्रीका में स्थित एक गुफा में लगभग 100,000 वर्ष पुराने माने जाने वाले पुराने पेंटिंग किट खोजे गए थे।

DO NOT COPY

प्राचीन मिस्र में लगभग 3500 ई.पू. में रंग लगाने के लिए ब्रश ताड़ के पत्तों को फाड़कर बनाए जाते थे तथा जानवरों के बालों से बने ब्रशों का भी इस्तेमाल किया जाता था। ये ब्रश हाथ से बनाए जाते थे, जिनमें सूखे पत्तों और रेशों को पेड़ों की शाखाओं से बाँधकर हैंडल के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। इनका उपयोग मिट्टी के बर्तनों की सजावट और मकबरों की दीवारों पर चित्रकारी के लिए किया जाता था। इसी समय के आसपास चीन ने भी अपने ब्रश विकसित करना शुरू कर दिया था। ब्रश का अधिकांश उपयोग सजावट के लिए होता था और पहले लेखन ब्रश निर्माण में एक विविधता को दर्शाते है।

पुनर्जागरण काल के दौरान, ब्रश अत्यंत विविध हो गए और इस युग में गोल ब्रश का प्रचलन रहा। यह आंशिक रूप से सेन्निनों द्वारा लिखित लिब्रों डेल आर्ट में उस समय दिए गए दस्तावेजीकरण के कारण संभव हुआ। लेकिन फेरूल निर्माण में तकनीकी सीमाओं के कारण फ्लैट ब्रश सभी तक विकसित नहीं हो सके थे।

अगली प्रमुख प्रगति, ब्रश निर्माण में धातु के फेरूल के उपयोग से हुई। सामान्य पशु बालों या जैविक रेशों के स्थान पर धातु का उपयोग करने से ऐसा उत्पाद तैयार हुआ जो बेहतर टिकाऊपन और आकार बनाए रखने की क्षमता रखता था। इससे ब्रश उद्योग के संभावित अनुप्रयोगों का विस्तार हुआ और अधिक मजबूत ब्रशों के निर्माण के लिए नई तकनीक विकसित हुई। ब्रिसल्स को आधार से जोड़ने के लिए तार या डोरी के उपयोग करने के बजाय, अब यू – चैनल जैसी धातु की एक्सट्रूजन को दबाया जाता था। ब्रशों को पकड़ने के लिय यह यांत्रिक रूप से सुरक्षित तरीका आज औद्योगिक स्ट्रिप ब्रशों में व्यापक रूप से देखा जाता है। इससे उस समय की समस्या का समाधान हो गया जब हैंडल और ब्रश के बीच नमी आ जाती थी और ब्रश अलग हो जाता था।

18वीं और 19वीं शताब्दी में, औद्योगिक क्रांति में ब्रश निर्माण के लिए मशीनीकरण और बड़े पैमाने पर उत्पादन महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। 1850 के दशक में ब्रश के हैंडल में छेद करने के लिए डिजाइन की गई मशीनों का पेटेंट कराया गया। एंटोन जाहोरान्स्की को ब्रश–इंसर्टिंग मशीनों के अग्रणी और संस्थापक के रूप में जाना जाता है। 1859 में अमेरिका में पहला ब्रश कारखाना न्यूयॉर्क में स्थापित किया गया था।

- **ब्रश के मुख्य भाग (Brush Part):–**

1. ब्रिसल्स (बाल / रेशे):– प्राकृतिक (जानवरों के बाल) या सिंथेटिक (नायलॉन / पॉलिएस्टर)
2. फेरूल (**Ferrule**): धातु का वह भाग जो बालों को हैंडल से जोड़ता है।
3. हैंडल (**Handle**):– लकड़ी या प्लास्टिक की डंडी, जो पकड़ने के काम आती है।

- **ट्रेड पेंटर्स ब्रश (Trade Painters Brushes):–**

DO NOT COPY

व्यावसायिक पेंटिंग में उपयोग किए जाने वाले ब्रश अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। ये ब्रश पेंट की एक समान परत लगाने के लिए डिजाइन किए गए हैं। व्यावसायिक चित्रकारों के ब्रश के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं:

1. लौकी के आकार का हैंडल (Guard handle):– यह एर्गोनोमिक डिजाइन होता है, जो पेंटिंग करते समय कलाई और हाथ पर पड़ने वाले तनाव को कम करता है।

2. छोटा हैंडल (Short handle): – छोटे हैंडल वाले ब्रश छोटी और बारीक काम वाली जगहों को पेंट करते समय अधिक सटीकता प्रदान करते हैं।

3. फ्लैट बीवरटेल हैंडल (Flat beavertail handle): – यह आकार में गोल और थोड़ा चपटा होता है। पेंटिंग करते समय यह हथेली में पूरी तरह फिट हो जाता है।

4. वर्गाकार हैंडल (Square handle):– वर्गाकार हैंडल मुख्य रूप से ट्रिम या सैंडर ब्रश में पाया जाता है और पेंटिंग करते समय इसे पकड़ना आरामदायक होता है।

5. रैट टेल हैंडल (Rat tail handle):– यह हैंडल सामान्य हैंडल से लंबा और पतला होता है, जिससे इसे अधिक नियंत्रण देने के लिए पकड़ना आसान हो जाता है।

6. लंबा हैंडल (Long handle):– लंबे हैंडल गोल और पतले होने के कारण पेंसिल की तरह पकड़ना अधिक आरामदायक और आसान होता है, जिससे विस्तृत विवरण बनाते समय बेहतर नियंत्रण और सटीकता मिलती है।

7. आर्टिस्ट ब्रश (Artists Brushes): – छोटे हैंडल वाले ब्रश आमतौर पर समतल या थोड़ी झुकी हुई सतहों पर काम करने के लिए उपयोग किए जाते हैं, जैसे जल रंग चित्रकला और स्याही चित्रकला। जबकि लंबे हैंडल वाले ब्रश का उपयोग कैनवास पर काम करते समय क्षैतिज रूप से पकड़ा जाता है, जैसे तेल रंग (**Oil colours**) या एक्रेलिक रंग (**Acrylic colours**) के लिए। कलाकारों के ब्रश आमतौर पर निम्न प्रकार के होते हैं:

DO NOT COPY

- **गोल (Round):** नुकीला सिरा, बारीक विवरण के लिए लंबा तथा पास–पास व्यवस्थित ब्रिसल्स होते हैं।

- **फ्लैट (Flat):–** पेंट को सतह पर जल्दी और समान रूप से फैलाने के लिए उपयुक्त है। इनके बाल ब्रश वालों की तुलना में लंबे होते हैं।

- **उज्ज्वल (Bright):** – ये फ्लैट ब्रश से छोटे होते हैं। इनमें छोटे, कड़े ब्रिसल्स होते हैं, जो पतले पेंट लगाने के साथ साथ इंपैस्टो जैसी गाढ़ी पेंटिंग शैलियों में भी कैनवास की सतह में पेंट को गहराई तक पहुँचाने के लिए उपयुक्त होते हैं।

- **फिलबर्ट (Filbert):** – ये गुंबदाकार किनारे वाले चपटे ब्रश होते हैं। ये अच्छी कवरेज प्रदान करते हैं और कुछ बारीक काम करने की क्षमता रखते हैं।

- **फैन ब्रश (Fan brush):–** इनका उपयोग पेंट के बड़े क्षेत्रों को आवरण में मिलाने के लिए किया जाता है।

- **कोण ब्रश (Angle brush):–** यह ब्रश भी फिलबर्ट ब्रश की तरह ही बहुउपयोगी है और सामान्य पेंटिंग एल्लीकेशन के साथ–साथ कुछ विस्तार कार्यों में भी लागू किया जा सकता है।

- **मॉप ब्रश (Mop Brush):–** यह एक बड़े आकार का ब्रश होता है, जिसका किनारा गोल होता है। इसका उपयोग मुलायम पेंट को चौड़े क्षेत्र को लगाने के साथ–साथ पेंट की सूख रही परतों पर पतली परत चढ़ाने के लिए किया जाता है, ताकि नीचे की परतों को नुकसान न पहुँचे और पेंटवर्क सुरक्षित रहे।

- **रिगर ब्रश (Rigger Brush):–** ये लंबे बालों वाले गोल ब्रश होते हैं, जिनका उपयोग पारंपरिक रूप से जहाजों के चित्रों में रस्सियों को चित्रित करने के लिए किया जाता है। ये बारीक रेखाओं को खींचने में उपयोगी होते हैं और तेल और जलरंग दोनों के लिए उपयुक्त होते हैं।

DO NOT COPY

- स्टिपलर और डियर–फुट स्टिपलर (**Stippler and deer & foot stippler**):– ये छोटे, ठूंठदार बालों के आकार के होते हैं।

- लाइनर (**Liner**):– ये लंबे पतले ब्रश होते हैं।

- डैगर ब्रश (**Dagger brush**):– ये लंबे बालों वाले देवदूत की तरह दिखते हैं, जिनका उपयोग लंबी पतियों को चित्रित करने या एक ही स्ट्रोक में सिग्नेचर के लिए किया जाता है।

- स्क्रिप्ट्स (**Scripts**): – अत्यधिक लंबी वृत।

- एगबर्ट (**Egbert**):– यह एक प्रकार का फिलबर्ट ब्रश होता है, जिसके बाल लंबे होते हैं। इसका उपयोग तेल चित्रण के लिए किया जाता है।

ब्रश के कुछ अन्य प्रकार इस प्रकार हैं:

1. सुमी (**Sumi**) - यह कुछ जलरंग ब्रशों के समान शैली का होता है, जिसमें आमतौर पर मोटा लकड़ी या धातु का हैंडल और चौड़ा मुलायम बालों वाला ब्रश होता है, जो गीला होने पर एक पतली नोक का रूप ले लेता है। इसे सुमी–ए (स्याही से चित्रकारी) भी लिखा जाता है।

2. हेक (**Hake**):– यह एक एशियाई शैली का ब्रश है। जिसमें एक बड़ा चौड़ा हैंडल और बेहद महीन मुलायम बाल होते हैं। इसका उपयोग परम्परिक सुमी ब्रश के विपरीत बड़े क्षेत्रों को कवर करने के लिए किया जाता है। यह अक्सर बकरी के बालों से बना होता है।

3. स्पॉटर (**Spotter**):– गोल ब्रश जिनमें कुछ ही छोटे–छोटे रोएं होते हैं। इन ब्रशों का उपयोग आर्टवर्क या फोटो–ग्राफिक प्रिटों पर स्पॉटिंग करने के लिए किया जाता है।

4. स्टेंसिल (**Stencil**):– एक गोल ब्रश जिसका ऊपरी सिरा चपटा होता है, जिसका उपयोग स्टेंसिल के नीचे न फसे। इसका उपयोग टेक्सचर बनाने के लिए भी किया जाता है।

- आर्टिस्ट के ब्रश के आकार (**Artists Brush Size**)–

कलाकारों के ब्रशों को आमतौर पर क्रमांकित आकार दिए जाते हैं, हालांकि उनके वास्तविक आयामों के लिए कोई सटीक मानक नहीं है। सबसे छोटे से लेकर सबसे बड़े तक आकार इस प्रकार

DO NOT COPY

हैं:– 20/0, 12/0, 10/0, 7/0, 6/0, 5/0, 4/0 (जिन्हें 0000 भी लिखा जाता है), 000, 00, 0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 16, 18, 20, 22, 24, 25, 26, 28, 30, 2 इंच, 4 इंच, 6 इंच और 8 इंच। जितने महीन ब्रश प्रमुख कंपनियों द्वारा निर्मित किए जाते हैं, लेकिन यह सामान्य आकार नहीं हैं। 000 से 20 तक के आकार के ब्रश सबसे आम हैं।

- आर्टिस्ट के ब्रश के ब्रिसल्स के प्रकार (**Types of Artists Brushes Bristles**)–

ब्रिसल्स प्राकृतिक हो सकते हैं – या तो मुलायम बाल या हॉग ब्रिसल – या सिंथेटिक। प्रकारों में शामिल हैं:–

1. वॉटर कलर ब्रश (**Water Colour Brush**): – ये आमतौर पर सेबल, सिंथेटिक या नायलॉन से बने होते हैं।

2. तेल चित्रकला के ब्रश (**Oil Painting Brush**): – ये आमतौर पर सुअर के बाल (ब्रिसल) से बने होते हैं।

3. एक्रिलिक ब्रश (**Acrylic Brush**):– ये ब्रश आमतौर पर पूरी तरह से नायलॉन या सिंथेटिक से बने होते हैं।

तेल चित्रकला में प्रयुक्त तारपीन या थिनर कुछ प्रकार के सिंथेटिक ब्रशों को नष्ट कर सकते हैं। हालांकि, सिंथेटिक ब्रिसल तकनीकों में नवाचारों ने विलायक प्रतिरोधी सिंथेटिक ब्रिसल विकसित किए हैं, जो सभी माध्यमों में उपयोग के लिए उपयुक्त हैं। प्राकृतिक बाल – गिलहरी, बेजर या सेबल के बाल – जलरंग चित्रकारों द्वारा उपयोग किए जाते हैं क्योंकि इनमें पानी को अवशोषित करने और धारण करने की बेहतर क्षमता होती है।

- मुलायम बालों के ब्रश (**Soft Hair Brushes**)–

इनमें से सबसे अच्छे कोलिन्स्की सेबल, अन्य लाल सेबल या मिनीवर (रूसी गिलहरी की सर्दियों की खाल) के बालों से बने होते हैं। सेबेलइन बैल के बालों को लाल रंग में रंगकर लाल सेबल जैसा बनाया जाता है। और कभी–कभी इसमें सेबल मिलाया भी जाता है। ऊँट के बाल एक सामान्य शब्द है, जो सस्ते और कम गुणवत्ता वाले विकल्प के लिए इस्तेमाल होते हैं। आमतौर पर बैल के बाल। यह अन्य प्रजातियों या नस्लों के मिश्रण से भी हो सकते हैं, लेकिन इनमें कभी भी ऊँट के बाल शामिल नहीं होते। टट्टू, बकरी, नेवला और बिज्जू के बालों का भी उपयोग किया जाता है।

DO NOT COPY

1. हॉग ब्रिसल (**Hog bristle**):– इसे अक्सर चाइना ब्रिसल या चुंगकिंग ब्रिसल कहा जाता है। यह मुलायम बालों की तुलना में अधिक सख्त और मजबूत होता है। यह ब्लीच किया हुआ या बिना ब्लीच किया हुआ हो सकता है।

2. सिंथेटिक ब्रिसल्स (**Synthetic bristles**):– ये विशेष बहु–स्तर वाले एक्सट्रूडेड नायलॉन फिलामेंट, टेकलॉन या पॉलिएस्टर से बने होते हैं। नए जल आधारित पेंटों के विकास के साथ इनकी लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है।

3. आर्टिस्ट ब्रश के हैंडल (**Artists Brush Handle**):– ब्रश के ब्रश हैंडल आमतौर पर लकड़ी के होते हैं, लेकिन इन्हें ढाले हुए प्लास्टिक से भी बनाया जा सकता है। बड़े पैमाने पर उत्पादित कई हैंडल बिना पॉलिश की गई कच्ची लकड़ी से बने होते हैं, जबकि उच्च गुणवत्ता वाले हैंडल अच्छी तरह से पॉलिश की गई कठोर लकड़ी से बने होते हैं। हैंडल को चमकदार और जलरोधी बनाने के लिए लकड़ी को सील और वार्निश किया जाता है, जिससे गंदगी और सूजन कम होती है। कई ब्रश कंपनियाँ लंबे और छोटे आकार के ब्रश हैंडल उपलब्ध कराती हैं।

धातु के फेरूल एल्यूमिनियम, निकल, तांबा या निकल–प्लेटेड स्टील के हो सकते हैं। क्विल फेरूल भी पाए जाते हैं। ये ब्रश को एक अलग प्रकार का "अनुभव" देते हैं, और फ्रेंच शैली के वॉटरकलर ब्रशों की मुख्य विशेषता होते हैं।

- कैनवास (**Canvas**):–

कैनवास एक टिकाऊ, मजबूत, और सादा बुना हुआ कपड़ा है, जिसका उपयोग पारंपरिक रूप से कलाकारों द्वारा पेंटिंग के लिए आधार (सतह जिस पर पेंटिंग की जाती है) के रूप में किया जाता है। इसके अलावा इसका उपयोग पाल, तंबू, टेंट, बैकपैक, आश्रय बनाने, जूते, और अन्य ऐसी वस्तुओं को बनाने में किया जाता है जिनमें मजबूती की आवश्यकता होती है।

हालांकि ऐतिहासिक रूप से यह भांग से बनाया जाता था, आधुनिक कैनवास आमतौर पर कपास, लिनन या कभी–कभी पॉलीविनाइल क्लोराइड (**PVC**) से बनाया जाता है। कैनवास के धागे (आमतौर पर कपास, अलसी या जूट) लगभग दो से दो से अधित परतों वाले होते हैं, जिससे मोटाई एक समान रहती है। इस कपड़े के लिए सादी बुनाई का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, जिससे खुले स्थान स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। कलाकारों का कैनवास, जो एकलताना वाला होता है, तेल रंगों से चित्रकारी के लिए उपयोग किया जाता है, जबकि पाल के कैनवास की तुलना में यह काफी हल्का होता है।

DO NOT COPY

सर्वोत्तम गुणवत्ता वाला कैनवास लगभग 25 सेंटीमीटर (10 इंच) वाले क्रीम या ब्लीच किए हुए अलसी के रेशों और यहां तक कि कपास का मिश्रण भी पाया जाता है। करघे से कपड़ा निकालने के बाद, पेंट के लिए सतह को तैयार करने के लिए उसे उपचारित किया जाता है।

"कैनवास" शब्द 13वीं शताब्दी के एंग्लो–फ्रेंच कैनेबज़ और पुराने फ्रेंच कैनेवास से लिया गया है। दोनों ही शब्द वल्गर लैटिन शब्द कैनापेसियस के व्युत्पन्न हो सकते हैं, जिसका अर्थ है "भांग से बना", जो ग्रीक शब्द कैनबिस से उत्पन्न हुआ है।

- **उत्पादन (Manufacture):–**

कैनवास में असामान्य रूप से मोटा धागा इस्तेमाल होता है और सामान्यतः इस धागे का बहुत नरम होना जरूरी नहीं होता। इन्हें बनाने के लिए कपास, लिनन और भांग के पौधों के रेशों का उपयोग किया जाता है। इन धागों को कंघी करने के बजाय कार्डिंग किया जाता है, क्योंकि नरमी कोई मायने नहीं रखती। इसकी बुनाई सामान्य होती है। ताने के धागे एक के बाद एक बाने के धागों के ऊपर और नीचे बुने होते हैं। कुछ प्रकार के कैनवास की बुनाई दूसरों की तुलना में अधिक घनी होती है, लेकिन प्रत्येक प्रकार के कैनवास की बुनाई इतनी घनी होती है कि उससे बना कपड़ा अपारदर्शी होता है।

- **पेंटिंग के लिए कैनवास (Canvas for Painting):–**

कैनवास तेल चित्रकला, ऐक्रेलिक चित्रकला, पोर पेंट, जल रंग आदि के लिए एक सामान्य माध्यम बन गया है, जिसने लकड़ी के पैनलों का स्थान ले लिया है। कैनवास पर बनी हुई सबसे पुरानी जीवित तेल चित्रों में से एक लगभग 1410 की "फ्रांसीसी – मैडोना विद एंजेल्स" है, जो बर्लिन के गेमाल्डे गैलरी में मौजूद है। लगभग 1470 में पाओलो उकेलो द्वारा बनाई गई "सेंट जॉर्ज एंड द ड्रैगन" और 1480 के दशक में "सैंड्रो बॉटिकेली" की 'बर्थ ऑफ वीनस' में इसका उपयोग उस समय के लिए असामान्य था। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए बड़ी पेंटिंग कैनवास पर ही बनाई जाती थी, क्योंकि यह पैनल पेंटिंग की तुलना में कम खर्चीली थी।

इटली में 16वीं शताब्दी तक और उत्तरी यूरोप में 17वीं शताब्दी तक पैनल पेंटिंग अधिक लोकप्रिय थी। मांटेग्ना और वेनिस के कलाकार इस परिवर्तन में प्रमुख भूमिका निभा रहे थे, क्योंकि कैनवास आसानी से उपलब्ध था और इसे सबसे ज्यादा मानक माना जाता था।

कैनवास को आमतौर पर स्ट्रेचर नामक लकड़ी के फ्रेम पर फैलाया जाता है और इस्तेमाल से पहले उस पर गेसो की परत चढ़ाई जाती है ताकि ऑयल पेंट कैनवास के रेशों में सीधे संपर्क में न आए, जिससे कैनवास खराब हो सकता है। पारंपरिक और लचीला चॉक गेसो लेड कार्बोनेट और अलसी के तेल से बना होता है, जिसे खरगोश की खाल के गोंद पर लगाया जाता है। टाइटेनियम सफेद रंगद्रव्य और कैल्शियम कार्बोनेट से बना एक प्रकार का गेसो काफी भंगुर होता है और उसमें

DO NOT COPY

25. Visit to: https://www.britannica.com/topic/textile ⇒ 6:47 pm, 16 April 2026
26. Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Canvas ⇒ 6:31 pm, 16 April 2026

दरार पड़ने की संभावना रहती है। चूंकि लेड–आधारित पेंट जहरीला होता है, इसलिए इसका इस्तेमाल करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। बाजार में कई वैकल्पिक और अधिक लचीले कैनवास प्राइमर उपलब्ध हैं, जिनमें सबसे लोकप्रिय टाइटेनियम डाइऑक्साइड और कैल्शियम कार्बोनेट से बना सिंथेटिक लेटेक्स पेंट है, जिसे थर्मोप्लास्टिक इमल्शन से बांधा जाता है।

अच्छी तरह से तैयार कैनवास पर चित्रकार को रंग की प्रत्येक परत "मक्खन की तरह" आसानी से फैलती हुई दिखाई देगी, और सही तरीके से लगाने पर (मोटे रंग के ऊपर पतला रंग लगाने की तकनीक से) ब्रश के निशान स्पष्ट रूप से दिखते हैं।

- कैनवास का उपयोग (**Uses of Canvas**):–

कैनवास अपनी बहुमुखी प्रकृति, मजबूती, टिकाऊपन और टूट–फूट सहने की क्षमता के कारण विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है। सूती कैनवास कपड़े के कई उपयोग हैं, रोजमर्रा की वस्तुओं से लेकर विशेष उत्पादों तक इसका व्यापक उपयोग किया जाता है। सूती कैनवास की घनी बुनाई संरचना मजबूती और लचीलापन प्रदान करती है, जिससे यह अनेक उपयोगों के लिए एक आदर्श सामग्री बन जाती है। कैनवास के विभिन्न उपयोग निम्नलिखित हैं:

1. बैग (**Bags**):– बैकपैक, बेहतरीन टोट बैग, डफल बैग और मैसेंजर बैग बनाने के लिए टिकाऊ सामग्री का उपयोग किया जाता है, जोकि कैनवास एक अच्छा विकल्प बनाता है क्योंकि कैनवास टिकाऊ तथा पानी प्रतिरोधी है। इसलिए कैनवास बैग रोजमर्रा के उपयोग के लिए बहुत अच्छे हैं।

2. वस्त्र (**Clothing**): – इसकी मजबूती और टिकाऊपन के कारण इसका उपयोग डेनिम, जैकेट और वर्कवियर बनाने में किया जाता है।

3. तंबू और बाहरी सामान (**Tents and Outdoor Gear**): – कैनवास के कपड़े का उपयोग कैंपिंग टेंट, तिरपाल और बाहरी फर्नीचर बनाने के लिए किया जाता है। हैवी ड्यूटी कैनवास आश्रयों के निर्माण के लिए बहुत अच्छा है, और यह बहुत लोकप्रिय सामग्री है।

4. जूते (**Shoes**): – अपनी सांस लेने योग्य प्रकृति और मजबूती के कारण स्नीकर्स और एस्पैड्रिल्स जैसे कैजुअल फुटवियर बनाने के लिए लोकप्रिय है। यह हल्का और टिकाऊ है, जो इसे फुटवियर के लिए बेहतर बनाता है।

DO NOT COPY

5. असबाब (**Upholstery**): – टिकाऊपन और आसानी से साफ होने के कारण यह फर्नीचर कवर, कुशन और सीट कवर के लिए आदर्श है।

6. पाल (**Sails**): – इनका उपयोग नावों के लिए पाल बनाने में किया जाता है, क्योंकि ये हवा और पानी के संपर्क का सामना कर सकते हैं।

7. कला (**Art**):– कैनवास पर पेंटिंग के लिए एक पसंदीदा सामग्री है, जो तेल, ऐक्रेलिक और अन्य प्रकार के पेंट के लिए मजबूत सतह प्रदान करती है। लकड़ी के फ्रेम पर फैला हुआ कैनवास एक शानदार पेंटिंग सतह है। 15वीं और 16वीं शताब्दी में पेंटिंग के लिए कैनवास लोकप्रिय है।

8. कार कवर (**Car Covers**):– इनका उपयोग ऑटोमोबाइल उद्योग में कारों और ट्रकों के लिए सुरक्षात्मक कवर बनाने में किया जाता है।

9. फर्श को ढकने वाली सामग्री (**Floor Coverings**): – अधिक आवाज वाले क्षेत्रों के लिए गलीचों और कालीनों में उपयोग किया जाता है।

10. पृष्ठभूमि (**Back Drops**):– लाइटवेट कैनवास फोटोग्राफी के लिए बिच बैकड्रॉप के रूप में उपयोग के लिए लोकप्रिय है क्योंकि यह हल्का और ले जाने में आसान है।

- डक और कैनवास में क्या अंतर है? (**Difference between Duck and Canvas**):–

कैनवास दो प्रकार का होता है: प्लेन कैनवास और डक कैनवास। डक कैनवास का नाम डच शब्द "डोएक" से पड़ा, जिसका अर्थ कपड़ा होता है, और यह विशेष रूप से एक मजबूत सूती कपड़ा होता है। डक फैब्रिक एक प्रकार का कैनवास है, और डक और कैनवास का उपयोग समान परियोजनाओं के लिए किया जाता है। यह आवश्यक है कि कपड़ा मजबूत हो और उसका वजन भी भारी हो। डक कैनवास आमतौर पर मानक कैनवास से अधिक मजबूत होता है तथा आकार को बेहतर बनाए रखता है।

कैनवास और डक दोनों ही सादे बुने हुए कपड़े हैं, लेकिन उनमें कुछ अंतर हैं:–

- ✓ डक कैनवास स्टैंडर्ड कैनवास की तुलना में अधिक सघनता से बुना होता है।
- ✓ डक फैब्रिक की एक वर्गीकृत प्रणाली भी है, जिसे 1920 के दशक में स्थापित किया गया था।

27. Visit to: https://totebagfactory.com/blogs/news/what-is-canvas-and-how-was-it-made ⇒ 10:15 pm, 20 April 2026
28. Visit to: https://www.masterclass.com/articles/what-is-canvas-understanding-how-canvas-is-made-and-the-difference-between-canvas-and-duck ⇒ 10:55 pm, 20 April 2026

DO NOT COPY

- ✓ इसे 1 से 12 के पैमाने पर वर्गीकृत किया जाता है, जिसमें 12 सबसे हल्का कपड़ा तथा 1 सबसे भारी होता है।
- ✓ डक फैब्रिक केवल कपास से बनाया जाता है, इसलिए इसे कभी–कभी कॉटन डक कैनवास या कॉटन डक फैब्रिक भी कहा जाता है।

- वॉटर कलर (**Water Colour**):–

वॉटर कलर (अमेरिकी अंग्रेजी) या वाटरकलर (कॉमनवेल्थ अंग्रेजी), जिसे एक्वारेल (फ्रेंच) और लैटिन शब्द "एक्वा" (पानी) के इतावली लघु रूप से व्युत्पन्न भी कहा जाता है, यह एक चित्रकला की विधि है जिसमें रंग जल–आधारित घोल में निलंबित वर्णकों से बने होते हैं। वॉटर कलर माध्यम और परिणामी कलाकृति दोनों को संदर्भित करता है।

जलरंग चित्रों के लिए सबसे उपयुक्त आधार कागज होता है, आमतौर पर विशेष प्रकार का जलरंग कागज। अन्य आधारों या सतहों में पत्थर, हाथी दांत, रेशम, सरकंड़ा, पपाइरस, छाल के कागज, प्लास्टिक, वेल्लम, चमड़ा, कपड़ा, लकड़ी और कैनवास (जलरंगों के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए गेसो से लेपित) शामिल हैं। जलरंग कागज आमतौर पर पूरी तरह या आंशिक रूप से कपास से बना होता है। इससे सतह को उपयुक्त बनावट मिलती है और गीला होने पर विकृति कम होती है। जलरंग कागज अक्सर कोल्ड–प्रेस्ड कागज होते हैं, जो बेहतर बनावट और दिखावट प्रदान करते हैं। एक अन्य प्रकार का प्रेसिंग कागज हॉट–प्रेस्ड कागज है, जिसकी बनावट कोल्ड–प्रेस्ड कागज की तुलना में अधिक चिकनी होती है।

जलरंग, गोंद (आमतौर पर अरबी गोंद):में पिसे हुए रंगद्रव्य को ब्रश और पानी की सहायता से पेंटिंग की सतह (आमतौर पर कागज) पर लगाया जाता है। यह शब्द इस माध्यम में बनाई गई कलाकृतियों को भी दर्शाता है। रंगद्रव्य आमतौर पर पारदर्शी होते हैं, लेकिन इन्हें सफेदी के साथ मिलाकर अपारदर्शी बनाया जा सकता है और इस रूप में इसे बॉडी कलर के नाम से जाना जाता है।

जलरंग किसी भी अन्य चित्रकला विधि की तुलना में कहीं अधिक व्यापक है। पारदर्शी जलरंग अपने रंगों में ताजगी और चमक लाते हैं और कुशल सुलेख जैसी ब्रशवर्क की अनुमति देता हैं, जो इसे एक अत्यंत आकर्षक माध्यम बनाता है। जलरंग चित्रकार रंगों को परत दर परत लगाने की बजाय उन्हें छोड़ देते हैं। सफेद कागज सफेद रंग बनाता है। सबसे गहरे रंग सीधे ट्यूब से निकालते ही या उसमें बहुत कम पानी मिलाकर कागज पर लगाए जा सकते हैं। अन्यथा रंगों को पानी में पतला किया जाता है। रंग में जितना अधिक पानी होगा, कागज रंगों को उतना ही अधिक प्रभावित करेगा। उदाहरण के लिए, सिंदूरी रंग, एक गर्म लाल रंग, अधिक पानी मिलाने पर धीरे–धीरे ठंडे गुलाबी रंग में बदल जाएगा।

DO NOT COPY

जलरंग चित्रकला एक प्राचीन कला शैली है, संभवतः कला की सबसे प्राचीन शैली भी। पूर्वी एशिया में, स्याही से की जाने वाली जलरंग चित्रकला को ब्रश पेंटिंग या स्क्रोल पेंटिंग कहा जाता है। चीनी, कोरियाई और जापानी चित्रकला में यह प्रमुख माध्यम रहा है। अक्सर एकरंगी काले या भूरे रंगों में, अक्सर स्याही की छड़ी या उसके वर्णकों का उपयोग किया जाता है। भारत और इथियोपिया और अन्य देशों में भी जलरंग चित्रकला की लंबी परंपरा रही है। जिसे हम जलरंग कहते हैं, वह वास्तव में पारदर्शी होता है। यह बबूल के गोंद के साथ निबद्व होता है। 'टेम्परा' शब्द का अर्थ विभिन्न जल के द्वारा घोले जाने योग्य रंजक होते हैं, वे सभी किसी न किसी जल में घुलनशील माध्यमों के साथ निबद्ध होते हैं। इसके अंतर्गत सरेस, अंडा, गोंद, केजिन (छेना– ऐसा दूध तत्व जिससे से चिकनाई निकाला गया पदार्थ) आदि आते हैं। इसमें तीन रंगों का प्रयोग होता हैः

1. जल रंग 2. डिस्टेम्पर 3. टेम्परा

1. जल रंग (**Water Colour**):– जल रंग उसे कहते हैं जो गोंद के साथ निबद्ध किया जाता है। लेकिन यह रंग पारदर्शी होता है।

2. डिस्टेम्पर (**Distemper**):– इसके अंतर्गत ऐसे रंगक लेप होते हैं जो सरेस और गोंद में निबद्ध तो होते हैं लेकिन जलरंगों की तरह पारदर्शी नहीं होते बल्कि अपारदर्शी होते हैं।

3. टेम्परा (**Tempera**):– वैसे तो जितने भी रंग निबद्ध होते हैं वे सभी टेम्परा अर्थ के अंतर्गत आते हैं, लेकिन अमेरिका व यूरोप में जो रंगक लेप अंडे के साथ निबद्ध होते हैं उन्हें ही टेम्परा कहा जाता है। यह इसलिए होता है कि सुविधा के लिए रंग डिस्टेम्पर आदि के दूसरे नाम भी दिए जाते हैं, लेकिन जब यह बात उठती है कि जिस माध्यम में रंजक लेप निबद्ध है तो माध्यम का नाम लेना पड़ता है। अंडे द्वारा टेम्परा रंगक लेप सूख जाने पर पर्याप्त वाटरप्रूफ हो जाता है। सामान्य जल–प्रवाह इसे साफ नहीं कर पाता है। इसका लेप सूखने पर बहुत कड़ा हो जाता है। इसलिए अंडे के टेम्परा को विशेष रूप से टेम्परा नाम दिया गया है। जिसमें सभी माध्यमों को अपारदर्शी जल में घुलनशील रंजक लेपों को उस माध्यम का नाम लगाते हुए टेम्परा कहा जाता है, जैसे– एग टेम्परा, ग्लू टेम्परा आदि।

- वॉटर कलर के लिए सपोर्ट (**Water colour substrate**):

पारदर्शी जलरंगों के लिए ऐसे कागज जो प्राकृतिक रूप से सफेद होते हैं उत्तम होते हैं, क्योंकि ब्लीच किया हुआ कागज कालांतर में अपना रंग बदलता है और रासायनिक उपद्रवों के कारण उस पर धब्बे उत्पन्न होते हैं, जो चित्रकारी को भद्दा बना देते हैं। अतः जो कागज जल–रंगों के लिए विशेष रूप से निर्मित किए गए हों, उनका ही प्रयोग करना चाहिए। वॉटर कलर चित्रकारी के लिए बहुत अच्छे

29. Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Watercolor_painting ⇒ 9:48 am, 21 April 2026

DO NOT COPY

कागज का निर्माण होता है, लेकिन वे कुछ महंगे अवश्य होते हैं। परंतु इनका प्रयोग जहां तक संभव हो सके करना चाहिए। ब्रिटिश रॉयल सोसायटी निर्मित कागज बहुत ही उत्तम श्रेणी का होता है तथा अच्छा स्थायी सपोर्ट प्रदान करता है।

सन के रेशों से बनाया हुआ कागज सर्वोत्तम होता है। उन्हें बिना रसायनों के ही श्वेतित कर लिया जाता है। ये कुछ–कुछ हल्का पीलापन लिए हुए होते हैं, तेज चमक वाले नहीं होते हैं। इनमें स्टार्च या सरेस से इन्हें बाइंड किया जाता है, अन्यथा ये सोखते के समान सोखने वाले हो जाते हैं। जो कागज अधिक सोखते वाले होते हैं, उन पर सरेस या फिटकरी की साइजिंग की जा सकती है। चिन व जापान के लोग कागज बनाते समय ही फिटकरी का प्रयोग करते हैं। फिटकरी रंग को नहीं बदलती। कहीं–कहीं सरेस के साथ ही फिटकरी का प्रयोग किया जाता है। यदि कागज बनाने समय ही लुग्दियों में सरेस और फिटकरी को मिश्रण कर दिया जाए तो वे बहुत ही अच्छा प्रभाव देते हैं। कागजों को कभी भी नमी में नहीं रखना चाहिए। सूखे स्थान पर रखा हुआ कागज कभी भी खराब नहीं होता। किसी भी पुराने स्टॉक के कागज पर फिटकरी लेप का घोल लगाकर ही कार्य करना चाहिए, अन्यथा रंग लगाने के बाद जो धब्बे उत्पन्न होंगे वह कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता। क्योंकि रंग लगाने से पहले धब्बे का कारण ज्ञात नहीं होता है।

- **कागज को फैलाना (Spread paper):–**

जलरंग के लिए कागज को भिगोकर बोर्ड पर या किसी अन्य बोर्डप्लाई या तख्ती या स्केचिंग फ्रेम पर लगाया जाता है, जिससे वह तनकर इस प्रकार हो जाए कि उस पर पुनः कार्य करते समय जब वह गीला हो तब वह सिकुड़े या पिलापन उत्पन्न न हो जाए। अच्छी प्रकार से फैलाया हुआ कागज मढ़े हुए चमड़े के समान तन जाता है और इसे जब पुनः रंगों द्वारा या पानी लगाकर गीला किया जाता है तब भी वह तना हुआ रहता है, जिससे रंगों का घोल समान रूप से फैलता है और कहीं भी सिकुड़न या पनारियों में रूककर रंगों का शेड हल्का या गाढ़ा नहीं हो पाता और ब्रश का चलन भी सपाट, सुगम व स्वतंत्र रूप से हो पाता है। अतः यह आवश्यक होता है कि कागज को फैलाया या बोर्ड पर मढ़ा जाए। इसकी कई विधियां हैं।

सामान्य ड्राइंग बोर्ड पर ऐसा कागज जो पर्याप्त जल–सह हो या पूर्ण रूप से जल–सह हो, इसे लेकर पानी में भिगो लेना चाहिए और बोर्ड को भी तर करके कागज को इस प्रकार फैलाना चाहिए कि अंदर की हवा (कागज व बोर्ड की हवा) पूर्ण रूप से निकल जाए। जब हम कागज के एक सिरे को बोर्ड पर रखते हैं तो उसे दूसरे सिरे से दोनों हाथों से पकड़कर धीरे–धीरे बोर्ड पर 45 या 50 डिग्री का कोण बनाते है, तब अंदर की हवा निकल जाती है। इस तरह पूरा कागज फैल जाता है। तब उसका निरीक्षण करते हैं कि कहीं हवा तो रूकी नहीं है। जहां हवा फंसी है वहां पोलापन प्रतीत होगा। हवा निकालने के लिए कागज को पुनः उठाकर उसी प्रकार निकालना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो हथेली

DO NOT COPY

का दबाव भी प्रदान किया जा सकता है, लेकिन जहां तक संभव हो हाथ नहीं लगाना चाहिए। इस कागज को सोखते पेपर से दबाकर या पूरा ढ़क कर बीच से बाहर की ओर दबाने से भी हवा निकल जाती है। सोखते के स्थान पर दूसरा कागज भी व्यवहार में लाया जाता है, लेकिन इसे मूल कागज से बड़ा होना चाहिए। सोखता लगाने से कागज का अतिरिक्त जल खींच लिया जाता है।

- **जलरंग से कार्य करने की विधि (Method of working with watercolour):–**

जलरंग पारदर्शी होते हैं और उनकी महत्ता उनकी पारदर्शिता में है। जलरंग की पारदर्शिता ही उसे अन्य माध्यमों से अलग करती है। चित्रकार के लिए सबसे अधिक कठिनाई जलरंग की पारदर्शिता को तथा उससे उत्पन्न मूल रंग को संभालना होता है। यदि रंगों की पारदर्शिता समाप्त हो जाती है तो जलरंग चित्रकारी धुंधली, चमकहीन और गंदी हो जाती है। यह कार्य अत्यंत कठिनाइयों से भरा होता है जो चित्रकार के सतत अभ्यास एवं अनुभव पर आधारित होता है। किस रंग के ऊपर तथा किस रंग के साथ कौन सा रंग मिश्रित किया जाए कि रंगों का मूल व कागज से उत्पन्न होने वाले प्रकाश को कायम रखा जा सके – यह महत्वपूर्ण है। यह रंगों को अत्यंत पतला लगाने से व दूसरे रंग की चमक को इस प्रकार चढ़ाने से कायम रहता है कि ऊपर चढ़ाया हुआ दूसरा रंग नीचे लगाए हुए रंग को किस प्रकार इंटरफेयर करता है तथा आपसी तालमेल कायम रखता है। कभी भी मोटे रंगों का व्यवहार नहीं करना चाहिए और यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि नीचे का रंग पूर्ण रूप से सूख गया है या उसे भलीभांति फिक्स कर लिया गया है। फिक्स करने की विधि यह भी होती है कि पूरे कागज को जलरंग भरे हुए टब में डुबो दिया जाता है। इससे ऊपर लगाए जाने वाली ग्लेज या वास नीचे लगे हुए रंग को घुलने नहीं देते हैं। इससे रंगों की पारदर्शिता कायम रहती है। इस प्रकार का कार्य जिसमें एक परत के ऊपर कई बार चढ़ाने की आवश्यकता पड़ती है, जलरंग चित्रकारी को जल की बूंदों तथा जल की धारा से बचाना चाहिए।

- **तेल चित्रण (Oil Painting): –**

तेल चित्रकला एक ऐसी विधि है जिसमें रंगद्रव्यों को सुखाने वाले तेल के साथ मिलाकर रंगने की प्रक्रिया शामिल होती है। यह कई शताब्दियों से कैनवास, लकड़ी के पैनल या तांबे पर कलात्मक चित्रकला की सबसे आम तकनीक रही है। चित्रों को चित्रित करने के लिए तेल के लाभों में "अधिक लचीलेपन, समृद्ध और सघन रंग, परतों का उपयोग और हल्के से गहरे रंगों की व्यापक श्रृंखला" शामिल है। घर की दीवारों पर अलंकरण चित्रित करने आदि कार्यों के लिए प्राचीन काल से ही रंगों में तेल मिलाकर उपयोग किया जाता था, किन्तु किसी विशेष पद्धति के रूप में इस माध्यम का विकास अपेक्षाकृत नवीन है। इस माध्यम में विभिन्न भौतिक आधार (जैसे कैनवास) बहुत महत्वपूर्ण रहता है। अतः पटचित्रण के साथ–साथ यूरोप में इस पद्धति की भी बहुत उन्नति हुई। इसके हेतु रंगों में कोई

30. **Visit to: https://www.britannica.com/art/watercolor ⇒ 10:05 am, 21 April 2026**
31. चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 9, 10, 11, 12, 13, 14, 17

DO NOT COPY

प्राकृतिक तेल (जैसे अलसी का तेल आदि) मिलाया जाता है। कभी–कभी काम शीघ्रता से समाप्त करने के लिए इसमें जल्दी सूखने वाला पदार्थ (जैसे तारपीन का तेल आदि) भी मिला लेते हैं। साधारणतः तेल रंगों को सूखने में समय लगता है। अतः चित्र में लगातार कई दिन तक काम किया जा सकता है।

सबसे पुराने ज्ञात तेल चित्र अफगानिस्तान के बौद्ध कलाकारों द्वारा बनाए गए थे और ये 7वीं शताब्दी ईस्वी के हैं। तेल रंग का विकास बाद में यूरोपीय लोगों द्वारा कम से कम 12वीं शताब्दी से मूर्तियों और लकड़ी के काम को चित्रित करने के लिए किया गया था, लेकिन सीमित क्षेत्रों के लिए इसका सामान्य उपयोग उत्तरी यूरोप में प्रारंभिक नीदरलैंड चित्रकला के साथ शुरू हुआ, और पुनर्जागरण के चरम तक, तेल चित्रकला तकनीकों ने यूरोप के अधिकांश हिस्सों में पैनल चित्रों के लिए अंडे के टेम्परा पेंट के उपयोग को लगभग पूरी तरह से प्रतिस्थापित कर दिया था, हालांकि ऑर्थोडॉक्स आइकन या दीवार चित्रों के लिए नहीं, जहाँ टेम्परा और फ्रेस्को लगभग सामान्य विकल्प बने रहे।

- **तकनीक (Techniques): –**

तेल चित्रकला की पारंपरिक तकनीकों में अक्सर कलाकार कैनवास पर चारकोल या पतले रंग से विषय का रेखाचित्र बनाते हैं। तेल के रंग को आमतौर पर अलसी के तेल, कलाकार–श्रेणी के मिनरल स्पिरिट्स या अन्य विलायकों के साथ मिलाकर पतला या जल्दी सूखने वाला बनाया जाता है। तेल के रंग लगाने का एक बुनियादी नियम है: "ऊपर गाढ़ा तेल, नीचे पतला तेल", जिसका अर्थ है कि पेंट की प्रत्येक अतिरिक्त परत में नीचे वाली परत की तुलना में अधिक तेल होना चाहिए ताकि वह ठीक से सूख सके। यदि प्रत्येक परत में तेल कम होगा, तो अंतिम पेंटिंग में दरारें पड़ जाएंगी और वह उखड़ने लगेगी। कैनवास पर रंग की स्थिरता तेल के रंग की परतों पर निर्भर करती है। यह नियम स्थायित्व की गारंटी नहीं देता, यह तेल की गुणवत्ता और प्रकार ही है जो एक मजबूत और स्थिर पेंट फिल्म बनाता है।

परंपरागत रूप से पेंट को वेंटिंग की तरह लगाने के लिए अक्सर ब्रश का उपयोग किया जाता था, लेकिन पैलेट नाइफ और कपड़े जैसे अन्य तरीके भी हैं। पैलेट नाइफ कैनवास से पेंट को खुरचकर निकाल सकते हैं और उनका उपयोग लगाने के लिए भी किया जा सकता है। ऑयल पेंट अन्य प्रकार की कलात्मक सामग्रियों की तुलना में अधिक समय तक गीला रहता है, जिससे कलाकार आकृति का रंग, बनावट या आकार बदल सकता है। कई बार चित्रकार पेंट की पूरी परत को हटाकर फिर से शुरू कर सकता है। पेंट के गीले रहने के दौरान कपड़े और तारपीन की मदद से ऐसा किया जा सकता है, लेकिन कुछ समय बाद सूखी परत को खुरच कर हटाना पड़ता है। ऑयल पेंट वाष्पीकरण से नहीं बल्कि ऑक्सीकरण से सूखता है और आमतौर पर दो सप्ताह के भीतर सूख जाता है (कुछ रंग कुछ ही दिनों में सूख जाते हैं)।

DO NOT COPY

तेल चित्रण की दो विधियाँः– पहली विधिः चित्र को एक ही बार में पूर्ण कर दिया जाता है। रेखांकन के उपरांत तूलिका से रंग भरकर चित्र को उसी समय पूरा कर दिया जाता है। यदि चित्र खराब हो जाए तो उसे छोड़कर दूसरे कैनवास पर नए सिरे से कार्य आरंभ किया जाता है। इस विधि में पारदर्शिता नहीं होती क्योंकि उससे रेखांकन द्वारा पहले अंकित की गई आकृति झलकें। दूसरी विधिः– इसमें अधिक श्रम अपेक्षित होता है। सबसे पहले कैनवास पर रेखांकन करने के बाद एक ही रंग से चित्र पूर्ण कर लिया जाता है। तत्पश्चात विभिन्न स्थानीय रंग पतले–पतले करके लगाए जाते हैं (जिसमें से पहले किया हुआ कार्य दिखाई देता रहता है)। कहीं–कहीं गाढ़े रंग लगाने की भी आवश्यकता होती है। पतले रंगों को ग्लेज तथा गाढ़े अपारदर्शी रंग को स्कम्बल कहते हैं।

- **इतिहास (History):–**

सबसे पुराने ज्ञात जीवित तेल चित्र अफगानिस्तान के बामियान में लगभग 650 ईस्वी में निर्मित बौद्ध भित्ति चित्र हैं। बामियान रेशम मार्ग पर स्थित एक ऐतिहासिक बस्ती है और बामियान युद्धों के लिए प्रसिद्ध है, जो विशाल मूर्तियों की एक श्रृंखला थीं। इनके पीछे चट्टान को काटकर कमरे और सुरंगें बनाई गई थीं। ये भित्ति चित्र इन्हीं कमरों में स्थित हैं। कलाकृतियों में विभिन्न प्रकार के रंगों और सामग्रियों का उपयोग किया गया है और यहाँ तक कि अंतिम वार्निश परत का भी प्रयोग किया गया है। भित्ति चित्रों में प्रयुक्त रंग लगाने की तकनीक और परिष्कृत स्तर तथा उनका आज तक सुरक्षित रहना यह दर्शाता है कि एशिया में 7वीं शताब्दी से कुछ समय पहले ही तेल रंगों का उपयोग किया जा रहा था। तेल में रंगों को मिलाने की यह तकनीक यूरोप में लगभग 900 वर्षों तक अज्ञात रही।

अधिकांश यूरोपीय पुनर्जागरण स्रोत, विशेष रूप से वासारी, 15वीं शताब्दी के उत्तरी यूरोपीय चित्रकारों और विशेष रूप से जान वैन आइक को तेल रंग के आविष्कार का श्रेय गलत तरीके से देते हैं। हालांकि, 15वीं शताब्दी के आरंभिक और मध्य में वैन आइक और रॉबर्ट कैम्पिन जैसे कलाकारों द्वारा बनाई गई नीदरलैंड की शुरुआती चित्रकला में तेल को चित्रकला के सामान्य माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया गया और परतों तथा ग्लेज के उपयोग का पता लगाने वाले पहले कलाकार थे, जिसके बाद उत्तरी यूरोप के अन्य हिस्सों और इटली ने इसका अनुसरण किया।

19वीं शताब्दी से पहले, कलाकार या उनके प्रशिक्षु विभिन्न चित्रकला माध्यमों के लिए रंगों को पीसकर मिलाते थे। इससे रंगों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना मुश्किल हो जाता था और अधिकांश चित्रकला गतिविधियाँ स्टूडियो तक ही सीमित रहती थीं। यह स्थिति तब बदली जब 1841 में अमेरिकी चित्रकार जॉन गॉफ रैंड द्वारा निचोड़ने योग्य या मोड़ने योग्य धातु की ट्यूब का आविष्कार किया गया। इसके बाद तेल रंगों की ट्यूबें व्यापक रूप से उपलब्ध हो गईं। कलाकार रंगों को जल्दी और आसानी से मिला सकते थे, जिससे पहली बार अपेक्षाकृत सुविधाजनक रूप से खुले आसमान के नीचे चित्रकला संभव हो गई।

32. **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Oil_painting ⇒ 9:44 am, 22 April 2026**
33. चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 53, 54

DO NOT COPY

- **प्रक्रिया (Process):–**

तेल रंग, रंगों के पिगमेंट को तेल के माध्यम में मिलाकर बनाए जाता हैं। 19वीं शताब्दी से ही पेंटिंग शुरू करने से पहले मुख्य रंगों को पहले से तैयार पेंट ट्यूबों में खरीदा जाता है। अन्य रंगों की छटाएँ आमतौर पर पेंटिंग प्रक्रिया के दौरान थोड़ी–थोड़ी मात्रा में रंगों को मिलाकर प्राप्त की जाती हैं। पेंट को रखने और मिलाने के लिए कलाकार की पैलेट का उपयोग किया जाता है, जो परंपरागत रूप से हाथ में पकड़ी जाने वाली एक पतली लकड़ी की पट्टी होती है। पिगमेंट कई प्रकार के प्राकृतिक या कृत्रिम पदार्थ हो सकते हैं, जिनमें रंग होता है :– उदाहरण के लिए: पीले रंग के लिए सल्फाइड या नीले रंग के लिए कोबाल्ट लवण। पारंपरिक पिगमेंट खनिजों या पौधों पर आधारित होते थे, लेकिन वे लंबे समय तक अस्थिर साबित हुए। आधुनिक पिगमेंट अक्सर कृत्रिम रसायनों का उपयोग करते हैं। पिगमेंट को तेल के साथ मिलाया जाता है, आमतौर पर अलसी के तेल के साथ, लेकिन अन्य तेलों का भी उपयोग किया जा सकता है। अलग–अलग प्रकार के तेल अलग–अलग तरह से सूखते हैं, जिससे अलग–अलग प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

जब चित्र बनकर तैयार हो जाता है और एक वर्ष तक सूख जाता है, तो कलाकार अक्सर उस पर वार्निश की एक परत चढ़ाते हैं, जो आमतौर पर तारपीन में घुले डामर गोंद के क्रिस्टल से बनी होती है। इस प्रकार की वार्निश को तेल चित्रकला को नुकसान पहुँचाए बिना हटाया जा सकता है, जिससे सफाई और संरक्षण संभव हो जाता है। समकालीन कलाकार अपनी कलाकृतियों पर वार्निश नहीं लगाते, वे सतह को बिना वार्निश के ही रखना पसंद करते हैं ताकि वह चमकदार न दिखे।

- **ऐक्रेलिक पेंट (Acrylic Painting):**

ऐक्रेलिक पेंट एक तेजी से सूखने वाला पेंट है जो ऐक्रेलिक पॉलिमर इमल्शन और प्लास्टिसाइजर, सिलिकॉन तेल, डिफॉमर, स्टेबलाइजर या मेटल सोप जैसे माध्यम में निलंबित पिगमेंट से बना होता है। अधिकांश ऐक्रेलिक पेंट पानी आधारित होते हैं लेकिन सूखने पर जल प्रतिरोधी हो जाते हैं। पेंट को पानी से कितना पतला किया जाता है, या ऐक्रेलिक जैल, मीडियम या पेस्ट से कितना संशोधित किया जाता है, इसके आधार पर तैयार की गई ऐक्रेलिक पेंटिंग वाटरकलर, गौचे या ऑयल पेंटिंग जैसी दिख सकती है, या इसमें अन्य माध्यमों से प्राप्त होने वाली अपनी अनूठी विशेषताएं हो सकती हैं।

सामान्यतः किसी रंग पदार्थ को एक विशेष प्रकार के सिंथेटिक रेजिन के बंधक में तैयार किया गया रंग ऐक्रेलिक नाम से जाना जाता है। ऐक्रेलिक रंगों का विकास 1920 ई. के आसपास हुआ। चित्रकारों का एक समूह लैटिन अमेरिका में, विशेषकर मैक्सिको में, भित्तियों पर बड़े म्यूरल बनाना चाहता था। वहाँ तेल चित्रण तथा फ्रेस्को विधि दोनों का प्रयोग असफल हुआ तथा ऐसे माध्यम की खोज शुरू हुई जो शीघ्र सूखता हो तथा वातावरण के परिवर्तन में स्थायी बना रहे। इस खोज में रंग पदार्थों के लिए ऐसे संवाहक का प्रयोग प्रारंभ हुआ जो उससे पहले कारखानों के क्षेत्र में काम में आता था। चित्रण के

DO NOT COPY

लिए रंगों को बनाने के प्रयोग प्रारंभ हुए तथा पॉलिमर माध्यम काम में लाया जाने लगा। इस प्रकार पॉलिमर क्रिया से दो सिंथेटिक रेजिन प्राप्त हुए, वे हैं – ऐक्रेलिक तथा पॉलीविनाइल एसीटेट (**Polyvinyl Acetate PVA**) ऐसीटेट रेजिन का निर्माण ऐक्रेलिक तथा मेथाक्रेलिक (**Metacrylic**) अम्लों से होता है। इनका घोल पानी में पतला किया जा सकता है। अतः घोलक के रूप में पानी अथवा ऐक्रेलिक तरल का प्रयोग किया जा सकता है। पानी के वाष्पीकरण के साथ ही ये रंग सूखकर स्थायी हो जाते हैं। इसके बाद इनमें कोई रासायनिक क्रिया नहीं होती। अतः चित्रकार रंग की एक परत लगाकर उसे बिना कोई नुकसान पहुँचाए ग्लेज अथवा ऊपरी परतों में मनचाहा कार्य पूरा कर सकता है।

- इतिहास (**History**):–

जर्मन रसायनज्ञ ओटो रोहम ने ऐक्रेलिक रेजिन का आविष्कार किया, जिससे ऐक्रेलिक पेंट का विकास हुआ। 1934 में, जर्मन रसायन कंपनी **BASF** द्वारा पहला प्रयोग करने योग्य ऐक्रेलिक रेजिन डिस्पर्शन विकसित किया गया, और रोहम एंड हास द्वारा पेटेंट कराया गया। इस सिंथेटिक पेंट का पहली बार उपयोग 1940 के दशक में किया गया, जिसमें तेल और जलरंग दोनों के कुछ गुण थे। 1946 और 1949 के बीच, लियोनार्ड बोकारो और सैम गोल्डन ने मैग्ना पेंट ब्रांड के तहत एक सॉल्यूशन ऐक्रेलिक पेंट का आविष्कार किया। ये मिनरल स्पिरिट आधारित पेंट थे। बाद में जल आधारित ऐक्रेलिक पेंट को लेटेक्स हाउस पेंट के रूप में बेचा गया।

1960 के दशक में, लैंसलॉट रिबेरो ने ब्रिटेन में कला के लिए ऐक्रेलिक पेंट के उपयोग में अग्रणी भूमिका निभाई, क्योंकि वे तेल पेंट के सूखने में लगने वाले समय से "बढ़ती अधीरता" और साथ ही "रंगों की चमक की कमी" से परेशान थे। उन्होंने व्यावसायिक पेंटों में इस्तेमाल होने वाले नए सिंथेटिक प्लास्टिक बेस को अपनाया और जल्द ही उन्हें आईसीआई, कोर्टल्ड्स और गीगी जैसे निर्माताओं से मदद मिली। अखबार के अनुसार, कंपनियों ने उन्हें अपने नवीनतम पेंट के नमूने इतनी मात्रा में उपलब्ध कराए कि वे तीन दशक बाद भी उनका उपयोग कर रहे थे।

1956 में, जोस एल. गुटिरेज ने मैक्सिको में पॉलिटेक ऐक्रेलिक आर्टिस्ट्स कलर्स का उत्पादन किया, और सिनसिनाटी स्थित परमानेंट पिगमेंट्स कंपनी के हेनरी लेविसन ने लिक्विटेक्स रंगों का उत्पादन किया। ये दोनों उत्पाद शृंखलाएं पहली ऐक्रेलिक इमल्शन आर्टिस्ट्स पेंट थीं, जबकि आधुनिक उच्च–विस्कोसिटी पेंट 1960 के दशक की शुरुआत में उपलब्ध होने लगे, जैसे कि ऑस्ट्रेलिया में डेरिवान।

DO NOT COPY

- चित्रण तल (Painting surface):–

ऐक्रेलिक रंगों में चित्रण के लिए विभिन्न प्रकार की सतहों का उपयोग किया जा सकता है। ऐसी कोई भी सतह जिस पर रंगों का थोड़ा अंश शोषित हो सकता है, चित्रण के लिए काम में लाई जा सकती है। जैसे – कैनवास, जूट का कैनवास, लकड़ी, हार्डबोर्ड, प्लाईबोर्ड, कागज, मिट्टी आदि। ऐक्रेलिक रंगों की प्रकृति जलरंग के अधिक समीप है, अतः चित्रण तल की स्वच्छता तथा श्वेतता चित्र के रंगों की चमक तथा रंगत को प्रभावी बनाने में सहायक होती है। तैलीय सतहों पर ऐक्रेलिक रंगों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कैनवास पर ऐक्रेलिक प्राइमर लगाकर अथवा सीधे रंग लगाकर चित्रण करना चाहिए। कागज पर लगाने के लिए यह प्राइमर भारी हो जाता है, अतः केवल ऐक्रेलिक माध्यम की एक परत कागज पर लगाकर चित्रण किया जा सकता है। कार्य करने से पूर्व कागज को गीला करके टेप द्वारा बोर्ड पर चिपका लेना चाहिए। लकड़ी, बोर्ड आदि को रेगमाल से घिसकर प्राइमर लगाना चाहिए। धातु की चादर को भी रेगमाल से रगड़कर प्राइमर लगाकर चित्रण के लिए प्रयुक्त करते हैं। सफेद प्लास्टिक की पैलेट ऐक्रेलिक रंग के लिए अधिक उपयोगी होती है। लकड़ी की पैलेट की तुलना में प्लास्टिक की पैलेट पर से रंग आसानी से छुड़ाए जा सकते हैं।

- तकनीक (Technique): –

रासायनिक रूप से निष्क्रिय और स्थायी ऐक्रेलिक रंगों ने तकनीक के नए आयाम खोल दिए हैं। प्रारंभ में चित्रकारों ने पहले से प्रचलित माध्यमों की भांति ही इन रंगों को काम में लाना प्रारंभ किया, किन्तु ऐक्रेलिक की अपनी कुछ विशेषताओं के कारण कलाकारों ने नई तकनीकें विकसित कीं। ऐक्रेलिक की तकनीक तेल माध्यम से नहीं ली जा सकती। ऐक्रेलिक की प्रकृति जलरंग, ग्वास तथा टेम्परा के अधिक समीप है। ऐक्रेलिक रंगों की हल्कापन और पारदर्शिता उन्हें पानी अथवा घोलक से पतला करने को प्रेरित करती है। इन रंगों की पारदर्शक परतों से कैनवास की श्वेतता से परावर्तित होकर प्रकाश की जो चमक प्रदान करता है। वह अपारदर्शक सफेद लगाने से नष्ट हो जाती है।

पानी तथा वाहक तरल में घुलकर रंगों का पारदर्शक होना ऐक्रेलिक का महत्वपूर्ण गुण है। पारदर्शिता के गुण से ऐक्रेलिक रंगों में ग्लेज के प्रभाव सुरक्षित रूप में दिया जा सकते है। अधिक पानी से पतले किए हुए रंग में बंधक तरल मिला लेना आवश्यक होता है, जिससे रंग के कण बंधक के अभाव में ढीले न रह जाएं।

बिना पतला किए हुए रंग गाढ़े तथा सघन वाले होते हैं। कुछ ही रंग बिना पतला किए ब्रश से इन रंगों को ब्रश द्वारा अपारदर्शक रूप में लगाया जा सकता है, किन्तु फिर भी थोड़े सा पानी या वाहक तरल मिलाना क्रियाविधि से लाभकारी होता है। उभरे हुए टेक्सचर के लिए ट्यूब से निकलते हुए रंग को सीधे काम में लाया जा सकता है, ट्यूब से निकलते रंग सतह से दृढ़ पकड़ देते है। तथा शीघ्र

DO NOT COPY

सूख जाते है। ऐक्रेलिक रंगों के शीघ्रता से सूखने की क्रिया को कम करना हो तो उनके सूखने की क्रिया को कम करने वाले पदार्थ (**Retarders**) रंग में मिलाए जा सकते हैं।

DO NOT COPY

34. Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Acrylic_paint ⇒ 10:35 pm, 22 April 2026
35. चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – **79, 80, 81, 82**

तृतीय अध्याय

- चित्रण में रंगों का मनोविज्ञान

चित्रण में रंगों का मनोविज्ञान

कला में हमारे परिवेश को आकार देने और हमारी भावनाओं को प्रभावित करने की परिवर्तनकारी शक्ति होती है। इस संबंध के केंद्र में रंगों का मनोविज्ञान निहित है – एक ऐसा क्षेत्र जो इस बात की गहराई से पड़ताल करता है कि रंग हमारे मानसिक स्थिति और व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं। चाहे आप अपने रहने की जगह को सजा रहे हों या फिर किसी विशेष मनोदशा के लिए कलाकृति का चयन कर रहे हों, रंगों का भावनात्मक अनुरूप को समझना आपको अपनी मंशा के अनुरूप चुनाव करने में मदद कर सकता है। आइए कला में रंगों के मनोविज्ञान का अन्वेषण करें और जानें कि आप अपनी मनोदशा के अनुरूप सही कलाकृति का चुनाव कैसे कर सकते हैं।

- **रंग मनोविज्ञान के पीछे का विज्ञान :–**

रंगों का मानव भावनाओं और धारणाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वे मस्तिष्क को उत्तेजित करते हैं, जिससे स्मृति से लेकर निर्णय लेने तक सब कुछ प्रभावित होता है। यह घटना जीव विज्ञान और संस्कृति में निहित है।

1. जैविक प्रभाव :–

रंग हाइपोथेलेमस में प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं, जो भावनाओं, नींद और हार्मोन को नियंत्रित करता है। उदाहरण के लिए, लाल रंग जैसे गरम रंग हृदयगति और ऊर्जा बढ़ा सकते हैं, जबकि नीले जैसे ठंडे रंग विश्राम को बढ़ावा देते हैं।

2. सांस्कृतिक और व्यक्तिगत संदर्भ :–

सांस्कृतिक प्रतीकवाद और व्यक्तिगत अनुभव भी रंगों के प्रति हमारी धारणा को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिमी संस्कृतियों में सफेद रंग पवित्रता का प्रतीक है, जबकि कुछ पूर्वी परम्पराओं में इसे शोक से जोड़ा जाता है। इसके अलावा काला रंग पश्चिम में शोक से जोड़ा जाता है।

DO NOT COPY

- रोजमर्रा की जिंदगी में रंग का मनोविज्ञान :–

रंग हमारे मन पर भावनात्मक प्रभाव पैदा करते हैं। बिल्कुल अजीब नहीं लगता। वास्तव में यह हमारी रोजमर्रा की भाषा का हिस्सा है। दूसरे शब्दों में गरम रंगों के बारे में बात करना आम बात है। लाल, पीले या नारंगी की तरह जो सकारात्मक या नकारात्मक विभिन्न प्रतिक्रियाओं को उत्तेजित कर सकते हैं। दूसरी तरफ हम आमतौर पर ठंडे रंगों के बारे में बात करते हैं, जैसे कि हरा या नीला जो आमतौर पर शांति की भावना का कारण बनता है, लेकिन उदासी भी होती है। यह इतिहास सिद्ध तथ्य है कि जीवन की सभी कला, धर्म, दर्शन, शिक्षा, चिकित्सा, मनोविज्ञान आदि पर रंगों का विशेष प्रभाव पड़ता है। रंग हमारी भावनाओं और परम्पराओं का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। रंगों का भावना से गहरा संबंध अनुभव किया गया है। इसी कारण रंगों के संदर्भ में हर एक की पसंद अलग–अलग होती है। किसी को प्रभाव का सुनहरा रंग पसंद है तो किसी को सांझ की लालिमा।

- कला में रंगों का भावनात्मक जुड़ाव :–

प्रत्येक रंग अपने आप में अद्वितीय भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक अर्थ रखता है। आइए देखें कि विभिन्न रंग आपके मूड को कैसे प्रभावित कर सकते हैं :

1. गर्म रंग : ऊर्जावान और उत्तेजक
2. लाल रंग : जुनून, ऊर्जा और तीव्रता
    - लाल रंग की कलाकृति प्यार, उत्साह या यहाँ तक कि क्रोध जैसी शक्तिशाली भावनाओं को जगा सकती है।
    - इसके लिए सर्वोत्तम : बैठक कक्ष में जीवंत वातावरण बनाने या कार्यालयों को ऊर्जावान बनाने के लिए।
    - उदाहरण : गहरे लाल रंग की रेखाओं वाली अमूर्त कला जुनून और गतिशीलता को जगाती है।

3. नारंगी रंग : गर्माहट, रचनात्मकता और आशावाद

DO NOT COPY

- नारंगी रंग मन को प्रसन्न करता है और सामाजिकता और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करता है।
- इसके लिए सबसे उपयुक्त : रसोई, बच्चों के कमरे या सामुदायिक कार्यालयों में खुशनुमा माहौल जोड़ना।
- उदाहरण : सूर्यास्त के रंगों वाली पेंटिंग गर्माहट और आशावाद को बढ़ावा देती है।

3. पीला रंग : खुशी, आत्मविश्वास और स्पष्टता

- पीला रंग सकारात्मकता और मानसिक स्पष्टता का प्रतीक है, लेकिन अधिक मात्रा में होने पर यह असहनीय हो सकता है।
- इसके लिए सबसे उपयुक्त : गलियारों या कार्यालयों में ऊर्जा का संचार करना।
- उदाहरण : सुनहरे रंग के स्पर्श वाली न्यूनतम कला एक खुशमिजाज माहौल बनाती है।

- ठंडे रंग : शांत और सुखदायक :–

1. नीला रंग : शांति, विश्वास और चिंतन

- नीला रंग विश्राम और आत्मनिरीक्षण को बढ़ावा देता है, इसलिए यह तनाव से राहत के लिए आदर्श है।
- इसके लिए सबसे उपयुक्त : शयनकक्ष, ध्यान कक्ष या शांत कोने।
- उदाहरण : हल्के नीले रंग वाले समुद्री दृश्य या अमूर्त कला शांति का भाव जगाते हैं।

2. हरा रंग : संतुलन, विकास और नवीनीकरण

- हरा रंग हमें प्रकृति से जोड़ता है, सामंजस्य और ताजगी को बढ़ावा देता है।
- इसके लिए उपयुक्त : अध्ययन कक्ष, पुस्तकालय या ऐसे स्थान जिन्हें ताजगी का स्पर्श चाहिए।
- उदाहरण : वनस्पति–थीम वाली कला स्थिरता और जीवंतता की भावना लाती है।

3. बैंगनी रंग : रहस्य, आध्यात्मिकता और विलासिता

DO NOT COPY

- बैंगनी रंग नीले रंग की शांति और लाल रंग की ऊर्जा को संतुलित करता है, और अक्सर रचनात्मकता और राजसीपन का प्रतीक होता है।
- इसके लिए सर्वोत्तम : रहने की जगहों पर परिष्कार जोड़ना या स्टूडियो में कल्पनाशीलता को जगाना।
- उदाहरण : बैंगनी रंग के ग्रेडिएंट वाली अमूर्त कला रहस्य और सुंदरता को प्रेरित करती है।

- तटस्थ रंग : बहुमुखी प्रतिभा और सुंदरता :–

1. सफेद रंग : सादगी, शांति और स्वच्छता

- सफेद रंग पवित्रता का प्रतीक है और विशालता का एहसास कराता है।
- इसके लिए सर्वोत्तम : न्यूनतम शैली वाले स्थानों या दीर्घाओं की शोभा बढ़ाना।
- उदाहरण : एकरंगी कलाकृतियाँ एक शांत और शुद्ध प्रभाव प्रदान करती हैं।

2. काला रंग : शक्ति, परिष्कार और गहराई

- काला रंग लालित्य और रहस्य का प्रतीक है, जो अक्सर एक नाटकीय विरोधाभास के रूप में काम करता है।
- इसके लिए सबसे उपयुक्त : आधुनिक इंटीरियर में एक दमदार छाप छोड़ना।
- उदाहरण : ब्लैक एंड व्हाइट फोटोग्राफी गहराई और रहस्य का संचार करती है।

3. धूसर रंग : स्थिरता, तटस्थता और सूक्ष्मता

- ग्रे रंग संतुलन प्रदान करता है, और अन्य रंगों को चमकने के लिए एक पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करता है।
- इसके लिए उपयुक्त : कार्यालय, अस्थायी स्थान या समकालीन डिजाइन।
- उदाहरण : धूसर रंगों वाली अमूर्त कला एक सूक्ष्म सुंदरता का सृजन करती है।

4. भूरा रंग : आराम, विश्वसनीयता और गर्माहट

DO NOT COPY

- ब्राउन रंग धरती से जोड़ता है, आराम और विश्वसनीयता प्रदान करता है।
- इसके लिए उपयुक्त : देहाती या विंटेज थीम वाले इंटीरियर।
- उदाहरण : लकड़ी की बनावट या मिट्टी के रंगों वाली कलाकृतियाँ गर्माहट प्रदान करती हैं।

DO NOT COPY

36. **Visit to: https://hi.wikipedia.org/wiki/ ⇒ 11:10 am, 23 April 2026**

चतुर्थ अध्याय

- चित्रण सामग्री का ब्रांड का विवरण

चित्रण सामग्री का ब्रांड का विवरण

पेंसिल ब्रांड (PENCIL BRAND)

- फैबर–कास्टेल (**Faber Castell**) :– मात्रा : 6, प्रकार : ग्रेफाइट, साइज (**Size**) : **2B, 3B, 4B, 5B, 6B, 8B**
- स्टेडलर मार्स लुमोग्राफ ड्राइंग पेंसिल (**Staedtler Mars Lumograph Drawing Pencils**) :– मात्रा : 12, प्रकार : ग्रेफाइट, सामग्री : लकड़ी, साइज : **6B, 5B, 4B, 3B, 2B, B, HB, F, H, 2H, 3H, 4H**
- किएटाकलर चारकोल ड्राइंग पेंसिल (**Creatacolor Charcoal Drawing Pencil**) : – मात्रा : 20, प्रकार : चारकोल, विवरण :, 3 चारकोल पेंसिल, 2 मोनोलिथ ग्रेफाइट, 3 नीरो पेंसिल, 4 विलो चारकोल स्टिक, 1 चारकोल ब्लॉक, चारकोल के 5 ग्रेड
- बियान्यो ब्लैक चारकोल पेंसिल (**Biangyo Black Charcoal Pencil**)
- कर्ट्जी आर्टिस्ट पेंसिल (**Kurtzy Artist Pencils**) :– मात्रा : 12, प्रकार : ग्रेफाइट साइज : **B, 2B, 3B, 4B, 5B, 6B, 7B, B, HB, H, 2H, F**
- आर्टलाइन पेंसिल (**Artline Pencil**)

➢ क्रेयॉन्स ब्रांड (CRAYONS BRAND) :–

1. क्रेयोला सिली सेंट्स ट्विस्टेबल क्रेयॉन्स (24 रंग)
2. फैबर–कास्टेल जेलाटोस कलर
3. मैटेलिक क्रेयॉन्स (15 रंग)
4. डॉम्स प्लास्टिक क्रेयॉन (28 शेड्स), कैमलिन क्रेयॉन्स

➢ पेस्टल (PASTEL) :– (सॉफ्ट पेस्टल या ऑयल पेस्टल)

1. मुंग्यो सॉफ्ट पेस्टल
2. प्रेम संस कैमल सॉफ्ट पेस्टल

DO NOT COPY

3 कैमल सॉफ्ट पेस्टल

4 ए. डेल्यू – फैबर–कास्टेल

5 कैमलिन कोकुयो आर्टिस्ट ऑयल पेस्टल

- चारकोल (**CHARCOAL**) :–

1 कैमल ब्लैक चारकोल पेंसिल (सॉफ्ट, मीडियम और हार्ड)

2 जनरल व्हाइट चारकोल

3 स्टेडलर वुडन चारकोल (6 पीस)

4 वुड व्हाइट चारकोल पेंसिल

5 मोंट मार्ट क्रोम वुड पेंसिल

- तेल रंग (**OIL PAINT**) :

1 विंसर एंड न्यूटन विंटन ऑयल (**Winsor & Newton Winton Oil**)

2 ग्रुम्बेकर ऑयल पेंट (**Grumbacher Oil Paint**)

3 ओल्ड हॉलैंड क्लासिक ऑयल (**Old Holland Classic Oil**)

4 विंसर एंड न्यूटन आर्टिस्ट्स ऑयल (**Winsor & Newton Artist's Oil**)

5 डेलर राउनी जॉर्जियन ऑयल (**Daler Rowney Georgian Oil**)

- ऐक्रेलिक रंग (**ACRYLIC PAINT**) :

1 कैमलिन कोकुयो फैब्रिका ऐक्रेलिक पेंट (**Camlin Kokuyo Fabrica Acrylic Paint**)

2 पिडिलाइट फेविक्रिल ऐक्रेलिक पेंट (**Pidilite Fevicryl Acrylic Paint**)

3 ब्रस्टो आर्टिस्ट्स गौचे ऐक्रेलिक (**Brusto Artist Gouache Acrylic**)

4 कैमलिन ऐक्रेलिक पेंट (**Camlin Acrylic Paint**)

5 मोंट मार्टे ऐक्रेलिक पेंट (**Mont Marte Acrylic Paint**)

DO NOT COPY

- जल रंग (**WATER COLOR**) :
    1. कैमलिन कोकुयो आर्टिस्ट्स वॉटरकलर ट्यूब (**Camlin Kokuyo Artist*s Watercolor Tube**)
    2. फैबर–कास्टेल वॉटरकलर (**Faber & Castell Watercolor**)
    3. कैमलिन कोकुयो वॉटरकलर केक्स (**Camlin Kokuyo Watercolor Cakes**)
    4. कोई वॉटरकलर (**KOI Watercolor**)

- ब्रश (**BRUSHES**) :–
    1. फैबर–कास्टेल पेंट ब्रश (**Faber & Castell Paint Brush**)
    2. कैमल पेंट ब्रश (**Camel Paint Brush**)
    3. सामान्य कलाकार के पेंटिंग ब्रश (**Generic Artist's Painting Brushes**)
    4. कैमलिन हॉग हेयर ब्रश (**Camlin Hog Hair Flat Brushes**)
    5. कैमल राउंड सिंथेटिक गोल्ड हेयर ब्रश (**Camel Round Synthetic Gold Hair Brush**)

- कैनवास (**CANVAS**):
    1. कॉटन डक कैनवास (**Cotton Duck Canvas**)
    2. लिनन कैनवास (**Linen Canvas**)
    3. वाटरकलर कैनवास (**Watercolor Canvas**)
    4. कैनवास प्रारूप और आकार (**Canvas Formats & Size**)
    5. कैनवास पैनल (**Canvas Panels**)

DO NOT COPY

उपसंहार

अब आपने इस लघु शोध प्रबंध के माध्यम से सभी अध्यायों को पढ़ लिया है, और आपको चित्रण सामग्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट हुआ होगा कि दृश्य सामग्री (जैसे : चित्र, पोस्टर, वीडियो आदि) केवल जानकारी देने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि यह समाज, संस्कृति और व्यक्ति की सोच पर गहरा प्रभाव डालती है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि चित्रण सामग्री लोगों के विचारों, भावनाओं और व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। यह समाज में प्रचलित धारणाओं को मजबूत भी करती है और कई बार उन्हें बदलने का कार्य भी करती है। विशेष रूप से आधुनिक डिजिटल युग में, दृश्य सामग्री का प्रभाव और भी अधिक बढ़ गया है।

सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए तो चित्रण सामग्री विभिन्न परम्पराओं, मूल्यों और जीवन शैली को प्रदर्शित करती है। यह एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति तक विचारों के आदान–प्रदान का महत्वपूर्ण माध्यम बनती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, यह पाया गया कि चित्रण सामग्री व्यक्ति की भावनाओं, रुचियों और मानसिक स्थिति पर प्रभाव डालती है। सकारात्मक चित्रण प्रेरणा और जागरूकता बढ़ा सकता है, जबकि नकारात्मक सामग्री भ्रम या गलत धारणाएं उत्पन्न कर सकती है।

हालांकि, इस अध्ययन की कुछ सीमाएं भी सामने आई। जैसे कि अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा चित्रण सामग्री की व्याख्या अलग–अलग हो सकती है, क्योंकि यह उनकी व्यक्तिगत सोच, अनुभव और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है।

पेंटिंग कार्य में शौकीनों की सक्रिय भागीदारी व्यक्तियों को अपने अनुभवों के अर्थ का पता लगाने में मदद करती है। व्यक्तिगत भावनाओं को अभिव्यक्त देकर कलाकार व्यक्तित्व का विकास करता है। पेंटिंग की सराहना जीवन को गहरा और समृद्ध करती है। कला के कई अलग–अलग प्रकार हैं। वे पेंट, चित्रकार, विषय, और शैलियों में भी होते हैं, लेकिन यह सभी किसी चीज को कला का एक नमूना बनाने के तरीके हैं।

अंत : यह कहा जा सकता है कि चित्रण सामग्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हम दृश्य संसार के प्रभाव को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। भविष्य में इस क्षेत्र में

DO NOT COPY

और अधिक गहन शोध की आवश्यकता है, विशेष रूप से सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्मों पर उपयोग होने वाली दृश्य सामग्री के संदर्भ में।

DO NOT COPY

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 कला दर्शन, प्रकाश वीरश्वर, नूपुर शर्मा, पृष्ठ सं. – 3

2 भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, डॉ. रीता प्रताप, पृष्ठ सं. – 1

3 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/The_arts ⇒ 2:23 pm, 5 March 2026**

4 **Visit to: https://art.info.hindi.wordpress.com ⇒ 2:39 pm, 9 March 2026**

5 **Visit to: https://hi.wikipedia.org/wiki/ ⇒ 1:29 pm, 10 March 2026**

6 **Visit to: https://hi.wikipedia.org/wiki/ ⇒ 9:36 pm, 15 March 2026**

7 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Painting ⇒ 8:05 pm, 17 March 2026**

8 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Aesthetics ⇒ 4:25 pm, 20 March 2026**

9 चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 1, 2

10 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Pencil ⇒ 10:50 pm, 5 April 2026**

11 **Visit to: https://artincontext.org/types-of-pencil/ ⇒ 6:24 pm, 6 April 2026**

12 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Pencil ⇒ 7:47 pm, 7 April 2026**

13 **Visit to: https://www.britannica.com/technology/pencil-writing-implement ⇒ 7:58 pm, 7 April 2026**

14 चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 6

15 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Crayon ⇒ 12:40 pm, 10 April 2026**

16 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Pastel ⇒ 8:51 pm, 10 April 2026**

17 चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 7

18 **Visit to: https://www.britannica.com/art/pastel-art ⇒ 11:40 am, 11 April 2026**

19 **Visit to: https://www.wisdom.com/hi/data/Pastel/ ⇒ 11:45 pm, 11 April 2026**

20 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Charcoal_(art) ⇒ 9:41 pm, 12 April 2026**

21 **Visit to: https://nitramcharcoal.com/blogs/blog/history-charcoal ⇒ 5:45 pm, 14 April 2026**

22 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Brush ⇒ 6:46 pm, 14 April 2026**

23 **Visit to: https://www.britannica.com/art/brush-art ⇒ 9:05 pm, 14 April 2026**

24 **Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Paintbrush ⇒ 9:18 pm, 14 April 2026**

25 **Visit to: https://www.britannica.com/topic/textile ⇒ 6:47 pm, 16 April 2026**

DO NOT COPY

26 Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Canvas ⇒ 6:31 pm, 16 April 2026

27 Visit to: https://totebagfactory.com/blogs/news/what-is-canvas-and-how-was-it-made ⇒ 10:15 pm, 20 April 2026

28 Visit to: https://www.masterclass.com/articles/what-is-canvas-understanding-how-canvas-is-made-and-the-difference-between-canvas-and-duck ⇒ 10:55 pm, 20 April 2026

29 Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Watercolor_painting ⇒ 9:48 am, 21 April 2026

30 Visit to: https://www.britannica.com/art/watercolor ⇒ 10:05 am, 21 April 2026

31 चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 9, 10, 11, 12, 13, 14, 17

32 Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Oil_painting ⇒ 9:44 am, 22 April 2026

33 चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 53, 54

34 Visit to: https://en.wikipedia.org/wiki/Acrylic_paint ⇒ 10:35 pm, 22 April 2026

35 चित्रण सामग्री, डॉ0. राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ सं0. – 79, 80, 81, 82

36 Visit to: https://hi.wikipedia.org/wiki/ ⇒ 11:10 am, 23 April 2026

DO NOT COPY

चित्र संग्रह सूची

क्र0. न0.	चित्र का नाम
1	फैबर–कास्टेल पेंसिल
2	डरिवान लिक्विड पेंसिल
3	क्रेयोला 64 क्रेयॉन कलर
4	डॉम्स वैक्स क्रेयॉन्स
5	फैबर–कास्टेल सॉफ्ट पेस्टल
6	कैमल ऑयल पेस्टल
7	मोंट–मार्टे चारकोल पेंसिल
8	कैमल चारकोल स्टिक
9	ब्रस्टो चारकोल पाउडर
10	ऑल्ड हॉलैंड क्लासिक ऑयल कलर
11	विंसर एंड न्यूटन आर्टिस्ट्स ऑयल कलर
12	मोंट–मार्टे ऐक्रेलिक पेंट
13	कैमल फेबरिका ऐक्रेलिक कलर
14	फैबर–कास्टेल वाटर कलर
15	ब्रस्टो प्रोफेशनल आर्टिस्ट्स वॉटर कलर
16	ब्रस्टो आर्टिस्ट्स गौचे कलर
17	ब्रश के प्रकार
18	फैबर–कास्टेल 7 पेंट ब्रश सिंथेटिक हेयर
19	कैनवास रोल
20	कॉटन डक कैनवास
21	कैनवास बोर्ड

DO NOT COPY

चित्र

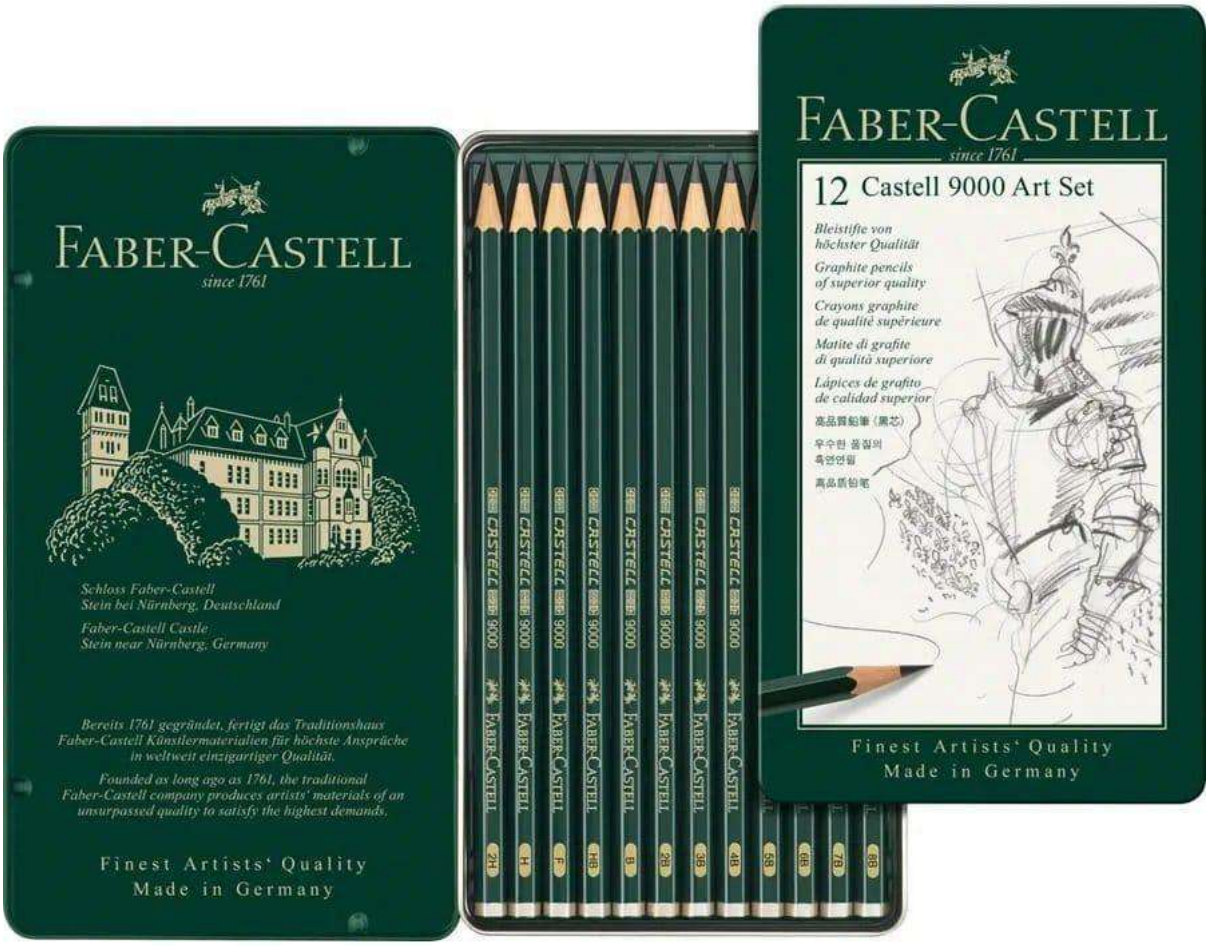

फैबर–कास्टेल पेंसिल



डरिवान लिक्विड पेंसिल

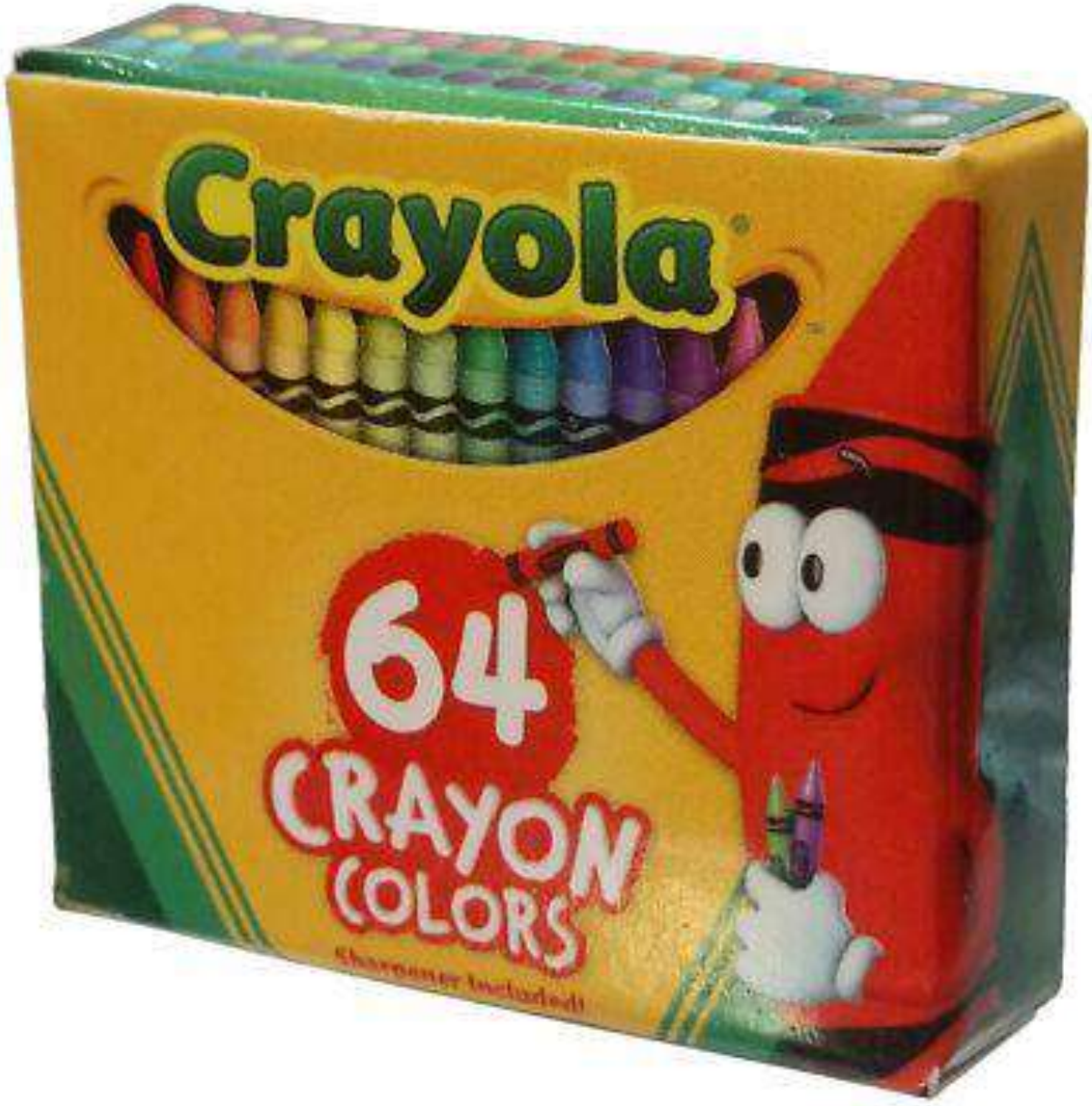

क्रेयोला 64 क्रेयॉन कलर



डॉम्स वैक्स क्रेयॉन्स

DOMS



फैबर–कास्टेल सॉफ्ट पेस्टल


Camel
No.1 Selling Brand of Crayons
OIL PASTELS
Mixing ka magic
Richer and Intermixable colours
25 SHADES
FREE
Camlin
KOKUYO

कैमल ऑयल पेस्टल



मोंट–मार्टे चारकोल पेंसिल



कैमल चारकोल स्टिक



ब्रस्टो चारकोल पाउडर



ऑल्ड हॉलैंड क्लासिक ऑयल कलर



विंसर एंड न्यूटन आर्टिस्ट्स ऑयल कलर



मोंट–मार्टे ऐक्रेलिक पेंट



कैमल फेबरिका ऐक्रेलिक कलर

DO N





फैबर–कास्टेल वाटर कलर



ब्रस्टो प्रोफेशनल आर्टिस्ट्स वॉटर कलर



ब्रस्टो आर्टिस्ट्स गौचे कलर

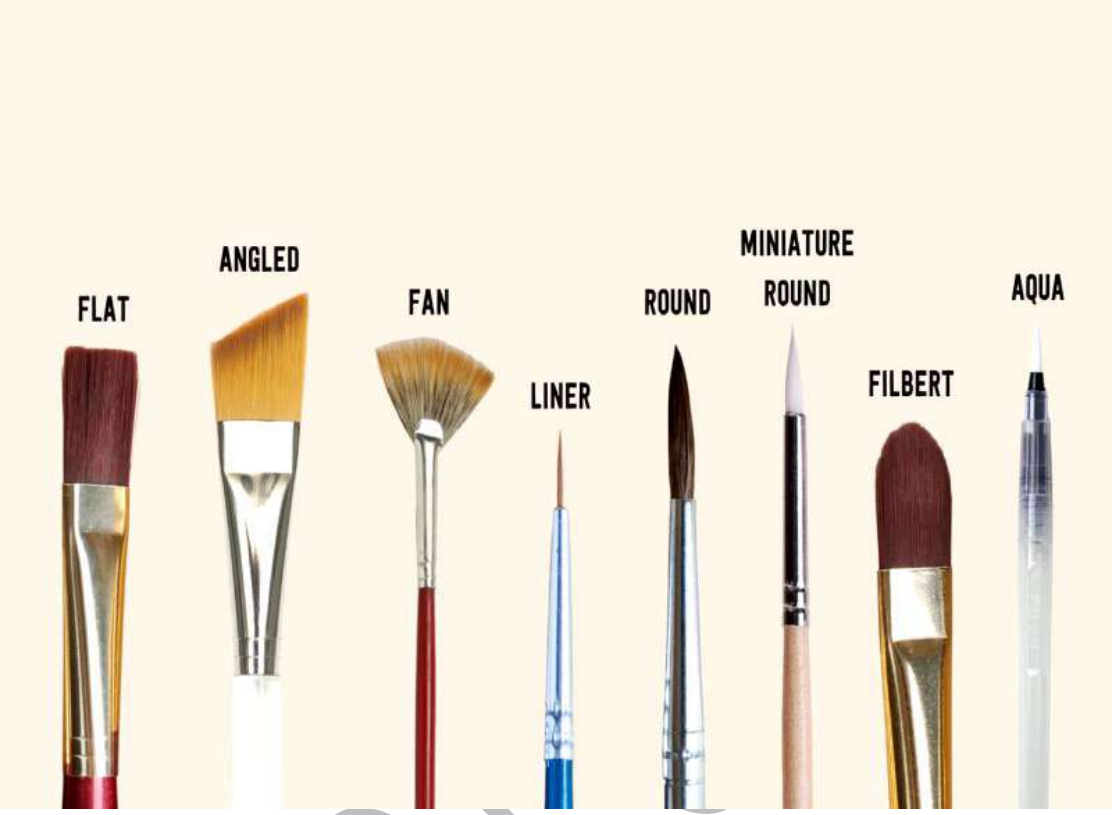

ब्रश के प्रकार

DO NOT



फैबर–कास्टेल 7 पेंट ब्रश सिंथेटिक हेयर



कैनवास रोल



कॉटन डक कैनवास

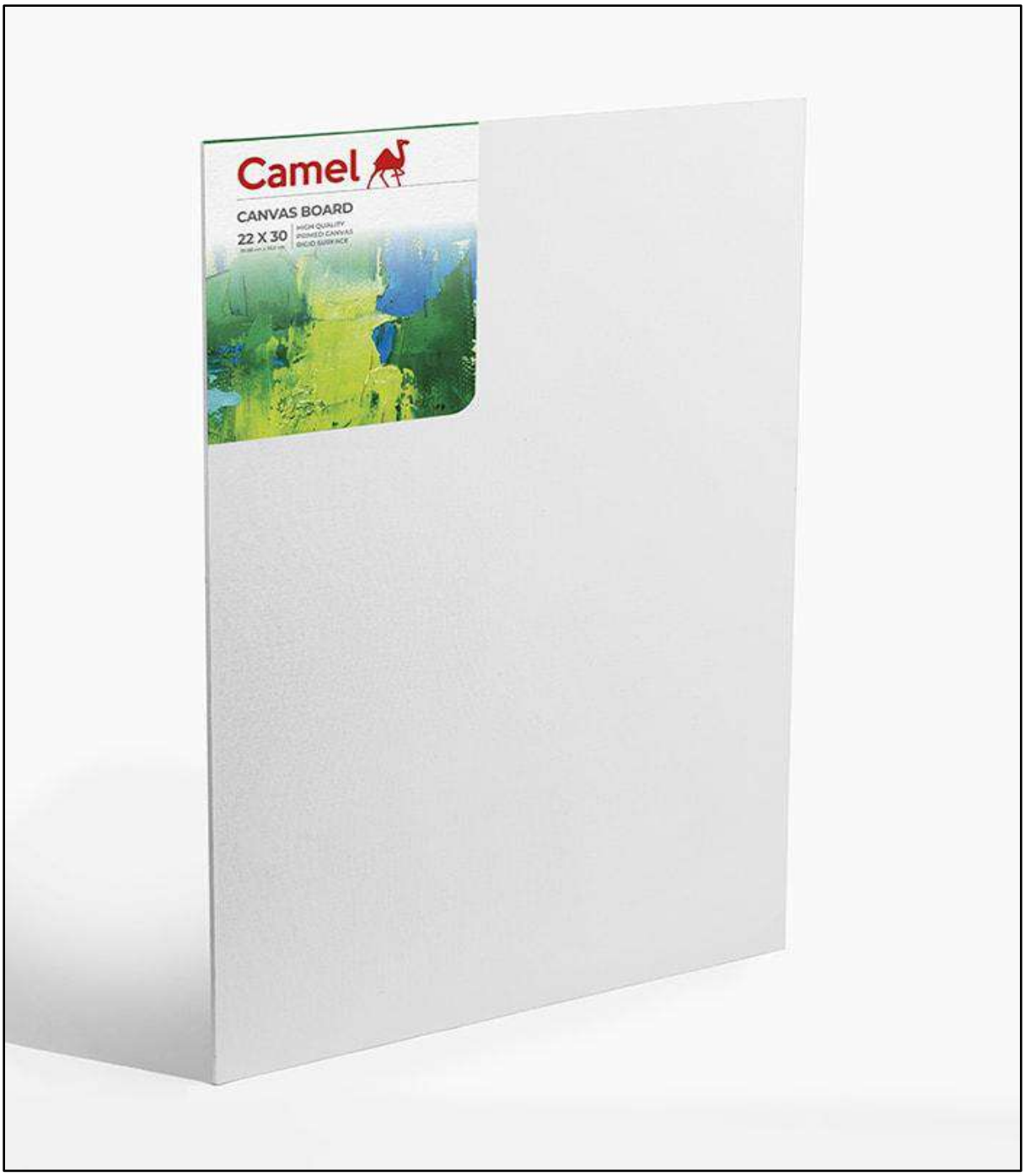

कैनवास बोर्ड

Terracotta Tradition

KURUKSHETRA UNIVERSITY KURUKSHETRA

Dissertation Submitted for the Degree

of

Master of Art in Fine Arts

Head of Department
& Supervisor
Asst. Pro. Mr. Mahesh Dhiman
Department of Fine Art

Researcher
Nischal
M.A. Final Year

Estd. 1968

Department of Fine Arts

Arya Kanya Mahavidyalya,

Shahabad (Markanda) - Haryana

2025 - 2026

To whom it may concern

This is to certify that **Ms. Nischal, Roll No. – 240007004,** a student of **M.A. Fine Arts (Drawing & Painting)** of final year in my college carried out the project work entitled "**Terracotta Tradition**" It is her original work. She has completed this project with full devotion and hard work.

We wish for her successful and bright future.

Date:
9/7/26

Aarti

Principal
Dr. Aarti Trehan
Arya Kanya Mahavidyalya,
Shahabad (Markanda)

CERTIFICATE BY SUPERVISOR

It is certify that **Ms. Nischal** student of **M.A. Fine Arts** in the final year, has completed her dissertation under my guidance on the entitle "**Terracotta Tradition.**" I recommend submitting this project for evaluation.

Date: 8/7/021

Mahesh Dhiman

Mr. Mahesh Dhiman
Asst. Professor
Head of the Fine Art Department
Arya Kanya Mahavidyalya,
Shahabad (Markanda)

CERTIFICATE

I certify that the work presented in the project report entitled **"Terracotta Tradition"** for the award of the degree of **M.A. Fine Arts (Drawing & Painting)** is an independent study carried out by me under the guidance of Mr. Mahesh Dhiman, Assistant Professor Department of Fine Arts. Before this no one has chosen this topic for dissertation in this department. I hereby declare that I have constituted and written this dissertation through my own research to pursue M.A. (Drawing and Painting) degree.

Date:- 8/7/26

Nischal

Nischal

M.A. Final Year

PREFACE

The Terracotta Tradition is a vibrant “living heritage” that defines the socio-cultural fabric of regions like West Bengal or Tamil Nadu. This study focuses on the specific aspects e.g. Bankura Horses or Temple Plaques, examining the delicate balance between preserving ancestral methods and adapting to the demands of a globalised market.

By engaging in field visits and literature reviews, I have attempted to capture the essence of this “clay culture”. This document is intended for students, researchers and art enthusiasts who wish to understand the spiritual and functional dimensions of fired clay.

Through the pages of this dissertation, you will discover the rich history of terracotta and its evolution over time. You will learn about the different techniques and tools used by terracotta artists and gain insight into the creative process behind their work. You will also find inspiration and guidance for creating your own terracotta art, whether you're an experienced artist or just starting out in this technique.

I hope the dissertation inspires you to explore the world of terracotta and discover the joy and beauty of this art form.

- The journey of this research begins in Chapter I, where I establish the conceptual framework of the art and the enduring nature of the terracotta tradition. I delve into the intrinsic qualities of clay, its malleability and the transformative power of fire that turns it into a durable artistic medium.
- In the Chapter 2, we explore the terracotta tradition in prehistoric India, tracing its roots through the Neolithic and Chalcolithic periods, where the

earliest remnants of pottery and votive figurines began to take shape. This is followed by a study of terracotta in Early Historic India, a golden age of craftsmanship where the Indus Valley, Maurya and Gupta periods showcased a mastery of form and iconography.

- In the Chapter 3, a significant portion of this work is dedicated to the emergence of terracotta in Bengal, a region where the absence of stone led to a remarkable innovation in clay-based art. I trace this development into the grand tradition of terracotta temple architecture in Bengal, specifically focusing on the Rarh region and the Malla dynasty's patronage, which gave us the world-renowned structures of Bishnupur.
- In Chapter 4, “Iconography, Narrative Representation, Background Techniques, Materials and Process, I deconstruct the language of terracotta plaques—from the depiction of epics like the Ramayana and Mahabharata to the minute details of daily village life—and examine the specialized methods of refined clay preparation and kiln firing that have been passed down through generations of artisans.
- Finally, in conclusion, I draw my conclusions, reflecting on the current state of this “living heritage”. We address the challenges of conservation in the face of environmental decay and the vital importance of preserving these earthen stories for future historians and art enthusiasts.

In the modern era, there is a need to preserve and promote this heritage through research, documentation and support for artisan communities. Terracotta continues to inspire artists and scholars, ensuring its relevance in the future.

ACKNOWLEDGMENT

As this study comes to its conclusive close, a pleasant task remains to sit back and acknowledge the sincere efforts of all those who have helped me make this study see the light of day. At the outset, I thank Almighty God for blessing me with the strength, dedication, and patience to complete this work within the stipulated time.

It is my profound privilege to express my deep gratitude to Mr. Mahesh Dhiman, Assistant Professor in the Department of Fine Arts at Arya Kanya Mahavidyalaya, Shahabad Markanda, for his invaluable guidance and constant encouragement throughout this study. His priceless and sagacious advice steered me through the different stages of conducting this research. He not only guided me across the entire course of my dissertation but also kept me immensely motivated. He has truly been a teacher, guide, and philosopher to me in the truest sense. Words fail me in expressing my gratitude to him for having been a beacon of inspiration and support.

Before I conclude, I wish to offer my sincere regards and gratitude to everyone who supported me and offered their gracious help toward the successful completion of this research work.

Nischal

INDEX

CHAPTER

Preface

Acknowledgement **Page no.**

Chapter-1 : **01 - 19**

- Meaning of Art
- Terracotta Tradition

Chapter-2 : **20 - 35**

- Terracotta Tradition in Pre-Historic India
- Terracotta in Early Historic India

Chapter-3 : **36 - 47**

- Emergence of Terracotta in Bengal
- Terracotta Temple Architecture in Bengal

Chapter-4 : **48 - 67**

- Iconography and Narrative Representation
- Folk Terracotta Tradition of Bengal
- Techniques, Materials and Process

- **Conclusion :** **68 - 69**
- **References :** **70 - 70**
- **Bibliography :** **71 – 71**
- **Websites :** **72 - 72**
- **List of Images :** **73 - 74**
- **Images:** **75 - 98**

CHAPTER – I

- **Meaning of Art**
- **Terracotta Tradition**

Meaning of ART

Art is a diverse range of human activities and creative works that involve creative imagination to express technical proficiency, beauty, emotional power or conceptual ideas. It acts as a medium for communication and self-discovery, transforming human experiences into visual, auditory or performing forms.

Art has been used to describe a broad range of human activities and creative expression from painting and sculpture to literature, music, films and beyond. However, defining art is a notoriously difficult task as it encompasses so many different forms, styles and approaches despite this challenge, there are certain aspects of art that are widely recognized and appreciated, such as its ability to inspire emotions and communicate complex ideas.

There is no generally agreed definition of what constitutes art, and its interpretation has varied greatly throughout history and across cultures. In the Western tradition, the three classical branches of visual art are painting, sculpture and architecture. Theatre, dance and other performing arts as well as literature, music, films and other media such as interactive media, are included in a broader definition of “the arts”. Until the 17th century, art referred to any skill or mastery and was not differentiated from crafts or sciences. In modern usage after the 17th century, when aesthetic considerations are paramount, the fine arts are separated and distinguished from acquired skills in general, such as the decorative or applied arts.

At its core, art is a reflection of human expression and imagination. It is a way for us to explore and understand ourselves, our world, and our deepest fears and desires. Art enriches our understanding and appreciation of different races, genders, cultures and ideologies.

The nature of art and related concepts, such as creativity and interpretation, are explored in a branch of philosophy known as aesthetics. The resulting artworks are studied in the professional fields of art criticism and the history of art.

DO NO COPY

Art can take many different forms ranging, from representation to abstract and, from traditional to experimental. Some art forms, such as painting, sculpture and architecture, have been practiced for thousands of years and have rich cultural histories and traditions. Other forms, such as performance art, video art and digital art, are more recent developments that reflect the changes in technology and the cultural landscape of the modern world. Regardless of its form or style, however, art has the power to challenge us and inspire us in ways that few other human activities can.

Art may be characterized in terms of mimesis (its representation of reality), narrative (storytelling), expression, communication of emotion, or other qualities. During the Romantic period, art came to be seen as "a special faculty of the human mind to be classified with religion and science".

Artists use a variety of techniques and styles to create their works, often drawing on their own personal experiences and cultural influences. For example, the Impressionist movement of the 19th century was characterized by the use of bright colours, loose brush strokes, and capturing the fleeting effects of light and colour in the natural world. In contrast, the Abstract Expressionist movement of the 20th century was marked by its emphasis on spontaneity, gesture, and the exploration of the subconscious.

While art can be highly subjective and open to interpretation, there are certain fundamental elements that are commonly considered when evaluating the quality and effectiveness of a work. These include composition, colour, form, line, texture and space.

The creative arts are often divided into more specific categories, typically along perceptually distinguishable categories such as media, genre, styles and forms. Art form refers to the elements of art that are independent of its interpretation or significance. It covers the methods adopted by the artist and the physical composition of the artwork, primarily non-semantic aspects of the work (i.e., figures), such as colour, contour, dimension, medium, melody, space, texture and value. Form may also include design principles such as arrangement, balance, contrast, emphasis, harmony, proportion, proximity and rhythm.

DO NO COPY

Composition refers to the arrangement of elements within a work, such as the placement of figures or objects within a painting or the structure of a musical composition colour, of course, refers to be used to colours within a work and can be used to convey a wide range of emotions and moods. Form refers to the physical shape of an object or the overall structure of a work. While line refers to the use of lines to create visual interest and movement within a work. Texture, meanwhile, refers to the surface quality of a work, such as the roughness of a sculpture or the smoothness of a painting. Finally, space refers to the way in which elements are arranged within a work to create a sense of depth or perspective. In addition to these formal elements, art is also often imbued with symbolic or metaphorical meaning, drawing from cultural backgrounds and public spaces. Many public spaces features, sculptures and murals that add beauty and meaning to the environment.

- **Visual Art:-**

Visual Art includes painting, sculpture, architecture, drawing, photography and other forms of visual art. It is commonly found in houses, offices and public spaces. People decorate their living spaces with art that reflects their personality, taste or cultural background. Public spaces often feature sculptures and murals that add beauty and meaning to the environment.

- **Graphic Design:-**

Graphic design is used in advertising, packaging and other forms of visual communication. Logos, product labels and billboards are just a few examples of how graphic design is used in daily life.

- **Fashion:-**

Fashion is the popular style of clothes, hair and behavior at a particular time. It is a form of self-expression that allows people to communicate their identity, status or mood through what they wear.

DO NO COPY

- **Architecture:-**

Architecture is the art and science of designing and constructing buildings and other physical structures. It is a multifaceted discipline that balances functionality (how a space is used), aesthetics (how it looks) and safety (how it is built).

- **Music:-**

Music is the art of organizing vocal or instrumental sounds to create beauty of form, harmony or emotional expression. It typically relies on elements like melody, rhythm and pitch to communicate feelings or ideas.

- **Literature:-**

Literature is a body of written works that encompasses both imaginative and non-imaginative forms. It includes poetry, prose, fiction and non-fiction genres such as biographies, essays and letters. Literature expresses ideas, emotions and narratives, reflecting human experiences and cultural values. The term derives from the Latin word “litteratura”, meaning “writing formed with letters.”

- **Literary Arts:-**

Literary arts encompass a broad range of creative expressions through written text, including poetry, prose and drama, serving as a vital part of cultural and intellectual heritage.

- **Performing Arts:-**

Performing arts are art forms such as music, dance, and drama that are performed live for an audience, expressing emotions and storytelling through various mediums.

- **IMPORTANCE OF ART**

Art has been an integral part of human civilization for thousands of years, serving as a mirror that reflects our culture, emotions, beliefs, and intellect from

DO NO COPY

ancient. From ancient cave paintings to contemporary masterpieces, art transcends mere aesthetics, offering emotional, mental, cultural, and societal benefits that enrich lives in profoundly positive ways.

Art has always been a powerful medium of expression, allowing individuals to communicate ideas, emotions, and perspectives that words alone cannot convey. From paintings and sculptures to music, literature, and dance, art is a universal language that transcends cultural and linguistic barriers.

Art plays an important role in humanity. Artists pour their emotions, thoughts, and experiences into their creations. By observing original artwork, viewers can gain insight into the artist's mind, the cultural context of the piece, and even the socio-political environment of the time. Art becomes a bridge between the artist and the viewer, facilitating empathy and understanding.

For instance, Vincent van Gogh's "Starry Night" is not just a beautiful painting but also a window into his emotional and psychological struggles. The swirling patterns, dramatic contrasts, and vivid colors communicate a powerful sense of longing and inner turmoil that resonates with countless viewers around the world. Art is a storytelling medium, whether it is an ancient mural depicting historical events or a contemporary sculpture addressing modern societal issues, art has the unique ability to tell stories. It captures the essence of human experiences and preserves them for future generations to interpret and appreciate. Art can communicate complex narratives such as Frida Kahlo's self-portraits that convey her physical pain, emotional suffering and resilience. Each piece tells a different story, often intertwined with political, cultural and personal themes.

Art serves as a powerful tool for communication where words may fail. It allows artists to express concepts, emotions and ideas that are difficult to articulate. This form of communication encourages people to think beyond traditional boundaries, promoting empathy and understanding. Art is an essential tool for preserving and transmitting cultures across generations. When you buy original art, you're not only acquiring a beautiful piece for your home or office, but also supporting cultural heritage.

DO NO COPY

Artistic expressions often document historical events, social values and personal stories. Whether through traditional paintings, modern photography or digital installations, art serves as a tangible record of cultural evolution. For example, ancient Egyptian art offers valuable insights into their beliefs, societal structures and daily life. The vivid hieroglyphics and sculptures showcase religious practices, social hierarchies, and cultural norms that are critical to understanding their civilization. By investing in original artwork, you contribute to the preservation of cultural diversity. This practice helps ensure that future generations can appreciate and learn from artistic expressions of the past, maintaining a rich and vibrant cultural tapestry. In addition, contemporary artists from various cultural backgrounds continue to tell their stories, contributing to the evolving narrative of art while preserving their unique heritage. Supporting such artists helps protect their cultural identity and ensures their voices are heard.

Art has been widely recognized for its therapeutic benefits. It can reduce stress and anxiety, promote relaxation, and enhance mindfulness. Engaging with art, whether through its creation or observation, can be a powerful way to improve mental well-being. Art therapy is an established form of psychotherapy that uses creative processes to help individuals process emotions, develop self-awareness, and enhance emotional resilience creating art allows people to express complex emotions and experiences in a safe and non-judgmental way. For example, veterans dealing with PTSD have found art therapy helpful for processing traumatic experiences and rebuilding their mental health. The act of creating art allows them to channel their emotions and fears into something constructive, leading to healing and growth.

Surrounding yourself with original artwork that resonates with you can create a calming and uplifting environment, making your living or working space more inviting and inspiring. Artistic elements can help alleviate anxiety and promote a sense of peace and tranquility.

Additionally, engaging with art can trigger the brain's reward system, releasing dopamine a neurotransmitter associated with pleasure, satisfaction, and motivation. This response is why people often feel a deep sense of fulfillment and joy when experiencing or creating art.

DO NO COPY

Art is a powerful catalyst for creativity and innovation. Exposure to diverse artistic styles and media can inspire new ideas and encourage out-of-the-box thinking. This is particularly valuable in both creative and analytical professions. Art challenges individuals to think differently, consider alternative perspectives, and embrace unconventional solutions. The skills developed through artistic engagement can be applied to various aspects of life, from business problem-solving to personal growth.

The importance of art is an easy concept to understand because there are so many reasons that explain its benefits in our lives. We do not have to look too hard to determine its importance. We can also test it in our lives by the effects it has on how we feel and think when we engage with it as onlookers or as active participants—whether it is painting, sculpting, or standing in an art gallery. What art continuously shows us is that it is a constant in our lives, our cultures, and the world. It has always been there to assist us in self-expression and telling our stories in any way we want to. It has also given us glimpses of other cultures along the way.

There are many reasons for the importance of art. It is a universal language because it crosses language and cultural barriers, making it a visual language that anyone can understand. It helps with self-expression and self-awareness because it acts as a vehicle wherein we can explore our emotions and thoughts. It is a record of past cultures and history. It helps with education and developing different skill sets. It can be financially rewarding. It can be a powerful political tool, and it adds beauty and ambiance to our lives and makes us feel good.

- **Art and Culture :-**

Art is important to culture because it can bridge the gap between different racial groups, religious groups, dialects, and ethnicities. It can express common values, virtues, and morals that we can all understand and feel. Art allows us to ask important questions about life and society. It allows reflection and opens our hearts to empathy for others, as well as how we treat and relate to one another as human beings. There are many different types of art, including fine arts like painting, drawing, sculpture and printmaking, as well as applied arts like architecture, “design such as interior, graphic and fashion design”. Other types of art include decorative arts like

DO NO COPY

ceramics, pottery, jewelry, mosaics, metalwork, woodwork and fabrics like textiles; performance arts like theatre, music, dancing and plastic arts that work with different pliable materials.

The definition of the word “art” originates from the Latin ars or artem, which means “skill”, “craft” and a “work of art”. The Merriam-Webster online dictionary offers several meanings; for example, art is a “skill acquired by experience, study, or observation”; it is a “branch of learning”, “an occupation requiring knowledge or skill”, or “the conscious use of skill and creative imagination especially in the production of aesthetic objects”.

In our modern society, art is a universal way for people to express themselves and share their feelings with the world. Art is an important avenue through which to connect with others, especially in times of crisis.

Ultimately, art is a platform for people to express themselves and live out their dreams. It helps them deal with tough times and create something beautiful out of them. Art allows you to express your feelings, emotions and thoughts in ways that are not always possible in words or actions. Art helps you better understand how you feel about certain things.

Art is important to individuals for many different reasons. Art is highly subjective and also very personal and has long been a medium where individuals can express their feelings and emotions. Art has always been a part of their lives and is a core part of their personality or who they are. Art has the ability to help people get through some of the hardest times in their life.

Art helps people connect with one another on a deeper level, whether that through spoken language or by visualizing your thoughts differently. Some artworks speak to someone more than others, and everyone will have a piece of art that is particularly important or special to them. Art has been a part of human culture for many centuries. It has been used to express emotions, to communicate ideas and it has been a way to pass down knowledge from one generation to another. Art is important in our cultural and social lives because it is the medium through which we process our emotions and ideas. It is also an important tool for learning, teaching, and

DO NO COPY

communication. Art plays a role in recording history, and many artworks help us paint a picture (literally) of what life was like in previous generations.

Art is also particularly important as a signifier of culture across the globe. Research has shown that art can affect the fundamental sense of self. Folk arts, for example, are highly unique to specific cultures and tell the history and rich traditions of a region. Painting, architecture, art, sculpture, music, literature, and many other fine arts can be considered a repository of a given society's collective memory.

- **Importance of Art in Childhood:-**

Art is a way to express oneself one and it helps in develop cognitive skills. It also helps students to build creativity and problem-solving skills. Art has been present in schools for many decades and continues to be important. However, in the past, art was not valued in education as much as it should have been. This may have been a result of class structure, since art history was only accessible to the upper classes. Today, art is being used more often in education and can help children learn valuable skills like critical thinking, empathy and creativity.

DO NO COPY

TERRACOTTA

Terracotta, also known as terra cotta or terra-cotta (baked earth, from Latin terra cotta meaning cooked earth), is a clay-based non-vitreous ceramic fired at relatively low temperatures. The term is used for earthenware objects of certain types, as set out below. Terracotta is most commonly used to describe a type of sculpture, unglazed ceramic, art, or decorative architecture, made from a coarse, porous clay, which is noted for its versatility, cheapness and durability.

In addition, ever since the era of Mesopotamian art along the Tigris and Euphrates, and Egyptian art along the Nile, terracotta bricks and tiles have been used for centuries in the building of domestic as well as civic structures. Terracotta was widely used in ancient art, notably in Chinese pottery (from 10,000 BCE) and in Greek pottery (from 7,000 BCE) as well as Mesopotamian sculpture and Egyptian sculpture, plus Minoan art from Crete, and Etruscan art on the Italian mainland.

Terracotta statues were prevalent in Greek architecture, notably for temple decoration, while terracotta reliefs were a common feature of Roman architecture. The art of terracotta was revived during the Italian Renaissance and underwent a further revival during the 19th century.

Terracotta is usually made from a fairly coarse, porous type of clay. This is first shaped (or sculptured), then fired until hard. In the ancient world, it was left to harden in the hot sun; later, it was baked in primitive ovens created in the ashes of open fires. Ultimately, it was fired (at about 1000°C) in special ovens known as kilns. Once fired, the clay assumes a brownish orange colour, ranging from an earthy ochre to red. Baked terracotta is not watertight; a layer of glaze is required for this. Sometimes recycled terracotta (grog) is mixed with fresh clay to make a new batch of the material.

Terracotta objects are far simpler and cheaper to create, replicate and decorate than stone or bronze objects; even moulds can be re-used. Furthermore, although terracotta is usually left unglazed, a range of different colours and textures can be obtained with a variety of glazes.

DO NO COPY

2. https://en.wikipedia.org/wiki/Terracotta
3. https://www.visual-arts-cork.com/sculpture/terracotta

As compared to bronze sculpture, terracotta uses a far simpler and quicker process for creating the finished work with much lower material costs. The easier task of modeling, typically with a limited range of knives and wooden shaping tools, but mainly using the fingers, allows the artist to take a more free and flexible approach. Small details that might be impractical to carve in stone, of hair or costume for example, can easily be accomplished in terracotta, and drapery can sometimes be made up of thin sheets of clay that make it much easier to achieve a realistic effect.

Reusable mould-making techniques may be used for production of many identical pieces. Compared to marble sculpture and other stonework, the finished product is far lighter and may be further painted and glazed to produce objects with colour or durable simulations of metal patina. Robust durable works for outdoor use require greater thickness and so will be heavier, with more care needed in the drying of the unfinished piece to prevent cracking as the material shrinks. Structural considerations are similar to those required for stone sculpture; there is a limit on the stress that can be imposed on terracotta, and terracotta statues of unsupported standing figures are limited to well under life size unless extra structural support is added.

This is also because large figures are extremely difficult to fire, and surviving examples often show sagging or cracks. The Yixian figures were fired in several pieces and have iron rods inside to hold the structure together.

DO NO COPY

- **RESEARCH OBJECTIVES:-**

Research objectives concerning Terracotta generally fall into two distinct categories based on whether they focus on the traditional art form (baked clay) or the educational technology tool.

1. Research Objectives of Terracotta Art and Craft :-

Research in this area typically focuses on cultural, historical, and socio-economic aspects, particularly in regions like Gorakhpur (Uttar Pradesh) and West Bengal, India. Key objectives include:

- **Documentation and Preservation :-**

To document the history, traditional techniques, clay preparation, and moulding techniques to preserve this heritage for future generations.

- **Socio-Economic Analysis:-**

To assess the impact of the craft on local communities, including income levels, artisan livelihoods, and exploitation of potters by middlemen.

- **Sustainability and Revitalization:-**

To examine the eco-friendly nature of terracotta as a nature-friendly sustainable craft, promoting it as a solution to environmental concerns.

- **Technological Innovation:-**

To explore improvements in production, such as introducing advanced kiln technologies to reduce fuel consumption and decrease damage during firing.

- **Marketing and Strategy:-**

To propose strategies for enhancing the marketability of terracotta products (such as GI tags) and to foster the design education of new shapes to compete with mass-produced alternatives.

- **Cultural Interpretation:-**

To analyze the symbolic and ritualistic significance of terracotta figures (such as horses and idols) in local rituals and daily life.

2. Research Objectives of the "Terracotta" Educational Tool :-

Terracotta (Tool for Education Research with Randomized Controlled Trials) is an open-source web application designed to facilitate experimental research within learning environments. Its research objectives are to:-

DO NO COPY

- **Enable Rigorous Experimentation:-**

To enable more rigorous and responsible educational research by automating the methodological features of randomized controlled trials (RCTs).

- **Lower Technical Barriers:-**

To empower instructors and researchers to deploy experiments directly within a Learning Management System (LMS) with minimal effort.

- **Ensure Ethical Research:-**

To provide a system for secure, automated informed consent, participant identification, and safe management of data.

- **Facilitate Collaborative Research:-**

To encourage partnerships between researchers and learners, allowing them to collaborate on embedding studies in real-world educational contexts.

3. Material / Structural Research Objectives :-

In the fields of architecture and materials science, research on terracotta aims to:-

- **Analyze Material Properties:-**

To study the compressive strength, durability, and thermal insulation capabilities of terracotta for modern building applications.

- **Assess Sustainability:-**

To validate terracotta as a 100% natural, eco-friendly construction material.

Research Methodology.

Research Methodology in terracotta encompasses both scientific analysis of the material and qualitative studies of the craft's tradition. It includes identifying clay

DO NO COPY

properties, manufacturing processes, and firing techniques using methods like OSL, SEM, XRD and FE-SEM to determine age and authenticity. Studies often combine surveys, interviews with artists, and case studies to analyze market scenarios and sustainability.

- **Key Aspects of Terracotta Research Methodology :-**

Archaeological / Scientific Analysis :-

1. Material Characterization : -

Techniques like X-ray Diffraction (XRD), X-ray Fluorescence (XRF), and Fourier Transform Infrared Spectroscopy (FT-IR) are used to analyze chemical composition and mineralogy:

2. Microscopy :-

FE-SEM (Field Emission Scanning Electron Microscopy) and optical microscopy help to determine firing temperatures and microstructure.

3. Dating : -

OSL (Optically Stimulated Luminescence) is utilized to date ceramic materials for example of, a pot.

4. 3D Modeling :-

Photogrammetry is applied to create 3D models for documenting shapes, sizes, and architectural details.

- **Qualitative & Socio-Economic Research-**

1. Methodology: -

This often uses descriptive, qualitative methods, including semi-structured interviews with artisans and stakeholders.

2. Data Collection:-

4. ResearchGate

DO NO COPY

Surveys are conducted on artisan households to investigate raw material availability, market demand, and the impact of environmental factors.

3. Field Investigation:-

Direct observation of the production process, from kneading to baking, let's say, baking in traditional kilns (anwa), is documented through photography and video.

4. Case Studies:

Comparative studies between different regions (e.g., Panchmura and Asharikandi) are used to understand local and stylistic variations.

This combined approach allows researchers to document both the physical composition of, terracotta artifacts and, to some extent, the socio-economic context of, the artisans who create them.

➢ LITERATURE REVIEW:-

Terracotta has been used for centuries in the construction industry for roofing tiles, flooring and decorative elements due to its durability and natural aesthetic. However, in recent years, terracotta has gained popularity in the home décor industry, particularly as home accessories. These accessories include vases, planters, candleholders, tableware and other decorative items. Terracotta items, including those with intricate designs, textures and patterns, are widely used.

In addition to the technological advancements, changing consumer preferences have also played a role in the evolution of terracotta products. Many consumers are now seeking out more natural and eco-friendly materials in their choices, and terracotta fits this criteria perfectly. Terracotta is made from natural clay, making it a sustainable and environmentally friendly material choice. Moreover, the desire for more sustainable and eco-friendly materials has also led to innovation in the production process of terracotta home accessories.

Some manufacturers are now using recycled materials or implementing more sustainable manufacturing processes to reduce their environmental impact.

DO NO COPY

Overall, the evolution of terracotta products has been driven by a combination of factors, including technological advancements, changing consumer preferences, sustainability concerns, and trends in home décor. As terracotta continues to gain popularity in the industry, we can expect to see further innovations and advancements in the production and design of terracotta products.

➢ IMPORTANCE OF STUDY :-

Studying terracotta is vital for understanding human civilization through its enduring artistic, functional and architectural legacy. Spanning millennia from the Indus Valley to modern sustainable design, it highlights ancient craftsmanship, cultural identity, and offers a durable, eco-friendly material for contemporary energy-efficient building solutions.

Key aspects of the studying terracotta include:

✓ Archaeological & Historical Significance:-

Terracotta, meaning "cooked earth," is one of the oldest human-made materials, allowing researchers to study ancient societies through pottery, toys and figurines. Famous examples such has the Chinese Terracotta Army offer deep insights into military structure and artistry from 4,000+ years ago.

✓ Cultural & Artistic Heritage:-

It bridges the past and the future, representing cultural identity through distinct regional styles, such as Bengali temple panels and Indian folk art (e.g., Ayyanar horses).

✓ Sustainability & Architecture:-

As a natural and recyclable material, the study of Terracotta is crucial for sustainable construction, providing natural insulation for buildings. It is increasingly used for modern cladding systems.

✓ Versatility in Design:-

DO NO COPY

It allows for immense creativity in molding and shaping, proving its versatility from artisanal pottery to high-performance architectural structures.

- ✓ **Economic & Social Impact:-**

Studies often highlight the livelihood of traditional artisans, the importance of Geographical Indication (GI) tags for protecting their intellectual property, and the need for traditional craft preservation.

The terracotta tradition in Bengal is a ‘poetry on walls’ and transformed humble river clay into enduring monuments and world-renowned folk art. This tradition flourished most remarkably between the 16th and 19th centuries, particularly under Malla Kings of Bishnupur, who turned to terracotta due to a scarcity of stone in the Gangetic plains. The craftsmanship from riverbed to kiln process involves a sophisticated use of local resources and multigenerational skill. Artisans use rich, fine-textured alluvial clay collected from riverbanks, which is ideal for the detailed molding required for intricate plaques. Craftsmen create thousands of individual tiles or plaques using wooden molds. After sun-drying, they etch finer details using simple bamboo tools. The pieces are baked in wood-fired kilns at temperatures exceeding 1000°C. This process creates a material so durable it is harder than many stones and virtually impervious to water. On temple walls, these plaques are affixed to a brick core using a special lime mortar mixed with brick dust and organic materials like jaggery and wood apple pulp.

Terracotta plaques serve as a visual encyclopedia of the era’s social and religious life. Predominant themes include scenes from the Ramayana, Mahabharata and Krishna-lila (the divine play of Krishna). Detailed panels depict everyday 17th century Bengal life—farmers plowing, fishermen with nets, musicians playing instruments like the tabla and esraj, and even soldiers on horseback. Dense floral patterns, especially the lotus, geometric shapes and animal figures like tigers, swans and peacocks are common.

While the medieval temple-building era has passed, the terracotta tradition remains a vibrant part of Bengal’s cultural identity today. The Bankura Horse, originating from

DO NO COPY

the village of Panchmura, these stylized horses are the most famous specimen of modern Bengali terracotta, often used as ritual offerings or iconic home decor. The tradition has expanded into terracotta jewellery, home decor, and pottery that can be found at retailers like Trove, Craft India and The Bengal store. Bishnupur terracotta received GI (Geographical Indication) status in 2018, recognizing its unique regional heritage.

DO NO COPY

5. www.bibliopolis.com, Brick Temples of Bengal: From the Archives of David McCutchion by David McCutchion, ed George Mitchell. Mullen Books.

CHAPTER – II

- **TERRACOTTA TRADITION IN PRE-HISTORIC INDIA**
- **TERRACOTTA IN EARLY HISTORIC INDIA**

TERRACOTTA TRADITION IN PRE-HISTORIC INDIA

Prehistoric Indian terracotta, spanning from pre-Harappan times (c. 3300 BCE) through the Indus Valley Civilization, was a widespread sophisticated craft used for fertility idols, animal figurines, toys (like wheeled carts), and utilitarian vessels. Centered in regions like Gujarat, Rajasthan and Haryana, this "baked earth" art utilized by local clay to create both religious and secular, often hollow, objects.

Terracotta has been a medium for art since the Harappan Civilization, although techniques used differed in each time period. In the Mauryan times, they were mainly figures of mother goddesses, indicating a fertility cult. Moulds were used for the face, whereas the body was hand-modeled. In the Shungan times, a single mould was used to make the entire figure and depending upon the baking time, the colour differed from red to light orange. The Satavahanas used two different moulds – one for the front and the other for the back and kept a piece of clay in each mould and joined them together, making some artefacts hollow from within. Some Satavahana terracotta artefacts also seem to have a thin strip of clay joining the two moulds. This technique may have been imported from the Romans and seen nowhere else in the country.

The Harappan Civilization, also known as the Indus Valley Civilization, was one of the most advanced and widespread ancient cultures. We often marvel at its impressive town planning of Indus Valley civilization and its sophisticated architecture of Harappen Civilization, seen in its well-laid cities, grand baths and complex drainage systems. But beyond these grand structure of brick and stone lies a more intimate art from the heart and soul of its people — terracotta art.

The objects made from baked clay offer a unique window into the daily lives, beliefs, and creative spirit of the common people, providing a beautiful contrast to the formal art and architecture of the Indus Valley Civilization. Unlike precious metals or rare stones, clay was a material everyone could access.

DO NO COPY

6. libretexts.org
7. dharmkotstudio.com

The term ‘terracotta’ simply means “baked earth.” for the Harappans, it was the perfect medium for expression. While the elites might have had access to carved seals and stone statues, terracotta was the art of the everyday person. This is why the terracotta figurines of Harappan Civilization are so special — they represent the creativity of the entire society, not just its rulers.

- **CHRONOLOGICAL BACKGROUND:-**

Terracotta usage in India can be traced through several prehistoric phases.

(a) Neolithic Period (c. 7000–1000 BCE) :-

Terracotta in the Indian Neolithic period (c. 7000–1000 BC) marked a crucial shift towards settled life, characterized by the invention of handmade pottery, clay figurines, and utilitarian objects. Sites like Mehrgarh, Chirand, and Burzahom yielded early, often crude terracotta items, including crude pottery, beads, and animal figurines, signifying early artistic expression, ritual use, and the development of agricultural storage needs.

- **Key Aspects of Neolithic Terracotta in India:-**

1. Purpose:-

Primarily functional, used for cooking, storage, and making beads. Later, it expanded to ritualistic items like terracotta figurines of animals and mother goddesses, hinting at fertility cults.

2. Technique:-

Initial pottery was handmade, later progressing to slow-wheel methods, and often decorated with corded or basket impressions.

3. Sites and Discoveries : Mehrgarh (Balochistan):

Earliest evidence of terracotta figures and pottery in the subcontinent.

DO NO COPY

4. Cherind (Bihar):

Revealed a variety of terracotta items including pottery, beads, and animal figurines.

5. Burzahom (Kashmir):

Showed coarse grey pottery, sometimes decorated with mats and cord impressions.

6. Vindhyan Region (Koldihwa, Mahagara):-

Notable for cord-impressed pottery and terracotta debris.

During the Neolithic period, the development of terracotta marked a "cultural revolution" in India as communities transitioned to a settled agricultural lifestyle. This era, often called the "Age of Clay," saw the first widespread use of terracotta for both utilitarian needs and early artistic expression.

Early objects were primarily hand-modelled using coiling and pinching techniques. Towards the end of the period, the slow-wheel method began to emerge. Firing method typically done in open bonfires or rudimentary pits at temperatures around 1000°C, resulting in reddish-brown, porous, and often fragile ware. Many items were plain or had simple cord impressions, where paddles wrapped in cord were used to decorate wet clay.

- **(b) Indus Valley Civilization :-**

The Indus Valley Civilization (c. 3300–1300 BCE) relied heavily on terracotta (fired clay) as a democratic medium for artistic and functional expression. While stone and bronze were reserved for elite artefacts, terracotta objects like figurines, toys, and pottery were common across all levels of society, offering a direct window into the daily lives and spiritual beliefs of the Harappan people.

Mother Goddess figurines are the most famous artefacts, often depicting female figures with elaborate fan-shaped headdresses, heavy jewellery, and exaggerated

DO NO COPY

feminine features. They are widely believed to represent fertility and nature worship. Excavations at sites like Mohenjo-daro have revealed a vast array of terracotta toys, including movable bullock carts, whistle-shaped birds, and rattles. Realistic models of bulls, monkeys, dogs, and birds were common. Craftsmen showed great skill in capturing the "vigour" of animals in simple clay forms.

Terracotta was used for household essentials such as pottery (jars, plates, and bowls), spindle whorls for spinning thread, and even terracotta makes of horned deities. A significant find at the Banawali site is a terracotta plough, which provided archaeologists with clear evidence of Harappan farming techniques.

Most Indus terracotta was hand-modelled by pinching and pressing clay, though some more complex items like seals occasionally used moulds. While often described as "crude" compared to the refined bronze Dancing Girl, terracotta art is valued for its realistic.

Terracotta was the most abundant artistic medium of the Indus Valley Civilization (IVC), often called a "Terracotta Civilization" because of the sheer volume of clay artefacts found. It served as the "people's medium"—accessible to everyone, unlike the rate stone or metal used for elite items.

The art and craft of the Indus Valley Civilization was highly skilled. The terracotta figurines were primarily made using the hand-modelling technique. Artisans would take a lump of clay and shape it with their fingers, using simple tools to add details like eyes, hair, and jewellery. The figures were then baked in kilns at a low temperature to harden them.

While less refined than the few stone statues found, these figures have a powerful earthy charm. They are realistic yet stylized, capturing the essence of a subject rather than aiming for perfect detail. The grand architecture of the Harappan Civilization rightfully inspires awe, but it is the small, humble terracotta figurines that we to truly meet the Harappan people. In these objects of baked clay, we see their hands at work, their reverence for natures and creative fire.

The artisans of the Indus Valley Civilization employed a combination of simple hand-crafting and advanced firing techniques to produce terracotta items ranging from massive storage jars to delicate miniature toys.

DO NO COPY

1. Core Materials :-

Artisans utilized natural elements to ensure the durability and workability of their clay.

- **Riverine Clay :-** Harappans preferred the soft, blackish clay found at the bottom of rivers or tanks because of its high pliability.

- **Tempering Agents (Degraissants) :-** To prevent cracking or warping during the high-heat firing process, artisans mixed in materials like sand, mica, lime, shell fragments, and sometimes vegetable matter or straw.

- **Decorative Finishes :-**

1. Slip: A thin coating of liquid clay (red or grey) was applied to the surface to create a smooth, polished appearance.

2. Pigments: Glossy black paint, often derived from iron-rich earths or manganese, was used for intricate designs like geometric patterns and animal motifs.

2. Shaping Techniques :-

Depending on the object's purpose, different methods were employed:

- **Hand-Modelling (Pinching) :-** Primarily used for artistic figurines like the Mother Goddess. Artisans shaped a lump of clay by pinching it between their fingers to form basic features.

- **Appliqué (Pellet) Method :-** Details such as eyes, elaborate headdresses, and jewellery were created as separate small pellets or strips of clay and then "pasted" onto the main body before firing.

- **Wheel Turning :-** The majority of IVC pottery was manufactured on a potter's wheel, allowing for elegant, curved shapes like jars and drinking vessels.

DO NO COPY

- **Modeling :-** While hand-modeling was more common for ritual items, moulds were used for creating standardized items like seals and “terracotta cakes”.

3. Fire Firing Method :-

- **Sun Drying :-** Before being baked, objects were first dried in the sun to remove initial moisture.

- **Kiln Firing :-** Items were placed in round, domical kilns featuring perforated floors to ensure uniform heat distribution and oxidation.

- **Temperatures :-** Firing usually occurred at temperatures between 600°C and 1000°C.

- **Heat Baffles :-** Small terracotta “cakes” or nodules were often placed at the mouth of kilns to act as heat baffles, helping to regulate the internal temperatures.

The process of terracotta production began with the essential first step of preparing the clay to be used, i.e., its appropriate selection and cleaning. An analysis of the clay used in pottery as well as terracotta objects led E. J. H. Mackay to remark that the soft blackish clay of tanks or rivers, which had been underwater for some time, was preferred because of its pliability. This clay was kneaded several times for pulverization, and then degraissants were added for better effectiveness.

It is presumed on the basis of studies of pottery that degraissants like sand, mica, and lime were used as binding and tempering agents to prevent the cracking or warping of the figurines during the baking process. Overall, it seems that the natural properties of the clay were put to good use for pottery and terracotta production alike. The prepared clay was then given a desired shape through the dexterous use of human hands at the pre-firing stage. Objects were dried in the sun and then put in round

DO NO COPY

domical kilns with perforated floors for baking. The shape of the kiln and the perforations ensured uniform heat and oxidation. Subsequently, painting or slip coating and decoration occurred.

Terracotta in prehistoric India—stretching from the Neolithic period to the Indus Valley Civilization (IVC)—was far more than a utilitarian craft. It served as a vital medium for expressing spiritual beliefs, social identity, and practical innovation. Terracotta objects were central to the prehistoric world's religious and symbolic landscape.

- **The Mother Goddess Cult :-**

The most iconic prehistoric terracotta are female figurines discovered at sites like Mohenjo-daro and Harappa. These figures, often characterized by elaborate fan-shaped headdresses and heavy jewellery, are widely interpreted as symbols of fertility, motherhood, and the continuation of life.

- **Votive Offerings and Protection :-**

Zoomorphic figurines such as humped bulls, dogs, and rhinoceroses were likely used as votive offerings to deities. Bulls specifically symbolized strength and were potentially linked to agricultural success and protection.

- **Fertility Rituals :-**

Beyond human figures, phallus-shaped stones found alongside terracotta objects suggest participation in fertility cults aimed at ensuring the prosperity of the community and its land. Spiritual Continuity Early Neolithic sites like Mehrgarh yielded crude female figurines that establish a 7,000-year-old tradition of using clay to represent the divine feminine and agricultural abundance. Prehistoric terracotta provided essential utility and social structure.

- **Utilitarian Objects :-**

DO NO COPY

Fired clay was the primary material for household essentials, including storage jars for grain, cooking vessels, and water containers. Its porous nature was especially valued for cooling water in hot climates.

- **Play and Education :-**

A vast repertoire of terracotta toys has been unearthed, including hollow birds that function as whistles, miniature toy carts with movable wheels, and rattles. These objects suggest a structured "culture of play" and served as tools for children to learn about transportation and nature.

- **Administration and Trade :-**

Terracotta seals and sealings were critical to the Indus Valley's sophisticated trade networks. These often featured intricate carvings of animals (like unicorns or bulls) and peepal leaves, serving as marks of identity or authority for merchants.

- **Construction :-**

Early architects utilized terracotta for high-utility items like drainage pipes, roof tiles, and bricks, leveraging the material's durability and fire-resistant properties. Prehistoric terracotta was not a monolith; styles varied by geography.

- **Balochistan (Mehrgarh):-**

Produced the earliest known hand-moulded "Mother Goddess" types with simple, rounded bodies.

- **Indus Valley (Harappa/Mohenjo-daro):-**

Known for detailed, often mass-produced figurines with sophisticated appliqué work for hair and jewellery.

- **Gujarat & Kalibangan:-**

DO NO COPY

These regions displayed a more realistic artistic style in their figurines compared to the more “folk” or primitive depictions found in other northern sites.

DO NO COPY

8. abcde Publications Scholar, “Volume VIII, Issue III, May 2022”, International Journal of Humanities & Social Science Studies (IJHSSS).
9. libretexts.org

TERRACOTTA IN EARLY HISTORIC INDIA

In the Early Historic period of India (600 BCE to 600 CE), terracotta emerged as a vital medium for both artistic expression and utilitarian use, bridging the gap between elite courtly art and popular folk traditions. It served as a versatile, accessible medium for art and daily life, evolving from handmade Neolithic styles to sophisticated moulded techniques.

It was used extensively for religious figures, children's toys, decorative temple plaques, and utilitarian pottery, reflecting a blend of elite and popular artistic trends in urban centres.

Early Historic Terracotta include Production Techniques like - While handmade figures continued, the Early Historic period, particularly from the Mauryan to Gupta periods, saw widespread use of moulds for mass-producing figures, allowing for greater detail.

Popular finds include - Mother Goddess figures (fertility cults) Votive tanks, human figures with detailed headdresses, animal figurines (horses, elephants) and everyday items like rattles and terracotta beads. Excavations at sites like Taxila, Pataliputra, Mathura, and Chandraketugarh have revealed rich and varied terracotta assemblages.

Gangetic plain known for delicately moulded female figurines and stylized figures during the Mauryan period. Bengal and Odisha: Known for intricately designed plaques that decorated early temples and narrative structures. These terracotta objects provide crucial insight into the fashion, daily life, and religious practices of both the affluent and common people in ancient India, acting as valuable social documents.

- **Mauryan Period (c. 322–185 BCE):-**

Terracotta art in early historic India is characterized by a shift toward more refined moulded techniques, producing naturalistic, high-quality figurines, often with Hellenistic influence.

DO NO COPY

Notable for their detailed youthful features, ornate hairstyles, and heavy jewellery, these terracotta items frequently depict female figures and are heavily concentrated in Pataliputra, Bulandibagh, and Patna. Unlike earlier hand-modelled figures, Mauryan artists began using moulds for faces, allowing for realistic and detailed expressions, often paired with hand-modelled bodies. The figures display a high degree of naturalism, with some scholars suggesting Western Asiatic or Greek influence, specifically in the delicate facial features. Figures often wear elaborate coiffures, intricate hair arrangements, and heavily detailed jewellery.

Major Finds have come from Patna (ancient Pataliputra) Bulandibagh (famous for dancing-girl figures) and Mathura. The clay was often mixed with mica to ensure durability during firing, resulting in mostly ochre or red-coloured but sometimes grey-black objects.

While stylized female figurines (often termed Mother Goddesses or Yakshis) are common, the period also saw the creation of animal figures and, later in the period, moulded plaques. Significant archaeological sites across northern and Eastern India have yielded high quality Mauryan terracotta.

Pataliputra (Patna, Bihar) known for the famous "smiling children" and naturalistic dancing figures found at Bulandibagh.

Mathura (Uttar Pradesh), a major hub for "mother goddess" figurines, often characterised by their static, awesome presence and black glossy surfaces related to Northern Black Polished (NBP) ware.

Taxila (Pakistan): Evidence of cultural fusion between indigenous styles and western Asiatic/Greek influence. Other sites like Tamluk and Chandraketugarh (Bengal), Buxar and Rajghat have all produced important Mauryan-style terracotta plaques and figures.

Terracotta art during the Mauryan period (c. 322–185 BCE) represents a significant transition from prehistoric styles to more sophisticated, urbanised forms. While the period is famous for monumental stone sculptures like the Ashoka pillars, terracotta remained the "common man's medium", used extensively for religious figurines, household objects, toys and decorative objects.

DO NO COPY

- **The Shunga (c. 185–73 BCE) and Kushan (c. 1st–3rd Century CE) Dynasties:-**

The Shunga (c. 185–73 BCE) and Kushan (c. 1st–3rd Century CE) dynasties represent two distinct, crucial phases in post-Mauryan Indian history, bridging the gap between major empires and fostering significant developments in religion, art and trade. The Shungas, following the Mauryas, consolidated central India and revived Brahmanical traditions, while the Kushans, arising later, established a vast cosmopolitan empire that connected India with Central Asia, China and the Roman world.

- **Shunga Dynasty Developments (c. 185–73 BCE):-**

Founded by Pushyamitra Shunga after assassinating the last Mauryan ruler, Brihadratha, the dynasty provided stability in the Gangetic valley, controlling areas like Pataliputra, Ayodhya and Vidisha.

The Shungas fought off Greek (Yavana) invasions from the northwest, particularly under King Menander. This period is often seen as a revival of Brahmanism and Vedic sacrifices (like the Ashvamedha), but Buddhism also thrived. The famous Bharhut Stupa was constructed, and the Sanchi Stupa was enlarged during this time. Sanskrit saw a resurgence, evidenced by the work of the grammarian Patanjali, who was associated with Pushyamitra. Shunga art, particularly terracotta and stone reliefs, is characterised by a more rustic and narrative style compared to the refined Mauryan polished stone.

- **Kushan Dynasty Developments (c. 1st–3rd Century CE) :-**

Originating from the Yuezhi tribe in Central Asia, the Kushans, notably under Kanishka I, established a sprawling empire that acted as a bridge between East and West. Kanishka's empire stretched from Central Asia and Gandhara to Varanasi and Bihar, with capitals at Purushapura (Peshawar) and Mathura. The Kushans commanded the Silk Road, leading to immense prosperity through trade with the Roman Empire and China. They were among the first to issue gold coins on a large

DO NO COPY

scale. Kanishka was a great patron of Buddhism, hosting the Fourth Buddhist Council in Kashmir, which finalized the doctrines of Mahayana Buddhism. However, the kings were tolerant, with coins depicting Greek, Roman, Iranian and Hindu deities (especially Shiva).

This era saw the flowering of the: Gandhara School of Art (Greco-Roman influence, grey schist) Mathura School of Art (more indigenous, red sandstone) which pioneered the anthropomorphic representation of the Buddha.

Both dynasties were followed by periods of fragmentation—the Kanvas after the Shungas, and smaller local powers (including the Guptas later) after the Kushans—but each was instrumental in shaping the cultural and artistic landscape of ancient India.

- **Gupta Period Terracotta Art :-**

The Gupta Period (c. 4th–6th centuries CE) is often hailed as the "Golden Age" of Indian art, during which terracotta reached its peak of technical and aesthetic refinement. Unlike earlier periods where clay was primarily for common use, Gupta-era artisans elevated it to a high art form, often mirroring the sophistication of stone sculpture with its own unique "earthy" vitality.

Moving away from the heavy ornamentation of the Kushan period, Gupta terracotta emphasized simplified decorations and smooth, flowing contours. Figures often featured a serene facial expression, marked by "delicate, smiling features" and meditative, half-closed eyes that embodied inner stillness.

Artisans utilized refined, well-kneaded clay—often from the Ganges Delta's rich alluvial soil—treated with a smooth wash or slip to create a polished finish. Large-scale hollow figures, some life-sized like the famous mother goddesses, showcased unprecedented structural mastery.

Terracotta was no longer just for figurines; it became a primary medium for architectural decoration. Elaborate plaques and relief panels adorned the exterior walls of massive brick temples, such as the Bhitargaon Temple.

Prominent Centres and Works of Gupta Terracotta - Ahichchhatra (Uttar Pradesh) Known for monumental masterpieces, including life-sized Ganga and Yamuna sculptures, currently housed in the National Museum, New Delhi. Bhitargaon (Uttar

DO NO COPY

Pradesh) Features a rare surviving 5th-century brick temple whose terracotta panels depict diverse Puranic and secular narratives.

Rajghat (Varanasi)- Famous for a rich volume of small figurines, particularly detailed heads showcasing the era's fashionable and complex coiffures (hairstyles).

Mirpur Khas (Sindh) - Produced delicate polychrome (multi-coloured) reliefs of the Buddha, showing a blend of local Gupta style with lingering Gandharan influences. The imagery of this period reflects the vibrant cultural and religious life of the era. Elaborate panels of Vishnu, Krishna (e.g., battling the horse demon Keshi), and the Buddha. Detailed depictions of royal couples, musicians, and everyday scenes that reveal contemporary social customs and attire. Panels often featured high-relief animals, such as horses and birds, rendered with a profound sense of anatomy and movement.

While Gupta terracotta art maintains a consistent aesthetic of refined, supple movement across the empire, distinct regional variations emerged based on local materials and the influence of major artistic schools.

DO NO COPY

1. Uttar Pradesh & North-Central India: The Mathura Influence :-

Art in this region was heavily inspired by the Mathura School of Stone Sculpture, characterised by an "earthy ponderousness" and robust physical forms. Ahichchhatra was famous for monumental, nearly life-sized figures like the river goddesses Ganga and Yamuna, which demonstrate high technical skill in large-scale firing. Rajghat (Varanasi) was distinguished by a vast "gallery" of small heads with incredibly varied and elaborate coiffures (hairstyles), often still showing traces of original red, pink and yellow pigments. Bhitargaon is known for integrating large relief panels into the architecture of brick temples, depicting Puranic and secular narratives.

2. Eastern India (Bengal & Bihar): The Sarnath Influence :-

In regions like the Ganges Delta, where stone was scarce, terracotta became the primary medium for high-art expression, drawing inspiration from the Sarnath School.

Works are often more delicate, featuring the diaphanous drapery characteristic of Sarnath sculptures. Locations such as Chandraketugarh and Tamluk yielded sophisticated plaques with refined red clay, focusing on religious deities like Vishnu and local folk motifs.

3. Western India (Gujarat, Sindh & Rajasthan): The Gandhara Legacy :-

The western frontier retained strong links to the Greco-Buddhist art of Gandhara, blending those influences with emerging Gupta styles. Devnimori (Gujarat) was home to some of the earliest Gupta-period terracotta works (c. 375–400 CE), featuring Buddha images with wavy hair and Gandharan facial traits.

Mirpur Khas (Sindh) produced polychrome Buddha reliefs that are notably slender and delicate, maintaining a "Gandharan feeling" in their execution. Rang Mahal (Rajasthan) is unique for its "popular level" art, often using terracotta for secular and decorative pieces like toys, distinct from the more formal religious panels of the heartland.

4. Northern Frontier (Jammu & Kashmir) :-

Akhnoor is known for terracotta heads and tiles that show a refined blend of indigenous styles with lingering Central Asian influences.

DO NO COPY

10. lothalgujarat.com

CHAPTER – III

- **EMERGENCE OF TERRACOTTA IN BENGAL**
- **TERRACOTTA TEMPLE ARCHITECTURE IN BENGAL**

EMERGENCE OF TERRACOTTA IN BENGAL

The emergence of terracotta in Bengal is a unique artistic phenomenon driven by the region's geography—specifically the abundance of fine alluvial clay from its riverbanks and a critical shortage of building stone. While clay craft dates back to the Indus Valley and Mauryan period, the "Golden Age" of terracotta in Bengal flourished between the 16th and 19th centuries, particularly under the patronage of the Malla dynasty in Bishnupur.

Ancient Roots (Pre-Mauryan to 12th Century) :- This phase of emergence, in which the tradition of clay craft is over a thousand years old. Early evidence of figurines and pottery has been found at sites like Chandraketugarh, Tamluk and Pandu Rajar Dhibi.

The Pala Empire (8th–12th Century) :- The Pala Empire significantly advanced the form, integrating Hindu and Buddhist motifs into intricate sculptures.

The Islamic Influence (13th–16th Century) :- Following the Muslim conquest, architectural styles shifted. Builders used bricks for mosques and tombs, often decorating them with geometric and floral terracotta patterns, though human and animal figures were largely avoided. Features like curved cornices and multi-cusped arches from this era were later adopted into Hindu temple designs.

The Hindu Revival (16th–19th Century) :- The Hindu Revival (16th–19th Century) was the pinnacle of Bengal's terracotta art. The rise of the Bhakti movement and Vaishnavism, led by Sri Chaitanya Mahaprabhu, suprred a massive temple-building boom. Wealthy landowners and Malla kings commissioned grand temples covered in thousands of terracotta plaques to depict religious epics and daily life.

11. "Terracotta Temples of Bishnupur: Transformation through Time and Technology." The Chitrolekha Journal on Art and Design.
12. dharamkotstudio.com

DO NO COPY

Geographical & Social Drivers :- Soil Composition: The rich red laterite and alluvial soil of the Rarh region (Bankura, Birbhum, Hooghly) was ideal for making durable, detailed "baked earth" (the literal meaning of terracotta).

Artisan Communities:- The craft was traditionally maintained by the Kumbhakar (potter) and Sutradhar (carpenter/mason) communities. These village artisans adapted wood-carving techniques to clay to create the signature narrative panels seen today.

Vernacular Architecture:- The distinct "chala" style (curved roofs) was inspired by the traditional thatched huts of rural Bengal, designed to drain heavy monsoon rains efficiently.

Famous Hubs & Motifs :- Bishnupur remained famous for temples like the Rasmancha (1600 CE) and Jor Bangla (1655 CE), which are extensively adorned with scenes from the Ramayana, Mahabharata and Krishna Leela. Panchmura Village the heart of contemporary terracotta production, famous for the iconic Bankura Horse—a tall, neeked, stylized figure that has become a symbol of Indian folk art.

While early panels focused on mythology, by the 19th century, social themes like the zamindari lifestyle, European soldiers with guns, and scenes of ordinary labor became more prominent. The geography of Bengal was the primary catalyst for the emergence of terracotta as its signature architectural and artistic medium. The region's landscape dictated both the availability of raw materials and the architectural forms needed to survive its climate. Unlike northern or southern India, the Gangetic delta and the Rarh region (Bankura, Birbhum, Purulia) are largely devoid of construction-worthy stone.

To build permanent structures like temples and places, local rulers and artisans were forced to find a substitute for stone carving. Terracotta was used to create a "pseudo effect", mimicking the intricate stone carvings found in neighbouring regions like Odisha.

DO NO COPY

The riverine geography of Bengal—dominated by the Gangas, Hooghly and Jalangi—provided vast deposits of high-quality alluvial soil riverbank clay. Artisans traditionally sources clay directly from riverbanks, which has the ideal plasticity for fine – grain molding and firing. Red literate soil destinies like Bankura, the rich red laterite soil content and iron oxides that, gives Bishnupur Terracotta its distinctive reddish-orange hue. Bengal's humid, high-rainfall environment influenced the structural design of its terracotta monuments. The "Bangla" curve, the distinctive curved cornices and roofs of terracotta temples (the chala style), was inspired by the sloping roofs of traditional village huts designed to drain heavy monsoon rainwater effectively.

Artisans discovered that "baked earth" (terracotta) was more resistant to the damp, saline climate of the delta than sun-dried brick, making it a more durable protective layer of buildings.

The availability of clay in Bengal is arguably the most critical factor in its artistic history. As a deltaic region, Bengal is one of the world's richest repositories of alluvial clay, replenished for millennia by the Ganges–Brahmaputra–Meghna (GBM) river system. Traditional artisans, particularly the Kumbhakar (potter) community, have historically sourced clay from diverse local environments.

Clay is typically collected from riverbanks, silted ponds, pits, and ditches. Riverbank clay is favoured for its high plasticity and fine grain. Different varieties are also obtained from fallow land, offering variations in colour and texture. Specific areas like Bishnupur are famous for red laterite soil, which is rich in iron and gives local terracotta its signature reddish-orange hue.

Bengal's clay is primarily composed of kaolinite, with smaller amounts of illite, quartz, and feldspar. Natural clay is often impure and contains pebbles or dust. Potters meticulously clean it by sieving and removing debris to ensure it is fit for delicate sculptures.

The "clay body" blend: artisans rarely use one single type of clay. They often mix clay from two or three different sources to create a better clay body that balances strength and workability. Materials like sand, ash, or rice husk are added to the mixture to prevent excessive shrinkage or cracking during the sun-drying and firing

DO NO COPY

processes. For modern enthusiasts and artists, filtered and cleaned terracotta clay (often marketed as Kaliman Mud or Shadu Mati) is widely available from retailers.

- **CHANDRAKETUGARH (Early Site)**

The primary early site of Chandraketugarh, located in the North 24 Parganas district of West Bengal, consists of a cluster of mounds and ruins spanning an area of approximately 3–5 square kilometres. These sites represent a major early historic urban centre and port city that flourished from the pre-Mauryan period through the Pala–Sena period.

The archaeological significance of Chandraketugarh is centred on several key locations within the villages of Berachampa, Devalaya, and Hadipur.

Khana Mihirer Dhipi (Khana-Mihir Mound) — a famous archaeological mound :- Khana Mihirer Dhipi (Khana-Mihir Mound) — a famous 14-foot-high mound to the northeast of Berachampa. Excavations have revealed a massive Gupta-period brick temple with a unique Sarvatobhadra (four-faced) plan. It is associated with the local legend of the astrologer Khana and her father-in-law Varahamihira.

Chandraketugarh Garh (The Fort) — located approximately 1.5 to 2 kilometres from the Berachampa crossing. This site features the remains of a rectangular fortified city with earthen ramparts and a moat. Visually, it appears as a large soil mound today.

Itakhola — an area near Berachampa where excavations unearthed early historic habitation layers and artefacts including pottery and coins.

Nungola — situated between Khana Mihirer Dhipi and Itakhola. This site yielded significant terracotta findings.

Hadipur — located outside the main mud fortification area. This site revealed early medieval occupation remains.

These sites are renowned for establishing Bengal as a sophisticated urban hub linked to international trade.

DO NO COPY

Terracotta Art and Archaeological Finds :- Thousands of terracotta plaques depicting deities (such as Yakshis), social life, erotic scenes, and mythical creatures have been discovered. Roman and Mediterranean coins, ivory objects, and semi-precious stone beads have also been unearthed, suggesting maritime trade links with the ancient Greek and Roman Potteries and seals carrying Brahmi and Kharosthi scripts, including some with ship motifs, have been found. Specimens include Northern Black Polished Ware (NBPW), Rouletted Ware, and various red and grey wares. Most artefacts excavated from these sites are now preserved in the Chandraketugarh Museum or the Asutosh Museum of Indian Art in Kolkata.

The Cultural Significance of Terracotta in Bengal:-

The cultural significance of terracotta in Bengal shifted from purely functional pottery to a medium for religious storytelling and social documentation. Because stone was scarce, terracotta became the "language" through which the region expressed its identity.

The most profound cultural shift occurred in the 16th century with the rise of Sri Chaitanya Mahaprabhu. Temples became vertical "picture books." Thousands of plaques were used to depict scenes from the Ramayana, Mahabharata, and Krishna-Lila for a largely non-literate public.

Unlike the elite stone temples of North India, terracotta was a folk medium. The artisans (Sutradhars) infused divine figures with local features, making the gods feel like part of the Bengali household. Bengal terracotta is a visual record of cultural blending. The Sultanate of Bengal (14th–16th century) used terracotta for geometric and floral patterns in mosques (e.g., Adina Mosque). Hindu temples later adopted the Islamic dome and multi-cusped arch, while Islamic structures adopted the curved "chala" roofline inspired by Bengali village huts. By the 18th and 19th centuries, terracotta plaques moved beyond religion to record the changing social landscape.

DO NO COPY

Today, terracotta remains central to Bengal's festivals. During Durga Puja, the pratima (idol) is crafted from the same riverbank clay, maintaining a centuries-old link between the soil and the sacred.

DO NO COPY

13. Roy, Pranab (1998). Benglar Mandir: Sthapatya O Bhaskarya. Medinipur: Purbadri Prakashni, Medinipur, p. 57.
14. study.com
15. Basu, Srila & Abhra Basu (2015). Banglar Terracotta Mandir: Akkhyan O Alankaran. Kolkata: Signet Press, p. 42

TERRACOTTA TEMPLE ARCHITECTURE IN BENGAL

Terracotta architecture in Bengal is a distinctive regional style that flourished between the 16th and 19th centuries, primarily due to the lack of construction-grade stone in the alluvial Gangetic plain. Builders turned to the region's rich red clay to create "baked earth" structures, particularly temples, which have become hallmarks of Bengali cultural heritage.

Radh Bengal is a region in West Bengal also known as the Temple Town. The region consists of arrays of temples in varying sizes and devoted to different gods and goddesses, but the common thread unifying this group is that the temples are constructed in terracotta. The region consists of the following districts: Birbhum, Bankura, Burdwan, Purulia, and parts of Murshidabad.

The construction style originated in the 16th century and lasted till the 19th century. This period is also referred as the Golden Age of Temples in West Bengal. These temples use baked terracotta panels on bricks. This particular style spread outside the present-day West Bengal as well to Jharkhand, Bihar, Assam, and Tripura.

➢ HISTORY :-

The religious landscape of Bengal was dominated by Nagara-style temples till the 12th century, and after that, for centuries, religious buildings were largely dedicated to Islamic architecture until the 16th century.

After the throne was ascended by Bir Hambir, king of the Malla dynasty of Mallabhum, he became a disciple of Acharya Srinivas, which led to the establishment of a Vaishnava culture. The growth of the Vaishnava movement, especially around Radha–Krishna worship, led to the construction of terracotta temples in the region. Muslim rulers during this period were religiously tolerant and allowed other religions to flourish, which contributed to the development of Vaishnava culture and the construction of magnificent terracotta temples.

Bir Hambir Embracing Vaishnavism - According to the texts Prem Vilasa of Nityananda Das (Balaram Das) and Bhakti Ratnakara of Narahari Chakravarti, Bir

16. Chitrolekha International Magazine on Art and Design, Special Issue on the Temples of Bengal.
17. Elementary.com

DO NO COPY

Hambir was once a feared king who robbed Acharya Srinivas and his devotees while they were travelling from Vrindavan. Acharya Srinivas did not give up and remained steadfast. He persuaded the king to read the Bhagavata Purana. This experience transformed Bir Hambir and motivated him to become a follower of Vaishnavism.

➢ CONSTRUCTION TECHNIQUE :-

Construction of terracotta temples consists of a brick masonry core. In case of walls, the brick core is made of horizontally laid bricks, followed by a layer of lime plaster, on which baked terracotta panels are then affixed. Bricks were also laid horizontally on stretchers for the roofing system of vaults and domes. For construction of arches, the bricks were cut out in a tapering manner to form voussoirs. The Curved bricks also aided in making vaults and swelled cornices as well.

Major construction materials were fired bricks and lime mortar. Lime mortar was created by processing snail shells, and for roofing a very hard traditional plaster was used. In some cases, the decorative terracotta panels were embedded in the wall. Different shapes of bricks were also used in marking contours and surface modulations in facade and cornices.

➢ TEMPLE ARCHITECTURE STYLES :-

Terracotta temples are divided into four categories according to their form, composition, and structural style rather than construction technique:

1. Chala 2. Ratna 3. Deul 4. Dalan

The temples of the pre-Muslim period can be called tall curvilinear Rekha Deul temples. Popularly seen hut-style temples have two variations: Chala and Bangla style. This style was influenced by the traditional huts of Bengal and is commonly known as the Bengal Roof.

A Chala temple consists of a sloping roof joined to curvilinear edges and ending in curved cornices. There are further variations in the style in which either the number of chalas is increased or their formation is modified. Do-Chala style has a roof

DO NO COPY

sloping on two sides with a ridge at the top. Another style is Jor-Bangla, which is composed of twin Do-Chala structures attached to each other.

Further modifications of the Do-Chala are: Char-Chala — a four-sided sloping roof. At-Chala — a Char-Chala mounted with a smaller Char-Chala above it. The plans of these temples are generally simple, composed of a square or rectangle.

The ground-floor plan usually remains a simple square or rectangle. In the Ratna style, the differentiation lies mainly in the roof. The roofing system is composed of a flat roof with pinnacle towers on top. Each tower is considered a temple and they are generally present in odd numbers.

The names of the typologies change according to the number of towers:

- ✓ Eka-Ratna (single-spired)
- ✓ Pancha-Ratna (five-spired)
- ✓ Nava-Ratna (nine-spired)

The maximum number of towers or spires seen is twenty-five.

These styles are the core building blocks of Bengal's terracotta temple architecture, inspired by the region's traditional thatched-roof mud huts.

1. Do-Chala (Two-Roofed) :-

The simplest and most iconic style, it mimics a traditional village hut with two sloping roof surfaces. The roof has two sloping sides that meet at a curved top ridge. The cornices (edges) are curved to imitate the way bamboo poles bend under the weight of thatch. Jor-Bangla is a famous variation in which two Do-Chala structures are joined together. One serves as a porch and the other as the inner sanctum.

2. Char-Chala (Four-Roofed) :-

A more complex evolution where the roof is divided into four triangular segments. Four sloping roofs meet at a single central point or a short ridge. It sits on a square base, and the interior usually features a dome-like ceiling supported by arches.

3. Ratna Style (Pinnacled) :-

DO NO COPY

"Ratna" means "jewel" or "gem", referring to the spires (towers) that sit atop a flat or sloping roof. The base is typically a Char-Chala or a flat-roofed structure, but it is crowded with one or more miniature towers. These are named according to the number of spires:

- ✓ Eka-Ratna – One central spire.
- ✓ Pancha-Ratna – Five spires (one central and four at the corners).
- ✓ Nava-Ratna – Nine spires (two-tier arrangement of corner spires plus one central spire).

Chala style is a style of Bengal temple architecture that originated in Bengal from the 15th century, developing as a regional style in Hindu temple architecture. The main features of the style are curved tops and cornices. Chala-style temples in West Bengal were made of mud walls and thatched roofs. In East Bengal (now Bangladesh), they were built with bamboo structures and thatched roofs. Chala-type temples were built all over Bengal, but most surviving examples are found in present-day West Bengal. Today, these temples are located across two national territories: the Indian state of West Bengal and Bangladesh.

The presence of Chala-style architecture can be traced back to the Mauryan period. Mauryan granaries are similar to Char-Chala, one of the types of Chala style. The stone temple at Barakar in Paschim Bardhaman district of West Bengal, built in the 14th century, has a Chala-style or Bengal hut-shaped roof. The oldest Chala-style temple is the Singhabahini Temple at Ghatal. However, the Kiriteswari Temple is also considered one of the oldest Chala-style temples. The original Kiriteswari Temple was destroyed in 1405.

Influence During the Mughal Period : - During the Mughal period, the Do-Chala roof was adopted by Muslim builders and was even exported to other parts of India, where it became a prominent feature of seventeenth-century architecture in Delhi, Lahore, and Multan. In the eighteenth century, the style spread further from Delhi, Lahore, and Multan to the palace balconies and garden pavilions of Rajasthan.

DO NO COPY

The Naulakha Pavilion, located next to the Sheesh Mahal courtyard in the northern part of Lahore Fort, is built in the Do-Chala style and uses white marble in its construction.

Most temples of these styles are famous for their dense terracotta carvings depicting scenes from epics such as the Ramayana. A defining "Bengal style" feature is the downward-curving roof edges, a design originally meant to mimic bamboo structures. While found across Bengal, the highest concentrations of these styles, especially Ratna, is in Bishnupur. Bengal temple architecture also known as Malla dynasty architecture is about temple-style developed and used in Bengal, particularly the deul, chala, ratna and dalan temples.

DO NO COPY

18. Wikipedia.com
19. telibrary.com
20. Dasgupta, Chittaranjan (2000). Bharater Shilpo O Sanskritir Patabhumikay Bishnupurer Mandir Terracotta. Kolkata: Dasgupta & Company Private Ltd., pp. 812–354.

CHAPTER – IV

- **Iconography and Narrative Representation**
- **Folk Terracotta Tradition of Bengal**
- **Techniques, Materials and Process**

Iconography and Narrative Representation

The iconography and narrative representation in Bengal's terracotta temples serve as a "visual literature", where complex stories from sacred texts and secular life are translated into accessible clay panels. This tradition is heavily rooted in the Bhakti movement, particularly the Gaudiya Vaishnava faith, which transformed temples into centers for religious education and community identity. Since many surviving 17th–18th century temples are dedicated to Radha and Krishna, their iconography is central to the facades.

Stories are often depicted in continuous horizontal friezes. Common scenes include Krishna's birth, his escape from Kamsa's palace, and his childhood pranks like stealing butter. Krishna is frequently identified by his tribhanga (thrice-bent) posture, often playing a flute under a tree. A unique motif, features nine female figures (gopis) are intertwined to form large shapes of an elephant, with Krishna riding on top. Panels vividly portray Krishna defeating demons like the crane Bakasura, the serpent Kaliya, and the elephant Kuvalayapida.

Artisans, often from the Sutradhara caste, followed a standard but richly detailed format for arranging these stories. Large panels above the central archway typically feature the most grand narratives, such as Ramayana battle scenes, between Rama and Ravana. The lower registers typically depict secular life, royal processions, hunting scenes, and everyday labors. Panels reserved for Krishnalila show mythological episodes. Smaller rectangular frames on the columns and wall niches contain individual figures of musicians, dancers, warriors, and sages.

The temples also act as a mirror to contemporary 18th and 19th century society, documenting socio-political shifts. Panels depict the zamindari lifestyle, featuring hunting expeditions with tigers and deer, and processions in palanquins. Representations of village labor, including fishermen, barbers, blacksmiths, and women milking cows, reflect everyday life. Reflecting the colonial era, some plaques

21. ijpub.com
22. en.wikipedia.org

DO NO COPY

depict English soldiers carrying guns and European traders in multi-masted ships. Unique plaques even preserve specific folk traditions, such as the depiction of a Baul singer with an ektara.

- **Religious Themes (Ramayana and Mahabharata) :-**

In Bengal's terracotta temples, the Ramayana and Mahabharata are not just decorations; they are sculpted epics that wrap around the building, acting as a visual storybook for the community. The Ramayana is the most common epic depicted, primarily because it offers high-drama battle scenes that fit perfectly across the wide horizontal panels above temple arches. You will often see a massive central panel above the entrance depicting the clash between Rama and Ravana. Rama is usually shown standing on a chariot or the shoulders of Hanuman, while the ten-headed Ravana leads his rakshasa army.

Artisans delighted in carving dynamic scenes of Hanuman and his army building the bridge to Lanka (Setubandha) or engaged in combat, often using boulders and trees as weapons. Look for panels showing the Panchavati forest scenes, the abduction of Sita, and eventually the coronation of Rama (Rama-Rajya).

The Mahabharata focuses on the Kurukshetra war, while Krishna's childhood stories (Krishna-lila) are the most popular theme overall. The Mahabharata appears through specific iconic moments. Similar to the Ramayana, the walls often feature the array of armies (Vyuhas). The most famous image is Krishna as the charioteer (Parthasarathi) for Arjuna, often shown blowing his conch shell, the Panchajanya. A poignant and frequent scene shows the patriarch Bhishma lying on a bed of arrows, surrounded by the Pandavas and Kauravas. The Draupadi Swayamvara Panels often capture Arjuna aiming his arrow at the eye of a fish reflected in water to win Draupadi's hand.

- **Shyam Rai Temple (Bishnupur)** - features incredibly dense and miniature carvings of both epics.

DO NO COPY

- **Ananta Basudeba Temple (Bansberia) -** is renowned for some of the most refined and detailed Ramayana panels in Bengal.

- **Char Bangla Temple (Baranagar)** - is famous for its "embroidery-like" delicate carvings of the Kurukshetra war.

In terracotta art, specifically within the 17th–19th century temples of Bengal and the Molela plaques of Rajasthan, Krishna Leela is represented through intricate relief panels that translate complex theological narratives into a tactile, popular medium. The storytelling in terracotta is often sequential and architectural, guided by the temple's structure. Continuous narrative panels along the temple's base typically depict childhood episodes (Bal Leela) or social scenes. They often begin at the left with Krishna's birth and escape across the Yamuna. High-impact scenes like the Kamsa Badh (killing of the tyrant Kamsa) or the Ramayana battle often occupy the prominent space above entrance arches. Vertical columns and narrow panels on pillars frequently repeat images of Krishna with gopis or musicians, creating a rhythmic visual "chant".

The Iconography and Narrative Representation of Krishna Leela :-

The iconography and narrative representation of Krishna Leela (the divine play of Lord Krishna) form a rich tapestry in Indian art, where every gesture and motif holds deep spiritual meaning. Central to these representations is the concept of Lila—divine activity performed for pure joy and to draw the soul toward the divine. Krishna is identified through a consistent set of symbols and postures across various art forms.

1. Complexion: Typically rendered in Shyam (dark blue or black), symbolizing the infinite and transcendent nature of the sky and ocean.

2. Attire & Adornment: He almost always wears Pitambar (bright yellow silken garment) and a peacock feather in his crown, representing connection to nature and divine beauty.

3. The Flute (Murali): His bamboo pipe is a primary attribute, symbolizing the "call of the divine" that draws souls (gopis) away from worldly ego.

DO NO COPY

4. The Tribhanga Posture: A triple-bend stance (neck, waist, and knee) defines his graceful human-like form while symbolizing the three-tiered existence of the cosmos. Cows (representing purity and the earth), lotuses (divinity and grace), and the Yamuna River (purification) are frequently depicted to set the narrative context.

Artists represent the life of Krishna through specific "Leela" episodes, often grouped by life stages. Makhan Chor depicts the "butter thief" stealing from pots, often assisted by his friends. This symbolizes God's way of stealing the hearts of his devotees.

5. Damodar Leela:- shows baby Krishna tied to a wooden mortar by Mother Yashoda, highlighting how the Supreme Lord submits to maternal love. These are part of Bal Leela (childhood pranks).

6. Govardhan Giridhari: Krishna is shown lifting the Govardhan Mountain on his little finger to protect the people of Braj from Indra's wrath.

7. Kaliya Daman: A representation of Krishna dancing on the hoods of the poisonous serpent Kaliya, transforming poison into purity. These represent youthful feats and heroism.

Then Divine Love and Union are represented through Rasa Leela, especially in Pattachitra and Pichwai art, showing Krishna dancing in a circle with gopis. This circular formation represents the eternal, unending nature of divine love. Radha-Krishna are portrayed as the Yugal-Jodi (divine pair) under a wish-fulfilling tree, symbolizing the union of the individual soul (Atma) with the Supreme Soul (Paramatma).

Terracotta Temples of Bengal and Krishna Narratives - The terracotta temples of Bengal, particularly in Bishnupur, serve as expansive visual libraries that narrate complex stories of divinity and human life. Crafted from local riverbank clay because of a shortage of stone, these intricate panels act as "visual scriptures" for a largely illiterate population. The primary focus of temple-motif ornamentation revolves around the Bhakti movement and Vaishnava devotion. Krishna Leela panels often begin at the base of walls, narrating Krishna's life from his miraculous birth (Janma Leela) to his playful exploits in Vrindavan.

DO NO COPY

Notable scenes include Krishna dancing on the serpent Kaliya and grazing cattle with Balarama, while Mahabharata scenes, though less frequent than those of the Ramayana, depict specific epic moments such as Bheema killing Dushasana with brutal realism. Pan-Indian motifs like Vishnu on Garuda and Shiva-Parvati (Uma-Maheshwara) also appear frequently.

Folk and Social Life in Terracotta Narrative Art - The depiction of folk and social life in terracotta narrative art serves as a "visual history" that documents the socio-political and economic conditions of the time. While upper tiers of temples often focus on divine myths, the base friezes ground these narratives in the realities of human existence.

Artisans from the Sutradhara caste used clay to capture the material culture of rural and urban society, particularly from the 17th to 19th centuries.

Panels vividly illustrate the economic basis of society, showing:

- ✓ Farmers ploughing with oxen
- ✓ Fishermen with nets
- ✓ Women carrying loads of rice

Daily domestic scenes provide intimate portrayals, including:

- ✓ Women sweeping
- ✓ Cooking at earthen stoves
- ✓ Rocking babies

The lifestyles of the zamindars are often shown through hunting parties, elaborate palanquins, and horse-driven carriages. Later 19th-century works begin incorporating modern social shifts, such as British soldiers in long jackets and boots, reflecting the contemporary military presence.

Folk art in terracotta is deeply rooted in communal beliefs, myths and superstitions. Protective charms often take the form of the Bankura Horse, which serves as a votive offering to protect crops and cattle from evil spirits. The Mangal-ghat (water pot) is a common folk symbol representing life and fertility, often used in

DO NO COPY

rituals to ward off negative energy. Spiritual guardian figures of Gram-devatas (local village deities) like Sitala and Manasa are common, representing the protective bond between the community and the land.

In terracotta temple panels, symbolism acts as a bridge between the divine and the everyday, using intricate motifs to convey religious devotion, social hierarchies, and protection. These carvings were not just decorative; they served as visual scriptures and a historical record for the community.

Rasachakra, a common medallion-like composition, depicts Krishna and Radha dancing with gopis in a circular formation, representing the eternal dance of divine love.

Navanarikunjara is a rare and fascinating motif where nine women (gopis) intertwine their bodies to form the shape of an elephant, symbolizing the collective devotion that attracts the divine. **Lotus and Mangal-ghat:** The lotus signifies purity and transcendence, while the Mangal-ghat (auspicious water pot) represents fertility, life, and the invoking of positive energy.

Symbolism, Protection and Royal Authority - Beyond the spiritual, the panels use symbols to communicate societal values and provide a sense of guardianship. Depictions of horses and elephants, often adorned with bells and jewellery, symbolize power, royal authority, and status. These motifs also highlight the patronage of local kings and regional rulers.

Many figurines and narrative plaques were believed to have a protective function, guarding the temple and home against the evil eye and negative spirits. The Bankura Horse remains a powerful symbol of votive sacrifice offered to village deities like Dharma Thakur to ensure the fulfilment of wishes.

Visual Storytelling in Terracotta - Visual storytelling in terracotta is an ancient art form that transforms functional clay into a medium for mass education, spiritual immersion, and historical documentation. By arranging hundreds of individual plaques into large decorative schemes, artisans created “visual scriptures” that narrated complex stories of divinity and human life to audiences regardless of literacy.

DO NO COPY

The arrangement of terracotta panels on temple facades follows a deliberate narrative hierarchy designed to guide the viewer's journey. Positioned at eye level or below, the horizontal bands often focus on secular folk and social life, such as:

- ✓ Hunting parties
- ✓ Rows of soldiers
- ✓ Daily domestic chores

Arches, frames, and columns in the central areas typically feature the most significant mythological episodes, such as the battles of the Ramayana and the Mahabharata or the divine Krishna Leela. Stories are often meant to be read in a specific direction (left to right) around the temple, mimicking the ritual of Pradakshina (circumambulation).

Artisans from the Sutradhara (carpenters/sculptors) caste developed specific visual codes to convey movement, emotion and identity. Divine figures like Krishna are identified through specific iconographic gestures—such as a bent leg for dancing or hands holding a flute. Rather than just clothing, over time simple linear carvings evolved into high-relief panels where expressive faces and fluid movements captured the "spirit" of the narrative.

Scenes of rural life, cattle, and trees are used as backdrop props to ground mythological stories in the local Bengali or Rajasthani landscape.

DO NO COPY

23. Karmakar, Bikas; Gupta, Ila (June 2018). "Tracing the Impact of Krishnalila Narratives on Bengal Temple Architecture: A Study of Terracotta Temples of Baranagar." Journal of Heritage Management, 3:49–70.
24. DOI: 10.1177/2455929618773274
25. ISSN: 2455-9296
26. S2CID: 165466916
27. Molela Terracotta

Folk Terracotta Tradition of Bengal

The folk terracotta tradition of Bengal is a "living clay legacy" that bridges ancient ritual practices with contemporary artistic expression. While the Bankura Horse is its most globally recognized icon, the tradition encompasses a vast range of votive objects and dolls that reflect the spiritual and social history of the region.

Terracotta objects in rural Bengal are often functional "visual prayers". Outside of temples, animal figures like horses and elephants are placed under sacred pipal trees as tokens of devotion to village deities like Dharma Thakur and Manasa.

Fertility symbols: Shashthi Putul (a female figure holding a baby) is worshipped to protect children and bless motherhood. Manasa-chali are intricate clay backdrops depicting the snake goddess, essential for household rituals in the Rarh region. The Mangal-ghat (water pot) is used in Hindu ceremonies to signify life and prosperity.

Tapa Putul (hand-pressed dolls), one of the oldest forms dating back to the Indus Valley Civilization, is shaped by simply pressing raw clay with fingers without the use of moulds. Large figures like the Bankura Horse are made by joining wheel-turned parts (legs, neck and body) before firing. The tradition has evolved from purely ritualistic to widely decorative and secular motifs.

Babu Putul and Rani Putul dolls from Jaynagar, Majilpur and Howrah satirically depict colonial figures (the "Babu") or mimic British royalty like Queen Victoria. Mem Putul (Memsahib dolls), found in Bishnupur, are tiny finger-sized dolls that often feature Western-style attire like caps and frocks, reflecting colonial aesthetic influences. Today, terracotta motifs are adapted into jewellery, lampshades and tiles for urban homes.

The Bankura terracotta tradition, specifically the Panchmura style, is a 400-year-old craft from West Bengal that has evolved from a sacred village ritual into a globally recognised symbol of Indian folk art. Originating under the patronage of the Malla Kings, this tradition is famous for its stylized red clay sculptures, most notably the iconic Bankura Horse.

28. McCutchion, David J. (1967). The Temples of Bankura District. Calcutta: Writers Workshop.
29. McCutchion, David J. (1972). Late Medieval Temples of Bengal. Kolkata: The Asiatic Society, p. 15.

DO NO COPY

The Bankura Horse is defined by its elegant abstraction—long erect ears, a slender neck, and a dynamic stance. Originally, these horses were "Manat" offerings—symbolic sacrifices made to local deities like Dharma Thakur (the sun god) and Manasa (the snake goddess) to seek protection or express gratitude for fulfilled wishes.

In folk belief, the horse is considered the swiftest messenger to the divine, carrying a devotee's plea directly to the gods without a priest's mediation. The horse's artistic value is so significant that it was adopted as the official logo for All India Handicrafts and has been featured on Indian postage stamps.

Beyond the famous horse, the Bankura tradition includes several other key ritualistic items like Manasa Chali, an elaborate terracotta backdrop depicting the snake goddess Manasa, used to ward off evil and protect households. Bonga Hati (Elephant), a round-shaped elephant with a uniquely curved trunk, symbolizes royal authority and prosperity. While Terracotta Sankha traditionally made from conch shells, these clay versions are used as symbolic home cleansers to bring longevity and fame.

The production of Bankura terracotta is a meticulous, family-oriented process that remains largely manual. Artisans use local riverbed clay (Etel Mati), which is refined and sometimes mixed with sand or paddy plants for consistency. Large figures are made in parts—legs, neck, and face—on a potter's wheel and then joined with clay paste. The reddish-brown hue is achieved by firing in open mud kilns at high temperatures. Black variations are created by sealing the kiln vents to trap smoke during firing.

The continuity of the terracotta tradition in Bengal is a remarkable story of adaptation, where a craft once used to build massive temples has survived by transitioning into folk rituals, home décor, and global art.

1. Architectural to Artisanal (17th Century – Present) :-

While the era of building grand terracotta temples like those in Bishnupur ended with the decline of royal patronage, the Sutradhara (sculptor) communities did

DO NO COPY

not let the skill die. They shifted their focus from large-scale temple panels to smaller portable plaques and idols, ensuring the narrative techniques remained intact.

2. Ritualistic Continuity: The "Than" Shrines :-

The strongest link to the past is the ongoing ritual use of terracotta. In rural Bengal, the practice of offering Bankura Horses and Elephants at "Than" (village shrines) remains unchanged. These are not seen as art, but as "material prayers" for protection and health, keeping the demand for traditional forms alive among local potters.

3. Geographical Indication (GI) Protection :-

In 2018, Bankura Panchmura Terracotta was granted a GI tag. This legal recognition ensures that only artisans from this specific cluster can use the name, protecting the authenticity of the "Bankura style" from mass-produced imitations.

4. Modern Adaptation and Lifestyle :-

Today, the tradition thrives through contemporary utility, moving from the shrine to the urban living room. Jewellery artisans now create intricate terracotta necklaces and earrings, often featuring motifs like the lotus or peacock seen on ancient temple walls.

Wall murals and tiles depicting "Krishna Leela" or village scenes are popular in modern interior design. Fashionable dolls like "Babu-Bibi" and "Mem Putul", which once satirized colonial life, are now sought-after collectors' items.

5. Sustainability and Global Markets :-

The tradition continues because it remains eco-friendly, using local riverbed clay and natural firing methods. Bengal terracotta aligns with global "green" trends. Platforms like The Bengal Store and Memeraki have brought these village crafts to international buyers.

Tradition Aspect	Ancient Use	Contemporary Use

DO NO COPY

Narrative	Temple walls (epics)	Wall plaques & murals
Ritual	Votive offerings (Manat)	Decorative sculptures
Material	Riverbed clay	Eco-friendly art & lifestyle productions

The terracotta tradition of Bengal is a living heritage that dates back over 5,000 years. Traditionally practised by the Kumbhakar (potter) community, it is deeply rooted in the region's geography, particularly the abundance of fine riverbed clay and unique red laterite soil.

While ancient practices once focused on temple architecture and ritual offerings, modern artisans have adapted these techniques to create home décor and jewellery that has gained international recognition. Artisans primarily use alluvial clay (locally called Etel Mati) collected from riverbanks or pits. The clay is refined by removing pebbles and organic matter, then kneaded—often by hand—and mixed with sand and dried rice paddy to prevent cracking.

A traditional wooden wheel (chak) is used to throw basic cylindrical or funnel-like shapes. Intricate figures, such as the iconic Bankura Horse, are made in separate parts—legs, neck and head—and later joined using clay paste. Fine patterns are etched or added using bamboo tools called chhiyari or pitna. After drying in the shade to avoid heat-induced fractures, items are baked in traditional mud kilns (Poyan or Bhati).

They are fired at temperatures between 700–800°C using local fuels like dry eucalyptus leaves, twigs and wood. Depending on the oxygen levels and fuel used, the finished pieces take on a characteristic rusty red, brownish-orange, or natural black hue.

- **Notable Tradition Hubs :-**

1. Panchmura (Bankura District) :-

DO NO COPY

Recognized as the “heart of terracotta,” this village is famous for the Bankura Horse, which holds a GI tag. Historically, these horses were offered under pipal trees for village religious rituals.

2. Bishnupur :-

Renowned for its terracotta temples built under the Malla Kings between the 17th and 19th centuries. The walls are covered in thousands of intricate tiles depicting scenes from the Ramayana and the Mahabharata.

3. Ghurni & Krishnanagar (Nadia) :-

These areas are known for high-quality clay dolls (Putul) and lifelike figurines that depict everyday rural life.

4. Kumartuli (Kolkata) :-

A specialized cluster famous for crafting massive clay idols, particularly for the Durga Puja festival.

5. Iconic Products :-

Bankura Horse (Ghora): A stylized, long-necked horse figure that is a global symbol of Indian folk art.

Manasa Chali: Ritualistic idols of the snake goddess Manasa, often crafted with elaborate snake hoods.

Tepa Putul: Hand-pressed dolls made by pinching raw clay, carrying a heritage of over 5,000 years.

Modern artisans from sites like The Bengal Store and local markets in Panchmura produce terracotta jewellery, lampshades, and decorative wall plaques.

DO NO COPY

30. Dasgupta, Pradesh (1974). Temple Terracotta of Bengal. New Delhi: Crafts Museum.
31. Bishnupur: Temples of the Earth (Google Arts & Culture)
32. Category: Hindu Temples in West Bengal

Techniques, Materials and Process

The creation of Bengal terracotta is a meticulous, multi-stage process that transforms riverbank clay into durable art. This tradition relies on seasonal cycles, manual dexterity and specialized tools passed down through generations of the Kumbhakar (potter) community.

The making of Bengal's terracotta artefacts involves time-honoured techniques passed down through generations. Local artisans skillfully mould the clay, typically collected from riverbanks, into various forms. After shaping, the pieces are left to dry in the sun, creating a robust foundation.

Following this, the artisans meticulously etch intricate designs and motifs onto the clay using simple tools. The items are then baked in kilns to harden, ensuring their longevity. Bengal, a land brimming with vibrant traditions and rich history, possesses a timeless art form that weaves stories through the very earth it is made of. Bengal's terracotta clay crafts, often heralded as a masterpiece of ancient artistry, transcend the boundaries of time and space, serving as a living testament to the region's incomparable heritage and artistic legacy.

Bengal's terracotta creations are not mere clay figurines; they are living embodiments of history, culture and craftsmanship. Each piece carries with it a narrative that has been shaped by centuries of dynastic influence, artistic innovation, and unwavering devotion

These exquisite artefacts, from the smallest charms to the grandest temple facades, embody the soul of Bengal, capturing the essence of the land and its people. The origins of Bengal's terracotta clay craft date back thousand years, with influences from various dynasties that have ruled the region. The Pala Empire, which flourished between the 8th and 12th centuries, made significant contributions to the development of this art form. Temples and sculptures from this era exhibit intricate terracotta detailing, showcasing the unique blend of Hindu and Buddhist motifs.

Bengal's terracotta tales are a testament to the region's artistic prowess, and each piece carries with it a piece of history and culture. From its historical roots in temple architecture to contemporary applications, these terracotta artefacts continue to

33. reddit.com

DO NO COPY

captivate the world with their rich narratives and intricate craftsmanship. To experience the stories behind Bengal's terracotta clay crafts is to delve deep into the heart of this vibrant culture and discover a living legacy that transcends time, Visit The Bengal Store to explore and own a piece of this timeless heritage, adding a touch of elegance to your home decor.

1. Clay Preparation :-

In the Bengal tradition, clay preparation is a labour-intensive ritual performed predominantly by the Kumbhakar (potter) community to ensure the material can withstand the stress of the kiln.

(i) Sourcing the “Mati” :-

Artisans differentiate between types of clay based on their plasticity and source. Etel Mati (Alluvial Clay): Collected from the beds of the Hooghly or local rivers. It is highly plastic and serves as the primary body. Beli Mati (Sandy Clay): Often mixed in to reduce shrinkage and prevent the clay from sticking to tools. Laterite Soil: Specifically used in regions like Bankura and Bishnupur, giving the products their famous deep red hue.

(ii) Processing and Refining :-

Raw clay is rarely used immediately. It must undergo several stages of cleaning. Drying and Crushing the raw lumps are dried in the sun and then crushed into a fine powder using a heavy wooden mallet. Sieving (Chala) - The powdered clay is passed through a chata (bamboo sieve) to remove pebbles, roots, and organic debris. This ensures the surface of the finished piece is perfectly smooth.

(iii) Mixing and Additives :-

To make the clay “tough” and workable, potters add specific tempering materials. Sand and silt are added to provide structural “grit”. Rice husk or paddy is

DO NO COPY

occasionally mixed in; these fibres burn away during firing, leaving microscopic pores that help the object survive thermal expansion.

(iv) Kneading Thasa: -

This is the most critical step for ensuring the piece doesn't explode in the kiln. Hydration: the refined clay is mixed with water in a pit and left to soak, often overnight. The artisans knead the wet clay using their feet and later hands for up to 6 hours. This process, called thasa, removes all air bubbles (de-airing) and ensures a uniform, elastic consistency.

(v) Aging:-

The prepared clay is often stored in a cool, dark corner covered with wet jute sacks for a few days. This “aging” process allows the water to distribute evenly through every molecule of clay, significantly increasing its workability for the wheel or hand-particle.

- **Moulding Techniques :-**

In Bengal terracotta, moulding isn't just about one method; it is a clever combination of wheel-throwing, hand-shaping and joining because many traditional figures (like the Bankura Horse) are too complex to be made in one piece. The craft relies on “assembly-line” construction.

(i) Wheel-Throwing (Chak) :-

The potter's wheel is the starting point for most hollow structures. The foundational components like the torso, long necks of horses, and limbs are thrown as basic hollow cylinders or cones. Precision artisans use their thumbs to gauge wall thickness, ensuring the pieces are light but sturdy enough to support their own weight.

(ii) Hand Modelling (Tepa Putul) :-

DO NO COPY

This is the most ancient technique, often used for smaller dolls or fine detail, including pressing. The term tepa means “pressed”. The artisan pinches the clay between their thumb and forefinger to pull out features like noses, ears, or limbs without using any tool. This ancient heritage method dates back to the Indus Valley civilization and is still used today to make small ritualistic figurines.

(iii) Joining and Assembly :-

For larger icons like the Bankura Horse or Manasa Chal, the process is modular. Leather-hard stage: Wheel-turned parts are allowed to dry until they are “leather-hard” (firm but still moist). Adhesion: The separate parts—legs, neck, tail—are joined using a thin clay slurry called slip, which acts as a natural glue. Once joined, the artisan smooths the seams with their fingers so the figure looks like a single, seamless piece.

(iv) Use of Moulds (Chanch) :-

Moulds are primarily used for repetitive or highly intricate architectural work. Temple tiles for the famous terracotta temples of Bishnupur clay is pressed into wooden or terracotta moulds (chanch) to create intricate scenes from epics. Small details like the decorative jewelry on an idol or the scales of a fish are often stamped using a pre-carved mould.

(v) Beating and Shaping (Pithna) :-

For large pots or curved surfaces, potters use a Pithna (wooden beater) and a Bole (stone anvil held inside). By beating the outer wall against the inner support, they can expand the clay, making it thinner and more resilient.

- **Firing Process :-**

The firing process, known as Poyan or Bhati, is the transformative final stage where sun-dried clay is baked into permanent ceramic. This process typically occurs in mud kilns using traditional fuels to achieve specific earthy tones.

DO NO COPY

(i) Kiln Setup and Loading :-

Artisans use traditional enclosed mud kilns called Bhati or Poyan. Sun-dried items are carefully stacked inside the kiln. Heavier products are placed at the bottom to provide stability, while lighter or more delicate pieces are placed on top. The entire stack is covered with layers of broken pottery and straw, then sealed with a thick mud plaster to maintain a consistent temperature.

(ii) Temperature and Duration :-

The firing typically involves a gradual increase in heat to prevent the clay from cracking or bursting due to trapped moisture. Most Bengal terracotta is fired at temperatures between 700°C and 800°C. The entire cycle takes approximately 4 to 6 hours of active firing, followed by a long period of natural cooling. Local slow-burning fuels such as dry eucalyptus leaves, twigs, and firewood are preferred for their steady heat output.

(iii) Atmospheric Effects on Color :-

The final color of the terracotta is determined by how the artisan manages the oxygen levels inside the kiln. If the kiln allows air to circulate, the iron in the clay reacts with oxygen to produce the classic rusty red or brownish-orange hue (oxidation). To create natural black terracotta, the artisan completely seals the kiln's vents toward the end of the firing. This traps smoke and carbon inside, which is absorbed by the clay, turning it a deep metallic black.

(iv) Cooling and Unloading :-

Cooling must be slow and natural to avoid thermal shock, which can cause the finished pieces to shatter. The kiln is left undisturbed until it reaches close to room temperature, often taking as long as the firing itself. Only after the kiln has completely cooled do the artisans break the mud seal to remove the finished items.

DO NO COPY

- **Tools and Methods : -**

The tools used in Bengal terracotta are remarkably simple, often fashioned by the artisans themselves from bamboo, wood, and stone. The "Match Method" refers to the precision-based assembly of separate parts (like the neck, legs and torso of a horse), so they align perfectly during the joining process.

(i) Essential Toolset :-

Ekkiyari / Chirage – Small bamboo or wooden sticks with one pointed end and one flat, spatula-like end. These are the primary tools for etching fine lines, eyes, and floral patterns into semi-wet clay.

Patha (Beater) – A flat wooden paddle used to beat the exterior of the clay to thin the walls and increase strength.

Bole (Anvil) – A smooth, mushroom-shaped stone held inside the hollow clay object to provide resistance while the exterior is being beaten with the Pithna.

Chak (Potter's Wheel) – A heavy wooden or stone wheel used for throwing the foundational cylindrical shapes.

Suta (Thread) – A simple cotton thread used to slice the finished wet object off the moving wheel.

(ii) The Match Method (Assembly) :-

Since iconic figures like the Bankura Horse are too large and complex to be thrown as a single piece, artisans use a modular "match and join" system. Components including the torso, four legs, and the long neck are thrown separately on the wheel. The artisan uses their fingers or a simple bamboo gauge to ensure the diameter of the leg-tops “matches” the holes or attachment points on the torso. When the parts reach the "leather-hard" stage (firm but not dry), the contact surfaces are roughened and coated with slip (liquid clay). The parts are pressed together.

The “match” is verified visually to ensure the horse stands straight and the neck is at the correct traditional angle. A wet Ekkiyari is used to blend the seams until the joint is invisible, making the separate pieces look like a single sculpture.

DO NO COPY

(iii) Surface Treatment Tools :-

Vali – A small iron scraper used to shave off excess dry clay and refine the silhouette. Bamboo pipes are used to punch perfect circular holes in hollow figures. These holes are vital as they allow air to escape during firing, preventing the piece from exploding

DO NO COPY

34. George Mitchell (ed.) (1983). Brick Temples of Bengal. New Jersey: Princeton University Press.
35. colorandstone.eu
36. puratattva.in
37. travelofsamuise.substack.com

CONCLUSION

The present study on Terracotta Traditions reveals that terracotta has been one of the earliest and most enduring forms of artistic and utilitarian expression in human civilization, particularly in the Indian subcontinent. From prehistoric times to contemporary practices, terracotta has served as a medium reflecting technological advancement, regional aesthetics, and socio-cultural life.

The research highlights that terracotta artifacts from early civilizations demonstrate a high level of craftsmanship and understanding of material properties. In India, terracotta has been widely used for religious sculptures, architectural decoration, domestic objects, and ritualistic purposes. Regional variations, such as those seen in Bengal, Gujarat, Tamil Nadu, and the Gangetic plains, indicate localized styles, themes, and techniques.

Despite industrialization, terracotta continues to survive as a living tradition in rural and semi-urban communities. The craft has undergone transformations due to changing socio-economic conditions, yet retains its cultural essence. Overall, terracotta emerges as both a historical document and a dynamic artistic practice that bridges past and present.

The Terracotta Tradition holds immense importance due to its accessibility, sustainability and adaptability. As a material, clay is abundant and economical, making it one of the most democratic forms of artistic expression. Terracotta showcases creativity through form, texture and symbolic representation. Artifacts provide insights into ancient lifestyles, beliefs and trade practices. Being eco-friendly and biodegradable, terracotta aligns with modern environmental concerns. It supports the livelihood of traditional artisans and craft communities. Thus, terracotta is not merely an art form but a vital component of cultural heritage and rural economy.

Terracotta occupies a significant place in cultural and religious practices across India. It is deeply intertwined with rituals, festivals and local traditions. Terracotta idols and votive offerings are widely used in temples and folk shrines. Rural communities use terracotta objects in ceremonies related to fertility, harvest and protection. Decorative panels and temple facades, especially in eastern India, illustrate

DO NO COPY

mythological narratives and social life. Terracotta figures often represent deities, animals and everyday scenes, reflecting collective beliefs and values. The cultural continuity of terracotta underscores its role as a medium of identity, tradition and community memory.

While this study provides a comprehensive understanding of terracotta traditions, several areas remain open for further exploration: Scientific analysis of clay composition, firing techniques and preservation methods. In-depth documentation of lesser-known terracotta traditions and artisan communities. Study of how modern artisans are integrating terracotta into contemporary art practices. Research on improving market access, design innovation and economic sustainability for artisans. Use of digital tools for archiving and promoting terracotta heritage globally.

Future research can play a crucial role in preserving and revitalizing this ancient craft in the face of modernization. In conclusion, terracotta stands as a testament to human creativity, resilience and cultural continuity. Its journey from prehistoric artifacts to contemporary craft practices reflects both stability and transformation. As a medium that transcends time, geography and social boundaries, terracotta continues to inspire artists, historians and communities alike.

Preserving and promoting terracotta traditions is essential not only for safeguarding cultural heritage but also for ensuring sustainable development and artistic diversity in the modern world.

DO NO COPY

References

1. Publications Scholar, “Volume VIII, Issue III, May 2022”, International Journal of Humanities & Social Science Studies (IJHSSS).
2. Mukherjee, Tarun Tapas; Mukherjee, Sreecheta. “Chitrolekha Journal”, Ekhan Journal, Vol. 1, No. 1, 2017. Chitrolekha International Magazine on Art and Design.
3. www.bibliopolis.com, Brick Temples of Bengal: From the Archives of David McCutchion by David McCutchion, ed. George Mitchell. Mullen Books.
4. “Terracotta Temples of Bishnupur: Transformation through Time and Technology.” The Chitrolekha Journal on Art and Design.
5. Roy, Pranab (1998). Benglar Mandir: Sthapatya O Bhaskarya. Medinipur: Purbadri Prakashni, Medinipur, p. 57.
6. Chitrolekha International Magazine on Art and Design, Special Issue on the Temples of Bengal.
7. Basu, Srila & Abhra Basu (2015). Banglar Terracotta Mandir: Akkhyan O Alankaran. Kolkata: Signet Press, p. 42.
8. Dasgupta, Chittaranjan (2000). Bharater Shilpo O Sanskritir Patabhumikay Bishnupurer Mandir Terracotta. Kolkata: Dasgupta & Company Private Ltd., pp. 812–354.
9. Karmakar, Bikas; Gupta, Ila (June 2018). “Tracing the Impact of Krishnalila Narratives on Bengal Temple Architecture: A Study of Terracotta Temples of Baranagar.” Journal of Heritage Management, 3:49–70.
10. DOI: 10.1177/2455929618773274
11. ISSN: 2455-9296
12. S2CID: 165466916

DO NO COPY

Bibliography

- McCutchion, David J. (1967). The Temples of Bankura District. Calcutta: Writers Workshop.
- McCutchion, David J. (1972). Late Medieval Temples of Bengal. Kolkata: The Asiatic Society, p. 15.
- Dasgupta, Pradesh (1974). Temple Terracotta of Bengal. New Delhi: Crafts Museum.
- George Mitchell (ed.) (1983). Brick Temples of Bengal. New Jersey: Princeton University Press.

External Links

- Bishnupur: Temples of the Earth (Google Arts & Culture)
- Category: Hindu Temples in West Bengal

DO NO COPY

Websites

- Eden House of Art
- https://en.wikipedia.org/wiki/Terracotta
- https://www.visual-arts-cork.com/sculpture/terracotta
- ResearchGate
- libretexts.org
- dharmkotstudio.com
- study.com
- elementary.com
- Wikipedia
- telibrary.com
- lothalgujarat.com
- ijpub.com
- en.wikipedia.org
- Molela Terracotta
- reddit.com
- colorandstone.eu
- puratattva.in
- travelofsamuise.substack.com

DO NO COPY

List of Images

1. **Seated Mother Goddess, Indus Valley Civilization, c. 3000–2500 B.C.E., Mehrgarh style, Terracotta, Baluchistan, Pakistan.**
2. **Dog from Harappa (2600–1900 BCE), Terracotta.**
3. **Terracotta figure, Harappa (Pakistan), Indus Valley Civilization.**
4. **Terracotta figure (c. 2500 BCE), Indus Valley Culture, Chanhu-daro, Pakistan.**
5. **Molded tablet, Harappa, Terracotta (Harappa Museum).**
6. **Terracotta figures, Harappa (Pakistan), Indus Valley Civilization (National Museum, New Delhi).**
7. **Dancing Girl, Mohenjo-daro, Harappan Civilization, 2700–2100 BCE, Bronze.**
8. **Dancing Girl.**
9. **Priest King, Mohenjo-daro, white low-fired steatite.**
10. **A group of Terracotta figurines from Harappa.**
11. **Toys made for children of Indus Valley Civilization.**
12. **Indus Valley Civilization stamp seal and its impression, Harappan period (2600–1900 BCE).**
13. **Terracotta panel on the Ramayana.**
14. **Ganga–Yamuna, 5th century A.D., Ahichchhatra, U.P.**
15. **Pushyamitra Shunga, the last Mauryan king.**
16. **Terracotta vase, 200 BC–300 BC, Nindorari, Baluchistan, Pakistan, Department of Archaeology and Museums.**
17. **Emperor Kanishka, Kushan nobleman, 2nd–3rd century C.E.**
18. **Terracotta art of Satavahanas.**
19. **1st century CE (1 AD), Andhra Dynasty.**

DO NO COPY

20. **100 CE (100 AD), The Kushan Empire, Yuezhis, Aryan race, The Rule of Sovereign Tribe.**
21. **200 CE (200 AD), antiquity period, Kushan Empire, Saka.**
22. **300 CE (300 AD), old Kushan and Satavahana empire.**
23. **Indus Valley Civilization (2600–1900 BCE).**
24. **Pancha Ratna Temple, Shyam Rai Temple, Bishnupur.**
25. **Fight between Rama Chandra and Ravana, the Jor Bangla Temple, Bankura.**
26. **The Jangeshwar (or Bangla-styled) Temple.**
27. **Radhashyam Temple, Bishnupur.**
28. **Charbangla Temple, Baranagar, Jiaganj Azimganj, Murshidabad District, West Bengal.**
29. **The Bhitargaon Temple in Kanpur, Uttar Pradesh.**
30. **Chandraketugarh Museum.**
31. **Temple of Bishnupur.**
32. **The Ramancha.**
33. **Siddheshwar Temple of Bahulara, surrounded by stupas.**
34. **Ratna Style Temple (Eka-Ratna).**
35. **Kantajew Temple or Kantanagar Temple, Dinajpur district, Bangladesh.**
36. **Pancha Ratna Shyam Rai Temple, Bishnupur, Bankura district, West Bengal, India.**
37. **Ananta Basudeba Temple, Jangeshwar Temple, Bankura, West Bengal, India.**
38. **Jor-Bangla Temple, Keshta Raya Temple, Bishnupur, Bankura district, West Bengal, India.**
39. **The Tomb of Mir Tharo Talpur, located in Chitori graveyard.**
40. **Chitori Graveyard, near Mirpur Khas in Sindh, Pakistan.**

DO NO COPY



DO NOT COPY

Seated Mother Goddess, Indus Valley Civilization, c. 3000–2500 B.C.E., Mehrgarh style, Terracotta, Baluchistan, Pakistan.



Dog from Harappa (2600–1900 BCE), Terracotta.



Terracotta figure, Harappa (Pakistan), Indus Valley Civilization.



Terracotta figure (c. 2500 BCE), Indus Valley Culture, Chanhu-daro, Pakistan.

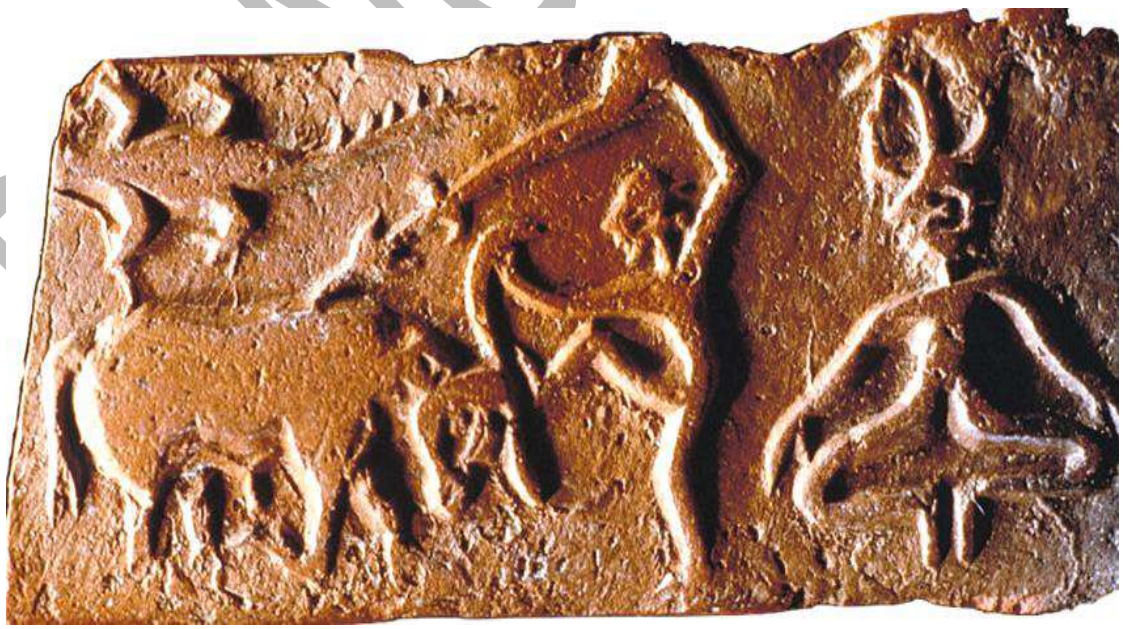

Molded tablet, Harappa, Terracotta (Harappa Museum).



Terracotta figures, Harappa (Pakistan), Indus Valley Civilization (National Museum, New Delhi).



Dancing Girl, Mohenjo-daro, Harappan Civilization, 2700–2100 BCE, Bronze.



Dancing Girl.

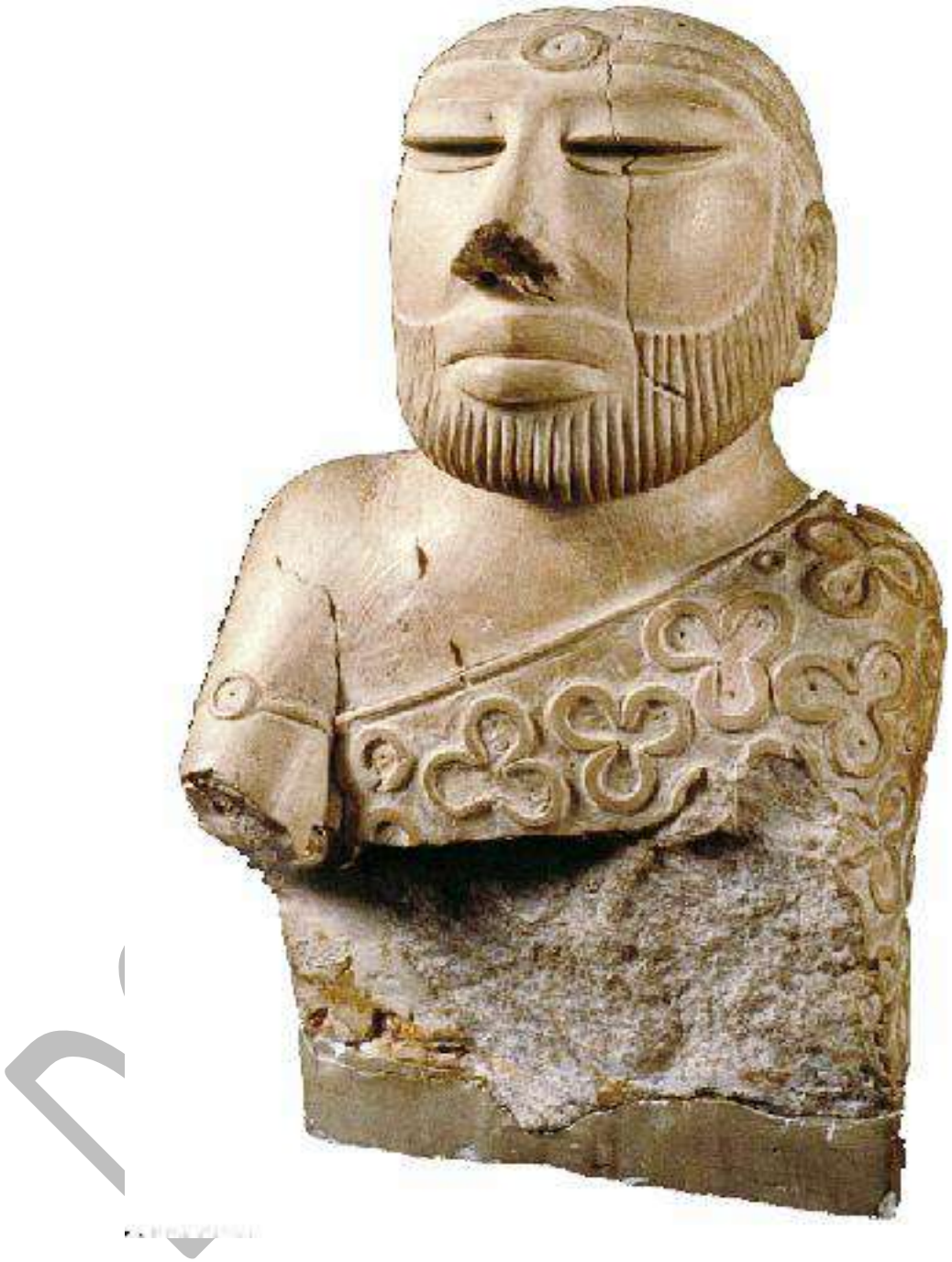

Priest King, Mohenjo-daro, white low-fired steatite.



A group of Terracotta figurines from Harappa.



Toys made for children of Indus Valley Civilization.



Indus Valley Civilization stamp seal and its impression, Harappan period (2600–1900 BCE).



Terracotta panel on the Ramayana.



Ganga–Yamuna, 5th century A.D., Ahichchhatra, U.P.



Pushyamitra Shunga, the last Mauryan king.

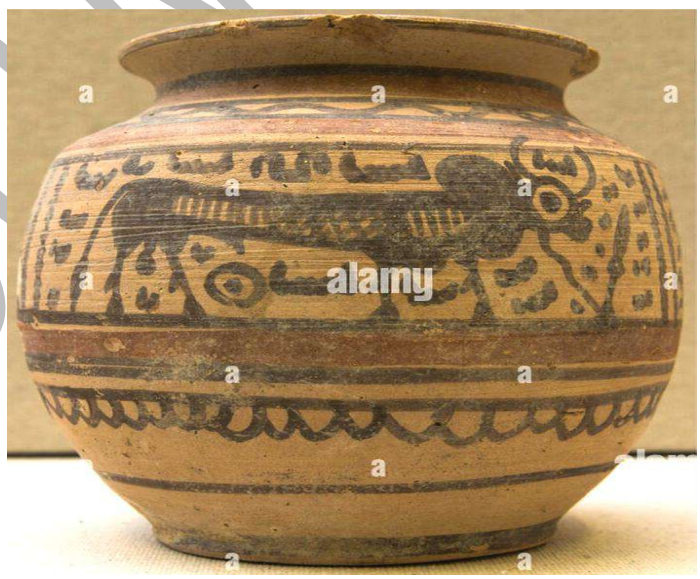

Terracotta vase, 200 BC–300 BC, Nindorari, Baluchistan, Pakistan, Department of Archaeology and Museums



Emperor Kanishka, Kushan nobleman, 2nd–3rd century C.E.

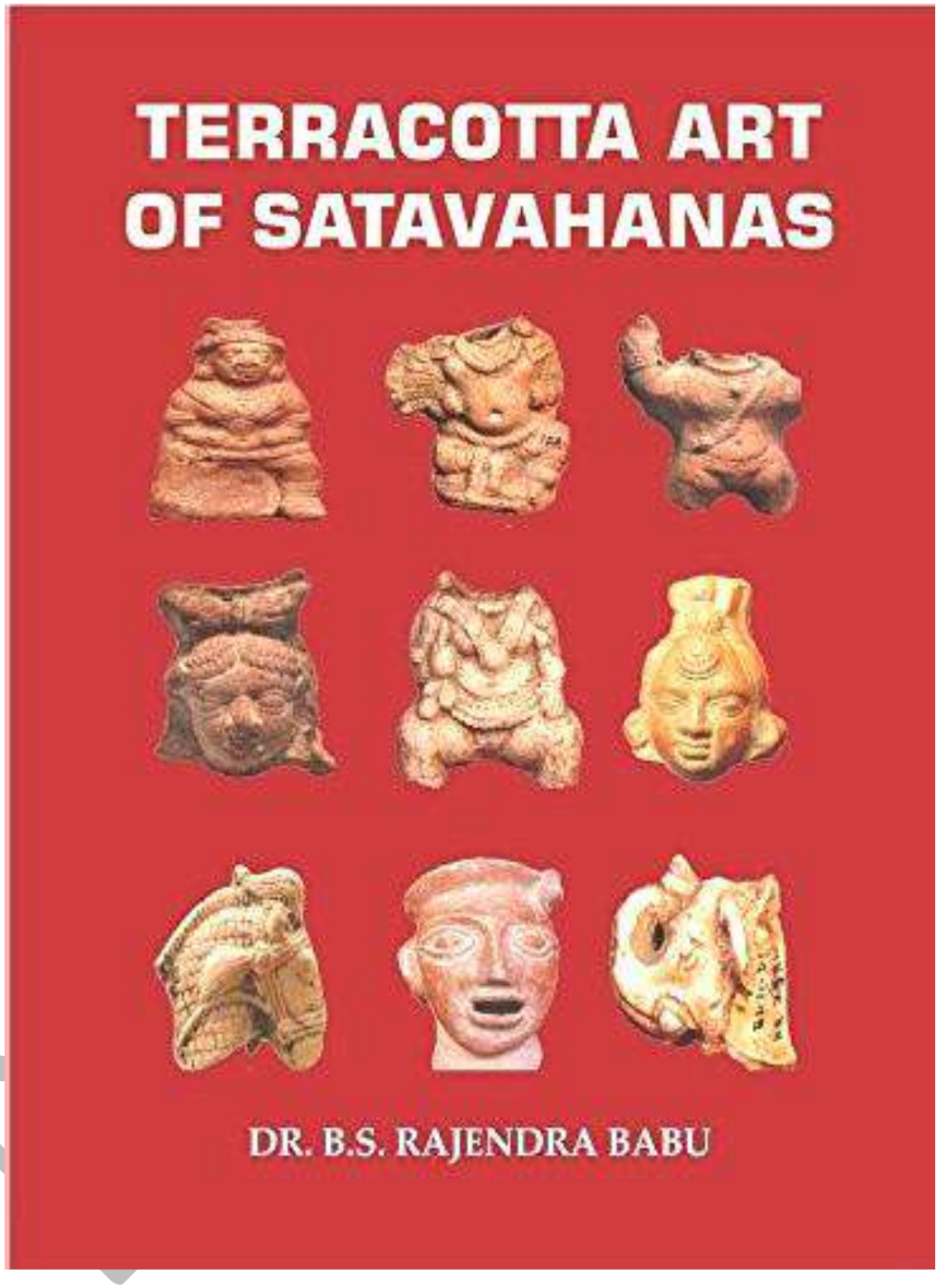

Terracotta art of Satavahanas.



1st century CE (1 AD), Andhra Dynasty.



100 CE (100 AD), The Kushan Empire, Yuezhis, Aryan race, The Rule of Sovereign Tribe.

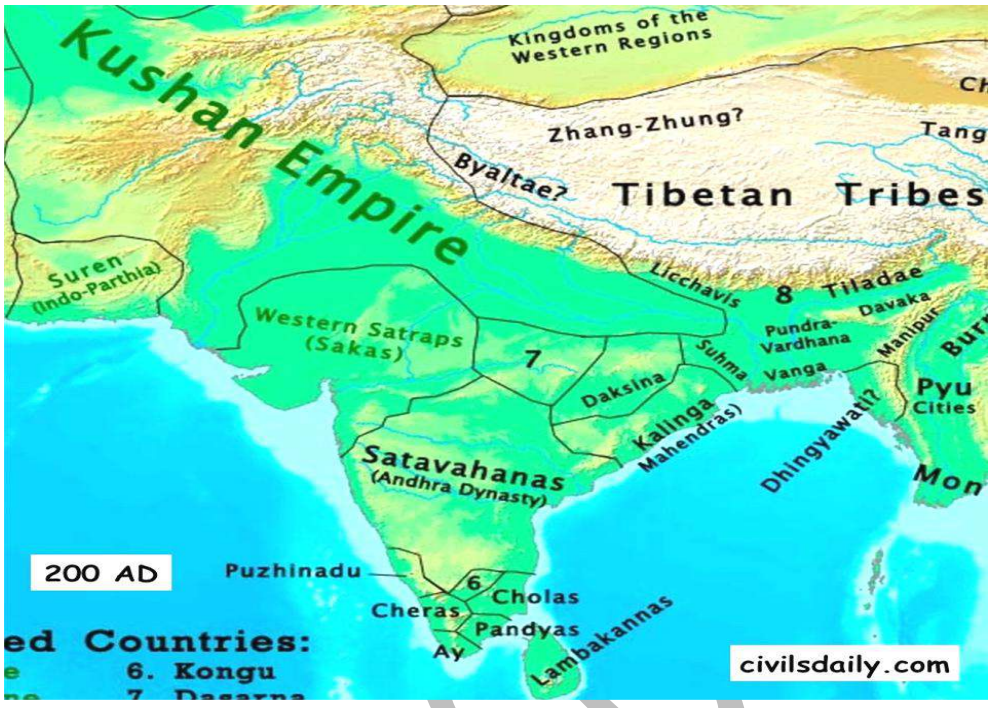

200 CE (200 AD), antiquity period, Kushan Empire, Saka.

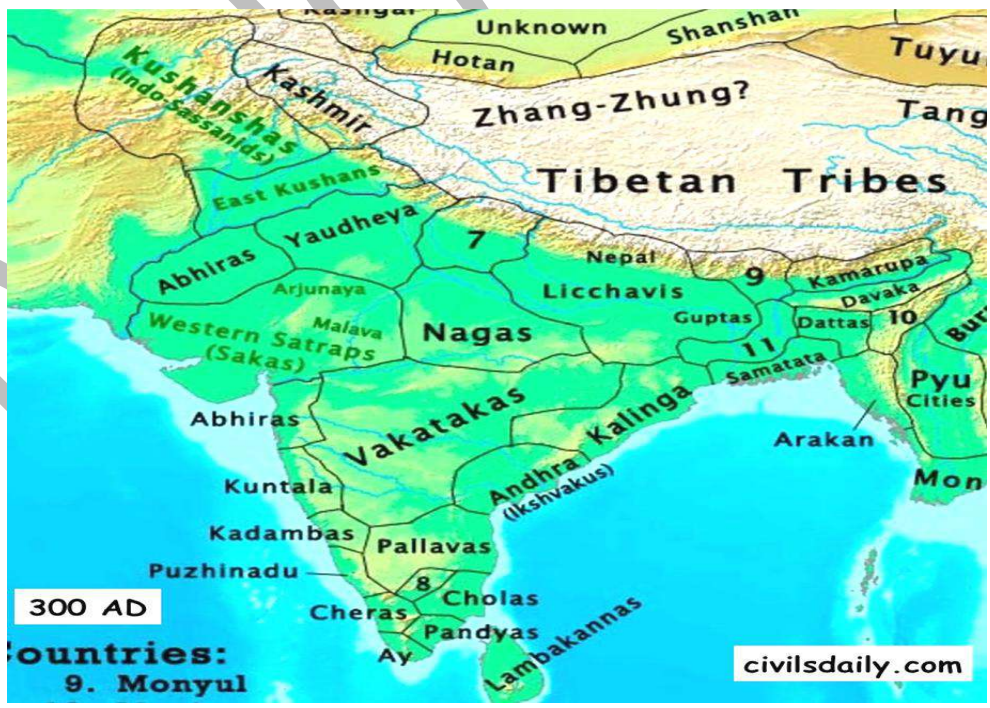

300 CE (300 AD), old Kushan and Satavahana empire.

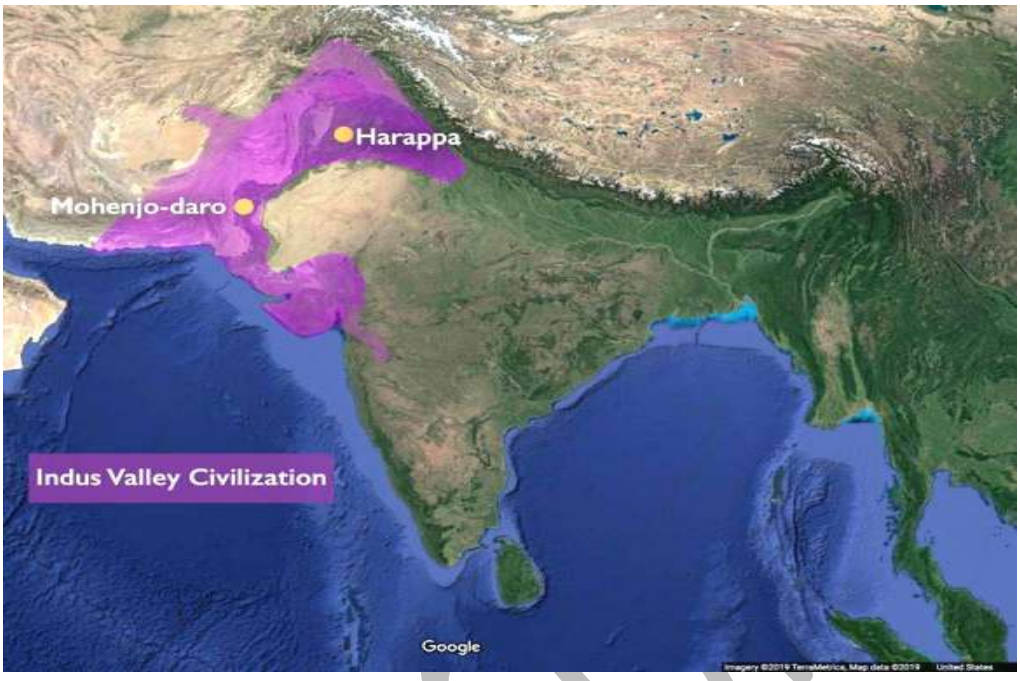

Indus Valley Civilization (2600–1900 BCE).

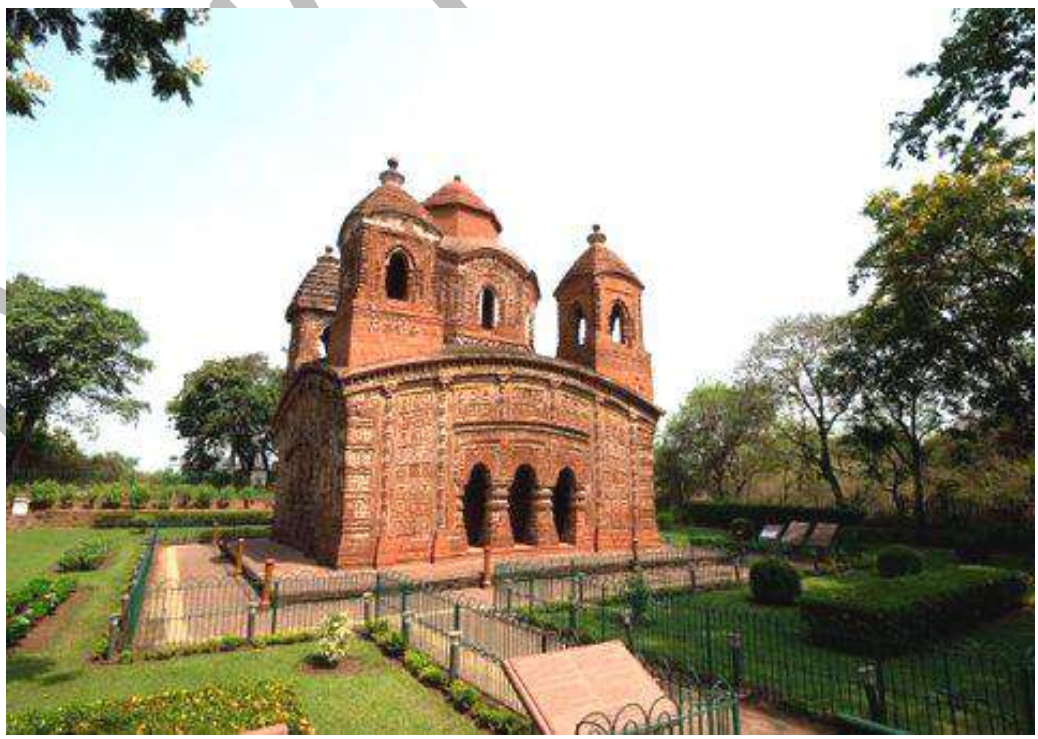

Pancha Ratna Temple, Shyam Rai Temple, Bishnupur.

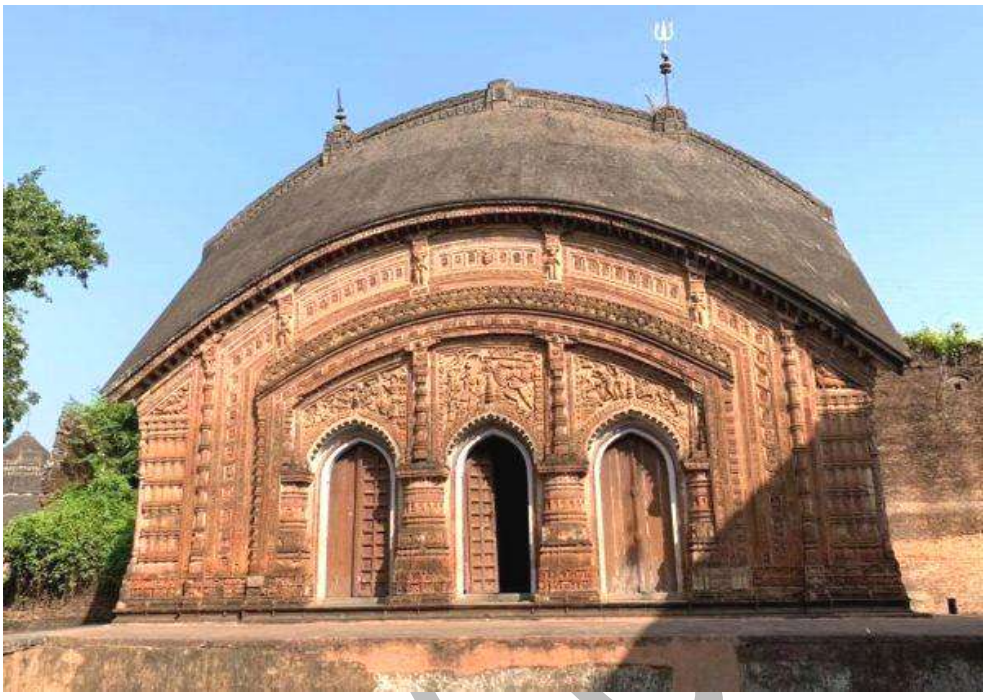

Fight between Rama Chandra and Ravana, the Jor Bangla Temple, Bankura

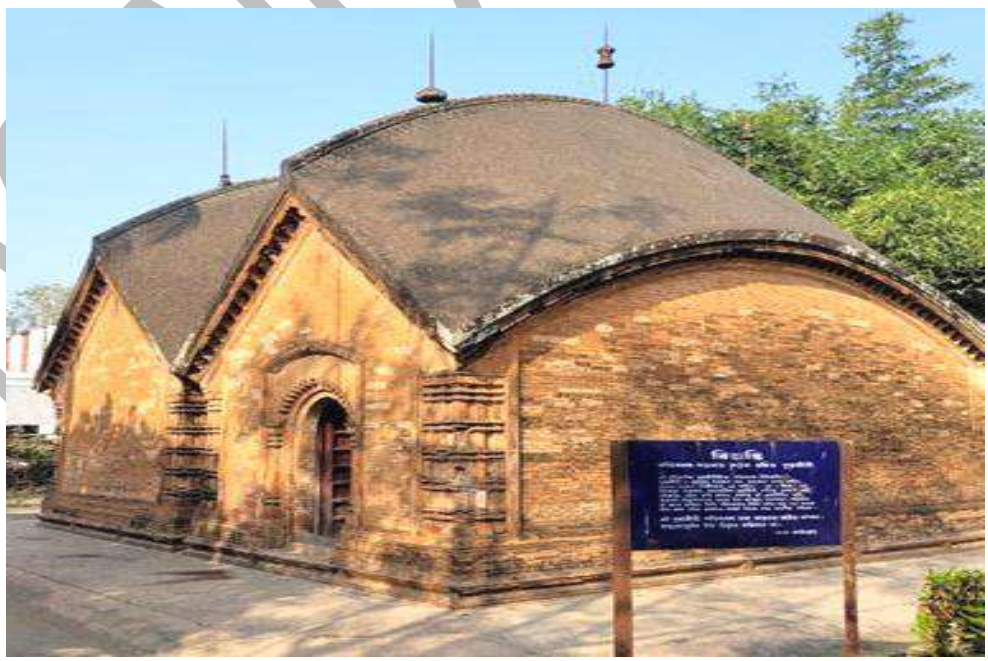

The Jangeshwar (or Bangla-styled) Temple.



Radhashyam Temple, Bishnupur



Charbangla Temple, Baranagar, Jiaganj Azimganj, Murshidabad District, West Bengal



The Bhitargaon Temple in Kanpur, Uttar Pradesh



Chandraketugarh Museum

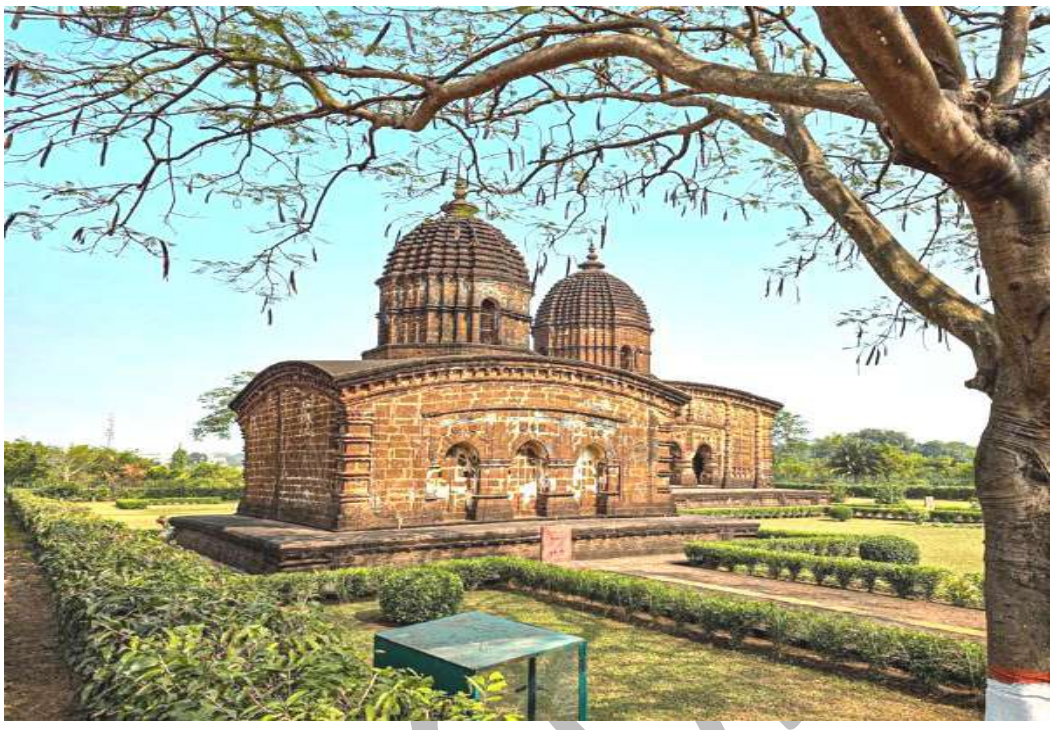

Temple of Bishnupur



The Ramancha



Siddheshwar Temple



Ratna Style Temple (Eka-Ratna)



Kantajew Temple or Kantanagar Temple, Dinajpur district, Bangladesh



Pancha Ratna Shyam Rai Temple, Bishnupur, Bankura district, West Bengal, India



Ananta Basudeba Temple, Jangeshwar Temple, Bankura, West Bengal, India

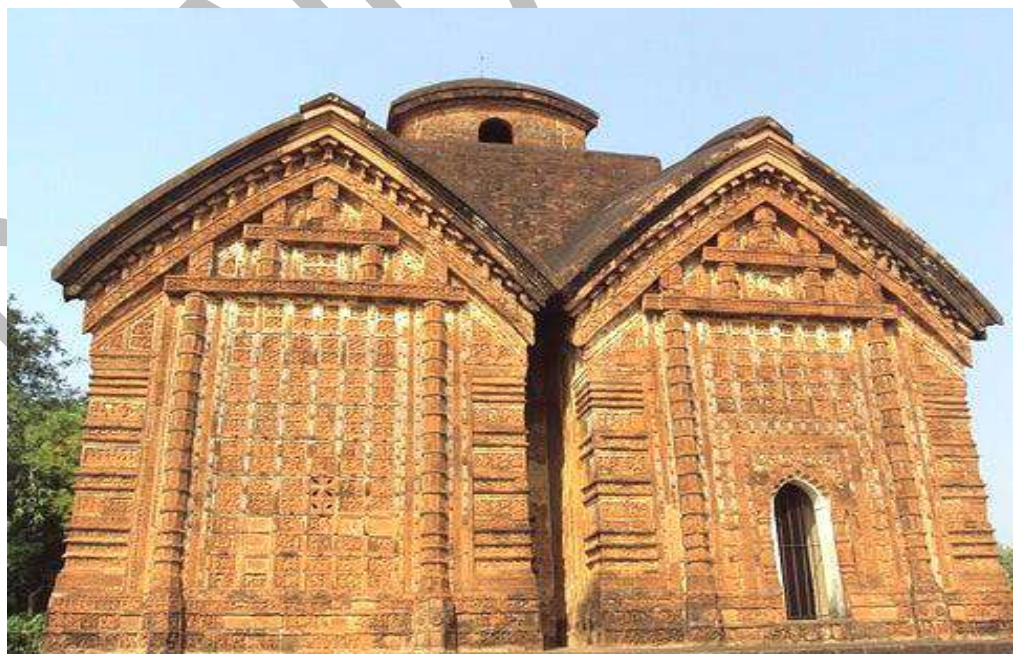

Jor-Bangla Temple, Keshta Raya Temple, Bishnupur, Bankura district, West Bengal, India

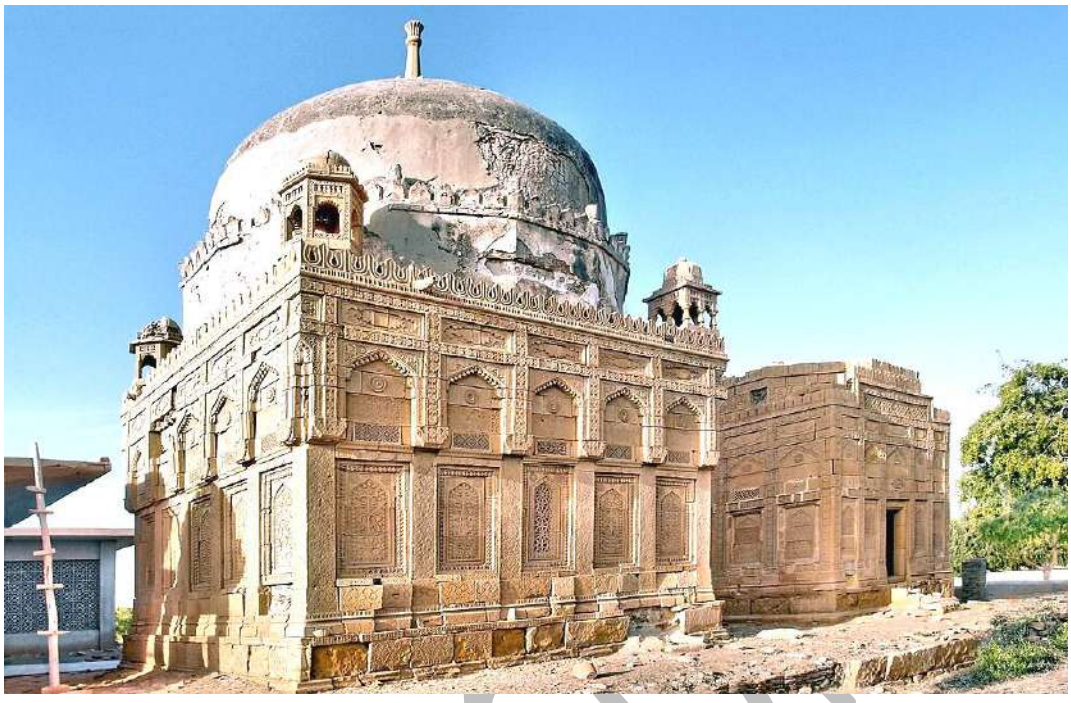

The Tomb of Mir Tharo Talpur, located in Chitori graveyard



Chitori Graveyard, near Mirpur Khas in Sindh, Pakistan

" भारतीय वस्त्र कला और परंपराएँ "

कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्ष एवं निर्देशक
असि प्रो. श्री महेश धीमान
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री
सिमरन अरोड़ा
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)

Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्ड़ा)

2025–2026

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **सिमरन अरोड़ा**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **भारतीय वस्त्र कला एंव परंपराएँ** " शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करता हूँ।

मैं इसके उज्जवल भविष्य एंव सफल जीवन की कामना करता हूँ।

दिनांक : 8/7/026

सहायक प्रोफेसर
श्री महेश धीमान असि. प्रोफेसर

प्रमाण पत्र

मैं **सिमरन अरोड़ा**, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध " **भारतीय वस्त्र कला एंव परंपराएँ** " विषय मेरे स्वंय के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है।

यह अप्रकाशित कृति है, लेखन में कम से कम आवश्यक सामग्री का उल्लेख किया गया है।

निर्देशक

सहायक प्रोफेसर

महेश धीमान

Simran A

शोधकर्त्री

सिमरन अरोड़ा

आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)
कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **सिमरन अरोड़ा**, अनुक्रमांक न0. **240007001**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **भारतीय वस्त्र कला एंव परंपराएँ** " शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु–शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्जवल भविष्य एंव सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांकः 9/7/26

प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

" वस्त्र वपुषि भूषणं " – अर्थात वस्त्र न केवल शरीर का आवरण है, बल्कि सभ्यता और संस्कृति के जीवंत आभूषण भी है।

मानव सभ्यता के क्रमिक विकास की कहानी यदि केवल शब्दों में न ढूँढ़ी जाए, तो वह निश्चित रूप से वस्त्रों के ताने–बाने और उनके रंगों में बुनी हुइ मिलेगी। वस्त्र कला के केवल तन ढकने की मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र नहीं है, बल्कि यह किसी भी समाज के भूगोल, इतिहास, उसकी सौंदर्य चेतना और सांस्कृतिक पहचान का संजीव दस्तावेज है।

भारत के संदर्भ में वस्त्र कला का इतिहास अंत्यत गौरवशाली और हजारों वर्ष पुराना है। सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेषों में मिले सूती वस्त्र के अंश औश्र पुरातत्विक मूर्तियां इस बात का प्रमाण है कि जब विश्व का एक बड़ा हिस्सा वस्त्र निर्माण की तकनीक से अनजान था, तब हमारे बुकर कपास को कातकर महीन तैयार कर रहे थे। वेदों में उषा का तुलना एए सुदर वस्त्र बुनने वाली नारी से की गई है, जो इस कला की दिव्यता का दर्शाती है।

इस शोधपत्र में हमने प्राचीन भारतीय वस्त्र कला के रूपों को समझाने का प्रयास किया गया है। इसमें न केवल वस्त्रो के बारे में बल्कि वस्त्र निर्माण, वस्त्रों की कढ़ाई का भी विश्लेषण किया गया है।

वास्तव में केवल वस्त्र तन ढ़कने की मानवीय आवश्यकता की पूर्ति का साधन मात्र नहीं है, बल्कि यह किसी भी समाज के भूगोल, इतिहास, उसकी सौंदर्य चेतना और सांस्कृतिक पहचान सजीव दस्तावेज़ भी है।

भारत के संदर्भ में वस्त्र कला का इतिहास अत्यंत गोरवशाली और हजारों वर्ष पुराना है। सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेषों में मिले सूती वस्त्र के अंश और पुरातत्विक मूर्तियां इस बात का प्रमाण है कि जब विश्व का एक बड़ा हिस्सा वस्त्र निमार्ण की तकनीक से अजान था, तब भारत के अंदर वस्त्र बनाने की तकनीके विकसित हो चुकी थी।

इस लघु शोध को मैंने चार अध्यायों में विभाजित किया है। इस शोध के –

- ➡ प्रथम अध्याय में मैंने – कला का महत्व, कला की उत्पत्ति, कला का सिंधात, कला के प्रकारों व कला का शाब्दिक निरूपन के बारे में बताया है।
- ➡ द्वितीय अध्याय में – भारतीय वस्त्र कला, उसका परिचय, इतिहास, प्राचीन वस्त्र, स्वंतत्रता के सयम व उसके बाद की वस्त्र कला, व भारतीय फैंशन के चार चरणों के बारे में बताया गया है।

- ➡ तृतीय अध्याय में – राजस्थान की वस्त्र कला, उसका परिचय, उसका इतिहास व राजस्थान की वस्त्र कला, पोशाक, राजस्थानी कपड़ा और प्राचीन समय की वस्त्र कला के बारे में बताया गया है।
- ➡ चतुर्थ अध्याय में – उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला का परिचय, वस्त्र कला का इतिहास, वस्त्रों की तकनीक, प्रमुख वस्त्र कला व उत्तर प्रदेश की आधुनिक वस्त्र कलाओं के बारे में बताया गया है।

अंत में उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और चित्र संग्रह सूची को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र को सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, तो भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि विद्वान समीक्षक उन्हें अलक्ष्य करने की कृपा करें। इस शोध पत्र में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उसके लिए केवल मैं दोषी हूँ। अंत में इसके लिए मैं विद्वानजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

शोधकत्री

सिमरन अरोड़ा

आभार

मेरे लघु शोध प्रबन्ध का विषय " भारतीय वस्त्र कला और परंपराएँ " के संदर्भ में है। मेरे इस लघु शोध कार्य करने में जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनका आभार व्यक्त किए बिना मेरा यह आलेख सम्पूर्ण नहीं होगा। मैं सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ, जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं अपना यह कार्य पूर्ण कर पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकण्डा के ललित कला विभाग के अध्यक्ष आदरणीय श्रीमान महेश धीमान के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने लघु शोध कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया और मेरा सहयोग किया।

मैं वर्तमान प्राचार्य महोदया आदरणीय डॉ. आरती त्रेहन जी का भी आभार प्रकट करती हूँ, जिनकी सहायता से ललित कला विषय सुचारु रूप से चल रहा है। मैं डॉ. गुरुचरण सिंह, विभागाध्यक्ष, ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र की भी धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने इस विषय को भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया और आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकण्डा की सहायता की।

इसके साथ–साथ मैं अपने परिवारजनों का भी आभार प्रकट करती हूँ, जिनका सहयोग मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण था और मैं अपने शोध कार्य को करने में समर्थ हो पाई। मैं अपने आदरणीय पुस्तकालय अध्यक्षा डॉ. राजिन्द्र कौर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य को पूर्ण करने में मेरा उचित मार्गदर्शन किया।

और अंत में – मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति दिल से प्रेम भाव व्यक्त करती हूँ। इनकी प्रेरणा व प्रोत्साहन से ही मेरा लघु शोध कार्य सम्पूर्ण हो पाया। यदि यह लघु शोध प्रबन्ध पाठक वर्ग की कुछ सहायता प्राप्त करेगा, तो मैं अपने प्रयासों को सफल मानूँगी।

शोधकत्री

सिमरन अरोड़ा

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन — पृष्ठ संख्या

आभार

प्रथम अध्यायः — 01 – 14

- कला का परिचय
- कला का महत्व
- कला की उत्पत्ति
- कला का सिंधात
- कला का शाब्दिक निरूपन
- कला के प्रकार

द्वितीय अध्याय : — 15 – 33

- वस्त्र कला
- वस्त्र कला का परिचय
- वस्त्र कला का इतिहास
- प्राचीन वस्त्र
- स्वंतत्रता के समय की वस्त्र कला
- स्वंतत्रता के बाद की वस्त्र कला
- स्वंतत्रता के समय फली–फुली वस्त्र परंपराएँ
- भारतीय फैंशन के चार चरण

तृतीय अध्यायः — 34 – 48

- राजस्थान की वस्त्र कला
- राजस्थान की वस्त्र कला का परिचय
- राजस्थानी वस्त्र कला क्या है
- राजस्थानी वस्त्र कला का इतिहास
- प्राचीन समय की वस्त्र कला
- राजस्थान की पोशाक
- ग्रामीण क्षेत्रों में राजस्थानी पौशाक
- राजस्थानी कपड़ा

चतुर्थ अध्यायः 49 – 59

- उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला का परिचय
- उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला का इतिहास
- उत्तर प्रदेश की वस्त्र तकनीक
- उत्तर प्रदेश प्रमुख वस्त्र कला
- उत्तर प्रदेश की आधुनिक वस्त्र कला

– उपसंहार 60 – 60

– संदर्भ ग्रंथ सूची 61 – 62

– चित्र संग्रह सूची 63 – 64

– चित्र सूची 65 – 95

प्रथम अध्याय

- कला का परिचय
- कला का महत्व
- कला की उत्पत्ति
- कला का सिंधात
- कला का शाब्दिक निरूपन
- कला के प्रकार

कला

➢ कला का परिचय :–

कला मानवीय भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं की एक सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। सरल शब्दों में, जब कोई व्यक्ति अपने कौशल के माध्यम से किसी वस्तु या भाव को सुंदर और अर्थपूर्ण रूप देता है, तो उसे कला कहा जाता है। कला का मूल्य यद्यपि सार्वभौम है, परंतु इसकी जड़ें उस समाज, उस संस्कृति में रहती हैं जहाँ से वह उपजती है। किसी भी जीवित और जीवंत सभ्यता में कला उस सभ्यता के विकास और पूर्णता का अनिवार्य मूलभूत अंग है। कला को समाज और संस्कृति से कभी भी काटा नहीं जा सकता।

जब भी मानव में चेतना जागी, वह अपने आस–पास के संसार के विषय में जागरूक हुआ, उसने जिज्ञासु दृष्टि चहुँ ओर डाली। यह चित्रकला, संगीत, नृत्य और साहित्य जैसे रूपों में प्रकट होकर इंद्रियों को सुखद अनुभव कराती है। सौंदर्य, सामंजस्य, संतुलन और लय का मिश्रण है, जो कला में गहरे अर्थ और आनंद का संचार करता है।

कला, कौशल या कल्पना की अभिव्यक्ति के माध्यम से सचेत रूप से निर्मित एक दृश्य वस्तु या अनुभव है। कला शब्द में चित्रकला, मूर्तिकला, प्रिंटमेकिंग, ड्राइंग, सजावटी कला, फोटोग्राफी और इंस्टॉलेशन तथा वस्त्र कला जैसे विविध माध्यम शामिल हैं।

विभिन्न दृश्य कलाएँ एक ऐसे निरंतर क्रम में विद्यमान है जो छोर पर विशुद्ध सौदर्यपरक उद्देश्यों से लेकर दूसरे छोर पर विशुद्व उपयोगितावादी उद्देश्यो तक फैला हुआ हैं, जिनमें कारीगर को उपयोगितावाद पर विशेष ध्यान देने वाले व्यक्ति के रूप में समझा जाता है। हालाँकि, इसे किसी भी प्रकार से एक कठोर अवधारणा के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। कला के एक ही रूप में भी उद्देश्य से लेकर दूसरे छोर पर विशुद्ध उपयोगितावादी उद्देश्यों तक फैला हुआ है। उद्देश्य की यह ध्रुवीयता आमतौर पर प्रयुक्त शब्दों कलाकार और कारीगर में परिलक्षित होती है, जिनमें कारीगर को उपयोगितावाद पर विशेष ध्यान देने वाले व्यक्ति के रूप में समझा जाता है। हालाँकि, इसे किसी भी प्रकार से एक कठोर अवधारणा के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। कला के एक ही रूप में भी उद्देश्य व्यापक रूप से भिन्न हो सकते हैं, उदाहरण के लिए एक कुम्हार या बुनकर एक अत्यंत उपयोगी कृति बना सकता है जो सुंदर भी हो, जैसे कि सलाद का कटोरा या कंबल – या ऐसी कृतियाँ बना सकता

DO NO COPY

है जिनका उद्देश्य केवल प्रशंसा पाना हो। अफ्रीकी और ओशिनिया जैसी संस्कृतियों में, कला की एक ऐसी परिभाषा सदियों से चली आ रही है जो इस निरंतर क्रम को समाहित करती है। हालाँकि पश्चिम में 18वीं शताब्दी के मध्य तक चित्रकला और मूर्तिकला के लिए अकादमियों के विकास ने यह धारणा स्थापित कर दी कि ये माध्यम "कला" हैं और इसलिए अधिक उपयोगितावादी माध्यमों से अलग हैं। कला संस्थानों के बीच कला रूपों का यह पृथक्करण 20वीं शताब्दी के अंत तक जारी रहा, जब इस प्रकार के कठोर भेदों पर प्रश्न उठने लगे।

यह एक सचेतन रूप से निर्मित दृश्य वस्तु या अनुभव है जो कौशल या कल्पना को व्यक्त करता है। इसमें चित्रकला, मूर्तिकला, शिल्पकला शामिल हैं। परम्परागत श्रेणियों में साहित्य, दृश्य कला, ग्राफिक कला, प्लास्टिक कला, सजावटी कला, प्रदर्शन कला, संगीत, वस्त्र कला (**Textile Design**) भी शामिल हैं। 20वीं शताब्दी में माध्यमों जैसे नए मीडिया ने परम्परागत परिभाषा को चुनौती दी।

➢ कला का अर्थ :–

कला जिसे इंग्लिश भाषा में "आर्ट" के नाम से भी जाना जाता है। भारतीय परम्परा के अनुसार कला उन सभी क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो।

कला ही जीवन है। कला का ज्ञान, मानव के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। यह मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास करके उसे पशुत्व से ऊपर उठाता है। महर्षि भर्तृहरि का निम्न श्लोक मानव जीवन में कला के महत्व पर प्रकाश डालता है –

"साहित्य संगीत कला विहीनः

साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीन।।"

इसका अर्थ है कि जो मनुष्य साहित्य, संगीत, कला से वंचित होता है, वह बिना पूँछ के पशु के समान है।

जीवन में सत्य, शिव और सुंदर से साक्षात्कार कराने में इसका अमूल्य योगदान है। आत्मसंतोष एवं आनंद की अनुभूति भी इसके ज्ञानार्जन से होती है और इसके मंगलकारी प्रभाव से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। मानव का विवेकशील प्राणी होना यह प्रमाणित करता है कि वह सृष्टि की श्रेष्ठतम कृति है। अपने जन्मकाल से ही मानव जीवन की विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं पर चिंतन करता आया है। एक विचार का संबंध जीवन की स्थूल पक्ष से है, तो दूसरे का सीधा संबंध

- https://www.britannica.com/art/visual-arts

DO NO COPY

जीवन–निर्वाह के लिए स्थूल आवश्यकताओं की ओर प्रयत्नरत रहा, वहीं दूसरी ओर प्रकृति में व्याप्त सौंदर्य में अभिभूत होकर उसे और अधिक सुंदर बनाने के लिए प्रयास भी करता रहा। उसके प्रयास को ही इस ढंग की कला कहा जा सकता है।

प्राचीन काल के ग्रंथों में कला विषयक चर्चाएँ और प्राप्त कला–सामग्री से यह साबित होता है कि मानव जीवन में सदा ही कला की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आदिम काल से ही मनुष्य हथियारों के गठन में निरंतर सौंदर्य का विकास करता आया है। उपयोग में आने वाले मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी और मिट्टी से पूती दीवारों पर तोता–मैना बनाता आया है।

मानसिक तृप्ति और अपूर्व आनंद के लिए मानव अपने मन की अनेक कल्पनाओं का संसार रचता है, जिसे बाद में फिर मूर्त रूप में ढाल देता है।

अब जैसा भी आपको पता ही होगा, मानव बुद्धि हमेशा से ही रचनात्मक रही है। वो अलग बात है कि उस रचनात्मक बुद्धि को हमारी वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली के द्वारा चाट लिखा जाता है और खोपड़ी में बच जाता है, तो सिर्फ और सिर्फ भूसा। और अगर कुछ लोग बच निकालते हैं तो वो अपनी कला को अलग–अलग रूपों में सामने लाते हैं। जैसे कोई संगीत के रूप में, कोई नृत्य के रूप में, कोई मूर्ति–शिल्प कला के रूप में, कोई वस्त्र कला के रूप में, तो कोई चित्रकला के रूप में।

कला एक ऐसी बहुमूल्य संपत्ति है जो होती तो सभी के पास है, पर इसका अभ्यास हर किसी को नहीं होता है। उसे अगर हो भी जाये तो कभी–कभी अपनों के द्वारा या कभी परायों के द्वारा दबा दिया जाता है, और मजबूर किया जाता है उसे पारंपरिक रीतियों के साथ आगे बढ़ने को।

➢ कला का महत्व :–

अक्सर जब हम किसी असामान्य, अतिवादी और अप्रत्याशित चीजों का सामना करते हैं, तो हमें समझ नहीं आता कि उस पर कैसे प्रतिक्रिया दें। यह हमें असहज कर सकता है, हमें ऐसा लग सकता है कि इसे बनाने वाला हमें मूर्ख साबित करने की कोशिश कर रहा है क्योंकि हम जो देख रहे हैं, उसे समझ नहीं पा रहे हैं या दूसरों को यह महत्वपूर्ण नहीं लगता है। हम सोच सकते हैं कि कलाकार हमें किसी ऐसी चीज की गहराई से लेने के लिए बनाने की कोशिश कर रहा है जिसका कोई मूल्य नहीं है। यह हमें कला की समझ से दूर कर देती है क्योंकि यह हमें केवल अर्थ पर ध्यान केंद्रित करने के

- https://www.britannica.com/art/visual-arts

DO NO COPY

लिए मजबूर करती है। इसके बजाय अनुभव करना, कि जब हम इन बातों पर विचार करना शुरू करें, तो इससे वे अभी के लिए एक तरफ रख दें।

हमारे जीवन में कला का अत्यधिक महत्व है क्योंकि यह हमारी भावनाओं, विचारों और रचनात्मकता को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। कला केवल चित्रकला, संगीत या नृत्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर पहलू में मौजूद होती है। हमारे बोलने के तरीके से लेकर जीवन जीने की शैली तक।

कला हमारे मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी होती है। यह तनाव को कम करती है और मन को शांति प्रदान करती है। कला के माध्यम से हम अपनी भावनाओं को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं और दूसरों के साथ जुड़ सकते हैं। इसके अलावा, कला संस्कृति और परंपराओं को संजोने और अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का साधन है। कुल मिलाकर कला हमारे जीवन को गहराई, रंग और सुंदरता प्रदान करती है। यह हमें सोचने, समझने और सृजन करने की स्वतंत्रता देती है।

टालस्टाय के शब्दों में अपने भावों को क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि या शब्दों द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करना है कि उसे देखने या सुनने में वही भाव उत्पन्न हो जाए कला है। हृदय की गहराइयों से निकली अनुभूति जब कला का रूप लेती है, कलाकार का अंतर्मन मानो मूर्त हो उठता है। चाहे लेखनी उसका माध्यम हो या रंगों से भरी तूलिका, या सुरों की पुकार या वाद्यों की झंकार।

कला ही आध्यात्मिक शांति का माध्यम है। यह कठिन तपस्या है, साधना है। इसी के माध्यम से कलाकार सुनहरी और इन्द्रधनुषी आत्मा से स्वप्निल विचारों को साकार रूप देता है।

कला ही है जिसमें मानव मन में छुपी हुई संवेदनाएँ उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा तथा चिंतन को मूर्त रूप दिया जाता है। आदिम काल से लेकर आज तक की अनेक कलाकृतियाँ पूर्वजों के जीवन, उनकी उन्नति तथा उनके विचारों का उज्ज्वल इतिहास प्रस्तुत करती हैं। संसार में इनके समान चित्र कहीं नहीं बने, ऐसा विद्वानों का मत है। अजन्ता के कला मन्दिर, प्रेम, धैर्य, उपासना, भक्ति, सहानुभूति, त्याग तथा शांति के अनुपम उदाहरण हैं।

मधुबनी शैली, पहाड़ी शैली, तंजौर शैली, मुगल शैली अपनी–अपनी विशेषताओं के कारण आज भी जनशक्ति के मन में प्रतिष्ठित हैं। यदि भारतीय संस्कृति में मूर्तिकला व वस्त्र कला का दर्शन करना हो तो दक्षिण के मन्दिर अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

DO NO COPY

- https://www.britannica.com/art/visual-arts

➢ कला की उत्पत्ति :–

मानव सभ्यता के प्रारम्भिक चरणों में ही मनुष्य ने अपने आस–पास के वातावरण से प्रभावित होकर और अपने साथियों को सुख–दुःख में भागीदार बनाने के उद्देश्य से अपने भावों को दूसरों तक समझाने–व्यक्त करने का प्रयास किया। चट्टानों पर चित्र उकेरना कला के एक रूप में हमारे समक्ष प्रकट है।

कालान्तर में कविता, संगीत, अभिनय और नृत्य के रूप में भी कला के अनेक रूप हमारे समक्ष प्रकट हुए। कालान्तर में कविता, संगीत, अभिनय और नृत्य के रूप में कला का प्रकटीकरण हुआ।

अभिव्यंजना के माध्यम जो आज विभिन्न कला रूप कहे जाते हैं। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में इतने निरपेक्ष नहीं थे जितने आज प्रतीत होते हैं। आरम्भिक मानव चित्र, मूर्ति, नृत्य, संगीत, अभिनय तथा काव्यरस आदि का मिला–जुला प्रयोग करता था, लेकिन आज ये सभी रूप अलग–अलग हो गये हैं और हर एक के अपने नियम हैं। आधुनिक काल में कलाएँ एक–दूसरे में समाहित करके भी प्रस्तुत की जा रही हैं।

संस्कृत भाषा में कला शब्द की उत्पत्ति कल् धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है – प्रेरित करना, शब्द करना या ध्वनि करना, बजना आदि। कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति कड् धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है – प्रसन्न करना।

भारतीय साहित्य में कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में प्रयुक्त किया गया है। अमरकोष में इसे कड् धातु से उत्पन्न माना गया है, जिसका अर्थ प्रसन्न करना या मत करना है। संस्कृत साहित्य में यह किसी छोटे भाग चन्द्रमा के 1/16 भाग, काम करने में चतुरता आदि के अर्थों में ग्रहण किया गया है। बाद के साहित्य में यह काव्य के अलावा अन्य कलाओं का पर्यायवाची हो जाता है, क्योंकि कला एक साथ ही भावना और विद्या से संबंधित है। दूसरी ओर कौशल और शिल्प–कर्म से, तीसरी ओर प्रसन्न और उन्नत जीवन के प्रभाव से। इस प्रकार कला प्रक्रिया तथा उपज दोनों को ही इंगित करती है। प्रक्रिया के अन्तर्गत भावात्मक तथा बाह्य परिस्थितियों की यादें एवं उत्पत्ति के अन्तर्गत एक ओर योजनाजन्य तथा विलासितापूर्ण और दूसरी ओर सरल तथा ललित तथा उपयोगी रचनाएँ शामिल हो गईं।

दार्शनिक दृष्टि से भी कला परिभाषित की गई है। यद्यपि समय–समय पर इसमें परिवर्तन होता रहा है। शैव दर्शन में शिव परम तत्तव है। माया प्रकृति तत्व और कला महामाया शक्ति की

DO NO COPY

रूप–विधयिनी शक्ति, जब शिव, माया के पाँच आवरण काल, नियति, राग, विद्या तथा कला से आवृत्त होते हैं तब अपना व्यापक चैतन्य रूप भूलकर पुरूष हो जाते है।

भरत के नाट्यशास्त्र में कला के स्थान पर शिल्प शब्द का प्रयोग होता था। कला के लिए आर्ट (Art) शब्द का प्रयोग तेहरवीं शताब्दी में प्रचलित हुआ। लैटिन भाषा में आर्ट शब्द आर्स या आर्टम् से उत्पन्न माना जाता है, जिसका अर्थ है – बनाना, उत्पन्न करना, फिट करना या कुशलता। अंग्रेजी में – Art तथा इतालवी में 'ल अति' और फ्रेंच में ल आर्त कहते हैं। इसका अर्थ है – मानवीय कुशलता (Human Skill)।

दृश्य कला को विभिन्न तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है। मानव रचनात्मकता पर समग्र रूप से ध्यान केंद्रित करना, या वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, फिल्म फोटोग्राफी और ग्राफिक कला, तथा वस्त्रकला जैसे विभिन्न माध्यमों पर ध्यान केंद्रित करना। हाल के वर्षों में तकनीकी प्रगति ने वीडियो कला, एनीमेशन को जन्म दिया है।

इससे हमें विभिन्न ऐतिहासिक कालों की कलाकृतियों की सफलता और महत्व को समझने में भी मदद मिलती है। कला के इतिहास का अध्ययन करके हम स्वयं को एक व्यक्ति के रूप में और समाज के सदस्य के रूप में बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

हम रचनात्मक माध्यमों को अपने विचारों को व्यक्त करना सीख सकते है और साथ ही अन्य संस्कृतियों की कलात्मक परंपराओं का सम्मान करना भी सीख सकते है। कला इतिहासकार अक्सर उचना का विश्लेषण रूप के माध्यम से करते है, अर्थात् – रचनाकार द्वारा रेखा, आकार, रंग, बनावट और संरचना का उपयोग। यह दृष्टिकोण इस बात की पड़ताल करता है कि कलाकार अपनी कलाकृति के निर्माण के लिए द्वि–आयामी चित्र तल या मूर्तिकला या स्थापत्य स्थान के त्रि–आयामी आयामों का उपयोग कैसे करता है। इन तत्वों के उपयोग की तकनीकों से निरूपणात्मक या गैर–निरूपणात्मक कलाओं को जन्म देता है।

डॉ. वी. एस. वाकणकर ने मध्य भारत में विंध्य पर्वत श्रृंखला के पास कई चित्रित शैलागृह की खोज की। इनमें से भीमबेटका शैलागृह, जिसमें 750 से अधिक स्मारक शामिल हैं को यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल घोषित किया गया है। यहाँ के सबसे पुराने चित्र 10,000 वर्ष पुराने हैं। इन स्थलों के चित्रों में अक्सर मानव जीवन के साथ–साथ जानवरों और पत्थर के औजारों से शिकार करने के दृश्य चित्रित किए गए हैं। इनकी शैली भिन्न और प्राचीनता के हिसाब से भी विभिन्न थी। लेकिन सबसे

DO NO COPY

विशिष्ट विशेषता गेरू नामक एक खनिज के चूर्ण से बना लाल लेप था, जो एक प्रकार का लौह ऑक्साइड है।

दक्षिण भारत के अंतिम साम्राज्य ने विजयनगर वास्तुकला की उत्कृष्ट कृतियां छोड़ी, विशेष रूप से कर्नाटक के हम्पी में जो अक्सर मूर्तिकला से विकसित हुई। मुगल आक्रमण के बाद भी मंदिरों के विस्तार के साथ–साथ उत्तरोतर विशाल गोपुरमों के साथ नए बाहरी दीवारें बनाई गई, जिससे केंन्द्र में स्थित पूर्व भवन बनने लगे।

मध्यकालीन राज्यों के बाद पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दक्षिण–मध्य भारत में बहमनी सल्तनत का पतन हो गया और बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, बीदर और बरार में स्थित दक्कन सल्तनतों का उदय हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से आगे, अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन का भारतीय कला पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। जैसे–जैसे ब्रिटिश साम्राज्य ने नए प्रमुख शहरों में कला विद्यालय स्थापित किए, पहले के कई पारंपरिक कला केंद्र और कम महत्वपूर्ण हो गए और पश्चिमी कला अधिक प्रचलित हो गई। चेन्नई में स्थित गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स की स्थापना हुई थी।

- कला के सिद्धांत :–

कला के मूल सिद्धांत – रेखाओं और आकृतियों, बनावट और रूप, और दृश्य कथा जैसे तत्वों के इर्द–गिर्द घूमते है। रेखाएँ और आकृतियाँ कला के सबसे मूलभूत तत्व हैं। रेखाओं का उपयोग ज्यामितीय और जैविक दोनों प्रकार की आकृतियाँ बनाने के लिए किया जाता है, जबकि आकृतियाँ कलाकृति को संरचना और व्यवस्था प्रदान करती हैं।

बनावट कला का एक और मूलभूत तत्व है। यह सतह की उन भौतिक विशेषताओं को संदर्भित करता है जो दर्शकों में स्पर्श की अनुभूति उत्पन्न करती हैं। बनावट का संबंध रूप से भी है, जो कलाकृति के त्रि–आयामी गुणों को व्यक्त करता है।

दृश्य कथा भी एक महत्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि यह दृश्य तत्वों के माध्यम से एक कहानी को संप्रेषित करती है। कलाकार के इरादे के आधार पर यह कथा शाब्दिक या लाक्षणिक हो सकती है।

इन तत्वों का संयोजन विभिन्न दर्शकों के बीच एक दिलचस्प तालमेल बनाता है, जो दर्शकों को कहानी बताने या कोई विचार साझा करने में मदद करता है।

DO NO COPY

इन तत्वों का एक साथ प्रयोग करना सीखकर कोई भी व्यक्ति अपने चुने हुए किसी भी माध्यम में अपने उद्देश्य को प्रभावी ढंग से संप्रेषित कर सकता है।

- एकता :–

एकता का एक आवश्यक सिद्धांत है, जो किसी रचना के भीतर विभिन्न तत्वों के बीच संबंधों पर जोर देता है।

इसका तात्पर्य यह है कि वे तत्व एक–दूसरे से किस प्रकार जुड़े हुए हैं और परस्पर क्रिया करते हैं, जिससे सामंजस्य और उद्देश्यपूर्ण व्यवस्था की भावना उत्पन्न होती है।

रचनात्मक अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक विरासत और प्रासंगिक अर्थ को विभिन्न दृश्य तत्वों को इस तरह से संयोजित करके एकता के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है, जिससे वांछित संदेश या वातावरण व्यक्त हो सके।

कला के माध्यम से डिजाइनर ऐसी रचनाएँ बना सकते हैं जो सौंदर्य की दृष्टि से संगत होने के साथ–साथ सांस्कृतिक संदेश भी देती हों तथा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक पहचान का प्रतिनिधित्व करती हों।

किसी रचना के भीतर विभिन्न तत्वों को आपस में जोड़कर, डिजाइनर दर्शकों में कुछ भावनाओं या विचारों को जगा सकते हैं। साथ ही अपनी रचना तथा अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक विरासत को भी प्रतिबिंबित कर सकते हैं। एकता किसी भी कार्य को व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत करने की अनुमति देती है क्योंकि यह उसके व्यक्तिगत भागों की तुलना में कहीं अधिक गहरा अर्थ व्यक्त करती है, इसलिए किसी भी डिजाइन परियोजना पर विचार करते समय यह आवश्यक अवधारणा है।

- संतुलन – कला :–

संतुलन कला का एक और मूलभूत सिद्धांत है, जो किसी रचना में तत्वों की ऐसी व्यवस्था को संदर्भित करता है जो एक समान दृश्य भार उत्पन्न करती है। इसे अक्सर सममित और असममित संतुलन जैसी रचना तकनीकों के उपयोग के माध्यम से या विभिन्न उपकरणों और दृश्य प्रभावों का उपयोग करके प्राप्त किया जाता है।

DO NO COPY

जब किसी डिजाइन के सभी घटक संतुलित होते हैं, तो यह एक सामंजस्य की भाषा पैदा करता है, जो दर्शक को प्रत्येक तत्व पर ध्यान केंद्रित करने की अनुमति देता है। बिना किसी एक के दुसरे पर हावी की बजाए।

संतुलन का उपयोग न केवल सौंदर्यपूर्ण रचनाएँ बनाने के लिए किया जा सकता है, बल्कि कलाकृतियों के कुछ नए पहलुओं पर ध्यान आकर्षित करने अथवा दर्शकों द्वारा इसे देखने के तरीके को आकार देने के लिए भी किया जा सकता है।

संतुलित रचनाएँ बनाकर डिजाइनर अपने उद्देश्य को अधिक प्रभावी ढंग से संप्रेषित कर सकते हैं और आकर्षक दृश्य कला बना सकते हैं।

- **कला का शाब्दिक निरूपण :–**

'कला' संस्कृत शब्द है। इसके उल्लेख पर संस्कृत विद्वानों में मतभेद देखने को मिलते हैं। ये मत हैं जैसे – 'शब्द कला' 'ला' धातु से लिया, उसमें 'क' जोड़ा। ला – देना, क – सुख। 'कामं लाति इति कला – जो आनंद देती है वही कला है।

डा. सीताराम चतुर्वेदी – इनके अनुसार भी कला का मूल अर्थ है कि "कं आनन्द लाति इति कला" – जो आनन्द दे, वही कला है। यह कला की सुखवादी परिभाषा है, जिसे पाश्चात्य एवं अन्य मतावलम्बियों ने भी स्वीकार किया है।

कुछ विद्वान "कला" शब्द के निरूपण में कला का उद्भव 'कल' धातु से मानते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है – प्रकट करना या व्यक्त करना।

ऋग्वेद के उषा उपासना, प्रसंग में उपासना मंत्रों में शब्द 'कल आता है। यहां कला का अर्थ से लिया गया है। अंश का का अर्थ परमात्मा का कला में निहित अंश भी हो सकता है।

भाषाओं में भी कला का उल्लेख है, पर यह कलाकार लिया गया है। कलाकार कला द्वारा परमात्मा की सृष्टि का अनुकरण करता है। उसे अपनी कल्पना भी मिलाता है।

कला में कुछ भी अभिव्यक्त करने से पहले उसे अपनी कला चेतना को संसारिक उलझनों से मुक्त कर लेना आवश्यक होता है।

- https://indianartideas.in/blog/indian-art/indian-art-and-its-remarkable-history

DO NO COPY

→ भरतमुनि के अनुसार – ललित कला, काव्यमयी सुख देने वाली, शिल्प कला – उपयोगी कलाएँ हैं।

→ पाणिनी के अनुसार – शब्द, शिल्प, ललित कला दोनों के लिए प्रयोग किया गया। कोई क्रिया जो वस्तु को सुंदर बना दे, वही कला है।

→ वात्स्यायन का कामसूत्र – चौंसठ कलाएँ मानी गई है। ये जीवन के अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में सहायक हैं।

→ शुक्रनीति की नीति– "मूक भी जिसका रसास्वादन कर ले, वही कला है।

→ "कला परम सत्ता के निराकार या साकार रूप में लाने का साधन है।

→ व्यक्ति के मन में छिपी रूप सौन्दर्य की शशि को किसी भी रूप में आकार में बाहर अभिव्यक्त करना कला है।

कला रूप की सर्जना करती है। अदृश्य रूप को जन्म देती है। सृजन ही कला का सार है। नूतन चेतना का आकिर्भा, नए आयाम और स्फूर्ति में कला व्यापक है। केवल चित्र, संगीत व मूर्ति कला ही कला नहीं है। स्वर, रंग–रेखा, आकार–आयाम, सृजन–अलंकार आदि सभी में अपनी सम्पूर्ण रूप एवं रूप–विधान को लेकर कला प्रकट होती है।

→ प्लेटो के अनुसार – कला सत्य की अनुकृति है। कला में हम ईश्वर द्वारा सृष्टि को भी सत्यापित करते हैं।

→ अरस्तु ने कहा है कि – कला अनुकरणीय कला में सामान्य प्रत्यय को रूपायित किया जाता है, क्योंकि विशिष्ट की उचित तथा संम्भव नहीं है।

→ प्लाटिनस ने – कला को 'ऐन्द्रिय कल्पना न मानकर बौद्धिक कल्पना कहा है।

→ वाउमगार्टन ने कहा कि – कला प्रकृति की अनुभूति है।

→ हीगल के अनुसार – कला भौतिक सत्य को व्यक्त करने का माध्यम है।

→ क्रोचे ने कला – को आत्माभिव्यक्ति कहकर परिभाषित किया।

→ फ्रायड ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर कला कल्पना का सम्पूर्ण क्षेत्र एवं अर्थचेतन मस्तिष्क क्रिया माना।

भारतीय दृष्टिकोण से साहित्य और कला का समान भाव रस तत्व एक ही माना जाता है।

DO NO COPY

→ अभिनवगुप्त ने माना कि – व्यंजना तथा उसकी ध्वनि समानुभूति का स्वरूप ही काव्य का लक्ष्य है।

→ डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार, – "जिस अभिव्यंजना में आन्तरिक भावों का प्रकाशन तथा कल्पना का योग हो, वही कला है।"

➢ कला के प्रकार :–

कला की मुख्यतः दो श्रेणियाँ मानी जाती हैं। ये वे कलाएँ हैं जो मन को आनंदित करती हैं। कला को मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं – ललित कला (**Fine Arts**) और उपयोगी कला (**Useful Arts**)।

ललित कला का उद्देश्य सौंदर्य एवं आनंद प्रदान करना है, जबकि उपयोगी कला दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करती है। भारतीय परंपरा में वात्स्यायन के कामसूत्र के अनुसार 64 प्रकार की कलाओं का वर्णन है।

1. ललित कला (**Fine Arts**) :–

- चित्रकला (**Painting**) : सतह पर रंगों, आकारों और रेखाओं के माध्यम से भावनाओं को व्यक्त करना।
- मूर्तिकला (**Sculpture**) : पत्थर, धातु या मिट्टी जैसी सामग्रियों को तराशकर या जोड़कर त्रि–आयामी (**3D**) रूप देना।
- वास्तुकला (**Architecture**) : संरचनाओं के डिजाइन और निर्माण में सौंदर्य एवं उपयोगिता का संयोजन।
- संगीत (**Music**) : ध्वनियों को लय और स्वर के साथ व्यवस्थित करने की कला।
- काव्य या साहित्य : शब्दों और भावों के माध्यम से सौंदर्यात्मक अनुभव उत्पन्न करना।

2. उपयोगी कला (**Useful Arts**) :–

DO NO COPY

उपयोगी कला उन कलाओं और तकनीकों को कहते हैं जो व्यावहारिक, सजावटी या दैनिक उपयोग की वस्तुएँ बनाने में काम आती हैं। इनमें वास्तुकला, शिल्पकला, वस्त्र डिजाइन, ग्राफिक डिजाइन और हस्तशिल्प शामिल हैं, जो सौंदर्य के साथ कार्यक्षमता भी प्रदान करते हैं। ये कलाए मानव जीवन को सरल, सुंदर और उपयोगी बनाती हैं।

- हस्तशिल्प (**Handicraft**) : मिट्टी के बर्तन, टोकरी बनाना, आभूषण बनाना और पुरानी वस्तुओं से नई सजावटी चीजें बनाना।
- वस्त्र कला (**Textile Arts**) :– वस्त्र कला (**Textile Arts**) में बुनाई, कढ़ाई, फैशन डिजाइनिंग और धागों से वस्तुएँ बनाना शामिल है।

वस्त्र कला, धागों, रेशों और कपड़ों का उपयोग करके सजावटी और कलात्मक वस्तुएँ बनाने की प्राचीन विधी है।

वस्त्र कला एक ऐसी कला विधा है जिसमें वस्त्र सामग्री का उपयोग माध्यम के रूप में किया जाता है। वस्त्र कला की परिभाषा एक व्यापक क्षेत्र को शामिल करती है। वस्त्र कला में प्रत्येक सामग्री में कपड़ा, सूत, रेशा, डोरी, धागा या तार का उपयोग शामिल है। यदि कोई सामग्री किसी ऐसी वस्तु से जुड़ी नहीं है जो बुनी जा सकती हो या सिली जा सकती हो, तो उसे प्रायः मुर्तरूप सामग्री माना जाता है।

यह एक कलात्मक विधा है जिसमें प्राकृतिक या कृत्रिम रेशों का उपयोग समकालीन कलाकृतियों के निर्माण में किया जाता है, जिसमें मूर्तियाँ, स्थापनाएँ और चित्रकला से मिलती–जुलती दीवार पर लगाई जाने वाली वस्तुएँ शामिल हैं, जैसे कि टेपेस्ट्री, बुनाई, कढ़ाई और क्रोशिया आदि।

ये रचनात्मक गतिविधियाँ पहले कार्यात्मक शिल्प या सजावटी कला और शिल्प के दायरे में आती थीं। टेपेस्ट्री को छोड़कर, मध्यकालीन टेपेस्ट्री और कला बाजार में इसकी विशेष उपस्थिति बनी।

कला का यह सदियों पुराना रूप न केवल व्यावहारिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है, बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और कहानी कहने का अवसर भी प्रदान करता है। जिससे यह ऐतिहासिक और समकालीन दोनों संदर्भों में महत्वपूर्ण हो जाता है।

DO NO COPY

एक बहुविषयक क्षेत्र के रूप में वस्त्र कला प्रौद्योगिकी के साथ विकसित हुई है, जिसमें डिजिटल उपकरणों को शामिल किया गया है। डिजाइन और टिकाऊ सामग्रियों का उपयोग करते हुए आधुनिक युग में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

DO NO COPY

द्वितीय अध्याय

- वस्त्र कला
- वस्त्र कला का परिचय
- वस्त्र कला का इतिहास
- प्राचीन वस्त्र
- स्वंतत्रता के समय की वस्त्र कला
- स्वंतत्रता के बाद की वस्त्र कला
- स्वंतत्रता के समय फली–फुली वस्त्र परंपराएँ
- भारतीय फैंशन के चार चरण

वस्त्र कला

वस्त्र कलाएँ ऐसी कलाएँ और शिल्प हैं जिनका व्यावहारिक तथा सजावटी वस्तुओं के निर्माण के लिए प्रयोग किया जाता है। जिनमें पौधों, जानवरों या कृत्रिम रेशों का उपयोग किया जाता है। सभ्यता के आरम्भ से ही वस्त्र मानव जीवन का एक अभिन्न अंग रहे हैं।

वस्त्रों को बनाने की विधियाँ और सामग्रियों में व्यापक विस्तार हुआ है। जबकि वस्त्रों के कार्य वही रहे है। वस्त्रों के अनेक उपयोग हैं, चाहे वे परिधान हों या घर अथवा उद्योग के लिए सजावटी वस्तुएँ। वस्त्र कला का इतिहास अंतरराष्ट्रीय व्यापार का भी इतिहास है।

प्राचीन भूमध्यसागर में टायरियन बैंगनी रंग एक महत्वपूर्ण व्यापारिक वस्तु थी। रेशम मार्ग के माध्यम से चीनी रेशम भारत, अफ्रीका और यूरोप पहुँचा, और इसके विपरीत सोग्डियन रेशम चीन पहुँचा। आयातित विलासितापूर्ण वस्त्रों की बढ़ती माँग के कारण मध्य युग और पुनर्जागरण काल में विलासिता संबंधी कानून लागू हुए।

औद्योगिक क्रांति को वस्त्र प्रौद्योगिकी में नवाचारों ने काफी हद तक आकार दिया, जिनमें कॉटन जिन, स्पिनिंग ने उत्पादन को मशीनीकृत किया। वस्त्र शब्द टेक्सरे से आया है जिसका अर्थ है – "बुनाई करना", "चोटी बनाना" या "निर्माण करना" जैसी क्रियाएँ सम्मिलित हैं।

सबसे सरल वस्त्र कला, फेल्टिंग है, जिसमें ऊन के रेशों को गर्मी और नमी का उपयोग करके आपस में गूँथा जाता है। अधिकांश वस्त्र कलाओं की शुरुआत रेशों को मरोड़कर या घुमाकर और उन्हें आपस में मिलकर धागा बनाने से होती है। जब धागा बहुत मोटा होता है तो उसे रस्सी कहते हैं। फिर इस धागे को गाँठ लगाकर, लूप बनाकर, चोटी बनाकर या बुनकर लचीला कपड़ा बनाया जाता है और कपड़े का उपयोग वस्त्रों और मुलायम साज–सज्जा बनाने में किया जा सकता है।

इन सभी वस्तुओं – फेल्ट, सूत, कपड़ा और तैयार वस्तुओं को सामूहिक रूप से वस्त्र कहा जाता है।

वस्त्र कला में वे तकनीकें भी शामिल हैं जिनका उपयोग वस्त्रों को अलंकृत करने के लिए किया जाता है। रंग और पैटर्न, जो इन्हें देने के लिए रंगाई और छपाई, कढ़ाई और अन्य प्रकार की सुई–धागे की कारीगरी, टैबलेट बुनाई और लेस बनाना शामिल हैं।

- https://study.com/academy/lesson/what-is-textile-art.html

DO NO COPY

सिलाई, बुनाई, क्रोशिया और टेलरिंग जैसी निर्माण विधियाँ तथा इनसे उपयोग किए जाने वाले उपकरण (करघे और सिलाई सुइयाँ), प्रचलित तकनीकें (क्वल्टिंग और प्लीटिंग) और निर्मित वस्तुएँ (कालीन, किलिम, हुक वाले गलीचे और कवरलेट) सभी वस्त्र कला की श्रेणी में आते हैं।

- **वस्त्र कला का परिचय :–**

वस्त्र कला एक बहुत प्राचीन कला विधा है जो पीढ़ियों से चली आ रही है। वस्त्र कला को प्राकृतिक, कृत्रिम या अन्य सामग्रियों से प्राप्त रेशों का उपयोग करके वस्तुएँ बनाने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है।

सभ्यता के आरम्भ से ही वस्त्र कला मानव जीवन का आधार रही है और इसका उपयोग कपड़े, पर्दे और अन्य कई चीजें बनाने में किया जाता रहा है।

उदाहरण के लिए, दुकानों में मिलने वाली सभी प्रकार के कपड़े तकनीकी रूप से वस्त्र कला का ही एक प्रकार माना जाता है, चाहे उनमें प्रयुक्त सामग्रियाँ या अन्य जानवरों से प्राप्त धागे हों या कृत्रिम रेशों का उपयोग किया गया हो।

वस्त्र कला मानव सभ्यता के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्राचीन विधा है, जो न केवल तन ढकने के साधन के रूप में बल्कि सौंदर्य, अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक के रूप में भी विकसित हुई है।

सरल शब्दों में कहें तो पौधों, पशुओं या कृत्रिम रेशों का उपयोग करके व्यावहारिक या सजावटी वस्तुओं के निर्माण की प्रक्रियाओं को वस्त्र कला कहा जाता है।

सभ्यता के उदय के साथ ही मनुष्य ने अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बुनाई, काताई आदि जैसी तकनीकों को अपनाया। प्राचीन सभ्यताओं जैसे सिंधु घाटी और प्राचीन मिस्र में इसके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं।

उदाहरण के लिए, मोहनजोदड़ो से प्राप्त पुजारी की मूर्ति पर बनी नक्काशीदार शॉल इस बात का स्पष्ट सबूत है कि उस समय भी वस्त्रों पर ज्यामितीय डिजाइन और अलंकरण की परंपरा मौजूद थी।

भारत में वस्त्रों का महत्व कभी भी केवल शारीरिक सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह रीति–रिवाजों और परंपराओं का अभिन्न हिस्सा रहा है। आधुनिक समय में वस्त्र और परिधान डिजाइन के माध्यम से

DO NO COPY

इस सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हुए इसे अंतरराष्ट्रीय फैशन के नए आयामों से जोड़ा जा रहा है।

वस्त्र कला के विभिन्न रूपों में बुनाई (**Weaving**), कढ़ाई (**Embroidery**), और छपाई (**Printing**) प्रमुख हैं। बुनाई वस्त्र निर्माण की वह प्रक्रिया है जिसमें धागों को परस्पर जोड़कर कपड़े का निर्माण किया जाता है। जबकि कढ़ाई में सुई और धागों की मदद से कपड़े के ऊपर सुंदर आकृतियाँ उकेरी जाती हैं। भारत की परंपरा विशेषतः वस्त्र कला की अनोखी रंगों और शैलियों से समृद्ध किया है। जैसे राजस्थान की अजंराख छपाई, जिसमें प्राकृतिक रंगों और लकड़ी के ब्लॉकों का उपयोग करके जटिल पैटर्न बनाए जाते हैं, आज भी विश्व प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त, रेशम की बुनाई, पटोला, बाघनी और चिकनकारी जैसी कलाएँ भारत के उत्कृष्ट शिल्प कौशल का परिचय देती हैं। हाथों से की जाने वाली बुनाई और मशीनों द्वारा निर्मित वस्त्र निर्माण दोनों ही वस्त्र कला के तरीके हैं। जहाँ हाथों की बुनाई में कोमलता और व्यक्तित्व स्पष्ट होता है, वहीं मशीनों द्वारा बने होजरी वस्त्र अपने लचीलेपन और आराम के लिए जाने जाते हैं।

वस्त्र कला केवल एक उद्योग नहीं है, बल्कि लाखों कारीगरों के शारीरिक श्रम और कल्पनाशील कौशल का संगम है, जो सौन्दर्य बोध के साथ हमारे दैनिक जीवन को भी जीवंत रखता है।

परम्परागत रूप से कला शब्द का उपयोग निपुणता या कौशल को व्यक्त करने के लिए किया जाता था। यह निपुणता को संदर्भित करने के लिए किया जाता था। यह अवधारणा उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक काल से दौरान बदली, जब कला को धर्म और विज्ञान के साथ वर्गीकृत मानव मन की एक विशेष क्षमता के रूप में देखा जाने लगा। शिल्प और ललित कला के बीच का यह अंतर वस्त्र कला पर भी लागू होता है। फाइबर कला या वस्त्र कला शब्द का प्रयोग अब वस्त्र आधारित सजावटी वस्तुओं का वर्णन करने के लिए किया जाता है।

यह एक बहुआयामी रचनात्मक विधा है, जिसमें रेशेदार सामग्रियों को कलात्मक रूप देने के लिए विभिन्न तकनीकों और सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। यह कला और शिल्प की दुनिया का आपस में जुड़ा हुआ क्षेत्र है और वस्त्रों के स्पर्शनीय गुणों के माध्यम से अभिव्यक्ति का मंच प्रदान करती है। इसका कला रूप में टेपेस्ट्री से लेकर क्विल्टिंग तक सब कुछ शामिल है। कढ़ाई, बुनाई और रंगाई भी इसमें शामिल हैं।

DO NO COPY

वस्त्र कला अनेक रूप से विभिन्न तत्वों और तकनीकों से मिलकर बनी होती है। ये तत्व और तकनीकें वस्त्र कलाकृति के सौंदर्यशास्त्र और कार्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वस्त्र ऐसे पदार्थ होते हैं जो रेशों से बने होते हैं और जिन्हें धागे, कपड़े या अन्य वस्तुओं में रूपांतरित किया जा सकता है। सामान्य रेशों में कपास, रेशम, ऊन और पॉलिएस्टर जैसे कृत्रिम रेशे शामिल हैं।

वस्त्र कला कृतियाँ केवल सजावटी नहीं होतीं, वे संस्कृति, इतिहास और व्यक्तिगत कहानियों का प्रतीक होती हैं। उदाहरण के लिए, पारंपरिक भारतीय लोक कढ़ाई के पैटर्न बनाते हैं, जो समृद्ध हैं।

प्रतीकात्मक अर्थ विभिन्न रंगों और पैटर्नों के साथ, जो शांति, समृद्धि और विविध अनुभवों का प्रतिनिधित्व करते है। यह सदियों से हमारे घरों का एक महत्वपूर्ण लेकिन अक्सर अनदेखा हिस्सा रही है, जो उपयोगिता और सुंदरता दोनों को एक साथ पिरोती आ रही है।

कढ़ाई से सजे परिधानों से लेकर टेपेस्ट्री और, हस्तनिर्मित कालीनों से लेकर आधुनिक तकनीकों तक, वस्त्र कला महत्वपूर्ण परंपराओं का संरक्षण करती है और यहां तक कि इमारतों को ऊष्मारोधी भी बनाती है।

➢ वस्त्र कला का इतिहास :–

भारत का इतिहास वस्त्र कला से गहराई से जुड़ा हुआ है, जो देश की विविध और जीवंत सांस्कृतिक विरासत को दर्शाता है। प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर आज तक, भारतीय वस्त्रों ने व्यापार, परंपरा और प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह ब्लॉग भारत में वस्त्रों की आकर्षक सफर की पड़ताल करती है, जिसमें उन प्रमुख कालों, नवाचारों और सांस्कृतिक विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला गया है जिन्होंने इस समृद्ध विरासत को आकार दिया है।

• प्राचीन शुरुआत :–

भारतीय वस्त्रों का इतिहास सिंधु घाटी सभ्यता से शुरू होता है, जो लगभग 2500 ईसा पूर्व फली–फूली। पुरातात्विक खोजों में चरखे और बुने हुए कपड़ों के टुकड़े शामिल हैं। इससे पता चलता है कि इस प्राचीन सभ्यता के लोग कताई और बुनाई में कुशल थे। वे मुख्य रूप से कपास जैसे

- https://www.gartexindia.com/the-rich-tapestry-of-india-a-history-of-textiles/

DO NO COPY

प्राकृतिक रेशों का उपयोग करते थे, जो इस क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में उगता था। रंगे हुए सुती धागों की खोज से वस्त्र रंगाई तकनीकों में उनकी प्रारंभिक महारत का संकेत मिलता है।

भारतीय समाज के विकास के साथ–साथ उसकी वस्त्र परंपराएँ भी विकसित हुईं। वैदिक काल (1500–500 ईसा पूर्व) के दौरान बुनाई अधिक परिष्कृत हो गई और वस्त्रों का उल्लेख ऋग्वेद और महाकाव्यों जैसे प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। इन ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और रेशों और ऊन जैसी बहुमूल्य सामग्रियों के उपयोग का उल्लेख है।

- मध्यकालीन नवाचार :–

मध्यकाल ने भारतीय वस्त्रों में भी नई शैलियों और प्रभावों को जोड़ा। फारसी और मुगल संस्कृतियों के आगमन से नई सौंदर्यशास्त्रीय और तकनीकी विशेषताएँ विकसित हुईं। विशेष रूप से मुगल साम्राज्य का भारतीय वस्त्रों पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिससे पारंपरिक और तकनीकी उत्कृष्टता का स्वर्ण युग शुरू हुआ।

मुगल संरक्षण में गुजरात, बंगाल और पंजाब जैसे क्षेत्रों में वस्त्र उद्योग के केंद्र फले–फूले। मलमल और रेशम जैसे उत्तम वस्त्रों का उत्पादन बढ़ा। महीन सूती वस्त्र मलमल विश्व भर में प्रसिद्ध हुआ। विशेष रूप से बंगाल का पारदर्शी बुना हुआ मलमल। इसी काल की देन माना जाता है और इसी काल में जरदोजी (धातु के धागों की कढ़ाई) और चिकनकारी (सफेद धागों की कढ़ाई) जैसी जटिल कढ़ाई शैलियों का उदय हुआ, जिससे वस्त्र कला को एक नया आयाम मिला।

आरंभ में वस्त्र कला का अधिकांश भाग व्यावहारिक था। कंबल, वस्त्र और कालीन जैसी वस्तुएँ लोगों के जीवनयापन और आराम के लिए उपयोगी थीं, जो दैनिक आवश्यकताओं के लिए महत्वपूर्ण थीं। वर्षों के साथ वस्त्र कला अधिक से अधिक जटिल, रोमांचक, चमकीली और कलात्मक होती चली गई और यह कलात्मकता रचनात्मकता को व्यक्त करने के सबसे लोकप्रिय तरीकों में से एक बन गई।

इतिहासकारों और मानवशास्त्रियों ने वस्त्र कला का विस्तृत अध्ययन किया है। लगभग 500,000 वर्ष पूर्व तक खोजे गए नमूनों, कपड़ों के रेशों और अन्य बुनाई उपकरणों से बनी वस्तुएँ पाई गई हैं। यह स्पष्ट है कि वस्त्र मानव सभ्यता में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं। उनसे उत्पन्न कला ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से सबसे मूल्यवान कलाकृतियों में से एक है।

DO NO COPY

सभ्यताओं के विकास के साथ–साथ वस्त्र और कलाकृतियाँ बनाने के लिए उपयोग की जाने वाली सामग्रियाँ भी बदलती गईं। शुरूआत में जानवरों की खाल और फर जैसे वस्त्रों से मनुष्य धीरे–धीरे जानवरों के रेशों से ऊन बनाने के लिए फेल्टिंग की प्रक्रिया का उपयोग की प्रक्रियाएं सीखी।

यह वस्त्र कला के विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि इन प्रक्रियाओं से अधिक जटिल और बारीक, कलात्मक पैटर्न बनाए जा सकते हैं, जिसने हमारे आत्मअभिव्यक्ति के तरीकों को बहुत प्रभावित किया है और वर्षों से होने वाले वस्त्रों के विकास में योगदान दिया है।

सदियों से वस्त्र कला का उपयोग कहानियां सुनाने, और इतिहास को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने के साधन के रूप में किया जाता रहा है। दुनिया भर की कई स्वदेशी संस्कृतियाँ सदियों पुरानी वस्त्र कला के माध्यम से अपने इतिहास का पता लगा सकती हैं, जो इतिहास और उनसे जुड़े परिवेश को दर्शाती हैं।

यह रचनात्मकता का एक अविश्वसनीय रूप से विविध रूप है। इसमें विभिन्न प्रकार की सामग्रियों का उपयोग किया जाता है और दुनिया भर में इसके तरीके बहुत भिन्न हैं। वस्त्र कला की एक सामान्य पांपरिक विधियों में सिलाई, बुनाई और कढ़ाई शामिल हैं। कपड़े के टुकड़ों को जोड़ने के लिए धागे के उपयोग के माध्यम से सभी कला रूप हैं। यह कला का एक प्राचीन रूप है जिसकी उत्पत्ति व्यावहारिक कारणों से हुई और अंततः यह कार्यात्मक होने से काफी अधिक बन गया।

प्राचीन काल से ही वस्त्र कला का विविध इतिहास रहा है। प्रारंभिक इस्लामी सभ्यताओं में वस्त्रों में सजावट के तत्वों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई देती है। जिनमें जटिल डिजाइनों, और दुर्लभ एवं महंगी सामग्रियों का उपयोग करके विलासिता पूर्ण कलाकृतियाँ बनाई गईं। ऐसी बातें विश्व भर के प्राचीन साम्राज्यों के संदर्भ में भी कही जा सकती हैं। चाहे वह ओटोमन साम्राज्य की कढ़ाई हो या फारसी साम्राज्य में महंगे एवं विलासितापूर्ण वस्त्रों का उपयोग। फारस और तुर्की में भी वस्त्र कला के माध्यम से कलात्मक वस्त्रों और सजावटी आंतरिक सज्जा का निर्माण किया गया।

अफ्रीका महाद्वीप में, वस्त्र कला ने विशिष्ट देशों और शैलियों को प्रतिबिंबित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अफ्रीकी वस्त्र कला में पैटर्न, रंगाई, कढ़ाई और मनकें के काम का रचनात्मक उपयोग विश्व भर में बहुत प्रसिद्ध रहा है और आज भी समकालीन कला दृष्टिकोण को प्रभावित कर रही है।

DO NO COPY

- https://www.iiad.edu.in/the-circle/history-of-the-indian-textile-industry/

प्राचीन चीन में रेशम कला का भी एक समृद्व इतिहास है जो 3500 ईसा पूर्व तक पुराना है। प्राचीन चीनी कला ने भी विश्व भर में प्रसिद्व बना हुआ था। वस्त्र कला की व्यापकता इसकी अंतर्निहित मानवता और व्यावहारिक उपयोग से परे रंगों पैटर्न और कला को बनाने की मानवीय प्रवृत्ति को दर्शाती है।

प्रागैतिहासिक काल में लगभग 100000 से 500000 वर्ष पूर्व, वस्त्रों का निर्माण व्यावहारिक उदेश्यों जैसे के कपड़े और कंबल बनाने के लिए किया जाता था। पशु खाल, ऊन और पत्तियों जेसी विभिन्न सामग्रियों का उपयोग करते हुए वस्त्र कला का विकास हुआ और फल्टेड सामग्री और हाथ से काते धागों का उपयोग करके अधिक जटिल रचनाएं तैयार की गई।

बाद में समुदाय – विशिष्ट डिजाइन और तकनीकें विकसित हुई और कारीगरों ने मोतियों, धातुओं हड्डियाँ और सीपियाँ जैसी अन्य बहुमूल्य सामग्रियों को शामिल किया गया। परिणामस्वरूप देखने में सुंदर और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध वस्त्रों का निर्माण हुआ।

आयरिश और स्कॉटिश टाट्रन, इकत, बाटिक और नवाजों वस्त्रों ने, अन्य वस्त्रों के साथ, समुदायों को अलग करने, व्यक्तित्व को व्यक्त करने और राष्ट्रों को अलग करने में मदद मिली।

इतिहास भर में वस्त्र कला का उपयोग ऐतिहासिक, बाइबिल की कहानियों, पौराणिक कथाओं, कबीले की पहचान और पारिवारिक मूल्यों को व्यक्त करने के माध्यम से भी किया जाता रहा। यह लोगों के लिए शिक्षाप्रद और चैतावनीपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करती थी। कपड़ों और आभूषणों के लिए की गई बारीक कढ़ाई से लेकर माता–पिता के 1970 के दशक के अपार्टमेंट को सजाने वाले भव्य कालीनों तक, वस्त्र कला का सफर काफी लंबा रहा है।

समकालीन कला परंपराएँ इस इतिहास पर आधारित हैं और कला सिद्वांतों को शामिल करती हैं, जो अक्सर वस्त्र को शिल्प के रूप में देखने की धारणा को नकारते हुए इसे उच्च कोटि की कला के रूप में स्थापित करती हैं।

बीसवीं शताब्दी के दौरान, वस्त्र कला का विकास हुआ और कला में एक विद्रोही रचनीतिक माध्यम के रूप में इसका उपयोग किया गया। यह माध्यम कई लोगों के लिए आसानी से उपलब्ध था और इसने अभिव्यक्ति का एक ऐसा साधन प्रदान किया, जहाँ पुरूष–प्रधान कला समाज में पारंपरिक तरीकों को स्वीकार नहीं किया जाता था।

DO NO COPY

महिला चित्रकारों, मूर्तिकारों और फोटोग्राफरों को आम तौर पर खुले तौर पर स्वीकार नहीं किया जाता था और औपचारिक प्रशिक्षण तथा उत्कृष्ट कृतियों के बावजूद भी उन्हें अक्सर शौकिया या नौसिखिए कलाकार ही माना जाता था। हालाँकि, वस्त्र कला केवल महिलाओं के लिए काम करने का एक स्वीकृत माध्यम ही नहीं थी, बल्कि कलाकारों के लिए प्रयोग करने और अपनी कला को अभिव्यक्त करने का एक स्वाभाविक मार्ग बन गया।

- **प्राचीन वस्त्र कला :–**

वस्त्र कला का संबंध मानव सभ्यता के उस महान परिवर्तन से है, जब वह भोजन की तलाश में शिकार करने वाली घुमंतू संस्कृति से सामुदायिक रूप से भोजन को भंडारण करने वाली सभ्यता में परिवर्तित हुई। जैसे–जैसे लोग वस्त्रों का उपयोग करने लगे, यह विकास उत्तर–पश्चिमी भारत की प्रमुख नदी घाटियों, नील घाटी, टाइग्रिस – यूफ्रेटस मैदान, यांगत्जी घाटी और सिंधु घाटी के आसपास सीमित रहा। जहाँ इसकी शुरुआत लगभग 2500 ईसा पूर्व हुई थी। आदिम वस्त्र शैलियाँ जलवायु और कच्चे माल की प्रकृति से निर्धारित होती थीं, जो स्वाभाविक रूप से क्षेत्र के अनुसार भिन्न होती थीं।

भारतीय वस्त्र उद्योग के जन्म के बारे में अब तक बहुत कम जानकारी उपलब्ध है, लेकिन विभिन्न स्रोतों में यह वर्णन मिलता है कि इस उद्योग की उत्पत्ति सिंधु घाटी सभ्यता में पांचवीं शताब्दी में हुई थी। उस समय के लोग हाथ से काते हुए सूती वस्त्र पहनते थे, जिनमें नीले रंग का उपयोग होता था।

भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि प्रधान है और इतिहासकारों द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था का दस्तावेजीरण किए जाने के समय से ही ऐसा रहा है। उनके अभिलेखों में यह भी उल्लेख मिलता है कि समय के साथ–साथ देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने वाला दूसरा सबसे बड़ा उद्योग वस्त्र उद्योग है। यह देश भर में लाखों लोगों को रोजगार प्रदान करता रहा है।

भारत का वस्त्र उद्योग, जो 5000 वर्षों से भी अधिक पुराना है, गाँवों में हथकरघे के रूप में अपनी साधारण शुरूआत से लेकर आधुनिक समय की विशाल वस्त्र मिलों तक महत्वपूर्ण विकास का गवाह रहा है। चोल, सेल्जुक और सफवीय काल से लेकर अब तक, भारतीय वस्त्र उद्योग ने एक लंबा सफर तय किया है।

DO NO COPY

भारत में वस्त्रों का इतिहास विश्व के सबसे पुराने इतिहासों में से एक है। सबसे पुराने जीवित भारतीय सूती धागे लगभग 5000 ईसा पूर्व के हैं और इस क्षेत्र के रंगे हुए वस्त्र 2500 ईसा पूर्व तक के दस्तावेजी प्रमाण है। विदेशों में भारत की पहचान में वस्त्रों का इतना महत्व था कि प्राचीन ग्रीस और बेबीलोन में भारत का नाम ही कपास का पर्याय बन गया था।

सिंधु घाटी सभ्यता भारत में वस्त्र उत्पादन का केंद्र थी, जहाँ मोहनजोदड़ो और हड़प्पा शहरों के इर्द–गिर्द एक पूर्ण शहरी सभ्यता विकसित हुई, जो 2500 ईसा पूर्व से 2000 ईसा पूर्व के बीच फली–फूली। इन सभयताओं की खुदाई के दौरान छोटी मूर्तियाँ और उत्कीर्णन, मुहरों के साथ–साथ ऊन, लंगर, कपास के कई चरखे और कुछ तांबे की सिलाई सुइयाँ भी मिली। बुने हुए कपडऋे के निशान और बड़ी संख्या में कपास के बीज भी मिले, जो 5000 ईसा पूर्व के हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक कपास की खेती और वस्त्र बुनाई उन्नत अवस्था में पहुँच चुकी थी।

प्राचीन भारत में ढाका की मलमल विश्व प्रसिद्ध थी। यह इतनी बारीक होती थी कि एक पूरा थान एक अंगूठी के अंदर से निकाला जा सकता था। रामायण, महाभारत और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में रेशमी, सूती और ऊनी वस्त्रों के साथ–साथ वस्त्रों पर सोने के तार के काम का भी विस्तृत उल्लेख मिलता है। प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि ईसा पूर्व काल में भी भारत में सिलाई की कला बहुत विकसित थी।

➢ प्राचीन समय के भारतीय वस्त्र :–

पर्यावरण के प्रति जागरूक वस्त्रों का चलन शुरू होने से पहले, फैशन जगत में स्थिरता का बखान शुरू होने से पहले ही, भारत में ऐसे उत्कृष्ट परिधान बनाए जाते थे जो धीमी गति से, नैतिक रूप से और धरती से जुड़े हुए थे। सदियों से, उपमहाद्वीप के समुदाय कारखानों में नहीं, बल्कि आंगनों में, नीम के पेड़ों के नीचे, नदियों के किनारे पर वस्त्र बनाते आ रहे हैं न कि डिजाइन स्कूलों से सीखे गए हैं।

ये मोटे, कपड़े नहीं थे, ये कहानियाँ थीं। प्राकृतिक रंगों से रंगी हुई, स्थानीय पहचानों से गढ़ी हुई और धर्य को समझने वाले हाथों से छुई हुई। सम्राटो की शोभा बढ़ाने वाले हल्के मलमल से लेकर रेगिस्तानी परंपरा में डूबे अजराख प्रिंट तक, ये वस्त्र किसी फैशन की दौड़ में नहीं थे। उन्होंने परंपरा को परिभाषित किया।

- https://thebetterindia.com/465358/ancient-indian-textiles-vs-fast-fashion/

DO NO COPY

आज डिस्पोजेबल फैशन से भरी दुनिया में ये सदियों पुरानी तकनीके अपनी जगह पर अडिग है। कालातीत प्रासगिक और लुप्त होने से अप्रभावित है।

1. कलमकारी – आंध्र प्रदेश और तेलंगाना :–

कलमकारी का इतिहास 3000 वर्ष से भी अधिक पुराना है। इसकी जड़ें मछलीपटेनम और श्री कालहस्ती के मंदिर नगरों में है।

→ इसका उपयोग कैसे किया गया –

प्रारंभ में यह एक पवित्र कला के रूप में विकसित हुई, जिसका उपयोग मंदिरों के पर्दो, स्क्रॉल और कथा–चित्र बनाने के लिए किया जाता था। कारीगर हाथ से बनाए गए चित्रों के माध्यम से रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों के प्रसंगों को दर्शाते थे।

→ इसे कैसे बनाया गया –

यह मुख्यतः कलम (पेन) और कारी (कारीगरी) से मिलकर बनी कला है। कारीगर बांस की कलमों और नील, मरबालन और अनार के छिलकों जैसी पौधों से प्राप्त प्राकृतिक रंगों का उपयोग करते थे। यह 23 चरणों की प्रक्रिया है जिसमें बार–बार कपड़ों को धोना, रंगना और सुखाना जैसे कई कार्य शामिल होते थे।

→ आधुनिक समय के मिश्रण –

कलमकारी अब शहरी लोगों की वेशभूषा में ब्लॉक प्रिंट कुर्ते, दुपट्टे, साड़ियाँ और यहाँ तक कि घरेलू साज सज्जा के रूप में भी अपनी जगह बना चुकी है। इसके डिजाइन भले ही आजकल अधिक चलन में हों, लेकिन इसकी प्रक्रिया सदियों पुरानी परंपरा पर आधारित है।

→ स्थिरता –

DO NO COPY

कलमकारी में प्राकृतिक रंगों और सूती वस्त्रों का उपयोग किया जाता है तथा इसमें पानी की बचत होती है। इसका हस्तनिर्मित और गैर–विषैला उत्पादन ग्रामीण कारीगरों और पर्यावरण के प्रति जागरूक फैशन प्रथाओं को समर्थन करता है।

2. अजराख – गुजरात और सिंध :–

माना जाता है कि अजराख की उत्पत्ति 4000 साल पहले सिंधु घाटी सभ्यता में हुई थी। और यह कच्छ और सिंध में आज भी फल–फूल रहा है।

→ इसका उपयोग कैसे किया गया –

परंपरागत रूप से चरवाहा समुदायों और सुफी संतों द्वारा पहना जाने वाला आजराख प्रतीकात्मक और व्यावहारिक दोनों था। मोटा सूती कपड़ा तेज धूप और धूल से सुरक्षा प्रदान करता था।

→ इसे कैसे बनाया गया –

अजराख को नील, मजीठ और गुड़ जैसे प्राकृतिक रंगों से बनाया जाता है, जिसमें प्रतिरोधक रंगाई और ब्लॉक प्रिंटिग के 16 चरण शामिल होते है। कारीगर जटिल रूप से नक्काशीदार लकड़ी के ब्लॉकों का उपयोग करके सममित ज्यामितीय पैटर्न बनाते है।

→ इसका वर्तमान उपयोग कैसे होता है –

अब अजराख साड़ियों, स्टोल, शर्ट और बेडशीट पर नजर आ रहा है। डिजाइनर पर्यावरण के अनूकूल होने के सार को बरकरार रखते हुए इसे आधुनिक परिधानों के साथ मिला रहे है।

→ सतत विकास –

अजराख प्राकृतिक रंगों और धूप में सुखाने की प्रक्रिया का उपयोग करता है, जिससे हानिकारक रसायनों और ऊर्जा की खपत समाप्त हो जाती है। यह ग्रामीण कारीगर समुदाय का समर्थन करता है और पांरपरिक पारिस्थितिक ज्ञान को संरक्षित करता है।

DO NO COPY

3. मलमल – बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश और बंगाल)

मलमल, विशेष रूप से ढाका मलमल, मुगल काल (16वीं – 18वीं शताब्दी) के दौरान अपने चरम पर था। हालांकि इसके संदर्भ छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक मिलते हैं।

→ इसका उपयोग कैसे किया गया –

"बुनी हुई हवा" कहे जाने वाले मलमल का कपड़ा इतना महीन होता था कि कभी–कभी इसे धुंध समझ लिया जाता था। भारत और यूरोप के राजपरिवार इसे कई तहों में लपेटते थे, फिर भी यह हल्का और सांस लेने योग्य बना रहता था।

→ इसे कैसे बनाया गया :–

मेघना नदी के किनारे उगने वाली कपास की एक दुर्लभ किस्म (फूटी कार्पा) से बनी मलमल को कुशल बुनकरों द्वारा हाथ से काता और बुना जाता था। एक टुकड़ा पूरा करने में छहः महीने से लेकर एक साल तक का समय लग सकता था।

→ इसका वर्तमान उपयोग कैसे होता है –

हालाँकि औपनिवेशिक शासन के दौरान मूल कला लगभग समाप्त हो गई थी, परंतु मलमल का पुनरुद्धार हुआ है। अब इसे बंगाल और बांग्लादेश के कुछ हिस्सों में बुना जाता है। मुख्य रूप से साड़ियों, स्कार्फ और विलासितापूर्ण परिधानों के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

→ स्थिरता –

मलमल जैविक कपास से बना है, जिसे न्यूनतम ऊर्जा खपत के साथ हाथ से काता और बुना जाता है। इसकी अति महीन बनावट के लिए किसी भारी प्रसंस्करण या मशीनरी की आवश्यकता नहीं होती, जिससे पर्यावरण के अनुकूल शिल्प पुर्नजीवित करने और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को समर्थन प्राप्त होता है।

4. चिकनकारी – लखनऊ, उत्तर प्रदेश :–

DO NO COPY

चिकनकारी एक कढ़ाई कला है, जिसके बारे में माना जाता है कि इसे 17वीं शताबदी में मुगल महारानी नूरजहाँ के द्वारा शुरू किया गया था। यह कपड़े पर सुई और धागे द्वारा की जाने वाली नाजुक हस्तकला है।

→ इसका उपयोग कैसे किया गया –

मुख्य रूप से मलमल तथा सूती कपड़ों पर होने वाली चिकनकारी का उपयोग शाही वस्त्रों, कुर्तों और नवाबी परिधानों के लिए किया जाता था। यह सूक्ष्म, जटिल और राजसी सुंदरता का प्रतीक मानी जाती थी।

→ इसे कैसे बनाया गया –

चिकनकारी में फंदा, मुर्री और बखिया जैसे लगभग 30 से अधिक प्रकार के टाँके शामिल होते हैं, जो पूरी तरह हाथ से किए जाते हैं। कारीगर पहले कपड़े पर धोने योग्य स्याही के डिजाइन बनाते हैं और फिर धागों से कढ़ाई करते हैं।

→ इसका वर्तमान उपयोग कैसे होता है –

यह गर्मियों का एक लोकप्रिय परिधान बना हुआ है। चिकनकारी कुर्तों, दुपट्टों और साड़ियों से लेकर आधुनिक फैशन परिधानों तक में प्रयुक्त होती है। इसे अब छात्रों से लेकर सीईओं तक सभी पहनते है। यह इस बात का प्रमाण है कि नाजुक चीजें भी टिकाउ हो सकती है।

→ स्थिरता –

चिकनकारी सूती और मलमल जैसे सांस लेने योग्य, प्राकृतिक कपड़ों पर की जाने वाली अनूठी हस्तकला है। यह धीमी गति से होने वाली कारीगरी को बढ़ावा देती है तथा मशीन–निर्मित उत्पादों की तुलना में कम ऊर्जा का उपयोग करती है। यह महिला कारीगरों को रोजगार प्रदान करती है व कम प्रभाव वाली प्रक्रियाओं के माध्यम से कार्बन फुटप्रिंट को कम करती है और स्थानीय समुदायों की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाती है।

DO NO COPY

➢ स्वतंत्रता समय की वस्त्र कला :–

भारत की स्वतंत्रता केवल एक राजनीतिक आंदोलन ही नहीं थी, बल्कि एक सांस्कृतिक और आर्थिक जागरण भी थी। इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा वस्त्र परंपराओं का पुनरुद्धार और ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दौरान दबा दिए गया या उपेक्षित कर दिया गया, स्थानीय उद्योगों का पुनर्जीवन था। स्वतंत्रता के बाद भारतीय वस्त्रों की कहानी पहचान की पुनः प्राप्ति, कारीगरों के सशक्तिकरण और हर धागे में गौरव का संचार करने की कहानी है।

- स्वतंत्रता संग्राम में वस्त्रों की भूमिका –

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश मशीनों से बने वस्त्रों के आयात ने भारत के सदियों पुराने हस्तकरघा और हस्तशिल्प उद्योगों को खतरे में डाल दिया था। 1905 में शुरू हुआ स्वदेशी आंदोलन इस आर्थिक प्रभुत्व का विरोध करने के लिए शुरू किये गए शुरूआती संगठित प्रयासों में से एक बन गया। इसने भारतीयों को विदेशी बने वस्त्रों का बहिष्कार करने और पारंपरिक बुनकरों को पुनर्जीवित करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। चरखे पर खादी कातना, आत्मनिर्भरता का प्रतीक बन गया, जिसे महात्मा गांधी ने अहिंसक प्रतिरोध के एक शक्तिशाली रूप में बढ़ावा दिया।

स्वदेशी कपड़ों का उपयोग केवल एक शैलीगत विकल्प से कहीं अधिक था। यह एक राजनीतिक बयान था जिसने समुदायों को एकजुट किया, स्थानीय कौशल को संरक्षित किया और औपनिवेशिक शक्तियों पर आर्थिक निर्भरता को कम किया। स्वतंत्रता के समय में भारतीय वस्त्र कला आत्मनिर्भरता, हस्तकला और स्वदेशी का प्रतीक थी। महात्मा गांधी द्वारा शुरू किए गए स्वदेशी आंदोलन ने विदेशी मिल के कपड़ों का बहिष्कार कर, हाथ से काते सूत, खादी को राष्ट्रीय पहचान और स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख अस्त्र बना दिया था।

- स्वतंत्रता के बाद –

1947 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद, भारत ने अपनी पारंपरिक शिल्पकलाओं को पुनर्जीवित करने और स्थानीय कारीगरों का समर्थन देने का मार्ग प्रशस्त किया। सरकारी पहलों और सहकारी समितियों की स्थापना ने हस्तकरघा उद्योग को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा

- https://millennialmatriarchs.com/2022/08/09/fabrics-for-freedom-khadi-and-beyond/

DO NO COPY

गांधी के नेतृत्व में चलाए गए खादी आंदोलन ने आत्मनिर्भरता का प्रतीक बनकर हाथ से काते और बुने हुए वस्त्रों के उपयोग को बढ़ावा दिया।

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइन और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी जैसे संस्थानों ने वस्त्र अनुसंधान और शिक्षा पर ध्यान केंद्रित किया, नवाचार को बढ़ावा दिया और साथ ही पारंपरिक तकनीकों को संरक्षित किया। आज, भारत का हस्तकरघा क्षेत्र देश के सबसे बड़े कुटीर उद्योगों में से एक है, जिससे लाखों कारीगर जुड़े हैं।

1947 के बाद, सरकार और सांस्कृतिक नेताओं ने भारत की बहुमूल्य वस्त्र परंपराओं को पहचानने, सहकारी समितियों, कारीगर संघों और शिल्प मेलों के माध्यम से उन्हें बढ़ावा देने का प्रयास किया। राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान जैसे संस्थानों ने पारंपरिक बुनाई, रंगाई और कढ़ाई तकनीकों को आधुनिक डिजाइन शिक्षा में शामिल करना शुरू किया।

इस अवधि में खादी, इक्त, ब्लॉक प्रिंट और हस्तकढ़ाई जैसे कपड़े न केवल परिधानों के लिए बल्कि घरेलू साज–सज्जा और सजावट के लिए भी नए सिरे से लोकप्रिय हुए। वस्त्र क्षेत्र एक सांस्कृतिक धरोहर होने के साथ–साथ ग्रामीण रोजगार का स्रोत भी बना रहा। यद्यपि स्वतंत्रता संग्राम में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी, लेकिन आर्थिक स्वतंत्रता की दृष्टि से भी यह क्षेत्र लाखों लोगों के लिए आजीविका का साधन बना हुआ है।

➢ स्वतंत्रता के समय फली–फूली वस्त्र परंपराएँ :–

1. खादी (राष्ट्रव्यापी) –

खादी शायद भारत की स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ा सबसे प्रतिष्ठित वस्त्र है। स्वतंत्रता के बाद यह केवल प्रतीकात्मक, वस्तु होने से हटकर कपड़ों, आभूषणों और घरेलू वस्त्रों के लिए एक बहुउपयोगी कपड़ा बन गया। इसकी प्राकृतिक बनावट और सांस लेने योग्य गुण, इसे कुशन, कवर, पर्दे, और गर्तियों के कंबल के लिए आदर्श बनाते है।

2. हैंड ब्लॉक प्रिंटिंग (गुजरात, राजस्थान) –

भारत में शिल्पकारों के पुनरुत्थान कार्यक्रमों के तहत ब्लॉक कला के प्रिंटिंग का खूब विकास हुआ। बागरू और अजराख प्रिंटिंग जैसी तकनीकों को घरेलू और निर्यात बाजारों में नई पहचान मिली।

DO NO COPY

आज ये प्रिंट अपनी पर्यावरण–अनुकूल प्रक्रिया और कलात्मक गुणवत्ता के लिए सराहे जाते हैं। ये सूती, रेशमी और अन्य प्रकार के कपड़ों पर सुंदर डिजाइन और सजावट के लिए उपयोगी बनाए जाते हैं।

3. इकत (ओडिशा, आंध्र प्रदेश, गुजरात) –

धुधले, टाई–डाई पैटर्न के लिए प्रसिद्ध इकत बुनाई को स्वतंत्रता के बाद एक उच्च कौसल वाली शिल्पकला के रूप में मान्यता मिली, जिसे संरक्षित करना आवश्यक था। जटिल रंगाई प्रक्रिया धैर्य और कारीगरी का विशेषता का प्रतीक बन गई।

- कढ़ाई की परंपराएँ – सफेद चिकनकारी :–

लखनऊ की चिकनकारी, पंजाब की फुलकारी और बंगाल की कांथा जैसी कलाओं को फिर से पहचान और सम्मान मिला। कढ़ाई की ये शैलियाँ पारंपरिक परिधानों से निकलकर कुशन कवर और वॉल हैगिंग जैसे घरेलू सजावटी वस्तुओं में भी इस्तेमाल होने लगीं।

➢ भारतीय फैंशन के चार चरण :–

डिजाईन विकसित होते है और रूझान पुराने हो जाते है, हालॉकि बनाने का सपना हमेशा बनावट की अवधि को कुछ शब्दों में वर्णित नहीं कर सकता है। राष्ट्रीय कला, संस्कृति आश्रे ललित्य ने भारतीय फैंशन इतिहास में एक स्थान सुरक्षित कर लिया है।

जब, उपरिवेश्वादियों ने देश छोड़ा जो उन्हें इस बात से बहुत निराशा हुई कि जिस देश पर उन्होनें 200 से अधित वर्षों तक नियंत्रण कियस था, वह उनके साथ मानक पर आ जाएगा। विशष रूप से शैली जैसे स्पष्ट रूप से चरम मामले में। भारत को स्वायत्ता प्राप्त हुए सत्तर साल से अधिक समय बीत चुका है, और इस दौरान, देश के निवासियों की पोशाक की पंसद बुनियादी, प्रीमियम, और अब विलासिता से ऊपर उठ गई है।

1 ब्रिटिश राज का प्रभावः–

भारतीय उपनिवेशीकरण तक फैशन देश के सबसे अमीर लोगों द्वारा प्रबंधित एक सम्मान था। यह एक ऐसी कला थी जो वास्तव में उल्लेख करने योग्य है वह है भारतीय शैली के इतिहास पर

DO NO COPY

स्थिति दायरे का प्रभाव। डिजाइन ने व्यक्तियों के नियंत्रण और पोशाक की सामानय समझ का पालन किया।

उदाहरण के लिए, दुर्भाग्यपूर्ण खेतिहर मजदूर, और सहायक, धोती और सूती साड़ी पहनते थे, अधिकारियों या सेनानियों के लिए पोशाक एक सुरक्षात्मक परत थी। कपड़े आम जनता के बीच विभाजित स्थिति, वर्ग ढ़ाचे और विभिन्न नौकरियों का प्रतीक थे। इसके साथ ब्रिटिश औद्योगिक वस्तुओं पर भारतीय की निर्भरता को कम करने के लिए भारत में हाथ से बुने हुए कपड़े खादी के विकास को बढ़ावा दिया गया।

2. पद स्वतंत्रता –

1947 में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की। भारत के नए प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने उंचे कोट में भारतीय कैशनरेंज के एक छोर को दर्शाया। पाकिस्तान के राष्ट्रपति मोहम्मद अली जिन्ना ने सैविल रो सूट में दूसरे छोर की दर्शाया। मोहन दास करमचंद गांधी और वल्लभाई पटेन दोनों ने धोती पहनी थी।

इस तथ्य के बावजूद कि भारत की शायद सबसे प्रसिद्ध चित्रकार अमृता शेरगिल का निधन 1941 में ही हो गया था, उनके द्वारा चित्रित महिलाओं के वस्त्रों और जीवन शैली ने भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला। साड़ियों, श्स्टाइलिश थी , अपनी बेहतरीन हथकरघा साड़ियों के साथ, इंदिरा गांधी ने किया था।

3. बॉलीवुड की और रूख –

बॉलीवुड का प्रभाव भारतीय फैशन उद्योग पर सबसे प्रमुख प्रभावों में से एक रहा है। 1950 के दशक से ही कई फिल्मों, मशहूर चेहरों तथा बॉलीवुड सितारों की स्टाइल ने लोगों के कपड़े पहनने के तरीकों को प्रभावित किया। फिल्में इसकी जीवन शैली से प्रेरित थी और कुछ हद तक ब्रिटिश भी।

→ 1940 से 1960 का दशक –

लोग दिलीप कुमार और देव आनंद जैसे अभिनेताओं तथा मधुबाला और नरगिस दत्त जैसी अभिनेत्रियों की अनूठी डिजाइन विशेषताओं को प्रेरणा के रूप में देखते थे। भारतीय डिजाइन उद्योग का नकारात्मक पक्ष यह था कि व्यवसाय काफी हद तक बिखरा हुआ था और आम लोगों के लिए उपलब्ध बाजारों और ब्रांडों की दुर्लभता के कारण कपड़ों की शैलियाँ सीमित थीं।

→ 1980 से 1990 का दशक –

DO NO COPY

1980 और 1990 के दशक में बॉलीवुड ने फैशन को प्रभावित किया। लोगों के बीच नई डिजाइन, आकर्षक बटन, चमकीले रंग और आधुनिक परिधानों का चलन बढ़ा। अमिताभ बच्चन, जैकी श्रॉफ, जीनत अमान जैसे जितारों की शैली ने उनके किरदारों के बारे में बहुत कुछ बताया और लोग इन सुपरस्टारों से प्रेरणा लेने लगे।

1970 के दशक में कई फैशन डिजाइन और बेल–बॉटम पैंटों का प्रचलन बढ़ा। इस समय भारतीय फैशन पर पश्चिमी प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा।

→ 1990 का दशक –

फुल – स्लीव सलवार कमीज, ढलूम ड्रेस, लॉन्ग स्कट, डेनिम शेडस और डंगरी की मौजूदगी को दर्शाया गया। 1990 के दशक के बाद के वर्षों में भारतीय डिजाइनरों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई और फैशन उद्योग को नई दिशा प्रदान की।

4. शहरी शैलीः बॉडीकॉन साड़ी :–

→ 1920 से 2000 का दशक –

भारत में चेक्ड कपड़ों का बाजार उभर रहा था। लगातार बढ़ती संख्या में लोग स्टेंन्ड्र कपड़ों को औश्र आकर्षित हो रहे है, क्योंकि वे गुण्सवता की पुष्टि करते है। 1950 के दशक के दौरान भारत में अपने चित्र नाम के तहत पेश करने के लिए अक्सर शर्ट प्रमुख संबध थे।

उसके बाद से विभिन्न सार्वजनिक और वैश्विक ब्रॉड़ों ने भारतीय फैशन उद्योग में अपनी जगह बनाई है। एलन सोली बैन, हसेन, लुर्र किलिप, यराग डिम, रेमेडम, एरों आदि आज कुछ अग्रणी सार्वजनिक ब्रांड़ है।

लेवीली, सेवन जींस, पेपे जींस आदि जैसे कई ब्रांड़ भारत में डेनिम उद्योग में प्रवेश कर चुके है। येक्ड ड्रैस के प्रकार भारतीय डिजाइन उद्योग के विकास में एक बड़ी भूमिका निभाते है।

→ 2010 से 2020 का दशक –

भारत के डिजाइन व्यवसाय ने पिछले कई सालों में कई अस्थिर बदलाव देखने को मिले हैं। कंप्यूटर तकनीक का उपयोग बढ़ा है, जिससे नए डिजाइन और शैलियाँ विकसित हुई हैं। एक बटन के क्लिक पर सुलभ बना दिया गया है। स्टाइल अब सरल, और सुलभ है। फिर भी ब्रांडों को अपने ग्राहकों की हमेशा बदलती जरूरतों को ध्यान में रखना चाहिए, खासकर जहां भारतीय हर चीज से ज्यादा गुणवता पर ध्यान केंद्रित करते देखे जाते है।

DO NO COPY

तृतीय अध्याय

- राजस्थान की वस्त्र कला
- राजस्थान की वस्त्र कला का परिचय
- राजस्थानी वस्त्र कला क्या है
- राजस्थानी वस्त्र कला का इतिहास
- प्राचीन समय की वस्त्र कला
- राजस्थान की पोशाक
- ग्रामीण क्षेत्रों में राजस्थानी पौशाक
- राजस्थानी कपड़ा

राजस्थान की वस्त्र कला

प्राचीन काल से ही कला भारत की संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। हमारे कई राज्यों और कई राज्य क्षेत्रों की अपनी विशिष्ट कला शैलियाँ और कला परंपराएँ हैं। इन्हीं में जब कला में भव्यता और जीवंतता प्रदर्शित करने की बात आती है तो राजस्थान कैसे पिछे रह सकता है। राजस्थानी राज्यों की संस्कृति, राजस्थान संस्कृति और कला से प्रसिद्ध भूमि है। जिसने हमें राजस्थानी चित्रकला के रूप में शास्त्रीय, भारतीय कला की सबसे सुंदर स्मृतियां प्रदान की है।

राजस्थानी लोक चित्रकला आपको भारत की सबसे जीवंत और आकर्षक क्षेत्रों में से एक राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत की एक सपूंर्ण यात्रा पर ले जाती है। अपनी बोल्ड रेखाओं, चमकीले रंगो, बारीक कारीगरी और ब्रश स्ट्रोक के लिए विश्व भर में सराहे जाते है। जो दर्शकों को ध्यान आकर्षित करते है और उन्हे अपनी सुन्दरता से मंत्रमुग्ध कर देते है।

राजस्थानी कला एक विशिष्ट कला शैली है जिसमें काजग, कैनवास पर चित्रकारी की जाती है और साथ ही दीवारों और छतों पर भी चित्रकारी की जाती हैं। इसमें लघु नक्काशी और प्राचीन स्मारकों और भवनों पर पत्थर की नक्काशी भी शामिल है। ये कलाकृतियाँ राजस्थान के इतिहास और राजसी कला की कहानियों को दर्शाती हैं तथा 17वीं व 18वीं शताब्दी के राजपूताना घरानों की शोभा बढ़ाती थी।

राजपुताना चित्रकला या राजस्थान चित्रकला मध्यकाल में विकसित और प्रसिद्ध हाने लगी और 15वीं – 18वीं शताब्दी के बीच मुगल शासनकाल में अपने चरम पर पहुँची। इन चित्रों में राधा–कृष्ण, आम विषय, हिंदु धार्मिक महाकाव्य, रामायण और महाभारत और भगवान श्री कृष्ण की कथाएँ का भी चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त परिदृश्य, राजस्थान की संस्कृति और वास्तुकला की झलक भी मिलती है।

➢ राजस्थानी वस्त्र कला का परिचय :–

राजस्थानी वस्त्रों की अनूठी विशेषता यह है कि यहाँ मूल रूप से पहाड़ो, पेड़ों के भागों, खनिजों, बहुमूल्य पत्थरों और सोनो – चांदी के चूर्ण से निकाले गए गैर – कृत्रिम प्राकृतिक रंगों से

- https://fabriclore.com/blogs/journal/top-15-textile-crafts-of-india-an-overview-by-fabriclore

DO NO COPY

बनी होती है। उनकी कलात्मकता और पारंपरिक चित्रों में राजस्थानी वस्त्रों के चित्रण के कारण ये कला कृतियाँ काफी महत्वपूर्ण हैं, जो इन्हें घर की सजावट के लिए एक आकर्षक विकल्प बनाती हैं।

राजस्थान को अक्सर उसके किलों, महलों और रेगिस्तानी परिदृश्यों के माध्यम से ही जाना जाता है, लेकिन इसकी सबसे सच्ची कहानियाँ कपड़ों में बुनी हुई हैं। दर्शनीय स्थलों की जानकारी पाने वाले रास्तों से हटकर देखें, तो आपको पता चलेगा कि वस्त्र राज्य की लय, इतिहास और लोगों की समझ का कहीं अधिक अंतरंग तरीका प्रदान करते हैं।

राजस्थान का यह वस्त्र भ्रमण आपको उन घरों, कार्यशालाओं और करघों में ले जाता है जहाँ विरासत को हर दिन जीवंत रूप में देखा जा सकता है। यह धीमी–धीमी यात्रा करने वालों, प्रेमियों, डिजाइनरों, संग्राहकों और भारत के बारे में केवल तस्वीरों से अधिक जानने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए आदर्श है। यह एक ऐसा भ्रमण है जो सुकून भरा, स्पर्शनीय और अत्यंत व्यक्तिगत है।

हम वस्त्रों को स्मृति–चिन्ह के रूप में नहीं देखते, बल्कि उन्हें यात्रा अनुभव की प्रामाणिकता पर आधारित मानते हैं।

राजस्थान की वस्त्र परंपरा सदियों पुराने शाही संरक्षण, कठोर जीवंत, वस्त्र परंपराओं और प्रतिष्ठित परिधान शैलियों का विस्तृत अध्ययन है। यह लेख पारंपरिक वस्त्रों के सांस्कृतिक महत्व, जटिल शिल्प, कौशल तकनीकों और डिजाइनों एवं पैटर्नों की कलात्मक विशेषताओं का विश्लेषण करता है। यह समकालीन फैशन की आवश्यकताओं के अनुरूप ढलते हुए सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित रखने में इन वस्त्रों की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है, जो पीढ़ियों से चली आ रही हैं और उन्हें कुशलता और उद्देश्य के साथ निभाया गया है।

➢ राजस्थानी वस्त्र कला क्या है?

भारत के उत्तर–पश्चिम में, राजस्थान राज्य में पाई जाने वाली पररंपरिक भारतीय कला जिन्हें ''राजस्थानी कला'' के नाम से जाना जाता है, का सर्वप्रथम उदय हुआ। यह अपने जीवंतक रंग–बिरंगे और सुंदर चित्रों, विस्तृत अलंकरणों और विशिष्ट शैली के लिए प्रसिद्ध हैं।

राजस्थान में पाई जाने वाली विविध कला शैलियों में चित्रकला, मूर्तिकला, वस्त्र और मिट्टी के बर्तन का योगदान है। इन शैलियों में समृद्ध इतिहास, संस्कृति और रीति–रिवाजों का कला पर गहरा प्रभाव है।

DO NO COPY

राजस्थानी लघु चित्रकला जो एक कागज या रेशम पर बनाई जाने वाली छोटी और जटिल कलाकृतियाँ हैं। राजस्थानी कला के सबसे प्रसिद्ध प्रकारों में से एक है। इन चित्रों में अक्सर स्थानीय पौराणिक कथाओं, ऐतिहासिक और लोककथाओं के दृश्य दिखाए जाते हैं। इनमें चमकदार रंगों, सुंदर व सूक्ष्म रेखाओं और बारीक विवरणों का उपयोग किया जाता है जो इन्हें विशिष्ट बनाता है।

कड़ चित्रकलाएँ, जो कपड़े के लंबे टुकड़े पर बनाई जाने वाली एक प्रकार की स्क्रोल चित्रकला हैं, राजस्थानी कला की एक और प्रसिद्ध शैली हैं। इन कलाओं में अक्सर देवी – देवताओं और नायकों की कहानियों को दर्शाया जाता है तथा अपनी सशक्त आकृति, जीवंत रंग समायोजन और कथात्मक शैली के लिए जानी जाती है।

राजस्थान में प्रचलित एक अन्य कला रूप कठपुतली कला है, जो चमड़े, लकड़ी और कपड़े से बनी कठपुतलियों के माध्यम से कहानियाँ सुनाने की एक पारंपरिक विधि है। राजस्थानी पारंपरिक कथाओं और लोककथाओं को कठपुतली के माध्यम से अत्यंत आकर्षक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है।

सामान्यतः, राजस्थानी कला एक जीवंत और कलात्मक शैली है जो वर्षों से क्षेत्र के इतिहास, संस्कृति और रीति–रिवाजों से गहराई से जुड़ी रही है। यह राजस्थानी लोगों की रचनात्मक क्षमता और मौलिकता का प्रमाण है।

राजस्थान को अक्सर उसके किलों, महलों और रेगिस्तानी परिदृश्यों के माध्यम से ही जाना जाता है। लेकिन इसकी सबसे सच्ची कहानियाँ कपड़ों में बुनी हुई है। दर्शनीय स्थलों के जाने – माने रास्ते से हट कर देखें तो आपको पता चलेगा कि वस्त्र राज्य की लय, इतिहास और लोककथाओं को संरक्षित करने का एक अत्यंत अनूठा तरीका प्रदान करती है।

राजस्थान का यह वस्त्र भ्रमण आपको उन घरों, कार्यशालाओं और करघों में ले जाता है जहां विरासत को हर दिन जीवंत रूप में देखा जा सकता है। यह धार्मिक यात्रा करने वालों, संस्कृति प्रेमियों, डिजाइनरों, संग्राहकों और भारत के बारे में केवल तस्वीरों में दिखने वाली छवि से परे जानने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए आदर्श है। यह एक ऐसा भ्रमण है जो सकून भरा, स्पर्शनीय और अत्यंत व्यक्गित है।

वर्तमान में हम वस्त्रों का स्मृति चिन्ह के रूप में नहीं बल्कि नए युग के द्वार के रूप में देखते है। इनकी रचना कला और तकनीक पर आधारित है।

DO NO COPY

- https://www.gkclass.com/2023/09/Costumes-of-Rajasthan.html?m=1

राजस्थान की वस्त्र परंपरा परंपरा सदियों पुराने शाही संरक्षण, कठोर रेगिस्तानी जलवायु और भारत को मध्य एशिया तथा यूरोप से जोड़ने वाले ऐतिहासिक व्यापार मार्गों से प्रभावित है। प्रत्येक क्षेत्र ने उसकी कला को अपने वस्त्रों को पर्यावरण और जीवन शैली के अनुसार ढाला। गर्मियों के लिए हल्के सूती कपड़े, औपचारिक समारोहों के लिए सुनहरे रंगों से सजे रेशम और रेगिस्तानी रातों के लिए टिकाऊ ऊन का प्रयोग किया है।

राजस्थान की कला में रंगों का विशेष महत्व है। यहाँ पीले, लाल, नीले और हरे रंगों का प्रयोग अधिक होता है। इन रंगों का उपयोग परंपराओं और मान्यताओं पर आधारित है। उदाहरण के लिए लाल रंग विवाह और खुशियों का प्रतीक माना जाता है।

राजस्थान के वस्त्र पीढ़ियों से चले आ रहे कपड़े के प्रयोगों, हस्तशिल्प कौशल और बारीकियों पर पैनी नजर का संगम है। अविश्वसनीय सटीकता से बुने गए ये वस्त्र एक मौखिक पंरपरा का परिणाम है जो पीढ़ियों से चली आ रही और जिसे कुशलता और उदेश्य के साथ निखारा गया है।

राजस्थान के वस्त्र और हथ करघा कला जीवंत है, इनमें टिकाउ तकनीकों का उपयोग करके बेहतरीन उत्पाद तैयार किए जाते है। राज्य में असंख्य हस्तशिल्प कलाएं है और ये उत्कृष्ट कृतियाँ स्थानीय कारीगरों की प्रतीभा को दर्शाती है। लगभग सभी स्थानीय वस्त्र चमकीले रंगों के होते है। पुराने समय में यह माना जाता था कि गहरे रंग के कपड़े पहनने से बंजर भू–भाग में खोए हुए लोगों को ढूढने में मदद मिलती है।

➢ राजस्थान की वस्त्र कला का इतिहास :–

राजस्थान की वस्त्र कला का प्रारंभ कब हुआ और शुरूआती दौर में यह कैसी दिखती थी, इसका इतिहास बेहद दिलचस्प है। यह कला किसी राजा या रियासत से भी बहुत पहले, आदिम इंसानों और सिंधु घाटी सभ्यता के दौर से शुरू हो चुकी थी।

राजस्थान में वस्त्र कला की शुरुआत आज से लगभग 5000 वर्ष पहले (3000 ई.पू. के आसपास) सिंधु घाटी सभ्यता के समय से मानी जाती है।

कालीबंगा सभ्यता (लगभग 3000 ई.पू. – 1750 ई.पू.) – हनुमानगढ़ जिले में स्थित कालीबंगा के उत्खनन में मिट्टी के बर्तनों पर सूती कपड़ों की छापें निशान मिले हैं। इसके अलावा वहाँ मिट्टी और

DO NO COPY

धातु पत्थरों से बनी तकलियाँ मिली हैं, जो साबित करती हैं कि उस समय के लोग सूत कातने एवं कपड़ा बुनना 5000 साल पहले भी जानते थे।

→ आहड़ सभ्यता (लगभग 2100 ई.पू. – 1500 ई.पू.) – उदयपुर के पास आहड़ नदी के किनारे फली–फूली। इस सभ्यता से मिट्टी के ऐसे ठप्पे (**Printing Block**) मिले हैं, जिनका उपयोग कपड़ों पर छपाई के लिए किया जाता था।

→ बैरठ सभ्यता (मौर्य काल – लगभग 250 ई.पू.) – जयपुर के पास बैरठ (विराटनगर) की खुदाई में सूती कपड़ों में लिपटा हुआ एक पंचमार्क सिक्कों का संग्रह मिला था। इस कपड़े की बुनाई बहुत सघन और धागे की कताई की कला का बेहतरीन नमूना थी।

राजस्थान की वस्त्र कला का इतिहास सदियों पुराना और बेहद समृद्ध है। यहां की मरूस्थलीय भूमि पर रंगों की जो छटा बिखरी है, उसकी गवाही यहां के पांरपरिक वस्त्र आज भी देते है। राजस्थान में टेक्सटाइल वस्त्र उद्योग का इतिहास केवल कपड़े बनाने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह यहां के राजा – महाराजाओं के संरक्षण, लोक संस्कृति और भौगोलिक परिस्थितियों से गहराई से जुड़ा हुआ है।

➢ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विकास :–

राजस्थान में वस्त्र कला का विकास अलग–अलग कालखंडों में शासकों और स्थानीय सभ्यताओं के सहयोग से हुआ।

→ प्राचीन और मध्यकाल (सिंधु घाटी से राजपूत काल तक): –

राजस्थान के कालीबंगा जैसे पुरातात्विक स्थलों से सूती कपड़े के अवशेष मिले हैं, जो यह साबित करते हैं कि यहाँ कताई और बुनाई का काम हजारों साल पुराना है। मध्यकाल में जब राजपूत रियासतें स्थापित हुईं, तो वस्त्र कला को राजसी संरक्षण मिला।

→ शाही संरक्षण:

DO NO COPY

जयपुर, जोधपुर, उदयपुर और कोटा के महाराजाओं ने देश–विदेश के बेतरीन बुनकरों, रंगरेजों और छपाई करने वालों (कारीगरों) को अपने राज्य में बसाया। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने छतीस कारखानों की स्थापना की थी, जिनमें से कई कारखाने विशेष रूप से शाही कपड़े और कढ़ाई तैयार करते थे।

➢ मध्यकाल और राजसी संरक्षण :–

राजस्थान की वस्त्र कला को असली निखार और विस्तार मध्यकाल (12वीं से 18वीं शताब्दी) में मिला। इस दौरान विभिन्न राजपूत रियासतों के राजाओं ने कला और संस्कृति को खुलकर संरक्षण दिया।

छतीस कारखाने और राजकीय कारखाने जयपुर के संस्थापक महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने कला और शिल्प को संगठित करने के लिए छतीस कारखानों (36 विभागों) की स्थापना की थी। यह कारखाने वस्त्र निर्माण से जुड़े थे।

- रंगखाना :– जहाँ शाही परिवारों के कपड़ों के लिए विशेष रंग तैयार किए जाते थे।
- छापाखानाः – जहाँ केवल राजसी वस्त्रों पर महीन छपाई (ब्लॉक प्रिंटिंग) होती थी।
- सिवनखाना और तोशाखाना :– जहाँ शाही परिवारों की सिले और सुरक्षित रखी जाती थीं।

कोटा के महाराजा किशोर सिंह ने मैसूर के बुनकरों को अपने राज्य में आमंत्रित कर कैभूल में बसाया, जिसके परिणामस्वरूप विश्वप्रसिद्ध कोटा डोरिया कला का जन्म हुआ। जोधपुर, उदयपुर और बीकानेर के शासकों ने भी मलमल, किमखाब (जरी का कपड़ा) और मखमली वस्त्रों के लिए स्थानीय बुनकरों और रंगरेजों को कर–मुक्त भूमि और जागीरें देकर प्रोत्साहित किया।

➢ वस्त्रों का सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व –

राजस्थान के इतिहास में वस्त्र केवल फैशन नहीं, बल्कि व्यक्ति के आत्मसम्मान, जाति, क्षेत्र और सामाजिक स्थिति का जीवंत प्रतीक रहे हैं।

DO NO COPY

1. पगड़ी (साफा) :– राजस्थान में कहावत है – "बारह कोस पर बान ीबदले, पांच कोस पर पाग।''

मेवाड़ की चपटी पगड़ी, मारवाड़ का झूलता हुआ साफा और दूंदाड़ की कलात्मक पगड़ी राजाओं और प्रजा के आत्मसम्मान की पहचान थी। युद्व पर जाते समय केसरिया साफा शाका का प्रतीक था, जबकि दिवाली पर मदील और होली पर फागुनिया पगड़ी पहनी जाती थी।

2. पोशाक से पहचान : –

पोमचा (कमल के फूल के आकार का प्रिंट) महिलाओं के मातृत्व का प्रतीक है। लड़का होने पर पीला पोमचा और लड़की होने पर गुलाबी पोमचा मायके पक्ष से भेजा जाता है, जिनका इतिहास सदियों पुराना है।

3. राजसी उपहार :–

राजा–महाराजा जब दूसरे राज्यों के दूतों या ब्रिटिश अधिकारियों से मिलते थे, तो कूटनीतिक संबंधों को मजबूत करने के लिए उन्हें अूल्य सांगानेरी दुशाले कोटा डोरिया के धान और किमखाब की पोशाकें भेंट के रूप में देते थे।

➢ प्राचीन समय की वस्त्र कला :–

शुरूआती दौर में राजस्थान की वस्त्र कला आज की तरह बहुत आधुनिक या तड़क–भड़क वाली नहीं थी। वह पूरी तरह प्राकृतिक, स्थानीय आवश्यकताओं और भौगोलिक परिस्थितियों पर आधारित थी।

→ ग्रामीण और कबीलाई वस्त्र –

शुरू में यहाँ की वस्त्र कला महलों की नहीं, बल्कि यहाँ के कबीलों और ग्रामीण समुदायों की पहचान थी। भील, मीणा और गरासिया जैसी जनजातियों के परिधान बहुत सरल होते थे।

- वे हाथ से मोटे सूत कातते थे, जिसे रंजा या खादी कहा जाता था। यह कपड़ा गर्मियों में ठंडा और सर्दियों में गर्म रहता था।

- https://www.artsindia.com/blogs/news/what-is-rajasthani-art

DO NO COPY

- महिलाओं के घाघरे और ओढ़नी पर बहुत साधारण हाथों की कढ़ाई (जैसे सूई–धागे से बने स्टिच) की जाती थी, जिसमें काँच के टुकड़ों का इस्तेमाल होता था ताकि वे धूप में चमकें।

केवल प्राकृतिक रंगों का उपयोग :–

आज की तरह पहले रासायनिक रंग नहीं होते थे। पहले की वस्त्र कला पूरी तरह इको–फ्रेंडली थी।

- लाल और कत्थई रंग :– मजीठ की जड़ और अनार के छिलकों से।
- पीला रंग :– हल्दी, कसूम्बा के फूल और गेंदे के फूलों से।
- नीला रंग :– नील के पौधों से।
- काला रंग :– लोहे के चूर्ण और गुड़ के मिश्रण से।

यह कारण था कि पहले के कपड़े धोने पर भी उनके रंग हल्के तो होते थे, लेकिन कभी भी ऐसे गायब नहीं होते थे और त्वचा के लिए सुरक्षित होते थे।

→ मिट्टी और मोम से छपाई :–

शुरुआती दौर में छपाई के लिए दाबू का प्रयोग बहुत होता था। जहाँ रंग नहीं चढ़ाना होता था, वहाँ मिट्टी, गोंद या मोम आदि का उपयोग किया जाता था। मिट्टी या मोम का लेप लगा देने के बाद पूरे कपड़े को रंग में डुबो दिया जाता था, जिससे उस जगह पर मूल सफेद या हल्का रंग उभर आता था। यह बहुत ही बुनियादी लेकिन कमाल की कला थी।

→ सीमित लेकिन मजबूत बुनाई :–

शुरुआत में महीन मलमल या कोटा डोरिया जैसी जालीदार साड़ियाँ नहीं बनती थीं। पहले खेस (मोटी चादरें), दरियां और लोई (ऊनी चादरें) बनाई जाती थीं, जो मारवाड़ और शेखावाटी की कड़क सर्दियों और रेतीली हवाओं से बचा सके।

राजस्थान की पहले की वस्त्र कला सादगी में सुंदरता की प्रतीक थी। शुरुआत में यह केवल स्थानीय स्तर पर सूत कातने और वनस्पति रंगों से कपड़े रंगने तक सीमित थी। बाद में जब मध्यकाल

DO NO COPY

में राज–महाराजाओं का उदय हुआ, तो उन्होंने ग्रामीण कारीगरों को महलों में जगह दी। विदेशों से रेशम और जरी मंगवाकर व्यापार और कला को बढ़ावा दिया, जिससे वस्त्र कला में बदलाव आया।

➢ राजस्थान की पोशाक :–

जब लोग राजस्थानी पोशाक के बारे में सोचते हैं, तो उनके मन में चटकते रंगों और कई परतों वाली पोशाकों की छवि बनती है। यह कोई संयोग नहीं है। राजस्थान एक रेगिस्तानी राज्य है, जहाँ तेज धूप, अत्यधिक तापमान और योद्वा संस्कृति तथा राज शाही संरक्षण का लंबा इतिहास रहा है। इन तीनों के अनुरूप ही परिधानों का विकास हुआ।

ढीले, परतदार वस्त्र गर्मी में शरीर को ठंडा रखते हैं और हवा का संचार होने देते हैं। पगड़ी और ओढ़नी सिर और चेहरे को रेत तथा गर्मी से बचाते हैं। साथ ही रंग और पैटर्न भी अपनी पहचान का संकेत देते हैं। कई समुदायों में पगड़ी या ओढ़नी की शैली और रंग से जाति, वैवाहिक स्थिति तथा यहाँ तक कि परिवार में किसी उत्सव या मातम का भी संकेत मिल सकता है।

➢ पारंपरिक पोशाक :–

→ महिलाओं के लिए :–

- टखने तक लंबी घघरा, जो अक्सर फैली हुई और भारी प्रिंट या कढ़ाई वाली होती है।
- चोली या कांचली, फिटिंग वाली और कभी–कभी परतदार।
- ओढ़नी या चुनरी, सिर और कंधों पर लपेटी जाती है।

→ पुरुषों के लिए :–

- धोती या पायजामा, लपेटा हुआ या सिला हुआ निचला वस्त्र।
- अंगरखा या कुर्ता, एक लपेटने वाली या सीधी ट्यूनिक।
- पगड़ी या साफा, जो केवल कपड़ा नहीं बल्कि पहचान और सम्मान का प्रतीक है। यह राजस्थानी पहनावे का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है।

- https://www.pearlacademy.com/blog/fashion/traditional-dress-of-rajasthan

DO NO COPY

ये डिजाइन क्षेत्र में सजावटी लग सकते हैं, लेकिन ये अत्यंत व्यावहारिक हैं। कपड़े आमतौर पर सूती या हल्के व रेशमी से होते हैं ताकि शरीर को सांस लेने में आसानी हो। कपड़ा उद्योग में एक स्पष्ट सिद्धांत है कि स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए सूती, रेशमर, लिनन, जूट और कशमीरी जैसे प्राकृतिक रेशों से बने कपड़ों का उत्पादन बढ़ रहा है।

➢ राजस्थानी पारंपरिक पोशाक में महिलाः घाघरा, चोली और ओढ़नी :–

अगर आप राजस्थानी पोशाक पहने महिला की कल्पना करें, तो शायद आपके मन में बंधानी, डॉट्स या लहरिया धारियों से सजे घाघरे की आकृति दिखाई देगी। यह पोशाक अपने आप में एक खास पहचान रखती है।

घाघरा :– आमतौर पर टखनों तक लंबा होता है, जिसमें कई कलियाँ होती हैं, जो इसे आकर्षक बनाती हैं। यह सादा, प्रिंटेड या ब्लॉक प्रिंट, मिरर वर्क या गोटा–पट्टी से सजे डिजाइनों वाला हो सकता है।

चोली :– चोली छोटी और फिटिंग वाली होती है, कभी–कभी इसमें पीछे लेस लगी होती है या साइड में बांधने के लिए डोरियां भी होती हैं। ओढ़नों सबसे आकर्षक परिधान है। इसमें शुभ लाल बंधेज, हल्के रंग की लहरिया या गोटा वर्क से सजे जटिल बॉर्डर हो सकते है।

आधुनिक समय वही तिकड़ी ब्राइडल, लहंगों, फयूजन, आउटफिट्स और फेस्टिवल वियर में अपडेट्स कट्स, हल्के फैब्रिक और समकालीन रंगों को साथ दिखाते हैं, लेकिन मूल संरचना वही रहती है।

- पुरुषों की पोशाक :–

पुरुषों के लिए धोती या चूड़ीदार के साथ अंगरखा और पगड़ी मुख्य पोशाक होती है। अंगरखे की लंबाई और बनावट अलग–अलग हो सकती है। पगड़ी की शैली, रंग और सामाजिक स्थिति का संकेत देती है। कान की बालियाँ, चूड़ियाँ, हार और कमरबंद जैसे आभूषण भी राजपूत और व्यापारी समुदायों में आम हैं।

➢ ग्रामीण क्षेत्रों में राजस्थानी पोशाक :–

DO NO COPY

राजस्थानी महिलाओं की पोशाक वास्तव में गाँवों में पहने जाने वाले रोजमर्रा के सूती परिधानों से लेकर हाई–फैशन लहंगों तक एक आश्चर्यजनक विविधता समाहित करती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महिलाएँ मोटे सूती कपड़े, लाल, मैरून, मेजेंटा और गहरे हरे जैसे चटख रंगों वाली बंधानी डिजाइन पसंद करती हैं। शहरों में युवा महिलाएँ हल्के जॉर्जेट या शिकॉन के घाघरे, हल्के रंग की लहरिया दुप्ट्टे और पतली चोलिया चुन सकती हैं। दुल्हन के परिधानों में अक्सर गोटा–पट्टी का काम, जरीदार बॉर्डर और वाल्यूम के लिए कैन–कैन की कई परतें शामिल होती हैं।

बोरला, माँग टीका, आड चोकर हार, लंबे रानी हार, बाजूबंद और मोटी चुड़ियां, जैसी वस्तुएँ सभी राजस्थानी दुल्हन के विशिष्ट रूप को निखारने में योगदान देते है। इसका परिणाम यह है कि पांरपरिक डिजाइन और आधुनिक शैली का अद्भुत मेल देखने को मिलता है।

→ साड़ी, घाघरी, बंधनी, लहरिया :–

घाघरा चोली की छवि सबसे अधिक प्रचलित है, लेकिन राजस्थानी साड़ी शैली भी राजस्थान की पारंपरिक पोशाक का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, खासकर कुछ समुदायों और शहरी परिवेश में।

→ बंधनी साड़ियाँ :–

हजारों छोटी–छोटी गाँठों से टाई–डाई तकनीक द्वारा बनाई जाती हैं, जिससे बिंदीदार पैटर्न बनते हैं और आज भी इसे शादियों और त्योहारों के लिए शुभ माना जाता है।

→ लहरिया साड़ियां :–

लहरिया साड़ियों को रैप रेजिस्ट विधि से रंगा जाता है, जिससे तिरछी या शेक्रॉन धरियां बनती हैं। यह तकनीक राजस्थान की खासियत है, जिसके प्रमुख केंद्र जयपुर और जोधपुर हैं। यह विशेष रूप से मानसून और त्योहारों के मौसम में लोकप्रिय है।

➢ पारंपरिक वस्त्रः समुदाय और क्षेत्रवार :–

राजस्थान के पारंपरिक परिधानों का व्यापक वाक्यांश हमें याद दिलाता है कि यह राज्य एक ही संस्कृति का नहीं है। यह राजपूत, मारवाड़ी, भील, बिश्नोई मीणा और अन्य समुदायों का मिश्रण है।

- शेखावाटी और मारवाड़ में आपको अधिक आकर्षक बंधानी और दर्पण का काम देखने को मिल सकता है।

DO NO COPY

- जैसलमेर और बाड़मेर में, रेगिस्तनी जलवायु कपड़ों के वनज और लेरिंग के चुनाव को प्रभावित करती है।
- उदयपुर और आसपास के क्षेत्रों में मेवाड़ के प्रभाव से विशिष्ट आभूषण, रंग संयोजन और पोशाकें देखने को मिलती हैं।
- आदिवासी समुदाय अक्सर काले, लाल और सफेद रंगों का अधिक उपयोग करते है। साथ ही विशिष्ट चांदी के आभूषण और टैटू भी पहनते है।

➢ राजस्थान की वस्त्रों में परिवर्तन :–

सबसे पहले, वस्त्र प्रतीक और सम्मान को दर्शाते हैं। सदियों से राजपूत राजाओं और कुलीनों ने उत्तम वस्त्र, कढ़ाई और आभूषण बनाने वाले शिल्पकारों का समर्थन दिया है। उदाहरण के लिए, गोटा पट्टी का काम शाही कढ़ाई के कपड़ों में शुरू हुआ था, जिसमें दरबार और मंदिर के अनुष्ठानों के लिए वस्त्रों पर असली सोने और चाँदी के रिबन का उपयोग किया जाता था।

दूसरा, पहनावा जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं से गहराई से जुड़ा होता है। बंधानी, दुपट्टे, साफा और ओढ़नी उन शादियों और त्योहारों में दिखाई देते हैं, जिनमें विशिष्ट रंग और पैटर्न शुभता या जीवन के महत्वपूर्ण चरणों का संकेत होते हैं।

तीसरा, परिवर्तन निरंतर होता रहता है। औपनिवेशिक संपर्क, शहरीकरण और वैश्विक फैशन ने लोगों के पहनावे को प्रभावित किया है। आज राजस्थान में किसी को जींस के साथ बंधेज का ब्लाउज, कुर्ता पहनते या व्यापार के साथ स्नीकर्स पहनते देखना आम बात है। फिर भी सांस्कृतिक उत्सवों या विशेष पारिवारिक कार्यक्रमों के दौरान पारंपरिक पोशाक फिर से देखने को मिलती है, कभी–कभी पहले से भी अधिक रंगीन रूप में।

➢ राजस्थानी कपड़े : बंधनी, लहरिया, ब्लॉक प्रिंट और गोटा पट्टी :–

राजस्थान की पारंपरिक कपड़ों की चर्चा, राजस्थानी वस्त्रों पर चर्चा के बिना अधूरी है। वस्त्रों की बनावट अपेक्षाकृत सरल होती है।

- बंधानी (बंधेज) :–

- https://manahotels.in/traveller/rajasthan/textiles-of-rajasthan.html

DO NO COPY

बंधानी एक टाई–एंड–डाई तकनीक है, जिसमें कपड़ों को छोटे–छोटे टुकड़ों को चुनकर रंगों से पहले बांध दिया जाता है। खोलने पर वे बिंदेदार पैटर्न और रूपांकन बनाते हैं। बंधानी सदियों पुरानी है, इसकी जड़ें सिंधु घाटी सभ्यता तक जाती हैं, और यह राजस्थानी शादियों और उत्सवों के परिधानों का अभिन्न अंग बनी हुई है।

- लहरिया :–

राजस्थान की एक अनूठी प्रतिरोध रंगाई विधि, जिससे तिरछी या लहरदार धारियाँ बनती हैं जो पानी की लहरों जैसी दिखती हैं। लहरिया विशेष रूप से पगड़ियों, ओढ़नी और साड़ियों पर लोकप्रिय है और जयपुर और जोधपुर से इसका गहरा संबंध है।

- संगनेरी और बागरू ब्लॉक प्रिंट :–

जयपुर के पास स्थित सांगानेर और बागरू को हस्त ब्लॉक प्रिंटिंग में मक्काशीदार लकड़ी के ब्लॉकों का उपयोग किया जाता है और पंरपरागत रूप से प्राकृतिक रंगों का प्रयोग होता है। बागरू प्रिंट में अक्सर मिट्टी की प्रतिरोधक तकनीक और गहरे रंगों से प्रेरित रूपांकन देखने को मिलते हैं, जबकि सांगानेरी प्रिंट अपनी बारीक पुष्पीय नक्काशी के लिए जाने जाते हैं।

- गोटा पट्टी कढ़ाई :–

यह एक जटिल तकनीक है, जिसमें धातु के रिबन के छोटे–छोटे टुकड़ों को कपड़े पर सिलकर फूलों और ज्यामितीय आकृतियों की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। राजस्थान में उत्पन्न हुई यह तकनीक कभी शाही परिधानों के वस्त्रों, मंदिर की सज्जाओं और विशेष अनुष्ठानों में उपयोग की जाती थी। आज यह पूरे भारत में साड़ियों, लहंगों और दुपट्टों पर व्यापक रूप से उपयोग की जाती है।

- कोटा डोरिया :–

कपास और रेशम से बनी हुई कोटा डोरिया अपनी हल्की लेकिन मजबूत बुनाई के लिए प्रसिद्ध है। सूतीपन के साथ–साथ उपयोगी भी है। यह इस बात का प्रमाण है कि कैसे डिजाइन जलवायु के अनुरूप खूबसूरती से ढल जाता है।

DO NO COPY

- रेगिस्तानी ऊन और पारंपरिक शॉल :–

पश्चिमी राजस्थान में ऊनी वस्त्र गर्माहट और टिकाऊपन प्रदान करते हैं। हाथ से बुने हुए शॉल और कंबल घुमंतू जीवन शैली, साधारण अलंकरण और उपयोगिता के प्रति गहरे सम्मान को दर्शाते हैं।

DO NO COPY

- https://manahotels.in/traveller/rajasthan/textiles-of-rajasthan.html

चतुर्थ अध्याय

- उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला का परिचय
- उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला का इतिहास
- उत्तर प्रदेश की वस्त्र तकनीक
- उत्तर प्रदेश प्रमुख वस्त्र कला
- उत्तर प्रदेश की आधुनिक वस्त्र कला

उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला का परिचय

➢ वस्त्र कला का परिचय :–

भारत का विशाल हृदयस्थल उत्तर प्रदेश अपने ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है। इसकी विविधता से परिपूर्ण संस्कृति में गंगा के पवित्र तटों से लेकर आगरा की मुगलकालीन भव्यता और लखनऊ की राजसी शान तक इसकी जीवंत छवि दिखाई देती है।

यह राज्य न केवल अपने धार्मिक स्थलों के लिए जाना जाता है, बल्कि विश्व प्रसिद्ध वस्त्रों और उत्कृष्ट पारंपरिक परिधानों के लिए भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

उत्तर प्रदेश की शैली को असाधारण बनाने वाली बात इसकी शाही संरक्षण की विरासत है, जिसके दायरे में कई सबसे सुंदर व शानदार शिल्पकलाओं का जन्म हुआ। यह राज्य अपनी भव्य बनारसी रेशमी साड़ियों, चिकनकारी कढ़ाई की अलौलिक सुंदरता और जरदोजी के काम की शानदार चमक के लिए प्रसिद्ध हैं।

इस क्षेत्र की बदलती जलवायु, गर्म ग्रीष्म ऋतु से लेकर ठंडी सर्दियों तक, ने हल्के सूती वस्त्रों और समृद्ध रेशम दोनों की पसंद को प्रभावित किया है। मुगल साम्राज्य और अवध राज्य की शाही परंपराओं ने इसके इतिहास में कलात्मक परिष्कार की एक अद्भुत संस्कृति का पोषण किया।

आज भी ये शाही परंपराएँ वैश्विक फैशन को प्रेरित करती हैं और आधुनिक डिजाइन तथा परंपराओं का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करती हैं।

उत्तर प्रदेश विविधताओं की भूमि है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों का संगम देखने को मिलता है। यह राज्य अपनी समृद्ध और सुंदर संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ विभिन्न दर्शनीय स्थलों को देखने के शौकीनों के लिए अनेक आकर्षण हैं। आगरा में स्थित ताजमहल, अयोध्या और मथुरा, जो क्रमशः भगवान राम और भगवान श्रीकृष्ण की प्रमुख आस्थाओं के केंद्र हैं।

➢ उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला का इतिहास :–

उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला का इतिहास बहुत समृद्ध और सदियों पुराना है। यह केवल कपड़ा बनाने का हुनर नहीं, बल्कि यहाँ की गंगा–जमनी तहजीब, शाही दरबारों के वैभव और आम लोगों की संस्कृति, त्योहारों, कारीगरों के कौशल और आम जीवन की कहानियों को संजोए जीवंत परंपरा है।

- https://www.azafashions.com/blog/the-ultimate-guide-to-uttar-pradesh-heritage-textiles-traditional-style/?amp=1

DO NO COPY

उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला के इतिहास की को किसी एक निश्चित ईसवीं या तारीख से शुरू होता हुआ नहीं माना जा सकता।

प्रारंभिक शुरुआत लगभग 1500 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व के बीच हुई थी। उत्तर प्रदेश, विशेषकर वाराणसी में वस्त्र निर्माण का इतिहास वैदिक काल से ही शुरू हो चुका था।

- साक्ष्य :–

गुप्त काल के दौरान जातकों और जैन ग्रंथा लगभग 5वीं शताब्दी में स्पष्ट है कि काशी के सूती और रेशमी वस्त्र पहनना समृद्धि और सम्मान का प्रतीक माना जाता था वे ये वस्त्र सबसे मंहगे ओर महीन माने जाते थे।

जिस शुद्ध रेशम से वे आज बनारसी साड़ी और जरदोजी या चिकनकारी की पहचान रखते हैं, उनकी पारंपरिक नींव 16वीं शताब्दी में यहीं से विकसित हुई। लगभग 1556 ईस्वी के बाद मुगल अकबर के शासनकाल के दौरान शुरू हुई।

इस दौरान फारस से कुशल कारीगर भारत आए। उन्होंने उत्तर प्रदेश के स्थानीय बुनकरों के साथ मिलकर काम किया।

यही वह समय था जब वस्त्रों पर सोने–चाँदी के तारों की कढ़ाई और भारी कढ़ाई का व्यवस्थित इतिहास शुरू हुआ।

- लखनऊ की प्रसिद्ध चिकनकारी कला :–

चिकनकारी कला का व्यवस्थित और राजसी इतिहास 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध (लगभग 1775 ईस्वी) से शुरू होता है, जब नवाब आसफ–उद–दौला ने अवध की राजधानी को फैजाबाद से लखनऊ स्थानांतरित किया। नवाबों के संरक्षण में चिकनकारी महलों से निकलकर एक बड़े उद्योग के रूप में निखरी।

उत्तर प्रदेश में कपड़ा बुनने की कला हजारों वर्षों से चली आ रही थी, लेकिन जिसे हम आज पारंपरिक वस्त्र कला कहते हैं, उसका वर्तमान और परिष्कृत रूप 16वीं से 18वीं शताब्दी के बीच मुगलों और नवाबों के दौर में विकसित और विस्तृत हुआ।

- https://www.azafashions.com/blog/the-ultimate-guide-to-uttar-pradesh-heritage-textiles-traditional-style/?amp=1

DO NO COPY

→ ब्रिटिश काल (1857 ईस्वी – 1947 ईस्वी) –

19वीं शताब्दी के मध्य में जब अवध के नवाबों का शासन समाप्त हुआ और अंग्रेजों ने पूरे तरह नियंत्रण कर लिया, तब उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला के इतिहास में एक अवकाशमय दौर आया।

→ शाही संरक्षण का अंतः – राजाओं और नवाबों के संरक्षण से चलने वाला रेशम, जरी और चिकनकारी का व्यापार कम हो गया।

→ मशीनी कपड़ों की मार :– इंग्लैंड के मैनचेस्टर और लंकाशायर की मिलों में बने सस्ते कपड़े भारत आने लगे। उत्तर प्रदेश के हस्तकरघा बुनकरों और चिकनकारी के कारीगरों की रोजगार पर प्रभाव पड़ा व भुमरी के कगार पर पहुंच गए।

→ कला का जीवित रहना :– इस कठिन दौर में भी वाराणसी, लखनऊ और फर्रुखाबाद के कारीगरों ने पीढ़ियों से चली आ रही इस कला को निरंतर बनाए रखा और धरोहर के रूप में जीवित रखा फिर चाहे उसे वे छिपकार रखते थे।

आजादी के बाद सरकार ने इन पारंपरिक कलाओं को बचाने के लिए कई कदम उठाए, जिससे इसके इतिहास को एक नया और आधुनिक मोड़ मिला।

→ डिजाइन का आधुनिकीकरण :– 1970 – 80 के दशक में यह प्रक्रिया तेज हुई। चिकनकारी, जो पहले केवल सफेद सूती कपड़ों पर सफेद धागों से की जाती थी, उसे जॉर्जेट, शिफॉन और रंग–बिरंगे धागों के साथ आधुनिक फैशन से जोड़ा गया।

→ वैश्विक पहचान :– वर्ष 2000 ईस्वी के बाद के समय में भी उत्तर प्रदेश की वस्त्र कलाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कानूनी सुरक्षा व पहचान, दिलाने के लिए जीआई टैग दिया गया।

→ बनारस ब्रोकेड और साड़ी (2009)

→ लखनऊ चिकनकारी (2008)

DO NO COPY

- https://www.azafashions.com/blog/the-ultimate-guide-to-uttar-pradesh-heritage-textiles-traditional-style/?amp=1

→ फर्रुखाबाद प्रिंट्स और गाजीपुर वॉल हैंगिंग :– एक जिला एक उत्पाद को वर्तमान में सरकार की इस योजना के तहत इन पारंपरिक वस्त्र उद्योगों को आधुनिक तकनीक और वैश्विक बाजार से जोड़ा जा रहा है, जिससे यह कला आज एक बड़े व्यापार का स्वरूप ले चुकी है।

➢ उत्तर प्रदेश : पारंपरिक वस्त्र :–

उत्तर प्रदेश की पारंपरिक वेशभूषा उसकी शाही विरासत और सांस्कृतिक वैभव का प्रमाण है। यह उत्तम वस्त्रों, जटिल शिल्पकारी और सदियों से चली आ रही समृद्ध गरिमा की विशेषता है।

- महिलाओं के परिधान –

→ साड़ी और सलवार–कमीज :– साड़ी महिलाओं की अलमारी का मुख्य परिधान है, जिसे राज्य की असाधारण वस्त्र शिल्पकला द्वारा और भी निखारा गया है और विशेष अवसरों पर तथा दैनिक जीवन में भी पहना जाता है।

→ बनारसी साड़ियाँ :– भारतीय वस्त्रों का मुकुट रत्न मानी जाने वाली वाराणसी की बनारसी साड़ी विलासिता का प्रतीक है व हर भारतीय दुल्हन के लिए अनिवार्य है और पूरे भारत में प्रसिद्ध है। उत्कृष्ट रेशम से बुनी ये साड़ियाँ मुगल–प्रेरित पुष्प पैटर्न और पारंपरिक रूपांकनों व पत्तीदार जटिल डिजाइनों के साथ अपने शानदार बुनाई कार्य के लिए जानी जाती हैं।

→ लहंगा और सलवार–कमीज :– शादियों और त्योहारों के लिए लहंगा, चोली और सलवार–कमीज लोकप्रिय हैं। ये सुंदर महीन कपड़ों से बने होते हैं और इनमें चिकनकारी तथा जरदोजी जैसी राज्य की प्रसिद्ध कढ़ाई तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। लखनऊ अपनी सूक्ष्म और बारीक कढ़ाई वाले सलवार–कमीज सेटों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

→ कपड़े और रंग :– चमकदार रेशम की अलंकृत बनावट वाले कपड़े भी दैनिक उपयोग से लेकर औपचारिक रूप से इस्तेमाल किए जाते हैं। साथ ही रंगों की विविधता व विस्तृत श्रृंखला में

- https://www.azafashions.com/blog/the-ultimate-guide-to-uttar-pradesh-heritage-textiles-traditional-style/?amp=1

DO NO COPY

बनारसी रेशम के चटख रत्नों जैसे रंग से लेकर चिकनकारी परिधानों के कोमल और नाजुक पेस्टल रंग शामिल हैं।

इसके अलावा महिलाएँ अनौपचारिक रूप से जींस, ट्राउजर, टी–शर्ट, शर्ट, ड्रेस और स्टाइलिश टॉप्स आदि भी पहनती हैं।

- पुरुषों के परिधान :–

उत्तर प्रदेश में पुरुषों की पारंपरिक वेशभूषा सुरूचिपूर्ण, सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत व परिष्कार की भावना को दर्शाती है।

→ कुर्ता–पायजामा :– सबसे आम पहनावा पारंपरिक कुर्ता–पायजामा है, जो रोजमर्रा के पहनने और महत्वपूर्ण समारोहों दोनों के लिए उपयुक्त है। लखनऊ का कुर्ता, जो उत्कृष्ट सूती चिकनकारी से सजा होता है, विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

→ शेरवानी :– शादियों और औपचारिक अवसरों के लिए शेरवानी सबसे पसंदीदा परिधान है। यह लंबा कोट जैसा पोशाक अक्सर चूड़ीदार पायजामा के साथ पहना जाता है। इसकी उत्पत्ति मुगल शाही दरबारों में हुई थी और यह आज भी राजसी शान, गरिमा तथा ठाठ–बाट का प्रतीक है।

→ धोती और पगड़ी :– अधिक पारंपरिक और ग्रामीण परिवेश में पुरुष धोती के साथ कुर्ता भी पहनते हैं। शादियों और अन्य समारोहों के दौरान पगड़ी पहनी जाती है।

→ मुगल प्रेरित आभूषण :–

यह राज्य अपने शानदार मुगल प्रेरित आभूषणों के लिए जाना जाता है, जिनमें विस्तृत हार, चोकर और झूमरनुमा झुमके शामिल हैं।

DO NO COPY

→ झुमके और पायलें :– घंटी के आकार के क्लासिक झुमके एक लोकप्रिय आभूषण हैं। जटिल डिजाइन वाली चाँदी की पायलें, जिन्हें पायल या पाजेब के नाम से जाना जाता है, भी बहुत लोकप्रिय हैं।

➢ उत्तर प्रदेश की वस्त्र तकनीक :–

उत्तर प्रदेश की शिल्पकला अपनी पारंपरिक और उच्च गुणवत्ता वाली वस्त्र तकनीकों के लिए प्रसिद्ध है, जिन्हें कई वर्षों की कारीगरी और संरक्षण के तहत विकसित बनाया गया था।

- बनारसी रेशम बुनाई :–

यह एक अद्वितीय बुनाई परंपरा है। वाराणसी के बुनकर जटिल ब्रोकेड तकनीकों का उपयोग करते हुए महीन रेशम पर सोने और चाँदी की जरी के धागों से जटिल डिजाइन बनाते हैं। एक बनारसी साड़ी को बुनने में कई हफ्तों से लेकर कई महीनों तक का समय लग सकता है। यह उसकी डिजाइन की जटिलता पर निर्भर करता है।

- चिकनकारी कढ़ाई :–

लखनऊ से उत्पन्न चिकनकारी हाथ की कढ़ाई की एक नाजुक और जटिल कला है। इसमें विभिन्न प्रकार के टाँकों का उपयोग करके सुंदर पुष्प और ज्यामितीय पैटर्न बनाए जाते हैं, जो पारंपरिक रूप से मलमल या सूती कपड़े पर किए जाते हैं। इसका परिणाम एक सुंदर, सूक्ष्म और मनमोहक बनावट होता है।

- जरदोजी का काम :–

यह धातु की कढ़ाई की एक भव्य कला है, जिसे मुगलों द्वारा भारत में लाया गया था। इसका नाम फारसी शब्दों से लिया गया है, जिसमें "जर" का अर्थ सोना और "दोजी" का अर्थ कढ़ाई है। कढ़ाई में सोने, चाँदी और धातु के धागों का उपयोग करके शानदार पैटर्न बनाए जाते हैं। लखनऊ और वाराणसी इस भव्य कला के प्रमुख केंद्र हैं।

DO NO COPY

- बनारसी सिल्क बुनाई :–

यह तकनीक अपने शाही और भव्य रूप के लिए जानी जाती है, जिसका मुख्य केंद्र वाराणसी है।

तकनीक :– इसमें हथकरघा पर शुद्ध रेशम के धागों के साथ सोने और चाँदी की तारों को मिलाकर जटिल बुनाई की जाती है। इसे जरी बुनाई भी कहा जाता है।

पैटर्न :– इसके डिजाइनों में मुगलकालीन प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, जैसे बेल–बूटी, जाल, कल्पवृक्ष और शिकारगाह प्रमुख रूप से शामिल हैं।

तकनीक (ब्रोकेड बुनाई) :– यह बनारस की एक विशेष बुनाई तकनीक है, जिसमें अतिरिक्त ताने–बाने का उपयोग करके कपड़े पर साटन जैसी फिनिशंग, बनावट, उभरे हुए फूलों के पैटर्न तथा आकर्षक डिजाइन तैयार किए जाते हैं, जो लघु चित्रों की तरह दिखते हैं।

- कालीन और दरी बुनाई :–

वस्त्र कला का यह रूप फर्श की सजावट से जुड़ा है, जो भारत के कुछ कालीन निर्यात का एक बहुत बड़ा हिस्सा संभालता है।

तकनीक :– भदोही और मिर्जापुर को हाथ से गांठ लगाकर की तकनीक से ऊनी और रेशमी कालीन तैयार किए जाते हैं। प्रति वर्ग इंच गांठों की संख्या जितनी अधिक होती है, कालीन उतना ही बारीक और महंगा माना जाता है।
स्थलः – सीतापुर और अन्य कई जिलों में कपास के धागों से पारंपरिक दरी बुनी जाती है।

➢ उत्तर प्रदेश की प्रमुख वस्त्र कला :–

उत्तर प्रदेश की वस्त्र कला और उसकी तकनीक विश्व भर में अपनी बारीकी, शाही इतिहास और विविधता के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ वस्त्रों को सजाने और तैयार करने की कई तकनीकें हैं। यहाँ की

DO NO COPY

पारंपरिक वस्त्र कलाएँ न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में अपनी बारीकी, शिल्प कौशल और सांस्कृतिक पहचान के लिए जानी जाती हैं।

- चिकनकारी तकनीक (लखनऊ) :–

यह उत्तर प्रदेश की सबसे प्रसिद्ध हाथ की कढ़ाई तकनीक है, जो मुख्य रूप से लखनऊ में की जाती है।

त्कनीक :– यह मलमल, शिफॉन, जॉर्जेट और कॉटन जैसे हल्के कपड़ों पर सफेद या हल्के रंग के सूती धागों से की जाने वाली बारीक सुई की कारीगरी है।

मुख्य टांके :– इसमें लगभग 36 प्रकार के टांके होते हैं। इनमें बखिया, तैपची, मुर्री और जाली का नाम प्रमुख है। बिना कपड़े को काटे धागों को अलग करके बनाई जाने वाली नेट–जैसी बुनावट को जाली कहते हैं।

प्रक्रिया :– कपड़े पर पहले लकड़ी के ब्लॉक से डिजाइन छापा जाता है, फिर कढ़ाई होती है। अंत में इसे धोकर कपड़े का रंग हटाया जाता है।

- बनारसी ब्रोकेड और सिल्क बुनाई :–

यह तकनीक अपने शाही और भव्य रूप के लिए जानी जाती है, जिसका मुख्य केंद्र वाराणसी है।

त्कनीक :– इसमें हथकरघा पर शुद्ध रेशम के धागों के साथ सोने और चाँदी के तारों को मिलाकर जटिल बुनाई की जाती है। इसे जरी व किखाब भी कहा जाता है।

पैटर्न :– इसके डिजाइनों में मुगलकालीन प्रभाव जैसे – बेल, बूटी, जाल, कल्पवृक्ष और शिकारगाह प्रमुख हैं।

DO NO COPY

तनकई :– यह बनारस की एक विशेष बुनाई तकनीक है, जिसमें अतिरिक्त धागे का उपयोग करके कपड़े पर सतह जैसी फिनिशिंग और उभरे हुए फूलों के पैटर्न बनाए जाते हैं, जो लघु चित्रों की तरह दिखते हैं।

➢ उत्तर प्रदेश वस्त्र कला : आधुनिक युग :–

आधुनिक युग में उत्तर प्रदेश की पारंपरिक वस्त्र कलाओं में रूप को पूरी तरह से बदल दिया है। आज ये कलाएँ सिर्फ गाँवों और कस्बों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ग्लोबल फैशन, बॉलीवुड और कॉर्पोरेट जगत का हिस्सा बन चुकी हैं।

तकनीक, सरकारी प्रयासों और डिजाइनरों की सोच में बदलाव ने वस्त्र कला को एक नया जीवन दिया है।

- चिकनकारी का मॉडर्न लुक :–

मनीष मल्होत्रा, सब्यसाची और संदीप खोसला जैसे भारत के शीर्ष डिजाइनरों ने चिकनकारी को एक नया मुकाम दिया है। अब चिकनकारी सिर्फ साड़ियों, सूती कुर्तों तक सीमित नहीं है। आधुनिक युग में इसे जॉर्जेट, नेट, शिफॉन पर डिजिटल, सीक्विन्स और मोतियों के साथ मिलाकर दुपट्टे, गाउन और इंडो–वेस्टर्न ड्रेस बनाए जा रहे हैं।

- बनारसी सिल्क का संसार :–

पहले केवल भारी पारंपरिक साड़ियों तक सीमित रहने वाला बनारसी सिल्क अब आधुनिक युग के फैशन विचारों में बदल चुका है। अब इसके हल्के संस्करण तथा विविध डिजाइन जैसे जॉर्जेट–बनारसी और कॉटन बनारसी से बने अनारकली सूट, रेडी ब्लाउज, सिंगरेट पैंट्स आदि लोकप्रिय हैं। यहाँ तक कि वेस्टर्न वियर में भी इसका उपयोग किया जाने लगा है।

- आधुनिक जरदोजी और हैंडबैग :–

आज जरदोजी कढ़ाई केवल भारी कपड़ों जैसे दुल्हन के लंहगे तक सीमित नहीं है। इसका उपयोग फुटवियर और थैलियों में इस्तेमाल होने वाले बैग, पर्स और क्लच बनाने में भी किया जाने लगा है।

DO NO COPY

आधुनिक युवतियां इसे वस्त्रों में सजावट के बजाय सिंपल साड़ियों के साथ एक स्टेटमेंट एक्सेसरी के रूप में प्रयोग करते हैं।

DO NO COPY

उपसंहार

भारतीय वस्त्र उद्योग देश की सांस्कृतिक विरासत और आर्थिक प्रगति का एक अद्भुत संगम है, जो कृषि के बाद देश में रोजगार का सबसे बड़ा साधन है। कपास और जूट के विशाल उत्पादन के साथ भारत वैश्विक बाजार में एक प्रमुख निर्यातक की भूमिका निभाता है। जब हम राज्यों की बात करते है, तो राजस्थान का टेक्सटाइल उद्योग अपनी जीवंत लोक कला और प्राकृतिक रंगों के अनूठे उपयोग के लिए पूरी दुनिया में सराहा जाता है।

यहां की हस्तशिल्प परंपरा में लकड़ी के ब्लोकों से की जाने वाली सांगानेरी और बगरू प्रिटिंग धागों से बांधकर बनाई जाने वाली बंधेज या लहरिया कला तथा महीन सूती और रेशमी डोरिया साड़ियां शामिल है, जबकि भीलवाड़ा को राज्य का प्रमुख औद्योगिक टेक्सटाइल हब माना जाता है।

दूसरी ओर उत्तर प्रदेश का वस्त्र उद्योग अपनी शाही कारीगरी, जटिल बुनाई और मुगल कालीन भव्यता के लिए प्रसिद्व है। जिसमें वाराणसी की विश्व प्रसिद्व बनारसी सिल्क साड़िया अपने सोन–चांदी के जरी के काम के लिए लखनाउ के नाजुख भी सफेद धागे वाल चिकनकारी कढ़ाई और मखमली कपड़ों पर की जाने वाली जरी कला मुख्य है इसके अतिरिक्त भदोही और मिर्जापूर के हाथ से बुने हुए कालीन और कानपुर का सूती वस्त्र इतिहास इस राज्य को टेक्सटाइल के क्षेत्र में एक पहचान देते है।

संक्षेप में कहें तो जहां राजस्थान अपने चटख रंगों और छपाई तकनीकों से वस्त्रों में ग्रामीण संस्कृति की जान फूंकता है, वहीं उत्तर प्रदेश अपनी महीन कढ़ायों और रेशमी बुनाई से उन्हें एक राजसी स्वरूप प्रदान करता है और यही विविधता मिलकर संपूर्ण भारतीय वस्त्र उद्योग को वैश्विक मंच पर अद्वितीय बनाती है।

भारतीय वस्त्र का सिर्फ एक उद्योग नहीं, हमारी सांस्कृतिक विरासत है, जहां एक तरफ राजस्थान अपने रंगों ब्लॉक प्रिंट्स और मरूस्थलीय कला से कपड़ों में जान डालता है, वहीं उत्तर प्रदेश अपनी बनारसी बुनाई चिकनकारी जैसी महीन कढ़ाइयों से वस्त्रों को शाही और एलीट लुक देता है।

DO NO COPY

संदर्भ ग्रंथ सूची

- **https://iep.utm.edu/definition-of-art/**
- **https://spires.co/online-history-of-art-tutors/undergraduate/history-of-art-fundamentals-essential-concepts-and-approaches**
- **https://artinfohindi.wordpress.com**
- **https://indianartideas.in/blog/indian-art/indian-art-and-its-remarkable-history**
- **https://study.com/academy/lesson/what-is-textile-art.html**
- **https://art.art/blog/art-history-101-unraveling-the-history-of-textile-art**
- **https://www.omemy.com**
- **https://www.gartexindia.com/the-rich-tapestry-of-india-a-history-of-textiles/**
- **https://www.iiad.edu.in/the-circle/history-of-the-indian-textile-industry/**
- **https://thebetterindia.com/465358/ancient-indian-textiles-vs-fast-fashion/**
- **https://millennialmatriarchs.com/2022/08/09/fabrics-for-freedom-khadi-and-beyond/**
- **https://coralslub.com/blogs/blog/from-freedom-struggle-to-fabric-stories-how-independence-shaped-indian-textile-traditions**
- **https://thedesigncart.com/hi/blogs/news/4-stages-of-fashion-the-ongoing-indian-evolution-sinceindependence?srsltid=AfmBOor7SMS_7v711Y8lGl0ZQNEiQPJcjsfVk7awhSKZ081ibuWxPitt**
- **https://thedesigncart.com/hi/blogs/news/pristine-heritage-of-indian-fabrics?srsltid=AfmBOoqPSu9jHHqa9Q8BofNjr_T_J79ViATcjg-dS4oNnWs8mGQ6ujlD**
- **https://www.twinkl.co.in/teaching-wiki/textile-art**
- **https://fabriclore.com/blogs/journal/top-15-textile-crafts-of-india-an-overview-by-fabriclore**
- **https://break-away.in/textile-tour-of-rajasthan/**
- **https://www.gkclass.com/2023/09/Costumes-of-Rajasthan.html?m=1**
- **https://www.scribd.com**
- **https://www.artsindia.com/blogs/news/what-is-rajasthani-art**
- **https://manahotels.in/traveller/rajasthan/textiles-of-rajasthan.html**
- **https://www.pearlacademy.com/blog/fashion/traditional-dress-of-rajasthan**
- **https://www.azafashions.com/blog/the-ultimate-guide-to-uttar-pradesh-heritage-textiles-traditional-style/?amp=1**
- **https://tumbledry.in/traditional-clothes-of-uttar-pradesh-history-fabrics-care-tips/**

DO NO COPY

- → **https://boisestate.pressbooks.pub/arthistory/chapter/introduction-to-art/**
- → **chrome-native://pdf/link?url=content%3A%2F%2Fmedia%2Fexternal%2Fdownloads%2F40240**
- → **https://www.vaia.com/en-us/explanations/art-and-design/**

DO NO COPY

चित्र संग्रह सूची

क्र.न0.	चित्र का नाम
1	फारसी रेशमी ब्रोकेड (फारसी वस्त्र)
2	रेशम से बना वस्त्र (रेशम वेशभूषा)
3	चंबा रूमाल कांगड़ा चंबा
4	दुशाला ओढे योगी
5	शटर स्टॉक (फास्ट फैशन से पहले)
6	कलमकारी की कला
7	अजराख डिजाइन (वाडरिंग सिल्का)
8	मलमल जैविक कपास
9	चिकनकारी शाही
10	ब्रिटिश मशीनों से बने वस्त्र
11	वस्त्रों का पुनर्निमार्ण (स्वतंत्रता के बाद)
12	भारतीय महिला (ब्रिटिश राज के फैशन)
13	पद स्वतंत्रता में ऊँचे कोट और धोती
14	1950 के दशक में सितारों का स्टाइल
15	1990 के दशक में सितारों का फैशन
16	21वीं सदी : ब्रांड्स से फैशन
17	2020 का दशक : डिजाइनर का समय
18	राजस्थानी पगड़ी
19	राजस्थानी पोशाक
20	पुरूषों की धोती, या चूड़ीदार पगड़ी
21	मोटे सूती कपड़े और आभूषणों से समृद्व
22	राजस्थानी साड़ी
23	घाघरा के साथ जुते (आधुनिक परिवर्तन)
24	सगनेरी और बागरू ब्लॉक प्रिंट

DO NO COPY

25	शाही भारत परिधान – राजस्थान
26	लहरिया जॉर्जेट टाई एंड ड़ाई
27	राजस्थानी बांधनी
28	कोटा डोरिया
29	कढ़ाई चिकनकारी उत्तर प्रदेश
30	बनारसी प्रिंट
31	ज़ारदोसी

DO NO COPY

चित्र

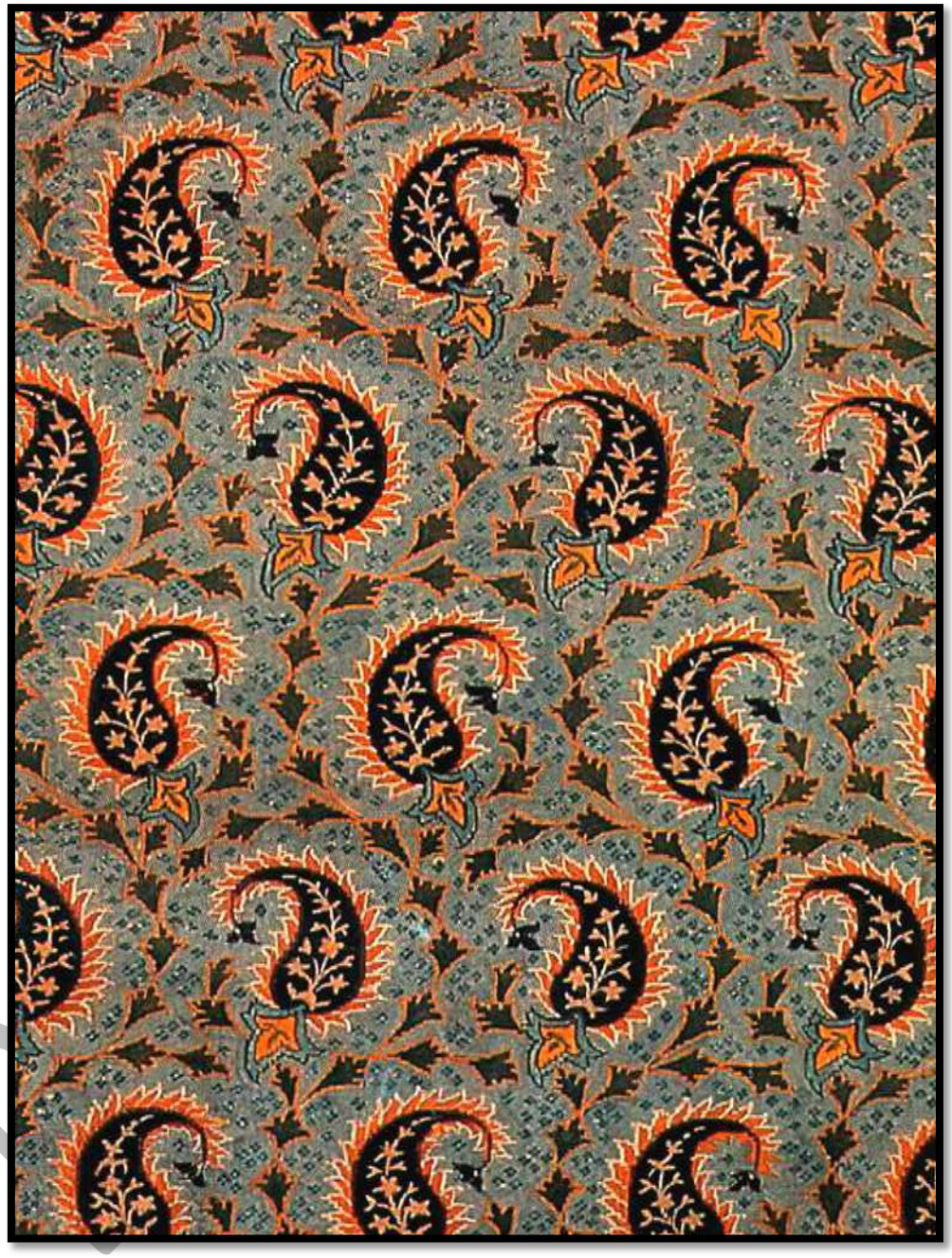

फारसी रेशमी ब्रोकेड (फारसी वस्त्र)



रेशम से बना वस्त्र (रेशम वेशभूषा)



चंबा रूमाल कांगड़ा चंबा



दुशाला ओढे योगी



शटर स्टॉक (फास्ट फैशन से पहले)

DO NOT

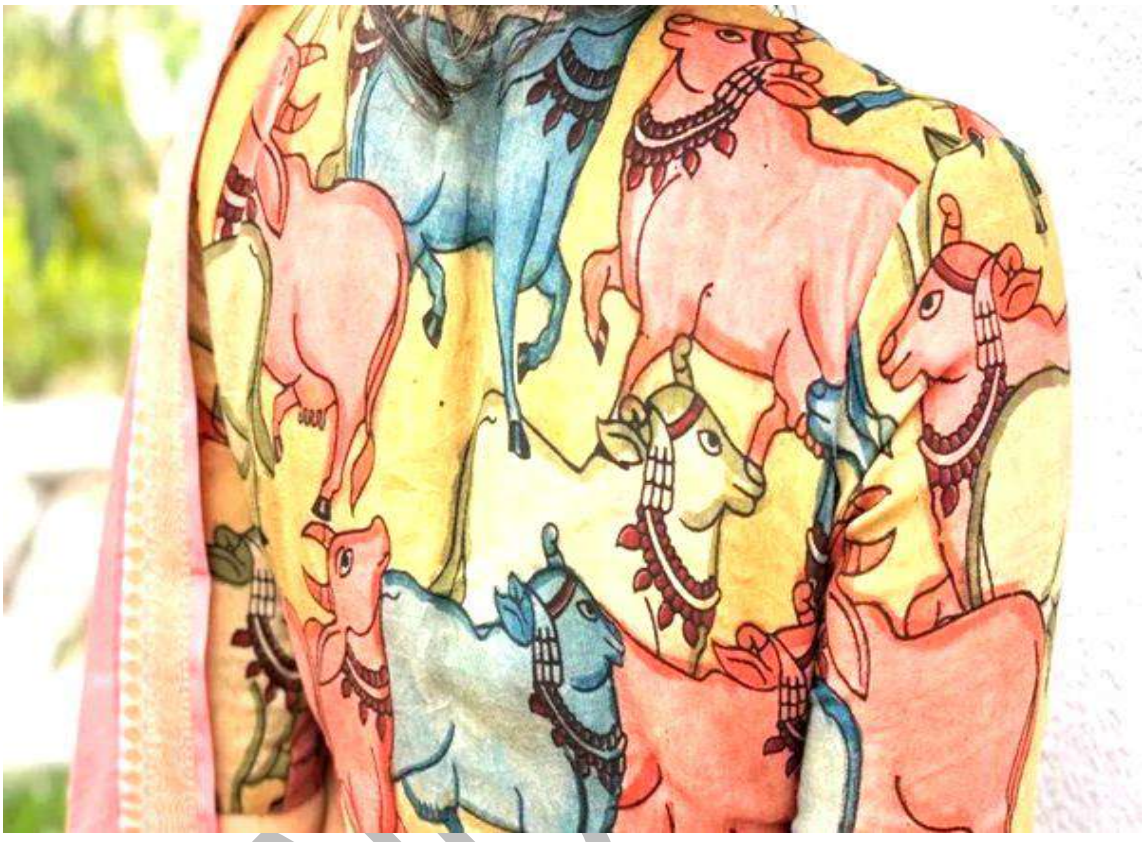

कलमकारी की कला

DO NOT



अजराख डिजाइन (वाडरिंग सिल्का)

DO NOT



मलमल जैविक कपास

DO NOT



चिकनकारी शाही

DO NO



ब्रिटिश मशीनों से बने वस्त्र



वस्त्रों का पुनर्निमार्ण (स्वतंत्रता के बाद)

DO N



भारतीय महिला (ब्रिटिश राज के फैशन)



स्वतंत्रता में ऊँचे कोट और धोती

DO NOT

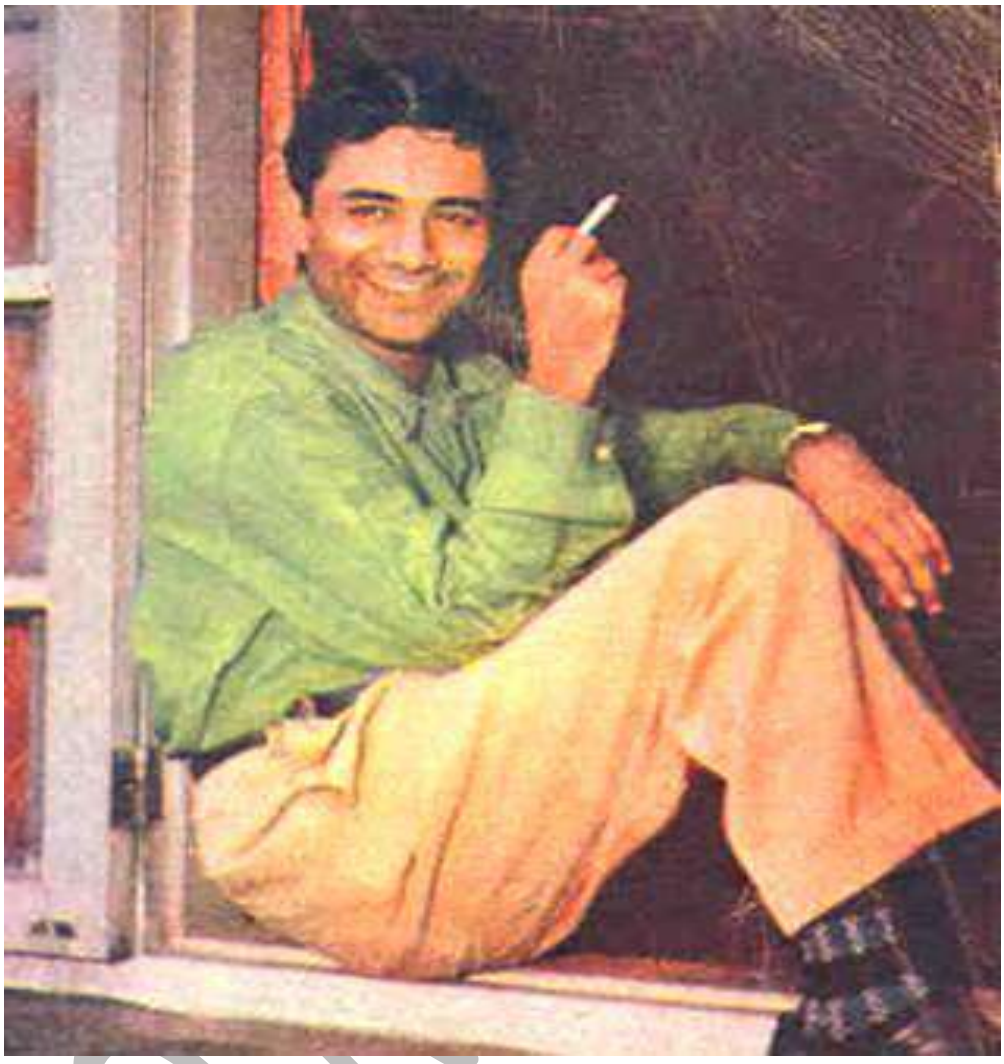

1950 के दशक में सितारों का स्टाइल



1990 के दशक में सितारों का फैशन



21वीं सदी : ब्रांड्स से फैशन

DO NOT



2020 का दशक : डिजाइनर का समय



राजस्थानी पगड़ी

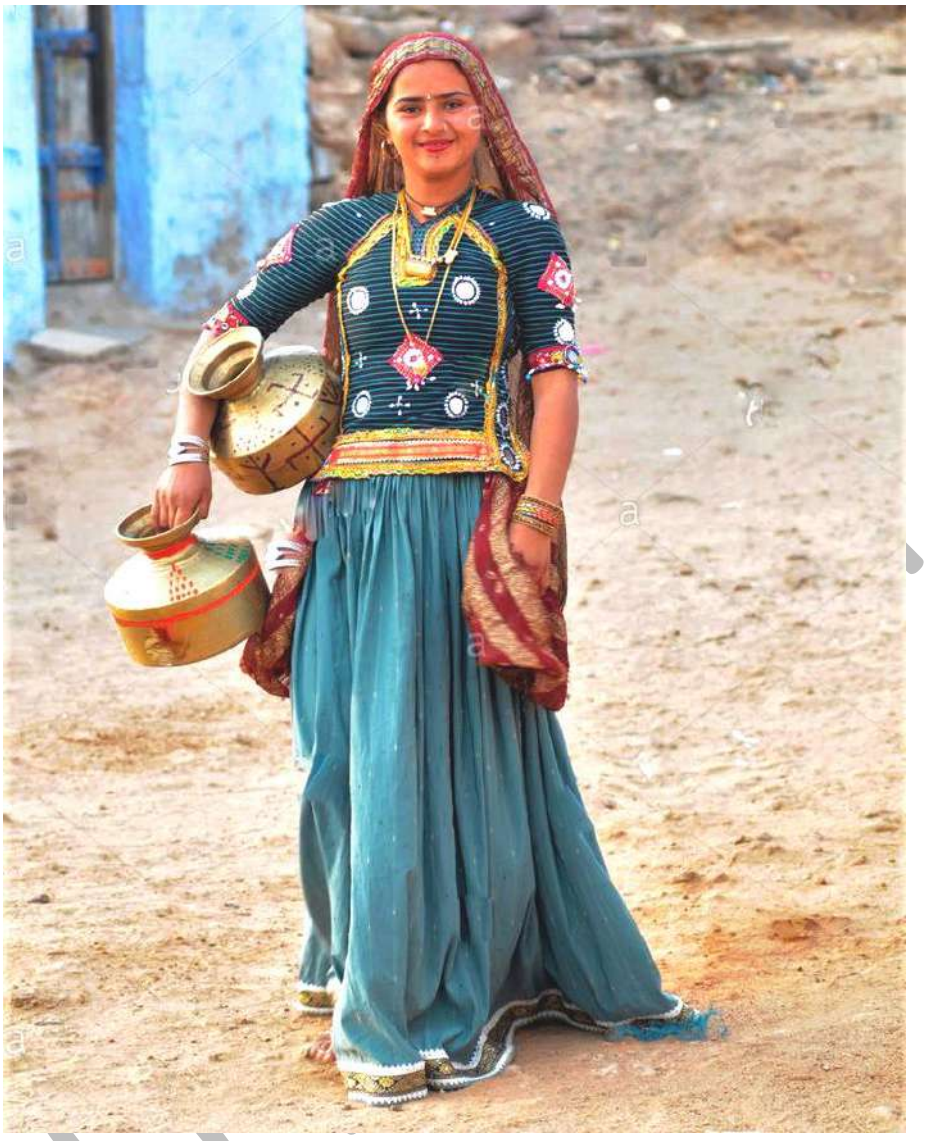

राजस्थानी पोशाक



पुरूषों की धोती, या चूड़ीदार पगड़ी



मोटे सूती कपड़े और आभूषणों से समृद्ध



राजस्थानी साड़ी



घाघरा के साथ जुते (आधुनिक परिवर्तन)

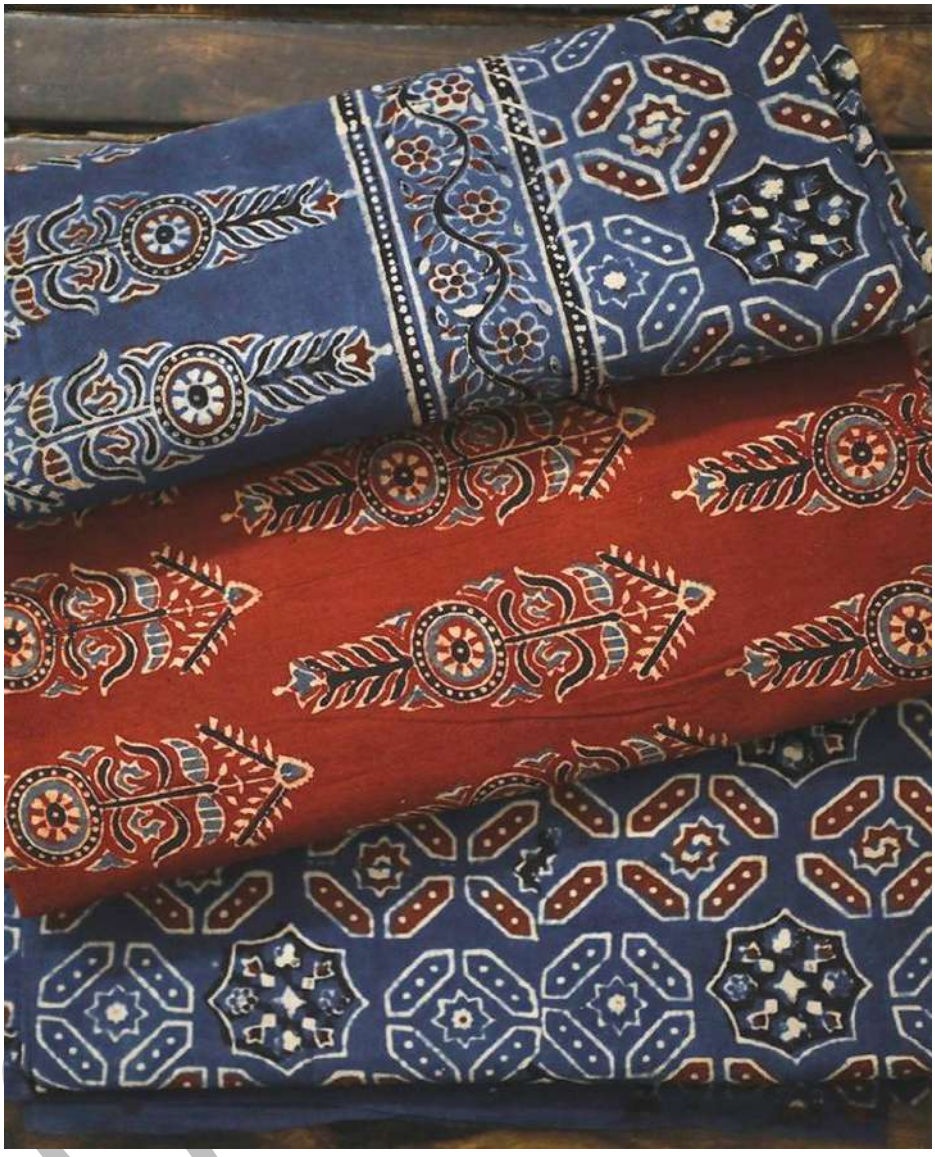

सगनेरी और बागरू ब्लॉक प्रिंट



शाही भारत परिधान – राजस्थान

DO NOT COPY



लहरिया जॉर्जेट टाई एंड ड़ाई



राजस्थानी बांधनी

DO NO



कोटा डोरिया

DO NOT



कढ़ाई चिकनकारी उत्तर प्रदेश

DO NOT



बनारसी प्रिंट

DO NOT



ज़ारदोसी

DO NO

''हरियाणा के भित्ति चित्रों का अध्ययन''

(भिवानी, कुरूक्षेत्र, कैथल व जींद) के संदर्भ में।

कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

की

ललित कला स्नातकोत्तर

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु – शोध प्रबन्ध

विभागाध्यक्ष एवं निर्देशक
असि प्रो. श्री महेश धीमान
ललित कला विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय
शाहाबाद (मा0)

शोधकर्त्री
सिमरन कौर
स्नातकोत्तर
(अन्तिम वर्ष)



Estd. 1968

ललित कला विभाग

आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद (मारकण्ड़ा)

2025–2026

ललित कला विभाग,
आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **सिमरन अरोड़ा**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **भारतीय वस्त्र कला एंव परंपराएँ** " शीर्षक पर मेरे निर्देशन से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इसने पूरी मेहनत और लग्न से उक्त शोध कार्य सम्पन्न किया है। इस महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य पहले नहीं किया गया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करता हूँ।

मैं इसके उज्जवल भविष्य एंव सफल जीवन की कामना करता हूँ।

दिनांक : 8/7/026

सहायक प्रोफेसर
श्री महेश धीमान असि. प्रोफेसर

प्रमाण पत्र

मैं **सिमरन अरोड़ा**, यह प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध " **भारतीय वस्त्र कला एंव परंपराएँ** " विषय मेरे स्वंय के प्रयास से किया गया है। आर्य कन्या महाविद्यालय में इस विषय पर लघु शोध कार्य नहीं किया गया है। मैंने इसे पूरी मेहनत और लग्न से सम्पन्न किया है।

यह अप्रकाशित कृति है, लेखन में कम से कम आवश्यक सामग्री का उल्लेख किया गया है।

निर्देशक

सहायक प्रोफेसर

महेश धीमान

Simran A

शोधकर्त्री

सिमरन अरोड़ा

आर्य कन्या महाविद्यालय,
शाहाबाद (मा0)
कुरुक्षेत्र।

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **सिमरन अरोड़ा**, अनुक्रमांक न0. **240007001**, ललित कला स्नातकोत्तर (ड्राइंग एंड पेंटिग) द्वितीय वर्ष की छात्रा ने " **भारतीय वस्त्र कला एंव परंपराएँ** " शीर्षक पर लघु शोध प्रबन्ध को पूरा किया है। इस प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ। इसने पूरी मेहनत और लग्न से यह लघु–शोध कार्य सम्पन्न किया है।

मैं इसके उज्जवल भविष्य एंव सफल जीवन की कामना करती हूँ।

दिनांकः 9/7/26

प्राचार्या

डॉ श्रीमती आरती त्रेहन

प्राक्कथन

भारत की चित्रकला विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। यहाँ की कला परंपरा अत्यंत प्राचीन, समृद्ध और विविधताओं से भरी हुई है। भारतीय चित्रकला में धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का सुंदर चित्रण मिलता है, जो इसे अन्य देशों की कला से अलग बनाता है। अपनी अनूठी शैली, रंगों के प्रयोग और विषयवस्तु के कारण भारत की चित्रकला का वैश्विक कला जगत में विशेष महत्व है। भारतीय भित्ति चित्रकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध रहा है। इसकी शुरुआत प्रागैतिहासिक काल की गुफा चित्रों से मानी जाती है, जैसे भीमबेटका, जहाँ मानव जीवन, शिकार और प्रकृति का चित्रण मिलता है। यह कला अजन्ता, एलोरा, बाघ गुफाओं और मंदिरों की दीवारों तक विकसित हुई, जहाँ धार्मिक कथाएँ, देवी–देवताओं और सामाजिक जीवन को दर्शाया गया। भारतीय साहित्य में भी भित्ति चित्रकला का उल्लेख मिलता है। प्राचीन ग्रंथों जैसे श्री गणेश चिलक्ष्ण ग्रंथ, पुराणों, वैदिक साहित्य जैसे – रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र आदि में भित्ति चित्रकला के सिद्धांतों, रंगों और तकनीकों का वर्णन किया गया है।

आधुनिक काल में भारतीय भित्ति चित्रकला ने नए रूप धारण किए हैं। अब यह कला पारंपरिक विषयों के साथ–साथ सामाजिक, राजनीतिक और समकालीन विषयों को भी दर्शाती है। भारत के विभिन्न राज्यों में यह कला स्थानीय संस्कृति, धर्म, परंपरा और जीवनशैली के अनुसार विकसित हुई है। राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश और हरियाणा आदि राज्यों में यह कला अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्वरूप में दिखाई देती है।

हरियाणा का निर्माण 1 नवम्बर 1966 में हुआ। हरियाणा की भित्ति चित्रकला का विशेष अध्ययन भारतीय लोक एवं पारम्परिक कला की समृद्ध धरोहर को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कला न केवल सौंदर्य अभिव्यक्ति का माध्यम है, बल्कि हरियाणा के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का भी दर्पण है। राज्य के विभिन्न जिलों –भिवानी, कुरुक्षेत्र, कैथल और जींद– में पाए जाने वाले भित्ति चित्र इस परंपरा की विविधता और विशेषताओं को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।

भिवानी जिले में हवेलियों और प्राचीन भवनों की दीवारों पर बने भित्ति चित्र विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इन चित्रों में धार्मिक कथाएँ, राधा–कृष्ण लीला, लोक जीवन और प्रकृति के दृश्य प्रमुख रूप से अंकित किए गए हैं। कुरुक्षेत्र, जो धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल है, वहाँ के मंदिरों और तीर्थ स्थलों की दीवारों पर पौराणिक कथाओं और महाभारत से संबंधित दृश्य चित्रित किए गए हैं। इन चित्रों में आध्यात्मिकता और धार्मिक आस्था का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। कैथल जिले में स्थित प्राचीन मंदिरों, जैसे अंबिकेश्वर महादेव मंदिर, में भित्ति चित्रकला का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। यहाँ के चित्रों में देवी–देवताओं, धार्मिक प्रसंगों और ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण किया गया है। इनकी

शैली पारंपरिक होते हुए भी स्थानीय प्रभावों से युक्त है। जींद जिले में पांडु पिंडारा जैसे ऐतिहासिक स्थलों पर भित्ति चित्रकला के माध्यम से पौराणिक कथाओं और लोक मान्यताओं को अभिव्यक्त किया गया है। यहाँ के चित्र सरल शैली, सीमित रंगों और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के लिए जाने जाते हैं।

भित्ति चित्रकला की प्रक्रिया अत्यंत व्यवस्थित और तकनीकी होती है, जिसमें चित्र निर्माण की विधि, आवश्यक सामग्री, तकनीक, प्रकार व संरक्षण के उपायों का विशेष महत्व होता है। यह कला प्राचीन काल से ही दीवारों, मंदिरों, गुफाओं और भवनों की सजावट तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम रही है। इन चित्रों के निर्माण के लिए चूना, मिट्टी, रेत और गोंद आदि का मिश्रण बनाकर उसे दीवार पर लगाया जाता है तथा आकृतियाँ उकेरी जाती हैं। इन चित्रों में प्राकृतिक रंगों का प्रयोग प्राचीन काल में होता था, परंतु समय के साथ वर्तमान में ऐक्रेलिक रंगों जैसे कृत्रिम रंगों का उपयोग भी भित्ति चित्रों के नए रूप को दर्शाता है। फ्रेस्को तथा टेम्परा जैसी तकनीकें इसके इतिहास को जीवंत बनाती हैं। परंतु वर्तमान में इन चित्रों की होती उपेक्षा को देखते हुए सरकार इनके संरक्षण हेतु कई कदम उठा रही है।

इस लघु शोध को मैंने पाँच अध्यायों में विभाजित किया है। इस शोध के –

- ➡ प्रथम अध्याय में मैंने – कला का अर्थ, परिभाषा, इतिहास, महत्व, प्रकार व कला के समाज से संबंध को दर्शाया गया है।
- ➡ द्वितीय अध्याय में – भारतीय भित्ति चित्रकला पर केन्द्रित है। इसमें इसके ऐतिहासिक विकास, प्रमुख विशेषताओं, साहित्य में इसके उल्लेख तथा प्रागैतिहासिक और आधुनिक काल की भित्ति चित्र परंपरा को समझाया गया है।
- ➡ तृतीय अध्याय में – हरियाणा की भित्ति चित्रकला का विशेष अध्ययन किया गया है। इसमें हरियाणा के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे भिवानी, कुरुक्षेत्र, कैथल और जींद जिलों में पाए जाने वाले भित्ति चित्रों का विवरण और उनकी विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है।
- ➡ चतुर्थ अध्याय में – भित्ति चित्रण की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें चित्र निर्माण की विधि, आवश्यक सामग्री, तकनीक और भित्ति चित्रों की क्षति के कारण व प्रकार तथा चित्रों की सुरक्षा के उपायों का वर्णन शामिल है।
- ➡ पंचम अध्याय में – वर्तमान समय में हो रही भित्ति चित्रों की दुर्दशा तथा उसके संरक्षण हेतु उठाए गए कदमों का विवरण शामिल है।
- ➡ षष्ट्म अध्याय में – इस अध्याय में कलाकृतियों का विवरण किया गया है।

शोधकत्री

सिमरन कौर

आभार

मेरे लघु शोध प्रबन्ध का विषय "हरियाणा के भित्ति चित्रों का अध्ययन (भिवानी, कुरुक्षेत्र, कैथल एवं जींद)" के संदर्भ में है। मेरे इस लघु शोध कार्य करने में जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनका आभार व्यक्त किए बिना मेरा यह आलेख सम्पूर्ण नहीं होगा। मैं सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ, जिनकी प्रेरणा, सहयोग और प्रोत्साहन से मैं अपना यह कार्य पूर्ण कर पाई।

सर्वप्रथम मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंतर्गत स्थित आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकण्डा के ललित कला विभाग के अध्यक्ष आदरणीय श्रीमान महेश धीमान के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने लघु शोध कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया और मेरा सहयोग किया। मैं डॉ. गुरुचरण सिंह, विभागाध्यक्ष, ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र की भी धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने इस विषय को भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया और आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकण्डा की सहायता की।

इसके साथ–साथ मैं अपने परिवारजनों का भी आभार प्रकट करती हूँ, जिनका सहयोग मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण था और मैं अपने शोध कार्य को करने में समर्थ हो पाई। प्राचीन मंदिरों के पुजारियों व वहाँ उपस्थित बड़े–बुजुर्गों का भी मैं बहुत आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे बहुत जानकारी प्राप्त करवाई और मेरे सहयोगी बने।

मैं अपने आदरणीय पुस्तकालय अध्यक्षा डॉ. राजिन्द्र कौर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य को पूर्ण करने में मेरा उचित मार्गदर्शन किया। अंत में, मैं वर्तमान प्राचार्य महोदया आदरणीय डॉ. आरती त्रेहन जी का भी आभार प्रकट करती हूँ, जिनकी सहायता से ललित कला विषय सुचारु रूप से चल रहा है।

और अंत में – मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति दिल से प्रेम भाव व्यक्त करती हूँ। इनकी प्रेरणा व प्रोत्साहन से ही मेरा लघु शोध कार्य सम्पूर्ण हो पाया। यदि यह लघु शोध प्रबन्ध पाठक वर्ग की कुछ सहायता प्राप्त करेगा, तो मैं अपने प्रयासों को सफल मानूँगी।

शोधकत्री

सिमरन कौर

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन — पृष्ठ संख्या

आभार

प्रथम अध्यायः — 01 – 08

- कला का अर्थ
- कला की परिभाषा
- कला का इतिहास
- कला का महत्व
- कला के प्रकार
- कला व समाज का संबंध

द्वितीय अध्याय : — 09 – 21

- भारतीय भित्ति चित्रकला का इतिहास
- भारतीय भित्ति चित्रों की पृष्ठभूमि
- भारतीय साहित्य में भित्ति चित्रकला
- प्रगेतिहासिक भित्ति चित्रकला
- भारत की भित्ति चित्रकला परपंरा

तृतीय अध्यायः — 22 – 43

- हरियाणा की भित्ति–चित्रकला का इतिहास
- हरियाणा के भित्ति चित्रों की पृष्ठभूमि
- भिवानी के बड़वा गांव के भित्ति चित्र
- कुरूक्षेत्र भू – भाग के भित्ति चित्र
- कैथल जिले के कलायत के मंदिरों के भित्ति चित्र
- जींद जिले के पांडू पिंडरा मंदिरों के भित्ति चित्र

चतुर्थ अध्यायः — 44 – 59

- भित्ति चित्रण
- भित्ति चित्रण की सामग्री
- भित्ति चित्रण की तकनीक
- भित्ति चित्रों की क्षति के कारण व प्रकार

- भित्ति चित्रों की सुरक्षा के लिए पदार्थ

पंचम् अध्याय : 60 – 64

- वर्तमान समय में भित्ति चित्रों की दुर्दशा व संरक्षण

षष्ट्म अध्याय : 65 – 76

- कलाकृतियों का विवरण

– उपसंहार 77 – 77

– संदर्भ ग्रंथ सूची 78 – 79

– चित्र संग्रह सूची 80 – 80

– चित्र सूची 81 – 100

प्रथम अध्याय

- कला का अर्थ
- कला की परिभाषा
- कला का इतिहास
- कला का महत्व
- कला के प्रकार
- कला व समाज का संबंध

कला

कला मानवीय अभिव्यक्ति के सबसे पुराने और सबसे गहन रूपों में से एक है। यह सांस्कृतिक, भाषाई, ऐतिहासिक सीमाओं को पार करती है और हमारे आस–पास की दुनिया को देखने, उस पर सवाल उठाने और उसे बदलने के तरीकों को आकार देती है।

कला एक व्यापक शब्द है जिसमें कल्पना, भावना, प्रतीकवाद और तकनीक पर आधारित कलात्मक, रचनात्मक गतिविधियां शामिल हैं। इसमें चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, प्रदर्शन कला, साहित्य, फिल्म आदि शामिल हैं। मूल रूप से, कला चुनौती देती है, संवाद स्थापित करती है और लोगों को जोड़ती है।

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी कला को ''मानव रचनात्मक कौशल और कल्पना की अभिव्यक्ति या अनुप्रयोग, आमतौर पर दृश्य रूप में'' के रूप में परिभाषित करती है।

जब भी मानव में चेतना जागी, वह अपने आस–पास के संसार के विषय में जागरूक हुआ। उसने जिज्ञासु दृष्टि चारों ओर डाली। उसने अपने अस्तित्व, संसार के अस्तित्व को अर्थ देना चाहा। स्वयं को जानने, संसार को जानने की यह उत्कंठा उसकी प्राचीनतम असम्बद्ध कृतियों में स्पष्ट होती है और जानने और समझने की यह उत्कंठा ने सम्पूर्ण दर्शन और विज्ञान, कला और संस्कृति और सभी कुछ जो मूल्यवान है, उसे जन्म दिया।

➢ कला का अर्थ है :–

किसी भी कार्य को पूरी कुशलता या निपुणता से सम्पन्न करना कला कहलाता है। जैसे मूर्ति बनाना, गीत गाना, चित्र बनाना, भवन या मंदिर बनाना, काव्य रचना आदि।

गीत गाना कला तभी कही जाएगी जब गीत मधुर और लय–ताल के साथ गाया जाये। इसी प्रकार काव्य, कवि द्वारा अलंकारों, ध्वनि, रस तथा सुंदर विचारों के साथ रचा जाता है। नाटक की रचना भावों, संवादों तथा दृश्य माध्यमों द्वारा की जाती है, जो कला को विशेष रूप प्रदान करती है। इसी प्रकार चित्रकला और मूर्तिकला में भी भाव, सौंदर्य और अर्थ निहित होता है। कला की परिधि तभी आयेगी जब उसमें अर्थ, रस व भाव और रूप की सुंदर निवृत्ति हो।

कला शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में हुआ है। कला संस्कृत भाषा का शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति 'कल' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है– 'प्रेरित करना'। लेकिन कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति 'कड़' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ होता है– 'रचना करना'।

कला न ज्ञान है, न शिल्प है, न ही विद्या है, बल्कि जिसके द्वारा हमारी आत्मा परमानंद का अनुभव करती है, वही कला है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्रकट किए गए उक्त भाव कला की भारतीय विचारधारा को अभिव्यक्त करते हैं। परमानंद की प्राप्ति मनुष्य के जीवन का उद्देश्य होता है तथा इसे

- **https://thekarachicollective.com/art/**
- कला दर्शन (प्रकाश वीरेंद्र, नुपूर शर्मा), **ISBN-81-8283-206-3, (Page-3)**
- **https://bishwajeetverma.wordpress.com (**कला का अर्थ एवं परिभाषा**),**

DO NOT COPY

प्राप्त करने की इच्छा हमारी आत्मा को होती है एवं वह हमारी अंतरात्मा से ही उत्पन्न भी होती है। उसके प्रेरक तत्व इस बाह्य सृष्टि में मौजूद रहते हैं। 'सौंदर्य' परम आनंद का सर्वाधिक शक्तिशाली उद्दीपक है, जो किसी वस्तु के प्रति भावात्मक अनुभूति को उत्पन्न कर आत्मिक सुख प्रदान करता है। प्लेटो के विचार से– "वस्तु का सौंदर्य उसी में वह चीज है जो हमें उसकी प्रशंसा करने हेतु बाध्य कर देती है तथा हमें उसे पाने की लालसा उत्पन्न करती है।" अन्य पाश्चात्य विचारकों ने भी सौंदर्य के विषय में अपने विचार प्रकट किए हैं।

कला का उद्देश्य केवल सुंदरता उत्पन्न करना ही नहीं होता, बल्कि यह मनुष्य के मनोभावों को जागृत करने, समाज को प्रभावित करने और सांस्कृतिक विरासत को संजोने का भी माध्यम होती है। संक्षेप में, कला वह माध्यम है जिससे मनुष्य अपनी रचनात्मकता और अभिव्यक्ति को प्रकट करता है।

➢ कला की परिभाषा :–

कला शब्द इतना व्यापक है कि विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ केवल एक विशेष पक्ष को छूकर रह जाती हैं। यद्यपि इसकी हजारों परिभाषाएँ की गई हैं, भारतीय परम्परा के अनुसार कला उन सभी क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो। यूरोपीय विद्वानों ने भी कला में कौशल को महत्वपूर्ण माना है।

कला के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा कला के बारे में उनकी परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं जो इस प्रकार हैं–

★ रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार – ''मनुष्य कला के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करता है।''

★ जयशंकर प्रसाद के अनुसार – ''ईश्वर के कर्तव्य की शक्ति का वह संकीर्ण रूप जिसे हम बोध के लिए प्राप्त करते हैं, वही कला है।''

★ मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार – ''कला अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति है, जो अपूर्ण कला की पूर्णता है।''

★ नीत्शे के अनुसार – ''कला जीवन के कड़वे अनुभवों से मुक्ति का माध्यम है।''

★ प्लेटो के अनुसार – ''कला सत्य की अनुकृति है।''

★ अरस्तु के अनुसार – ''कला प्रकृति का अनुकरण है।''

★ फ्रायड के अनुसार – ''कला दबी हुई वासनाओं का उभरा हुआ रूप है।''

★ क्रोचे के अनुसार – ''हर एक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव अहलाद की अभिव्यक्ति है।''

★ टालस्टॉय के अनुसार – ''कला भावों को क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि या शब्दों द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करना है कि देखने या सुनने वाले के मन में वही भाव उत्पन्न हो जाए।''

DO NOT COPY

★ हीगेल के अनुसार – ''कला आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है।''

★ रस्किन के अनुसार – ''कला में मनुष्य अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है।''

➢ कला का इतिहास :–

कला और दृश्य संस्कृति आत्म–अभिव्यक्ति का एक रूप है, जो मानव जीवन के इतिहास में हमेशा से मौजूद रही है। आप सोच रहे होंगे कि कला की उत्पत्ति कब हुई या कला के पहले कला को किस रूप में परिभाषित किया जा सकता है। कला के इतिहास का अध्ययन हम इस प्रकार करेंगे।

कला की दुनिया की शुरुआत असल में तब हुई जब मनुष्य ने पहली बार खुद को अभिव्यक्त करना शुरू किया, लोगों द्वारा अभिलेख रखने से बहुत पहले। प्राचीन पाषाण युग /पुरापाषाण काल के अवशेष मिले हैं, जब आदिमानों ने पत्थर के औजारों का उपयोग करना शुरू किया था। इसी प्रकार, आदिमानवों ने पत्थर की आकृतियाँ, चित्र और नक्काशी बनाई। प्राचीन कलाकृतियाँ विश्वभर में पाई गई हैं, जो अनेक विविध संस्कृतियों द्वारा निर्मित हैं। ये सभ्यताएँ भौगोलिक रूप से अलग–अलग थीं, इसलिए प्रत्येक संस्कृति की कलाकृति अद्वितीय है।

प्राचीन कला में सेल्टिक, अफ्रीकी, मेसोपोटामियाई, एशियाई और मिस्त्र की संस्कृतियाँ शामिल हैं। प्राचीन कलाकृतियों का माध्यम सभ्यता के अनुसार भिन्न–भिन्न था, लेकिन सामान्यतः इसका उद्देश्य कहानियाँ सुनाना और उस समय के जीवन को प्रदर्शित करना था।

मध्य युग में निर्मित कला जिसे अंधकार युग के नाम से भी जाना जाता है। यह कला 486 ईस्वी में रोमन साम्राज्य के पतन का प्रतीक है, और आमतौर पर अंधकार और क्रूरतापूर्ण दृश्यों को दर्शाता है। इस प्रकार मध्य युग की कला में अक्सर धार्मिक चित्र दर्शाए जाते थे, और इसमें चर्च से संबंधित कलाकृतियाँ भी शामिल थीं।

पुनर्जागरण कला ने मध्य युग का अंत किया। यह मात्र एक कलात्मक आंदोलन नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पुनर्जन्म का एक युग था। पुनर्जागरण कला ने ऐसी कलाकृति को जन्म दियो जो व्यक्तिवाद और प्रकृति पर केंद्रित थी। यह आंदोलन इटली के फ्लोरेंस शहर में अपने चरम पर पहुँचा, जब मानवतावाद का समर्थन करने वाले धनी परिवारों (मेडिची परिवार) ने इसके मूल्यों का प्रसार किया और अमेरिकी कला इतिहास की दिशा को आकार दिया।

इस काल में यथार्थवादी और व्यक्तिवादी कलाकृतियों का उदय हुआ, इस समय के कलाकार विभिन्न विषयों के ज्ञाता होते थे, जो उनकी कलाकृतियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

कलाकारों ने न केवल विभिन्न विषयों पर ध्यान केंद्रित किया, बल्कि सौंदर्य और पूर्णता पर जोर देते हुए भावपूर्ण मानवों का सटीक चित्रण भी किया।

- **https://greygallery.com/blog/articles/when-art-was-conceived-the-history-of-art**

DO NOT COPY

पुनर्जागरण काल के उत्तरार्ध में मैनरिज्म आंदोलन का उदय हुआ, एक ऐसा दौर जब कलाकार अपनी भावनाओं को सटीक रूप से व्यक्त करते थे।

बरोक कला जो 1600–1700 के दशक की एक ऐसी कला विधा है जो महत्वपूर्ण कहानियों और घटनाओं को दर्शाती है, जिसमें अक्सर धर्म और राजशाही शामिल होती है। इसमें गहरे रंग, गति, प्रतिकवाद, नाटकीयता, यथार्थवाद, विरोधाभास और निश्चित रूप से असाधारण बारिकियाँ शामिल होती हैं। नवशास्त्रीयता 1750–1800 का एक हिस्सा आंदोलन था जिसमें मूर्तिकला, वास्तुकला, लेखन और चित्रकला जैसे कला के विभिन्न माध्यमों में शैलीगत प्राचीनता को उभारा। अतीत पर ध्यान केंद्रित करते हुए, नवशास्त्रीय कलाकार प्रसिद्व प्राचीन कलाकृतियों को पुनः रचने का प्रयास करते थे।

रोमांटिकवाद कला और वास्तुकला 1800–1850 के दशक के एक हिस्से को संदार्भित करता है, जिसमें अंतर्ज्ञान, भावना, प्रकृति और व्यक्तिवाद जैसे विषयों को दर्शाया गया था।

यथार्थवाद को अक्सर आधुनिक कला का पहला आंदोलन माना जाता है। यह आंदोलन 1840 के दशक में फ्रांस में शुरू हुआ, और कई घटनाओं के परिणाम था, जिनमें पत्रकारिता, फोटोग्राफी का उदय और जर्मनी भर में चलाए गए रोमांटिकवाद–विरोधी आंदोलन शामिल हैं।

आधुनिक कला का प्रारंभिक काल, जिसे आधुनिकवाद के नाम से भी जाना जाता है, आदर्शवाद और प्रगति के विचार पर आधारित था, और अंततः वास्तविकता को उसी रूप में समझाने का प्रयास करता था जैसा कि वे जानते थे।

➢ कला का महत्व :–

जीवन, ऊर्जा का महासागर है। जब अंतचेतना जागृत होती है, तो ऊर्जा जीवन को कला के रूप में उभारती है। कला जीवन को सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से समन्वित करती है। इसके द्वारा ही बुद्धि, आत्मा का सत्य स्वरूप झलकता है। कला उस क्षितिज की भांति है, जिसका कोई छोर नहीं। इतनी विशाल इतनी विस्तृत। अनेक विधाओं को अपने में समेटे। तभी तो कवि का मन कह उठा –

"साहित्य संगीत कला विहीन। साक्षात् पशुपुच्छ विषाणहीन।।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मुख से निकला "कला में मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है।" तो प्लेटो ने कहा– "कला सत्य की अनुकृति है।"

टालस्टॉय (उन्नीसवीं सदी, रूस के सम्मानित लेखक) के शब्दों में अपने भावों की क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करना उसे देखने या सुनने वाले में भी वही भाव उत्पन्न हो जाए, कला है।

हृदय की गहराइयों से निकली अनुभूति जब कला का रूप लेती है, कलाकार का अन्तर्मन मानों मूर्त ले उठता है चाहे लेखनी उसका माध्यम हो या रंगों से भरी तूलिका या सुरों की पुकार या वाद्यों की झंकार। कला ही आत्मिक शांति का माध्यम है।

- **https://drgtgmmh.blogspot.com/2010/08/blog-post-5034.html?m-1**

DO NOT COPY

कला में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह लोगों को संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठाकर उसे किसी ऊँचे स्थान पर पहुँचा दे, जहाँ मनुष्य केवल मनुष्य रह जाता है। कला व्यक्ति के मन में बनी स्वार्थ, परिवार, क्षेत्र, धर्म, भाषा और जाति आदि की सीमाएँ मिटाकर विस्तृत और व्यापकता प्रदान करती है, वह व्यक्ति को ''स्व'' से निकालकर ''वसुधैव कुटुम्बकम'' से जोड़ती है।

कला ही है जिसमें मानव मन में संवेदनाएँ उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा चिंतन को मोड़ने, अभिरूचि को दिशा देने की अद्‌भुत क्षमता है। मनोरंजन, सौंदर्य, प्रवाह, उल्लास न जाने कितने तत्वों से यह भरपूर है जिसमें मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति है।

जब यह कला संगीत के रूप में उभरती है तो कलाकार गायन और वादन से स्वयं को ही नहीं श्रोताओं को भी अभिभूत कर देता है। दीपक राग से दीपक जल उठता है और मल्हार राग में मेघ बरसना, यह कला की साधना का ही परिणाम है।

भाट और चारण भी जब युद्धस्थल में उमंग, जोश से सरोबार कविता–गान करते थे तो वीर योद्धाओं का उत्साह दोगुना हो जाता था युध्दक्षेत्र कहीं हाथी की चिंघाड, तो कहीं घोड़ों की हिनहिनाहट, तो कही शत्रु की चीत्कार से शौर्य भर उठता था, यह गायन कला की परिणति ही है।

संगीत के बाद ये ललित–कलाओं में स्थान दिया गया है तो वह है – नृत्यकला। चाहे वह भरतनाट्यम हो या कथक, मणिपुरी हो या कुचिपुड़ी। विभिन्न भाव–भंगिमाओं से युक्त हमारी सांस्कृतिक व पौराणिक कथाओं को ये नृत्य जीवंतता प्रदान करते हैं।

कलाओं में कला, श्रेष्ठ कला वह है – चित्रकला। मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरण की प्रवृत्ति रखता है। अपनी रंगों से भरी तूलिका से चित्रकार जन–भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है, तो दर्शक हतप्रभ रह जाते हैं। चित्रों के माध्यम से आखेट करने वाले आदिमानव ने न केवल अपने संवेदनाओं को बल्कि रहस्यमय प्रवृति और जंगल के खूंखार प्रवासियों के विरुद्ध अपने अस्तित्व के लिए किए गए संघर्ष को भी अभिव्यक्त किया है। सिंधु घाटी सभ्यता में प्राप्त चित्रों में पशु–पक्षी, मानवआकृति, सुंदर प्रतिमाएं, ज्यादा उपयोगी नमूने भारत की आदिसभ्यता की कलाप्रियता का द्योतक हैं।

अजंता बाध आदि के गुफा चित्रों की कलाकृतियों पूर्व बौद्धकाल काल के अंतर्गत आती हैं। भारतीय कला का उज्जवल इतिहास भित्ति चित्रों से ही प्रारंभ होता है और संसार में इनके समान चित्र कहीं नहीं बने, ऐसा विद्वानों का मत है। अजंता के कला मंदिर, प्रेम, धैर्य, उपासना, भक्ति, सहानुभूति, त्याग तथा शांति के अपूर्व उदाहरण हैं।

मधुबनी शैली, पहाड़ी शैली, तंजौर शैली, मुगल शैली, बंगाल शैली अपनी–अपनी विशेषताओं के कारण आज जनशक्ति के मन चिहिन्त हैं। यदि भारतीय संस्कृति की मूर्ति कला व शिल्प कला के दक्षिण के मंदिर अपना विशेष स्थान रखते हैं।

यही नहीं, भारतीय संस्कृति में लोक कलाओं की खुशबू की महक आज भी अपनी प्राचीन परंपरा से समृद्ध है। लोक कलाओं का जन्म भावनाओं और परंपराओं पर आधारित है क्योंकि यह जनसामान्य

DO NOT COPY

की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। गुजरात में "साथिया", राजस्थान में "माण्डना", बिहार में "अहपन", बंगाल में ''अल्पना'', महाराष्ट्र में "रंगोली", उत्तर प्रदेश में "चौक पूरना" के नाम प्रसिद्ध हैं। विवाह और शुभ अवसरों में लोककला का विशेष स्थान है।

आज भारत की वास्तुकला का सर्वोत्तम उदाहरण "ताजमहल" है। जिसने विश्व की अपूर्व कलाकृतियों के सात आश्चर्य में शीर्षस्थ स्थान पाया है। लालकिला, अक्षरधाम मंदिर, कुतुबमीनार, जामा मस्जिद भी भारतीय वास्तुकला के अनुपम उदाहरण हैं।

हमारी संस्कृति के इन तत्वों को प्राचीन काल से लेकर आज तक कलाओं में देखा जा सकता है। इन्हीं ललित कलाओं ने हमारी संस्कृति को सत्य, शिव, सौदर्य जैसे अनेक सकारात्मक पक्षों को चित्रित किया है।

➢ कला के प्रकार :–

कला के अनेक रूप हैं, जिनमें से प्रत्येक की अपनी विशेषताएँ और विधियाँ हैं। निम्नलिखित कुछ सबसे विशिष्ट कला रूप हैं:

1. चित्रकला :– कैनवास, कागज या लकड़ी जैसी किसी सतह पर रंग लगाना, चित्रकला की दृश्य कला है। पेंटिंग बनाने के लिए तेल, ऐक्रेलिक, जलरंग आदि विभिन्न माध्यमों का उपयोग किया जा सकता है।

2. चित्रकारी :– एक दृश्य कला है, जिसमें पेंसिल, पेन या अन्य उपकरणों का उपयोग करके सतह पर रेखाएं और आकृतियां बनाई जाती हैं। इसमें कई अन्य चित्रकारी तकनीकें भी शामिल हैं, जैसे कि शेडिंग, हैचिंग और क्रॉस–हैचिंग।

3. मूर्तिकला :– एक दृश्य कला विधा है जिसमें मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, धातु या अन्य सामग्रियों से त्रि–आयामी वस्तुएं बनाई जाती हैं। मूर्तियां बनाने के कई अलग–अलग तरीके हैं, जैसे नक्काशी, ढलाई और वेल्डिंग।

4. प्रिंटमेकिंग :– प्रिंटमेकिंग एक दृश्य कला रूप है जिसमें किसी छवि की प्रिंट या कई प्रतियां बनाने के लिए एचिंग, लिथोग्राफी और स्क्रीन प्रिंटिंग जैसी विभिन्न मुद्रण विधियों का उपयोग किया जाता है।

5. फोटोग्राफी :– कैमरे से तस्वीरें लेना फोटोग्राफी का एक रूप माना जाता है। तस्वीरें बनाने के लिए ब्लैक एंड व्हाइट, रंगीन और डिजिटल सहित कई तरीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है।

6. दृश्य कला :– जिसे ''प्रदर्शन कला'' कहा जाता है, उसमें लाइव प्रदर्शन करना शामिल है जिसमें बोले गए शब्द, नृत्य, संगीत और नाटक शामिल हो सकते हैं।

- **https://www.artsindia.com/blogs/news/types-of-art**

DO NOT COPY

7. ''इस्टॉलेशन आर्ट'' :– इस्टालेशन आर्ट के नाम से जानी जाने वाली एक दृश्य कला विधा में स्थल–विशिष्ट इंस्टॉलेशन का निर्माण शामिल है जिसमें मूर्तिकला, वीडियो और ध्वनि घटक शामिल हो सकते हैं।

कंप्यूटर, टैबलेट और स्मार्टफोन जैसी डिजिटल तकनीकों का उपयोग करके चित्र बनाने के कारण, डिजिटल कला एक प्रकार की दृश्य कला है। वीडियो, इंटरैक्टिव इंस्टॉलेशन, 2डी और 3डी एनीमेशन और अन्य मीडिया को भी डिजिटल कला श्रेणी में शामिल किया जा सकता है।

➢ कला और समाज का संबंध :–

कला संचार का एक ऐसा माध्यम है जिसमें कलाकार समाज के किसी विषय पर गहराई से विचार करने के लिए प्रेरित करने का प्रयास करता है। कलाकार अपने माध्यमों का उपयोग जीवन के क्षणों और घटनाओं के बारे में अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए करता है। इन विचारों को संगीत, रेखाचित्र, कैनवास और रचनाओं के माध्यम से दिखाया जा सकता है। इस कला को अक्सर जीवन और उसकी घटनाओं की नकल के रूप में देखा जाता है। उदाहरण के लिए, एक फोटोग्राफर किसी विशिष्ट घटना की हूबहू छवि को फोटो के रूप में प्रस्तुत करता है। मूर्तिकार पत्थर और कांसे जैसे माध्यमों का उपयोग करके किसी व्यक्ति की प्रतिकृति को मूर्ति के रूप में प्रस्तुत करते है। एक चित्रकार रंगों और कैनवस पर दृश्यों, वस्तुओं और व्यक्तियों की छवियां बनाता है।

इनमें से प्रत्येक उदाहरण को समाज में घटित हो रही घटनाओं का अनुकरण या प्रतिनिधित्व माना जाता है। स्वर्ण युग की कला ने समाज की समृद्धि को प्रदर्शित किया और यह दिखाया कि उनकी सामाजिक स्थिति और स्वतंत्रता एक प्रभावशाली उपलब्धि थी।

उपरोक्त को दर्शाने वाली एक कलाकृति हरमन हाइनेमैन की "सर्दियों में सुंदर महिला" है, जो स्वर्ण युग की परिष्कृतता को दर्शाती है। इस कलाकृति में महिला ने काले रंग के सुरूचिपूर्ण वस्त्र पहने हुए और पृष्ठभूमि में सुंदर इमारतें और दृश्य हैं।

कलाकार के विरोध शुरू करने से पहले, वे दुनिया को यह दिखाना चाहते थे कि उनकी स्वतंत्रता उनके लिए बेहतर थी। इस विद्रोह ने ऐशकेन स्कूल की शुरुआत की जिसने समाज को देखने के नजरिए को बदल दिया। कलाकार ने अपनी कला की अभिव्यक्ति के माध्यम से स्वर्णिम युग के खिलाफ विरोध शुरू किया।

DO NOT COPY

- **https://www.bartleby.com/essay/Art-In-Society-The-Relationship-of-Art-PJHJ5J663R6**

द्वितीय अध्याय

- भारतीय भित्ति चित्रकला का इतिहास
- भारतीय भित्ति चित्रों की पृष्ठभूमि
- भारतीय साहित्य में भित्ति चित्रकला
- प्रगेतिहासिक भित्ति चित्रकला
- भारत की भित्ति चित्रकला परपंरा

भारतीय भित्ति चित्रकला का इतिहास

संसार की चित्रकला में भारतीय चित्रकला अपना विशेष व महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अजंता की जगत–प्रसिद्ध भित्ति–चित्र इस कला की अमर धरोहर हैं। बौद्ध एवं जैन कलाओं तथा प्रागैतिहासिक, पाल, गुजरात, अपभ्रंश, राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी आदि शैलियों ने भारतीय चित्रकला के गौरव को ईसा पूर्व से आज तक सुरक्षित रखा है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हमारा समस्त जीवन चित्रकला से ओत–प्रोत था। वेद, वेदांग, वेशभूषा, काव्य, कोश आदि सभी में किसी न किसी रूप में चित्रकला अंतर्निहित है। भारतीय चित्रविद्याचार्यों ने कितने अधिक विस्तार से शिलाओं में उत्कीर्ण गुफाओं के भीतर, विशाल मंडपों की छतों पर, भित्तियों पर और स्तम्भों पर तिल–तिल स्थान को वर्ण, रेखा और भावों के कौशल से पाट दिया है, वह स्वागत योग्य है।

भारतीय चित्रकला के उज्ज्वल इतिहास की शुरुआत भित्ति–चित्रों से ही आरंभ होती है। आदि मानव ने सर्वप्रथम अपनी अभिव्यक्ति के लिए जिस साधन अथवा फलकों को चुना, वह गुफाओं की भित्तियाँ थीं, जिस पर उसने गेरू अथवा कोयले के द्वारा कला को निरूपित किया। स्पेन, फ्रांस, दक्षिण रोडेशिया, पेरू, अलास्का, लौसेक्स तथा भारत आदि विविध देशों में आदिम युग की ऐसी चित्रांकित गुफाएँ प्राप्त हुई हैं, जिनका समय विद्वानों ने पचास हजार ई० पू० से दस हजार ई पू0 के बीच निर्धारित किया है। भारत में इस प्रकार के चित्र मिर्जापुर, मानिकपुर, होशंगाबाद, रायगढ़ क्षेत्र, पंचमढ़ी, भोपाल, रायसेन, ग्वालियर आदि विविध क्षेत्रों में स्थित गुफाओं की भित्तियों पर देखे जा सकते हैं। इन चित्रों का निर्माण मुख्यतः खनिज रंगों यथा – गेरू, रामरज, हिरौजी, कोयला आदि के माध्यम से सम्पन्न हुआ है। इन चित्रों में पर्याप्त सृजनात्मक अभिव्यक्ति, मौलिक उद्‌भावना, अंतः सौंदर्य–बोध, रचना–कौशल और निजी वैशिष्ट्य उपलब्द है – जो उनके निश्चित गौरव के प्रमाण हैं।

भारत की इस समृद्ध भित्ति चित्रकला परंपरा का रूप, जोगीमारा, अजन्ता, बाघ, बादामी, सित्तनवासल, एलोरा, एलीफेण्टा, कार्ले, भाजा व पीपल खोरा की गुफाओं में उपलब्ध है। इन गुफाओं में चित्रण का कार्य मौर्य, शुंग, कुषाण, गुप्त आदि अनेक राजवंशों के राज्यकाल में (200 ई० पू० से 700 ई०) तक सम्पन्न हुआ। दुनिया के किसी भी क्षेत्र में इनके मुकाबले के चित्र नहीं बने। मध्ययुगीन भारत में जितना भी कला–निर्माण हुआ, उनमें भी इतनी सर्वांगीणता परिलक्षित नहीं होती। चित्रों के निर्माण में निःसंदेह मुगलों ने कमाल की निपुणता हासिल की थी, किन्तु भारतीय भित्ति–चित्रों की तुलना में वे न्यून हैं।

भारतीय चित्रकला के संदर्भ में नवमी शती के पश्चात् भित्ति–चित्रों का स्थान छोटे–छोटे लघु चित्रों – ताड़पत्र, भोजपत्र, अगरूबल्कल, पटचित्र काष्ठफलक आदि ने ग्रहण कर लिया। 14वीं शती में कागज के प्रचलन के फलस्वरूप कागज की पोथियों का पर्याप्त विकास हुआ, चूँकि भित्ति की अपेक्षा

DO NOT COPY

• **https://www.exoticindiaart.com/ —** भारतीय भित्ति चित्रकला (डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी और डॉ. मनीष कुमार द्विवेदी), **ISBN-9788189921934, (Page 3, 4, 5, 6)**

कागज पर चित्र–कार्य बड़ी सुगमता से होता था, अतः भित्ति–चित्रों का स्थान 15वीं शती तक पूर्ण रूप से कागज की पोथियों ने ग्रहण कर लिया। अतः भित्ति चित्रण का कार्य लगभग पतनोन्मुख हो रहा था। सिर्फ महलों, मंदिरों तथा हवेलियों की सजावट हेतु मुगल सम्राटों तथा हिन्दू शासकों ने भित्ति–चित्रों की परंपरा को कायम रखा। इनमें महाराणा कुम्भा के राज्यकाल (1443–1464 ई०) में निर्मित कुम्भलगढ़ के भित्ति–चित्र, चित्तौड़ दुर्ग में भामाशाह की हवेली के चित्र, नाथद्वारा, जैसलमेर, जोधपुर, जयपुर तथा उदयपुर के किलों में स्थित भित्ति–चित्र एवं अकबरकालीन फतेहपुर सीकरी के राजप्रासदों की दीवारों तथा छतों पर बनाए गए पशु–पक्षी, वृक्ष तथा मनुष्यों की आकृतियों में एक प्रकार की गतिशीलता दिखाई देती है, जो अन्य समय के चित्रों की तुलना में दुर्लभ है। भित्ति–चित्रों की अविच्छित परंपरा का उल्लेख भारतीय साहित्यिक ग्रंथों में भरा पड़ा है।

ऋग्वेद में चर्म पर अग्निदेव के चित्र को अंकित किया जाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अन्य कई स्थानों पर भी चित्रों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार भित्ति–चित्रों का उल्लेख रामायण, महाभारत, भरत के नाट्यशास्त्र, कालिदासकृत रघुवंश, मेघदूत आदि ग्रंथों में, हर्षचरित, वात्स्यायन के कामसूत्र, नैषधचरित, हरिवंश पुराण, अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, पद्म पुराण, जैन एवं बौद्ध कृतियों में मिलते है। जो भारतीय कला में भित्ति–चित्रकला परंपरा की प्राचीनता को प्रमाणित करती है।

➢ भारतीय भित्ति चित्रों की पृष्ठभूमि :–

भारतवर्ष में एतिहासिक कला के उपलब्ध सबसे प्राचीन चित्र भित्ति–चित्रों के रूप में प्राप्त होते हैं। इस काल के प्राचीनतम चित्र जोगीमारा की गुफा मंदिर में प्राप्त होते हैं। ये भित्ति चित्र सम्पूर्ण भारत में यत्र–तत्र बिखरे हुए हैं। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही चित्रकला के स्वर्णयुग का सूत्रपात हो जाता है और छठी शताब्दी तक अपने चरम सीमा तक पहुँचता है। इस युग की कला कालसिद्व कला है जो भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति एवं कला की अनुपम विरासत है।

शिलाखण्डों को काटकर चैत्य, बिहार तथा मंदिर आदि बनाने की परंपरा अति प्राचीन है और उन गुफा मंदिरों पर पलस्तर लगाकर तथा चूने आदि से चिकनाकर उन पर चित्र बनाए जाते थे। इसी परंपरा के अनुरूप जोगीमारा गुफा में भी चित्रांकन हुआ है जो भारतीय भित्ति चित्रों के सबसे प्राचीन नमूने हैं। भित्ति चित्रों के अधिकांश भाग मिट गए हैं और सदियों नमी एवं वर्षा ने उन्हें प्रभावित किया है।

अजन्ता गुफा मंदिर समूह के चार चैत्यों में से दो हीनयान और दो महायान सम्प्रदाय के हैं। इन दोनों के निर्माण काल में काफी अंतर है। इन चारों गुफाओं को छोड़कर शेष गुफाएं विहारग्रह हैं। विहार भिक्षुओं का आवासग्रह था। इन विहारों का निर्माण चैत्यों के अगल–बगल ही विशेष रूप से हुआ है, यद्यपि शिल्प में समयानुसार बहुत अंतर है। हीनयान काल में स्थापत्य एवं कला सादगी पूर्ण थी, जबकि महायान काल में आकर इसमें अलंकरणात्मक प्रवृत्ति बढ़ जाती है। विशाल और आकर्षक मुख

DO NOT COPY

भागों की रचना, नक्काशीदार खंभे, मूर्तियों से सुशोभित दीवार की खुदाई और सुंदर चित्रकारी महायान काल के गुफा मंदिरों की विशेषता है।

गुफा मंदिरों की दीवारों को सीधा और समतल करने के बाद उनमें छेनी से छोटे–छोटे छेद किए जाते थे और सतह को खुरदरा किया जाता था। बाद में उनमें विशेष प्रकार का पलस्तर लगाकर चूने का लेप चढ़ाया जाता था। आधार तैयार होने के बाद हल्के गेरू रंग से तुलिका द्वारा रेखांकन किया जाता था। तत्पश्चात खनिज रंगों (मुख्यतः पीला, लाल, नीला, सफेद, काला और हरा) का प्रयोग किया जाता था। अजंता के भित्ति–चित्रों का प्रमुख विषयवस्तु गौतमबुद्ध के जीवन से संबंधित घटनाओं तथा जातक कथाओं पर आधारित हैं।

➢ भारतीय साहित्य में भित्ति चित्रकला :–

प्राचीन भारतीय समाज और साहित्य में ललितकलाओं में विशेष रूप से चित्रकला की क्या स्थिति थी, इसके बारे में विस्तृत विवरण हमें नहीं प्राप्त होता है, फिर भी भारतीय वाङ्गमय में चित्रकला के बारे में छिटपुट उल्लेख समय–समय पर वेद, पुराण, नाट्य, साहित्य, संगीत, काव्य, आयुर्वेद, रामायण, महाभारत आदि विभिन्न ग्रंथों में होता रहा है। इन ग्रंथों से चित्रकला की उत्पत्ति, रंग, रूप, रेखाओं आदि के बारे में विवरण प्राप्त होता रहा है।

चित्रकला का उल्लेख वैदिक साहित्य से शुरू होता है तथा क्रमशः बौद्ध एवं जैन साहित्य, पूर्व मध्यकालीन साहित्य तथा मध्यकालीन साहित्यिक अभिलेखों एवं साहित्यिक साक्ष्यों के माध्यम से चित्रकला की उत्पत्ति, उसके विकास और विभिन्न आयामों के बारे में विधिवत् जानकारी प्राप्त होती है। संक्षेप में, हम चित्रकला के उन विभिन्न आयामों (रूपों) की रूपरेखा नीचे प्रस्तुत करेंगे।

➢ चित्रलक्षण–ग्रंथ में चित्रकला :–

सर्वप्रथम चित्रकला के साहित्यिक साक्ष्यों में वर्णित उल्लेखों का श्रीगणेश चित्रलक्षण–ग्रंथ में वर्णित चित्रकला की उत्पत्ति के रोचक कथा के साथ शुरू करेंगे। यह ग्रंथ तिब्बत में तंजूर ग्रंथमाला के अंतर्गत प्रकाशित किया गया है। इस ग्रंथ के तीन ही अध्याय प्राप्त होते हैं। इस ग्रंथ की भूमिका में बताया गया है कि यह ग्रंथ विश्वकर्मा तथा राजा नग्नजित (गांधार सीमा–प्रान्त) द्वारा निर्दिष्ट चित्रकला के लक्षणों का संग्रह है। इस ग्रंथ से स्पष्ट है कि नग्नजित विश्वकर्मा का शिष्य था तथा विश्वकर्मा ने उसे चित्रकला में प्रवीण बनाया। ग्रंथ में वर्णित चित्रकला की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है–

प्राचीन काल में महाराज मयजित के राज्यांतर्गत एक ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हो गयी। वह ब्राह्मण रोता हुआ राजा के पास गया, उसका करूण रूदन सुनकर राजा काफी दुखी हुआ, ब्राह्मण बार–बार याचना कर रहा था कि हे राजन! मेरे पुत्र को जीवन दो। राजा अपने योगबल से यमराज के पास चला गया और यमराज से जीवन देने की प्रार्थना करने लगा। यमराज अंत तक नहीं माना, अंत में

DO NOT COPY

राजा और यमराज में युद्ध हो गया, फलस्वरूप यमराज की पराजय हुई। अंत में ब्रह्मा प्रकट हुए तथा मयजित को आज्ञा दी कि तुम इस मृत ब्राह्मण–पुत्र का चित्र बनाओ। राजा ने वैसा ही किया, तत्पश्चात ब्रह्मा ने उसमें जीवन डाल दिया। ब्रह्मा ने राजा से कहा कि, तुमने नग्न प्रेतों को हरा दिया है। अतः तुम्हारा नाम नग्नजित होगा तथा तुम मृत्यु–लोक के सर्वप्रथम चित्रकला के आचार्य माने जाओगे। इस कथा के अतिरिक्त इस ग्रंथ के शेष अध्यायों में चित्रकला के लक्षण तथा इसके तत्त्वों पर भी प्रकाश डाला गया है।

➢ वैदिक साहित्य में चित्रकला :–

भारत कला इतिहास में वैदिक युग का जन–जीवन कला के प्रति बहुत अनुरागी था। कला को मनोरंजन का साधन समझा जाता था। ऋग्वेद में भृगु ऋषि के वशंजो को लकड़ी के कार्य का विशेषज्ञ बताया गया है। यह कार्य वह अपने अवकाश के समय किया करते थे। विश्व का सबसे प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद है। जिसमें एक चर्म फलक पर अग्निदेव का चित्र अंकित किए जाने का उल्लेख है। इस चित्र को यज्ञ के समय लटकाया जाता था व यज्ञ समाप्ति पर उस चित्र को लपेट कर सुरक्षित रख दिया जाता था। इसी ग्रंथ में यज्ञशालाओं के द्वारों की चारों चौखटों पर अंकित अलंकृत रही आकृतियों का सौम्यरूप सृजन के लिए उल्लेखित है।

इस दृष्टि से विदित है कि वैदिक धर्म एकांगी नहीं था। साहित्य और चित्रकला दोनों को साथ लेकर उसका विकास हुआ। तत्कालीन साहित्यिक प्रगति का दिग्दर्शन करने वाले अनेक ग्रंथ आज हमारे समक्ष हैं। जहाँ तक कला का संबंध है उस युग में संगीत, मूर्ति, स्थापत्य, चित्र व काव्य (साहित्य) सभी दिशाएं परंपरा की तुलना की दृष्टि से समृद्ध थीं।

मंत्रसंहिताएं भारतीय साहित्य की प्राचीनतम ज्ञाननिधि हैं। वरन् विश्व के प्रत्येक भाग का इतिहासकार आज इस बात को स्वीकार करता है कि पृथ्वी के सम्पूर्ण मानव समाज में ज्ञान का इतिहास मंत्रसंहिताओं के उद्य से आरंभ होता है। मंत्रसंहिताओं में भी ऋग्वेद संहित की प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध है। ऋग्वेद (21–1–45) में हम चर्म पर अग्निदेव का चित्र अंकित किए जाने का उल्लेख पाते हैं। इसके अतिरिक्त ऋचाकाल में कलात्मक, अभीप्साओं का मूर्धाभिषिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले प्रसंगों में इंद्र के घोड़ें की, शालभंजिकाओं (ऋग्वेद 4–32–26) में उपमा देना और विशाल सुनहरी द्वारदेवियों को यज्ञशालाओं की चारों चौखट पर अंकित (ऋग्वेद 1–5–5) अलंकृत आकृतियों की पाणिनि (500 ई.पू.) ने 'प्रतिकृति' कहा है। इस प्रकार की चित्राकृतियाँ मौर्य युग में व्यापारिक रूप से बनाई जाती थी, किन्तु उनकी परंपरा का मूल आधार वैदिक युग ही था। ऋषियों ने उषादेवी और रात्रिदेवी की श्रीयुक्त उज्ज्वल आकृति को निहारा और उन महान रात्रि और उषा की सुन्दरता पर बड़े गौर से विचार किया। इस प्रकार निश्चय ही उन कला प्रवण सौन्दर्य प्रेमी ऋषियों ने रात्रि और उषा के प्रतीक चित्र उतारे और तब हमारी यह धारणा सर्वथा उपयुक्त होती है कि वैदिक युग में यज्ञशालाओं पर

DO NOT COPY

जिन–जिन देवियों को अंकित किया जाता था, उनमें रात्रि और उषा की प्रमुखता थी और वे चित्रित की नायिका थीं।

⇒ रामायण :–

भारतीय साहित्य की उत्तम परंपरा का रामायण प्रतिनिधि ग्रंथ माना गया है। इस काल में वास्तुकला के साथ–साथ चित्रकला का भी पूर्ण विकास हो चुका था एवं समाज कला के प्रति बड़ा ही निष्ठावान था। महामुनि ने बालकाण्ड के छठे सर्ग में अयोध्या वासियों के केश सज्जा, चित्र–विचित्र वस्तुओं का व्यवहार, स्त्रियों के कपालों पर पत्रावली का अंकन, राजमहलों, रथों तथा पशुओं की सज्जा, नगरों एवं उद्यानों की कला पूर्ण रचना आदि का उल्लेख किया है। रामायण में कला के अर्थ में 'शिल्प' शब्द का प्रयोग हुआ है। नृत्य, संगीत, वाद्य, चित्रकर्म आदि ललित कलाओं में प्रमुख महत्व दिया है। रामायण में दीवारों, कक्षों, रथों और राजमहलों पर चित्रांकन करने के संबंध में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। राम के राजप्रासाद में अनुपम भित्ति चित्र अंकित थे।

⇒ महाभारत :–

रामायण की भांति महाभारत में भी (600 ई.पू. से 500 ई.पू.) चित्रकला के संबंध में विवरण प्राप्त होता है। महाभारत में उषा और अनिरुद्ध की सुन्दर प्रेम कथा का उल्लेख मिलता है। राजकुमारी उषा वाणासुर की लड़की थी और एक दिन वह स्वप्न में एक सुन्दर राजकुमार से मिलती है जो वाटिका में घूम रहा था, प्रेम करने लगी। वह जागकर सम्पूर्ण वृत्तांत अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा को बताती है। चित्रलेखा बहुत बड़ी चित्रकार थी, उसने संसार के सम्पूर्ण मनुष्यों का चित्र बना डाला और उषा अपने प्रेमी अनिरुद्ध को पहचान गई।

⇒ नाट्यशास्त्र :

आचार्य भरत मुनि (प्रथम शताब्दी ई.पू.) ने नाट्यशाला का स्वरूप प्रतिपादित किया था। सर्वप्रथम "कला" शब्द का प्रयोग इस ग्रंथ में किया गया। इस ग्रंथ में उन्होंने लाल, पीले तथा श्याम रंगों को मूल माना है। इस विवेचना के अतिरिक्त उन्होंने नाट्यशालाओं को सुसज्जित करने के लिए विविध प्रकार के भित्ति–चित्रों का भी उल्लेख किया है।

⇒ मेघदूत :

संस्कृत के महाकवि कालिदास (प्रथम शताब्दी ई. पू0.) के ग्रंथों में भी अनेक स्थानों पर चित्रकला का वर्णन है। 'मेघदूत' नामक ग्रंथ में विरहिणी यक्षिणी द्वारा अपने प्रवासी यक्ष का चित्र बनाने

DO NOT COPY

की चर्चा की गई है। देवी–देवताओं के चित्र तथा विवाह आदि पर्वों पर भित्ति चित्र अलंकरण की परंपराओं का प्रचलन था। राजमहलों की भित्तियों पर सुंदर अलंकरण युक्त चित्रांकन किए जाते थे।

➢ प्रागैतिहासिक भित्ति चित्रकला :–

भित्ति चित्रकला सबसे पुरानी चित्रकला है। प्रागैतिहासिक युग के ऐतिहासिक रिकॉर्ड में पहले मिट्टी के बर्तन बनाए जाते थे, लेकिन कुछ समय बाद लोगों ने मिट्टी का उपयोग दीवारों पर चित्र बनाने के लिए करने लगे। भित्ति चित्रकला में दीवारों पर ज्यामितिक आकार, कलापूर्ण अभिप्राय, पारंपरिक आकल्पन, सहज बनावट और अनुकरणमूलक सरल आकृतियों में निहित स्वच्छंद आकल्पन, उन्मुक्त आवेग और रेखिक ऊर्जा, अनूठी ताजगी और चाक्षुष सौंदर्य सृष्टि मिलती है।

भित्ति चित्रण ज्यादातर अब छत्तीसगढ़ के जिलों में देखने को मिलता हैं। उदाहरण के लिए, सरगुजा, तहसील अंबिकापुर के अंतर्गत आने वाले गाँव पुहपुटरा, लखनपुर, केनापारा आदि में लोक एवं आदिवासी जातियों द्वारा अभ्यास की जाने वाली ऐसी लोककला जो गाँव की औरतों के द्वारा वहाँ की कच्ची मिट्टी से बनी झोपड़ियों की दीवारों पर गोबर, चाक, मिट्टी आदि से मिलकर की जाती है। घर की दीवारों, मूर्तियों, जालियों, विविध आकल्पनों और भित्ति के कलात्मक रूप से सुसज्जित की जाती है। जातिय विश्वासों के अनुरूप उनके सृजनलोक में प्रकृति, पशु–पक्षी, मनुष्य और देवी–देवताओं की सहज, अनोपचारिक उपस्थिति और समरस भागीदार होते है। दीवारों पर बनाई इन कलाकृतियों में आस पड़ोस का अति परिचित संसार, अपने सामाजिक विश्वासों की ओर बद्वमूल संस्कारों की अंकुठित, सरल और आडम्बरहीन अभिव्यक्ति है। सुदूर आदिवासी क्षेत्रों में जहां कि सजावट आदि के साधन अपर्याप्त होते थे, लोग वहां प्रचलित विभिन्न त्योहारों व धार्मिक अवसरों के समय मिलकर अपने घरों की सज्जा हेतू दीवारों में कच्ची मिट्टी द्वारा पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों आदि की आकृतियाँ बनाकर व उनमें बहुत ही मनोहर रंगों से रंगकर अपने घरों को सजाते हैं।

➢ आधुनिक भारतीय भित्ति चित्रकला का स्वरूप :–

आधुनिक भारतीय कला के बीज 19वीं सदी के उत्तरार्ध में छिपे हुए हैं। इसी समय की परिस्थितियों के आधार पर आगे की कला का भविष्य तय हुआ। 1850 ईस्वी से लेकर 20वीं सदी के आरंभिक 50 वर्षों में राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अस्थिरता ने यहाँ के जनजीवन को गहरे तक प्रभावित किया। कलाकारों की तकनीकी विशेषताओं और विषयगत अभिरुचियों में भी परिवर्तन आया। कलाकार विदेशी कलाकृतियों से प्रभावित होने लगे।

राजा रवि वर्मा ने इसी समय में यूरोपीय तकनीक में भारतीय विषयों पर कई भवनों में चित्रांकन किया। राजा रवि वर्मा का यह प्रयास भारतीय कला की अवरुद्ध धारा को एक नया पथ दिखाने का सबंल बना। बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ के कहने पर उन्होंने महल में कई भित्ति चित्र बनाए, जो पुराणों के विषय पर आधारित थे।

DO NOT COPY

- **https://hi.wikipedia.org/wiki/** भित्ति चित्रकला
- **https://www.ijhssi.org/ — "**आधुनिक भारतीय भित्ति चित्रकला का स्वरूप**" (**डॉ. अलका तिवारी**), DOI: 10.35629/7722-0708037677, (Page-76, 77)**

इसी समय अंग्रेजों ने पाश्चात्य कला की शिक्षा प्रदान करने के लिए भारत में चार स्थानों पर कला महाविद्यालय खोले। 1850 में मद्रास, 1854 में कोलकाता, 1857 में मुंबई व 1875 में लाहौर में महाविद्यालय स्थापित किए गए। इन विद्यालयों ने भारतीय कलाकारों की रूचियों को प्रभावित करना आरंभ कर दिया। इसी समय बंगाल शैली का अभ्युदय हुआ। इस शैली में अवनीन्द्रनाथ टैगोर, रविन्द्रनाथ टैगोर, आनंद कुमार स्वामी, नंद लाल बोस, ई. बी. हैवेल आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और स्वदेशी कला को पुनः स्थापित किया।

➢ बीसवीं सदी के आरंभिक काल में भित्ति चित्रकला :–

आधुनिक भारतीय कला का आरंभ बंगाल में 1895 ईस्वी से 1920 ईस्वी के मध्य प्रचलित कला शैली से माना जाता है। अवनीन्द्रनाथ कोलकाता कला विद्यालय में प्राचार्य नियुक्त हुए। उनके शिष्यों ने देश के विभिन्न भागों में कला प्रचार करने लगे। नंदलाल बोस शांतिनिकेतन में, असित कुमार हलदर लखनऊ में, वनस्पति विद्यापीठ विनोद बिहारी मुखर्जी विश्वभारती विश्वविद्यालय, राजस्थान में नवीन कलाधारा के प्रचार में लग गए। सभी में विनोद बिहारी मुखर्जी भित्ति चित्रकला में पारंगत हुए। इनके भित्ति चित्र शांतिनिकेतन, वनस्थली, विद्यापीठ राजस्थान आदि स्थानों में पाए जाते हैं।

यथार्थवादी, अतियथार्थवादी, घनवादी, अभिव्यंजनावादी, प्रभाववाद, आदि प्रवृत्तियों को भारतीय कलाकारों ने अपनी कृतियों में दर्शाना शुरू कर दिया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अभिव्यंजनावाद, गगनेन्द्रनाथ ने घनवाद, अमृता शेरगिल ने प्रभाववाद, यामिनी राय ने लोक कला शैली को आधार बनाया।

➢ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की भित्ति चित्रकला :

आधुनिक कला के विकास का अगला चरण स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की कला प्रवृत्तियों से प्रारंभ होता है। यद्यपि स्वतंत्रता पूर्व ही कला के क्षेत्र में स्वतंत्र चिंतन एवं राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष हो चुका था। अनेक कला संगठन इस समय बन रहे थे, जैसे कोलकाता ग्रुप, प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट् ग्रुप, शिल्पी चक्र आदि।

तत्पश्चात् 1943 में कलकत्ता ग्रुप बनाया गया, जिनके प्रमुख सदस्यों में प्रदोष दासगुप्ता, गोपाल घोष, नीरद मजुमदार, हेमंत मिश्रा, परितोष सेन आदि कलाकार शामिल थे। 1948 में मुंबई में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट् ग्रुप की स्थापना हुई। इस समूह के प्रमुख कलाकार आरा, रजा, हुसैन, गाड़े, बाकरे व गायतोंडे आदि थे। पैग ग्रुप की सबसे महत्वपूर्ण योगदान देन यह रही कि उसने कला को राष्ट्रीय दायरे से बाहर निकालकर अंतरराष्ट्रीयता से पुर्णत जोड़ दिया।

1949 में नई दिल्ली में शिल्पी चक्र की स्थापना हुई। इस समूह से जुड़े कलाकारों में बी.सी. सान्याल, कंवल कृष्ण, कृष्ण खन्ना, के.एस. कुलकर्णी, सतीश गुजराल, धनराज भगत आदि थे। सतीश

DO NOT COPY

गुजराल जी भित्ति चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। शिल्पी चक्र ने भारतीय समकालीन कला के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसका ऐतिहासिक महत्व है।

➢ समकालीन समय में भारतीय भित्ति चित्रकला :–

वर्तमान समय में समकालीन भित्ति चित्रकला का स्वरूप प्राचीन भित्ति चित्रकला की तुलना में पूर्णता परिवर्तित हो गया है। चित्रों के विषय, आश्रयदाता, उद्देश्य, माध्यम आदि सभी में बदलाव हुआ है। प्राचीन कला धर्म से प्रेरणा लेकर विकसित हुई थी, परंतु आधुनिक कलाकार स्वतंत्र हैं। वे अपने विचारों की अभिव्यक्ति स्वतंत्र रूप से बिना किसी बाह्य प्रभाव के कर सकते हैं।

कलाकार सामूहिक पहचान से दूर व्यक्तिगत मौलिकता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। आज पारंपरिक कला शैलियों में तकनीकों का स्थान नवीन उपकरणों व यंत्रों ने ले लिया है। इंस्टॉलेशन आर्ट, डिजिटल आर्ट, मिश्रित माध्यम आदि कला की नवीन तकनीकें हैं। आजकल सभी विधाओं चित्र, मूर्ति, व्यवहारिक, ग्राफिक कला आदि में सह–अस्तिव हैं।

किन्तु यह एक दुखद स्थिति है कि समकालीन कला जीवन का प्रतिबिंब होते हुए भी समकालीन जीवन का अंग नहीं बन सकी। प्राचीन भारत की कला एक सरलीकरण था पंरतु समकालीन कला में बौद्धिकता का गूढ़ अर्थ छिपा रहता है। जिसके कारण सामान्य मनुष्य अर्थ को समझने में एंव चित्र के दृश्य आनंद से अनभिज्ञ रह जाता है। युग के प्रत्येक चरण में परिवर्तन आता है और उसके साथ सांस्कृतिक प्रतिक्रियाएं लाता है। कला बहूत बार इन परिवर्तनों से बदलती हुई दिखाई दे सकती है, किन्तु वह अपने मूल चेतना में वहीं रहती है, जो उसकी प्रकृति होती है। विभिन्न समय पर आए अवरोध उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाते। वह यथावत रहती है और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती रहती है, वन रूप और अकार लेकर। समकालीन भित्ति चित्रकारों में के.जी. सुब्रमण्यम, विनोद बिहारी मुखर्जी, सतीश गुजराल, अजंली इला मैनन व सुरेश नायर जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सरकार के प्रयत्न व चित्रकार की निष्ठा द्वारा भित्ति चित्रों की रचनात्मकता में नित नए आयाम खोजे जा रहे हैं। भारत के विभिन्न शहर में आज भित्ति चित्रों से अलंकृत है जो भारतीयों के लिए गर्व का विषय हैं। भारतीय चित्रकला आधुनिकता के साथ भारतीय परंपरा को जीवंत रखे हुए है, जो समकालीन चित्रों के विषय–वस्तु व शैली में स्पष्ट दिखाई देती है।

➢ भारत की भित्ति कला परंपरा :–

भारत के ग्रामीण गाँवों की दीवारें महज मिट्टी की संरचनाएं नहीं हैं, बल्कि गाथाओं और लोककथाओं का भंडार हैं। कभी ये भूले हुए अतीत के प्रतीकों से सजी हुई अवशेष होती हैं, तो कभी ये मिलन और फसल उत्सवों का प्रतीक होती हैं, और कभी–कभी ये पीढ़ियों से चली आ रही कला और

- **https://www.memeraki.com/blogs/posts/bhittichitra-the-wall-art-tradition-of-india**

DO NOT COPY

ज्ञान को आगे बढ़ाने का माध्यम बनती हैं। सांस्कृतिक रूप से अलंकृत ये दीवारें सौंदर्य और परंपराओं के हरे–भरे नक्शों का प्रदर्शन करती हैं।

भित्ति चित्रकला भारत के कई हिस्सों में लोकप्रिय है, लेकिन ओडिशा, छत्तीसगढ़, बिहार और राजस्थान में कई नामो से जाना जाता है। भित्तिचित्र दो संस्कृतिक शब्दों से मिलकर बना है, 'भित्ति' का अर्थ है "दीवारें" और चित्र का अर्थ है "चित्रकला"। इसलिए भित्तिचित्र को कला से अधिक एक तकनीक के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ संत और विद्वान शास्त्रों और धार्मिक ग्रंथों का ज्ञान मौखिक रूप से पीढ़ी–दर–पीढ़ी देते रहे, वहीं कुछ समुदाय और मडंल भी उभरे जिन्होंने अपने साझा अनुभवों और पवित्र मिथकों को फैलाने के लिए कावड़, कलमकारी, पट्टाचित्र और भित्तिचित्र जैसी रचनात्मक विधाओं का सहारा लेते हैं।

➢ बिहार :–

बिहार का मिथिला क्षेत्र विश्व प्रसिद्ध मधुबनी कला का जन्मस्थान है। मधुबनी में मुख्य रूप से हिंदू महाकाव्यों के प्रमुख पात्रों और प्रमुख हिंदू देवी–देवताओं जैसे शिव और पार्वती, राधा और कृष्ण, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के जीवन के प्रसंगों को चित्रित किया जाता है। परंपरागत रूप से ये चित्र घर की महिलाओं द्वारा बनाए जाते थे और इनके दो रूप थे – भित्ति चित्र (दीवारों पर बनाए जाने वाले चित्र) और अरिपना (जमीन पर बनाए जाने वाले चित्र)। घर में भित्ति चित्र बनाने के लिए तीन स्थान पारंपरिक रूप से उपयुक्त माने जाते हैं, परिवार के देवी–देवताओं का कमरा, नवविवाहित जोड़े का कमरा और प्रवेश कक्ष।

➢ राजस्थान –

राजस्थान की भित्ति चित्रकला में गेरू (लाल), जहरी (काला) और नील (नीला) जैसे प्राकृतिक रंगों का उपयोग किया जाता है। महात्मा समुदाय के नाम से मशहूर माथेरान के लोग अपने घरों और मंदिरों में बड़ी कुशलता और सटीकता से ये भित्ति चित्र बनाने के लिए जाने जाते हैं। करौली स्थित मदन मोहन मंदिर राजस्थान की भित्तिचित्र कला के सबसे पुराने नमूनों में से एक है।

➢ छत्तीसगढ़ :–

छत्तीसगढ़ के राजवार समुदाय की महिलाएं फसल के मौसम (क्षेत्र) का स्वागत करते हुए भित्ति चित्र बनाती हैं। इन चित्रों में देवी–देवताओं, जानवरों, पक्षियों और मानव आकृतियों को प्रमुखता से दर्शाया जाता है। ये चित्र दीवारों पर लिपाई के बाद बनाए जाते हैं, यानी दीवारों पर पहले मिट्टी, गोबर और पानी के मिश्रण का लेप लगाने के बाद।

DO NOT COPY

➢ ओडिशा :–

शैली में भिन्न होने के बावजूद पट्टाचित्र, भित्ति चित्र और तलपत्र की उत्पत्ति ओडिशा में हुई है। पट्टाचित्र एक प्रकार की चित्रकला है जो कपड़े पर उत्कीर्ण कला है। जैसा की पहले उल्लेख किया गया है, भित्ति चित्र मंदिरों और महलों की दीवारों पर बनाए जाने वाले चित्र हैं, जबकि तलपत्र सूखे ताड़ के पत्तों पर बनाए जाने वाले चित्र हैं। इन कला रूपों का अभ्यास करने वाला चित्रकार समुदाय पुरी जिले के रघुराजपुर नामक गाँव से आता है। जगन्नाथ, रामायण, शैव, शाक्त, यमपति कुछ ऐसे विषय है जो यहां बार–बार दिखाई देते हैं। भित्ति चित्र, पट्टाचित्र के साथ, आज भी ओडिशा की कलात्मक परंपरा का अभिन्न अंग बना हुआ हैं।

➢ मध्य प्रदेश :–

मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और ओडिशा की आदिवासी चित्रकला परंपरा में सजीव भित्ति कला का बहुत बड़ा योगदान है। मध्य प्रदेश की गोड़ कला को 'कोंड' शब्द से लिया गया है। 1400 वर्ष से भी अधिक पुरानी इस परंपरा में गोंड जनजाति घरों और गुफाओं की दीवारों पर चित्रकारी और नक्काशी करती आ रही है। पौराणिक कथाएं, लोक कथाएं और प्रकृति गोड़ कला के विषयों का आधार हैं।

भिल कला प्रतीको और रंगों से भरपूर है और मनुष्य तथा प्रकृति के बीच के गहरे संबंध को दर्शाती है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान में रहने वाला भील समुदाय भारत का दूसरा सबसे बड़ा आदिवासी समुदाय है। प्राकृतिक रंगों के लिए हल्दी, सब्जियां और पत्तियों का प्रमुखता से उपयोग किया जाता है, जबकि ब्रश नीम की टहनियों और अन्य शाखाओं से बनाए जाते हैं। बिंदु इस चित्रकला की एक विशिष्ट विशेषता है और कहा जाता है कि बिंदुओं का प्रत्येक समूह किसी विशेष पूर्वज या देवता का प्रतिनिधित्व करता है।

➢ महाराष्ट्र :–

अपनी अनूठी और विशिष्ट शैली में रची–बसी वारली भित्ति चित्रकला, जो जनजातीय मान्यताओं और दैनिक जीवन से गहराई से जुड़ी है और मानव रचनात्मकता के कुछ पारंपरिक रूपों को दर्शाती है, भारत के कई स्वदेशी निवासियों की तीव्र भावनाओं को व्यक्त करने वाली भाषा का प्रयोग करती है। कलाकार, विशेष रूप से महाराष्ट्र और दक्षिणी गुजरात के कुछ क्षेत्रों में, अपने पूर्वजों से सीखी हुई बारीकियों का अभ्यास करना जारी रखते हैं।

DO NOT COPY

➢ केरल :–

अपनी शैली में समृद्ध और व्यापक, केरल की भित्ति कला सौंदर्य और कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण है। हालांकि केरल के भित्ति चित्रों का इतिहास 8वीं शताब्दी तक जाता है, लेकिन इनमें से अधिकांश चित्र 15वीं और 19वीं शताब्दी के बीच बनाए गए थे। पल्लव कला और संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित होने के साथ–साथ भित्ति चित्रकारों को संस्कृत ग्रंथों जैसे कि शिल्परत्नम और चित्रसूत्रम से भी प्रेरणा मिली। क्या आप जानते हैं कि गजेंद्र मोक्ष, जो कि सबसे बड़ा भित्ति चित्र है, अलाप्पुझा जिले के कृष्णपुरम महल में स्थित है। पारंपरिक रूप से, पंचवर्ण या पांच रंग (जैसे लाल, पीला, गेरू, हरा, काला, सफेद) वनस्पति या खनिज रंगों से प्राप्त किए जाते हैं। देवी–देवताओं और पात्रों के सुडौल और कामुक शरीर, समृद्ध रूप से भरे स्थान और रूपांकनों से सजी पृष्ठभूमि केरल की भित्ति चित्रों की कलात्मकता में योगदान करती है।

➢ झारखंड :–

झारखंड राज्य में कई आदिवासी समुदाय रहते हैं। इनमें ओरांव, संथाल, मुंडा और हो शामिल हैं। इन समुदायों के आदिवासी सोहराई त्योहार मनाकर अपने पूर्वजों के प्रति प्रचुर फसल, पशुधन और जीविका के लिए कृतज्ञता और श्रद्धा व्यक्त करते हैं। सोहराई चित्रकला इस उत्सव का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। झारखंड के हजारीबाग क्षेत्र में विशेष रूप से लोकप्रिय, सोहराई और खोवर कला अन्य सभी स्वदेशी कलाओं की तरह, वन जगत से बहुत कुछ लेती हैं। गौरैया, मोर, गिलहरी और गाय के चित्र मिट्टी की दीवारों पर बार–बार दिखाई देते हैं, जो उनकी कैनवास का काम करती हैं। प्रकृति को अपनी प्रेरणा मानकर, माताएं सोहराई चित्रकारी की कला को अपनी बेटियों को सौंपती हैं, जिससे यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। काली मिट्टी, लाल मिट्टी और पीली मिट्टी मुख्य प्रकार की मिट्टी हैं जिनसे प्राकृतिक रंग प्राप्त किए जाते हैं।

➢ हरियाणा :–

हरियाणा हमेशा विभिन्न जनजातियों, आक्रमणकारियों, नस्लों, संस्कृतियों और धर्मों के लिए एक मिलन स्थल रहा, जो 2500 ईसा पूर्व से वापस जाता था, और यह चित्रकला की कई शैलियों के विलय का गवाह बना। हरियाणा में भित्ति–चित्रों की परंपरा तो रही, परंतु यहां स्वतंत्र रूप से भित्ति–चित्रों की कला का विकास नहीं हुआ है। हरियाणा में इस कला क प्रवेश राजस्थान के सीमावर्ती दक्षिणी जिलों की ओर से हुआ तथा हरियाणा में राजस्थान सीमा से सटे प्रदेशों में इन कलाओं का सुंदर चित्रण देखने को मिलता है। हरियाणा के भित्ति–चित्रों के प्रमुख स्रोत राजस्थान की कला जैसे मेवाड़, मारवाड़, हाड़ौती तथा ढूंढाड़ शैली के भित्ति–चित्रों के भव्य नमूने रहे हैं। यह भी हो सकता है कि हरियाणवी चितेरों ने राजस्थानी कलाकारों से इस कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। हरियाणा में एक सदी पुरानी

DO NOT COPY

इमारतों की भित्तियों पर उपलब्ध अलंकरण व चित्रण में विषय–वस्तु, रंग, अमाप तथा शैलिगत विविधताएं लगभग उतनी ही हैं, जितनी कि राजस्थान के महलों, ठाकुरद्वारों और विशेषतः शेखावाटी क्षेत्र की हवेलियों में देखने को मिलती हैं।

इन हवेलियों पर हजारों की संख्या में भित्ति चित्र हैं, जिनमें पौराणिक विषय, महाभारत, रामायण, राधाकृष्ण लीला, पशु–पक्षी, सामाजिक क्रिया कलाप एवं अन्य पौराणिक कथाओं से संबंधित घटनाओं को प्रमुख रूप से दर्शाया गया है। इनमें पशु–पक्षियों को हष्ट–पुष्ट एवं पेड़–पौधों के साथ दिखाया गया है। इसके अलावा उस दौर के राजा–महाराजाओं के गौरव गाथाओं का सुंदर चित्रण किया गया। इनके द्वारा महत्वपूर्ण घटनाओं, प्रसंगों, पात्रों, लीलाओं आदि पात्रों को चित्र के माध्यम से दर्शाया गया है। चित्रों में शेखावाटी शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है और यह मुगल शैली से भी अछूते नहीं रहे हैं।

DO NOT COPY

तृतीय अध्याय

- हरियाणा की भित्ति–चित्रकला का इतिहास
- हरियाणा के भित्ति चित्रों की पृष्ठभूमि
- भिवानी के बड़वा गांव के भित्ति चित्र
- कुरूक्षेत्र भू – भाग के भित्ति चित्र
- कैथल जिले के कलायत के मंदिरों के भित्ति चित्र
- जींद जिले के पांडू पिंडरा मंदिरों के भित्ति चित्र

हरियाणा की भित्ति–चित्रकला का इतिहास

➢ हरियाणा :–

हरियाणा उत्तर भारत का एक राज्य है जिसकी राजधानी चंडीगढ़ है। इसकी सीमाएं उत्तर में पंजाब और हिमाचल प्रदेश, दक्षिण व पश्चिम में राजस्थान से जुड़ी हुई हैं। यमुना नदी इसके उत्तर प्रदेश राज्य के साथ पूर्वी सीमा को परिभाषित करती है। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली हरियाणा से तीन ओर से घिरी हुई है और फलस्वरूप हरियाणा का दक्षिणी क्षेत्र नियोजित विकास के उद्देश्य से राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में शामिल है।

हरियाणा भारत का एक ऐसा राज्य है जो विशेष रूप से अपनी संस्कृति, इतिहास और कला के लिए जाना जाता है। हरियाणा के मंदिर, किले, हवेलियां और स्मारक इसकी सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण अंग हैं जो उस क्षेत्र के इतिहास और कला परंपराओं को दर्शाते हैं। हरियाणा की लोककला, जैसे मूर्तिकला, चित्रकला, हस्तशिल्प और भित्ति चित्रकला आदि स्थानीय कला हरियाणा के इतिहास को विशेष रूप से जीवांत बनाती है।

➢ हरियाणा की भित्ति चित्रकला का इतिहास :–

2500 ई. पू0. से ही हरियाणा विभिन्न जनजातियों, आक्रमणकारियों, जातियों, संस्कृतियों और धर्मों का मिलन स्थल रहा है और यहां चित्रकला की अनेक शैलियों का संगम देखने को मिलता है। सिसवाल स्थल से प्राप्त मिट्टी के बर्तनों और उन पर काले और सफेद रंग में चित्रित आकृतियों से इस राज्य की कला की पहली झलक मिलती है। मिथाथल और बनावली स्थलों से भी पता चलता है कि यहां कला अस्तित्व था, लेकिन दक्कन और दक्षिण भारत की तुलना में निश्चित रूप से क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर रेखाओं में है, जिनमें पुष्पीय कला का थोड़ी अधिक रचनात्मकता मिलती है।

➢ हरियाणा में चित्रकला की उत्पत्ति :–

हर्षवर्धन के शासनकाल में कला और चित्रकला को विशेष महत्व दिया गया, क्योंकि हर्ष स्वयं एक चित्रकार और कला के पारखी थे। हर्ष की मृत्यु के बाद, राजपूतों के अधीन कुछ समय के लिए चित्रकला का विकास हुआ, लेकिन दिल्ली सल्तनत की स्थापना ने इस पर विराम लगा दिया। सुल्तानों को कला में कोई रुचि नहीं थी और वे युद्ध और लड़ाई लड़ने में व्यस्त थे और कला को कभी संरक्षण नहीं दिया। मुगल साम्राज्य के शासनकाल के दौरान कला अपने चरम पर पहुंच गई। जहांगीर कला का संरक्षक था, और उसके शासन के दौरान फारसी चित्रकला शैली का प्रभाव भारतीय शैली से खुशी–खुशी विवाहित था।

- **https://artandculturalaffairshry.gov.in/painting/#:~:text (हरियाणा के भित्ति चित्रकला का इतिहास)**

DO NOT COPY

➢ प्रदर्शन पर कला :–

गुडगांव के मीरपुर में महाराजा तेज सिंह के महल की दीवारों को राजपूत शैली में बनाए गए चित्रों से सजाया गया है। दीवारों पर बने पैटर्न रामायण के दृश्यों को दर्शाते है। गुडगांव में ''मातृ मद की प्रियाओं'' में पौराणिक पेंटिंग हैं, लेकिन ये धीरे–धीरे लुप्त होती जा रही हैं। ''अस्थल बोहर'' पेंटिंग भी राजपूत शैली में है, और उनका प्रभाव पंचकुला और पिंजौर में शिव मंदिरों, कौल में वेणुमधव मंदिर, कैथल और पबनमा में मंदिरों, कलायत में कपिल मूनि मंदिर में भी देखा जा सकता है।

पिंजौर में रंग महल भी दीवार चित्रों से सजाया गया है, जो सीधे मुगल चित्रकारों के हाथों से एक मौलिकता है। अंबाला के जगाधरी में लाला बालक राम और लाला जमुना दास की समाधि हिंदू पौराणिक कथाओं से अपनी दीवार चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। दोनों के प्रवेश द्वारों पर भारी चित्रित ''द्वारपालों'' से घिरे हुए है। समाधि के पास स्थित राजीवाला मंदिर भी अपने चित्रों में धार्मिक विषयों को समेटे हुए है। इसकी दीवारें, कक्ष और बरामदा जैन शैली के अधीन हैं, जबकि किला मुबारक, दो मंजिला मुगल संरचना पक्षियों और फूलों की छवियों से अलंकृत है।

कुरुक्षेत्र के भद्र काली मंदिर में धार्मिक विषय और भित्ति चित्र पूरे ढ़ाचे में चल रहे हैं। जिसमें निचले सिरे की सीमा पर एक व्यापक फ्रिज है। दूसरी मंजिल भित्ति चित्रों से आच्छादित हैं, जैसा कि रानी चंद कौर की हवेली (घर) और पिहोवा में श्री राम राधा का मंदिर और बाबा श्रवण नाथ का मंदिर है। पूरे हरियाणा में मंदिरों और पवित्र हिंदू स्थलों में समान चित्र हैं।

➢ सुलेख का विस्तृत उपयोग :–

लिपि से प्रभावित फारसी शैली ने भी प्रमुखता प्राप्त की, विशेष रूप से भित्ति चित्रों के साथ जिनमें फारसी लिपि का स्वतंत्र रूप से उपयोग किया जाता है। विस्तृत विवरण केंद्रीय विषय बनाते हैं। जिसके भीतर कुरान की आयते सुलेख पद्धति का अनुसरण करते हुए विभिन्न प्रवाह शैलियों में लिखी जाती हैं।

मुगल पेंटिंग भी हिंदू मंदिरों में विशेष रूप से कैथल, कलायत और रोहतक में दिखाई दी। यहां भी विषयवस्तु पौराणिक कथाओं से बहुत अधिक प्रेरित हैं और इनमें नैतिक और आध्यात्मिक संदेश हैं। रोहतक में पेंटिंग्स मिली हैं, जो अब कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के पांडुलिपि विभाग के कब्जे में हैं। नीले, गुलाबी, हरे, नारंगी और लाल रंगों का उदार उपयोग इन चित्रों की सुंदरता को बढ़ाता है, जो मूल रूप से भगवान विष्णु और उनके अवतारों को दर्शाते है।

➢ हरियाणा के भित्ति–चित्रों की पृष्ठभूमि :–

विश्व में आदि–काल से ही मनुष्य ने अपने आसपास के वातावरण, मनोरंजन, मानसिक दशा, तथा अन्य परिस्थितियों को एक रूप या आकार में संजोकर उसे व्यक्त करने की परंपरा रही है। हिंदुस्तान में

DO NOT COPY

• **https://www.ijrar.org/ — ''हरियाणा के सांस्कृतिक एंव सामाजिक धरोहर (शौधार्थी सुमन सैनी और डॉ. सुषमा सिंह), (Page- 269, 270, 271, 272, 273, 274, 275), (IJRAR2001453)**

भी यह परंपरा आदि काल से चली आ रही है। इसमें हर क्षेत्र की अपनी संस्कृति, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परंपराएं रही हैं, जोकि एक दूसरे से कहीं न कहीं विभिन्नता एवं समानता रखती हैं। अजंता व एलोरा की गुफाएं इसका अच्छा उदाहरण हैं। वैसे तो चित्र हरियाणा में भी भित्ति–चित्रों की परंपरा रही है, परंतु यहां स्वतंत्र रूप से भित्ति चित्र की कला का विकास नहीं हुआ। हरियाणा में इस कला का प्रवेश राजस्थान के सीमावर्ती दक्षिणी जिलों की ओर से हुआ होगा। इसका विस्तार उत्तर में छछरौली तथा मनसा देवी शक्तिपीठ तक हुआ।

राजस्थान में भित्ति–चित्रों की 17वीं और 18वीं सदी में वहां यह कला अपने चरम पर पहुंच चुकी थी। किशनगढ़ की हवेलियों के भित्ति चित्र विषय वस्तु तथा शैली की विविधता के कारण एक अजूबा सा लगता है कि हरियाणा के भित्ति चित्रों के प्रेरणा स्रोत राजस्थानी कला के ये भव्य नमूने रहे होंगे। यह भी हो सकता है कि हरियाणवी चित्रों में राजस्थानी कलाकारों से इसे कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया हो।

हरियाणा में राजस्थान सीमा से सटे प्रदेशों में इन कलाओं का सुदंर चित्रण देखने को मिलता है। हरियाणा में एक सदी पुरानी इमारतों की भित्तियों पर उपलब्ध अलंकरण व चित्रण में विषय–वस्तु, रंग, रेखांकन और वास्तविक चित्रांकन करते समय स्वतंत्र रूप से अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करके भी कला सृजन किया है, जिसकी वजह से हरियाणा में भित्ति–चित्रण व रेखांकन में, प्रवेश के परिवेश की पूरी झलक व छाप दिखाई देती है। भित्ति–चित्र एक समृद्ध परंपरा रही है जैसे मेवाड़, मारवाड़, डाड़ौती तथा ढूढाड़। भित्ति–चित्रकला का बीज पंद्रहवीं सदी में पनपा।

यह कलाएं कहीं न कहीं कला प्रेमी एवं कलाकार के मानसिक प्रतिबिंब को प्रस्तुत करती हुई नजर आती हैं और उन्हें मानसिक संतोष एवं गौरव प्रदान करती हैं। ऐसी कलाएं जोकि 100 से 150 वर्ष पुरानी हैं, वे हिसार, भिवानी, रोहतक, जींद, सिरसा, रेवाड़ी, कैथल, कुरुक्षेत्र आदि जिलों के कुछ गांव एवं कस्बों में हवेलियों, धर्मशालाओं, नौहरें, बावरिया, मंदिरों आदि में निर्मित देखने को मिलती हैं।

➢ भिवानी के बड़वा गांव के भित्ति–चित्र :–

भिवानी जिले के बड़वा गांव की सेठों की बड़ी–बड़ी हवेलियों के अलावा, तालाब, कुएं, हवेलियां, नोहरा, धर्मशालाएं, छतरियां आदि में अनेक भित्ति चित्र मिलते हैं। इन चित्रों में राजस्थान के चित्रों जैसी विशेषताएं देखी जाती हैं।

➢ सेठ परशुराम द्वारा निर्मित केसर तालाब :–

यह तालाब सेठ परशुराम ने यहां पर केसर तालाब का निर्माण करवाया जोकि यात्रियों का प्रमुख आकर्षण केंद्र रहा है। ऐसा कहा जाता है कि परशुराम की बहन गोबर चुगती थी। यह सेठ परिवार के लिए शर्म की बात थी और लोग अक्सर ऐसे छोटे कार्य के प्रति ताने मारते थे। तब सेठ ने यहां पर

DO NOT COPY

मौजूद तालाब पक्का करवाया और उसका नाम केसर तालाब रखा। इस तालाब का उपयोग दैनिक क्रियाकलापों के लिए इस्तेमाल होता था। इसके पास एक गहरा जल कुंड है जिसमें दूखी महिलाएं कूदकर अपनी जान दे देती थी। इसलिए इसे मुक्तिधाम भी कहा जाता है।

यहां लोग इसे आगौर भी कहते है। इस तालाब के किनारे के ऊपर की छत पर गुबंद/छतरियां बनी हुई हैं, जिसमें राधा कृष्ण की रासलीला के चित्रों के माध्यम से प्रमुखता से दर्शाया गया है। इनमें राधा कृष्ण एक दूसरे का हाथ पकड़े घेरे में नृत्य कर रहे हैं और उनके पीछे वाद्य यंत्रों की आकृतियां चित्रित की गई हैं जैसे ढोलक, नगाड़े, बांसुरी, हारमोनियम, शहनाई आदि। यह शायद किसी समारोह को चित्रित कर रहा है। चित्रों में गतिशीलता और लय है। लाल, भूरे रंग का उपयोग किया गया है।

श्रीकृष्ण को नीले रंग में दिखाया गया है, जबकि राधा का रंग गोरा दिखाया गया है। इन आकृतियों के पीछे पशु–पक्षियों को दिखाया गया है, जिनमें मोर, तोता, चिड़िया आदि हैं। इसमें लाल, पीले, नीले रंग का इस्तेमाल किया गया है। गुंबन्दों की आकृतियों को गतिशील और समान अनुपात में दिखाया गया है। इनका छोटा कद व चेहरा गोल हैं। समय के अनुसार आज इनके रंग धूमिल पड़ गए हैं, परंतु केंद्र में फूल आज भी अपने अतीत को समाएं हुए है।

➢ सेठ हुकूमचंद लाला सोहनलाल की हवेली :–

यह हवेली लगभग आज से डेढ़ सौ साल पुरानी है, जिसके प्रमुख द्वार पर एक हष्ट–पुष्ट हाथी को सुसज्जित एवं गतिशील अवस्था में दिखाया गया है। इस हाथी की पीठ पर चतुर्भुज ज्यामितीय डिजाइन का कपड़ा एंव उस पर लकड़ी की काठी को सुसज्जित किया गया है। इसमें राजा–रानी को फूल देते हुए अपने प्यार का इजहार करते हुए दिखाया गया है।

हाथी के सिर पर भी चकौर ज्यामितीय आकार की टोपी रखी गई है जो उसकी शोभा बढ़ा रही है। इसके अलावा यहां दीवार पर धार्मिक चित्र मौजूद हैं जैसे विष्णु जी लक्ष्मी के साथ अपनी सवारी पर विराजित हैं तथा दूसरे चित्र में शेरावाली माता अपनी सवारी पर विराजित हैं। इसके अलावा श्री राधा कृष्ण के प्रेम मिलाप को दर्शाया गया है। हाथी का चित्रण कोटा शैली में अधिक किया गया है।

➢ सेठ लक्ष्मीचंद का कटहरा :–

बड़वा में लक्ष्मीचंद के कटहरा के अंदर छत पर राजाओं–महाराजाओं व देवी–देवताओं को एक साथ चित्रित किया गया है। इस चित्र में बाएं ओर से राधा रानी की सवारी को दिखाया गया है जो रथ पर सवार है तथा कुछ महिलाएं उनके पीछे चल रही हैं जो उनकी सेविकाएं प्रतीत होती हैं। कई घुड़सवार पीछे–पीछे चल रहे हैं जोकि महाराज के अंगरक्षक हैं और सुरक्षा को सुनिश्चित कर रहे है।

➢ कृष्ण राधा की चोटी बनाते हुए :–

DO NOT COPY

इस चित्र में श्री कृष्ण जी कुर्सी पर विराजमान हैं और राधा मुड्ढे पर बैठी हैं। श्री कृष्ण राधा की चोटी गूंथ रहे हैं और राधा के हाथ में शीशा पकड़ा हुआ है। शीशे में राधा का चेहरा स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

इस चित्र में दिखाई गए कुर्सी व मुड्ढे इस चित्र पर स्थानीय प्रभाव नजर आता है तथा पहनावे से राजस्थानी प्रभाव नजर आता है। इस प्रकार चित्रकार के चित्र में तत्कालीन प्रभाव नजर आते हैं जो उस समय उसने देखा और चित्रित किया। इस चित्र में आंखें मछली के आकार जैसी बनाई गई हैं तथा मुकुट से चित्रण में मुगल प्रभाव नजर आता है। पृष्ठभूमि हल्के पीले रंग की हैं तथा शरीर को पतला एवं लंबा दिखाया गया है जबकि बालों की लंबाई शरीर के अनुपात में कम है।

दूसरी ओर दाएं से बाएं की ओर देवी–देवताओं की सवारी आ रही है जिसमें सभी देवता अपने–अपने वाहन पर बैठे हैं तथा ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि राजा रानी अपने घर पर सवार होकर देवी–देवताओं के स्वागत के लिए पधार रहे हैं। इन चित्रों में हाथी, घोड़े आदि को बहुत अच्छे से सुसज्जित किया गया है। इनकी पृष्ठभूमि पीले रंग की है तथा चित्रों में नीला, पीला, हरा, भूरा आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। चित्रों के वस्त्र व आभूषणों की देख इन पर मुगली व राजस्थानी प्रभाव प्रतीत होता हैं।

- लाला लायकराम फुलचंद की हवेली :–

यह हवेली लगभग 160 साल पुरानी है। इस हवेली की बरामदे की दीवार के ऊपरी भाग में सिपाही का चित्रण किया गया है। इसमें एक व्यक्ति घोड़े पर सवार है तथा 3 सिपाही आगे–पीछे एक कतार में तथा 5 सिपाही समानांतर चल रहे हैं। इसकी पृष्ठभूमि पीली है। यह सिपाही पूरे जोश में दिखाई पड़ रहा है।

- तुलाराम लाला डूंगरमल की हवेली की हवेली :–

यह हवेली आज से लगभग 100 साल पहले की बनी हुई है। इसकी दीवार पर रेल का इंजन डिब्बों सहित दिखाया गया है। इंजन का रंग काला एवं डिब्बों का नीले रंग से चित्रित किया गया है। रेल की खिड़की के ऊपर के भाग में जाली बनाई गई है जिसमें यात्रियों को दिखाया गया है एवं इंजन से धुआं निकल रहा है। रेल के पीछे प्राकृतिक दृश्य भी दिखाया गया है।

दूसरी ओर लक्ष्मीचंद का कटहरा में चालक रेलगाड़ी चला रहा है जो कि बहुत ही आकर्षक एवं सुंदर है। इसमें 13 डिब्बे और एक इंजन को दर्शाया गया है। इस गाड़ी में यात्रियों को भी चित्रित किया गया है एवं बाहर इसके सामने एक व्यक्ति हाथ में झंडी लिए खड़ा है जो गाड़ी के लिए संकेतक का कार्य कर रहा है। इसे देखकर यह लगता है कि यह चित्र हिंदुस्तान में अंग्रेजों द्वारा 19वीं सदी में

DO NOT COPY

चलाई गई पहली रेल का चित्रित किया गया है। यह चित्र उस समय की जीवन व्यवस्था की व्याख्या कर रहा है।

➢ डाकिये का चित्र :–

यहां एक दीवार पर डाकिये का चित्र चित्रित है। उसकी आंखें भी मीनाकृत पान के पत्ते के समान हैं जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इस पर स्थानीय कलाकार का प्रभाव रहा है। कपड़े जूते आदि देखकर इन पर कंपनी शैली का प्रभाव प्रतीत होता है तथा अंग्रेजी भाषा में उस पर कुछ लिखा होना जो कि उस शैली के प्रभाव को और सुदृढ़ करता है।

➢ यशोदा कृष्ण का चित्र :–

इस चित्र में यशोदा मैया ने श्री कृष्ण को गोद में उठाए रखा है तथा यह मातृत्व भाव को दर्शा रहा है। इस चित्र में चेहरा छोटा जबकि शरीर हष्ट–पुष्ट बना है, आंखें बादाम जैसी तथा चेहरा गोल है और भोहें मोटी–मोटी हैं। सिर पर कंलगी लगी हुई है जो मुगल प्रभाव को दर्शाती है। अगर कपड़ों की तरफ देखें तो कपड़ों से राजस्थानी प्रभाव नजर आता है।

➢ कृष्ण व कालिया नाग का चित्र :–

चित्र में श्री कृष्ण जी को नाग के फन पर अपनी लीला करते हुए दिखाया गया है। श्री कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं तथा उनके दोनों ओर नाग देवियां विशेष मुद्रा में खड़ी हैं जिनका नीचे का हिस्सा सर्प के आकार में और ऊपर से नारी के रूप में दिखाया गया है अर्थात अर्धनागेश्वरी के रूप में उपस्थित हैं जो कि कृष्ण की तरफ मुख करके हाथ जोड़कर विनती अवस्था में खड़ी हैं। इस चित्र में चश्म चेहरों की आकृति में दर्शाया गया है। आंखें नीली मीन जैसी है जोकि जयपुर शैली के अंतर्गत आती हैं। पूरे चित्र पर नाथद्वारा शैली का प्रभाव प्रमुखता से दिखाया गया है।

➢ सरस्वती देवी का हंस पर विराजित चित्र :–

इस चित्र में सरस्वती देवी हंस पर विराजित हैं तथा हंस के मुख में माला है। यहां एक चश्म–चेहरा चित्रित अवस्था में दिखाया गया हैं। सरस्वती मां के एक बाल की लट कान के पास से चेहरे पर पड़ी है। सरस्वती मां के एक हाथ में पुस्तक और दूसरे हाथ में फूल हैं जिन्हें हरे रंग से चित्रित किया गया है। इस चित्र में पीछे महिला चंवर झुला रही है जिसकी आंखें बादाम जैसी प्रतीत होती हैं। इसमें दोनों राजस्थानी व मुगल प्रभाव का मिश्रण प्रतीत होता है। चित्रकार ने अपनी–अपनी समझ के अनुसार छवियों के अंकन में भेद किया है।

DO NOT COPY

➢ कुरुक्षेत्र भू–भाग के भित्ति चित्र :–

''कुरुक्षेत्र संम तीर्थं नान्यद् भुविशुभावहमू।''

अर्थात, कुरुक्षेत्र के समान कल्याणकारी और दूसरा कोई तीर्थ भूमि पर नहीं है।

इसी पावन भू–भाग के भित्तिचित्रों के विषय मानकर यह लेखन कार्य हुआ है। विषय के आरम्भ से पूर्व, इस भू–भाग का हमारे शास्त्रों में क्या स्वरूप है, हमारे ऋषि–मूनि, मनीषियों की इसके विषय में कैसी धारणाएं हैं तथा भूगोल पर अब तक इसकी पहचान किस प्रकार से है, इसका दिग्दर्शन आवश्यक है।

वैदिक काल से कुरुक्षेत्र भूमि के महत्व एवं कारणों की एक परंपरा हमें प्राप्त होती है। यद्यपि आजकल जन साधारण की धारणा है कि कुरुक्षेत्र के राजा कुरु से इसका नाम पड़ा, किन्तु यह सत्य है कि कुरुक्षेत्र का महत्व कुरु से बहुत पहले ही स्थापित हो चुका था। सर्वप्रथम ब्रह्मा जी को इसी भू–भाग पर चारों वेदों का दर्शन ज्ञान प्राप्त हुआ। तब इस भू–भाग को 'कु– भूमि', रू – शब्दरूपीज्ञान – वेद, इनका क्षेत्र – कुरूक्षेत्र नाम दिया गया।

इसी प्रसंग में इसे ब्रह्मवेदि नाम से भी पुकारा गया। इसके अन्तर्गत सृष्टि की सबसे पहली साहित्यिक रचना ऋग्वेद की एक अनुश्रुति के अनुसार इन्द्र देव ने वृत्रासुर का वध शर्याणवत् सरोवर के बाह्यांचल में किया था। 'कुरु' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता में मिलता है। तत्तपश्चात् इसका वर्णन तैत्तिरीय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण तथा तैतिरीय आरण्यक में भी मिलता है।

कुरुक्षेत्र के एक प्राचीन सरोवर का नाम प्लाक्षा था जो कमलों से पूर्ण था। ऋग्वेद के एक उपाख्यान के अनुसार इसी स्थान पर महाराजा पुरुरवस् को अपनी खोई हुई प्रेयसी उर्वशी प्राप्त हुई थी। पुराण, महाभारत, मनुस्मृति आदि में कुरुक्षेत्र के कई अन्य नाम भी देखने को मिलते हैं, जिनसे इस भू–भाग के महत्व पर अधिक प्रकाश पड़ता है। ये नाम इस प्रकार हैं – ब्रह्मवेदि, ब्रह्मवर्त, ब्रह्मार्षिदेश, उत्तरवेदी, समन्तपंच, धर्मक्षेत्र आदि।

ऋग्वेद में वर्णित भरत एवं कुरु जनजाति के वंशज महाराज कुरु को पुराण साहित्य में कुरुक्षेत्र का संस्थापक कहा गया है। यह पौराणिक परंपरा कुरुक्षेत्र के राजा कुरु से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करती है।

कुरुक्षेत्र भू–भाग की सभ्यता प्राचीन काल से प्रसिद्व है। यहां के लोगों का वैदिक काल से सामाजिक जीवन बहुत सरल और सादा रहा है। मनुस्मृति से प्रमाणित होता है कि कुरुक्षेत्र तत्कालीन भारत में सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा का सर्वोच्च केन्द्र था। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाभारतीय युद्ध से लेकर महाराजा हर्षवर्धन पर्यन्त यह क्षेत्र सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से उन्नति के शिखर पर था।

- **https://www.exoticindiaart.com/ —** कुरूक्षेत्र भू – भाग के भित्तिचित्र **(Page-1, 2, 58, 59), 2008**

DO NOT COPY

शतपथ ब्राह्मण में यहां के लोगों की भाषा और यज्ञ पद्धति को उत्तम माना गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में सरस्वती और दृषद्वती के तट पर अनेक सूत्रों का विधान है। सूत्रों का सरस्वती से सम्बद्ध होने के कारण इन्हें 'सारस्वत' कहा गया। महाभारत और वामनपुराण में राजा कुरु की घोर तपस्या, कठोर परिश्रम तथा कर्म के फलस्वरूप कुरुक्षेत्र भू–भाग के धर्मक्षेत्र बनाने का वर्णन प्राप्त होता है। राजा कुरु के महान त्याग से प्रसन्न होकर देवताओं का निवास भी यहां पर हुआ और इसी कारण यह क्षेत्र 'धर्मक्षेत्र' कहा जाने लगा।

अनेक धार्मिक स्थल आज भी यहां वनों, सरोवरों और आश्रमों के रूप में कुरुक्षेत्र की पवित्रता के साक्षी हैं। ब्रह्मसर, जिसका समीकरण ऋग्वेद के शर्याणवत के साथ किया गया है, सहस्राब्दियों की श्रद्धा का केन्द्र रहा हैं।

कुरुक्षेत्र का धार्मिक महत्व इतना अधिक हो गया था कि पांचवीं शताब्दी में महाराज देवनीक द्वारा एक प्रस्तर अभिलेख पर उत्कीर्ण कुरुक्षेत्र महात्म्य के रूप में विदेशी भूमि ला–ओस से प्राप्त हुआ है। यह एक प्रस्तर पर चारों तरफ खुदा हुआ है। राजा कुरु द्वारा कुरुक्षेत्र की स्थापना विदेशी भूमि पर की गई थी। कुरुक्षेत्र की महानता को दर्शाने वाले लगभग वही श्लोक प्रस्तर पर उत्कीर्ण हैं जो हमें महाभारत एवं पुराणों में मिलते हैं। कुरुक्षेत्र के धार्मिक महत्व के लिए अधिक क्या कहा जाये, स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के मुख में उच्चारित 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र' उद्घोष ही इसकी धार्मिक महत्व को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

इस भू–भाग के महत्व का एक अन्य कारण यह भी था कि भगवान विष्णु ने यह वरदान दिया था कि आज से यह स्थान जहां राजा कुरु ने हल चलाया है, धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध होगा।

कुरु से बहुत पहले कुरुक्षेत्र के अस्तित्व का प्रमाण हमें शतपथ ब्राह्मण से मिलता है, जिसमें पुरुरवस् और उर्वशी की प्रेम गाथा के संदर्भ में कुरुक्षेत्र का वर्णन है। प्राचीन साहित्य में यह प्रेम कथा अत्यन्त लोकप्रिय रही। ऋग्वेद से लेकर महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीयम तक इसका प्रभाव बना रहा। इस प्रकार कुरुक्षेत्र धर्मभूमि और कर्मभूमि के साथ एक प्रेम भूमि भी कहा जा सकता है।

➢ कौल के विष्णु मंदिर :–

कोल के विष्णु मंदिर में मर्यादा पुरुषोत्तम रामजी व सीताजी चौकी पर विराजमान हैं। लक्ष्मणजी को चौकी के पीछे खड़े होकर चंवर से हवा करते सेवक भाव से चित्रित किया गया है। यह उनके भ्रातृ प्रेम का प्रमाण है। सीताजी चौकी पर श्री रामजी के पीछे साथ बैठी पंखे से हवा कर रही है। हनुमान जी दोनों हाथों से श्री राम के चरण स्पर्श कर नमन कर रहे हैं। सीताजी की आकृति दूसरों के अनुपात में छोटी चित्रित की गई है। चित्र में सभी आकृतियों के चेहरे एक चश्मी बने हुए हैं। उनके गले, हाथों, पैरो, कानों व बाजुओं में सफेद मोतियों की माला सुशोभित है। गोल भरा चेहरा, बड़ी आंखें पारंपरिक राजस्थानी कला का बोध करती हैं।

DO NOT COPY

त्रेता युग में कौशल्या व राजा दशरथ के बड़े पुत्र राम जो विष्णु भगवान के मुख्य अवतारों में गिने जाते हैं, जिनका पूरा जीवन कथा वाल्मीकीय रामायण में दी गई है। इस प्रकार राम कथा से संबंधित प्रसंग अनेक रूपों में अंकित किए हुए कई स्थानों से प्राप्त हुए हैं। जैसे पिहोवा की धोली हवेली, कैथल के मंदिर, थानेसर का शिव मंदिर (ब्रह्म सरोवर), कौल की हवेली व मंदिर, पांडु–पिंडारा का श्री राम मंदिर, कलायत का शिव मंदिर, वीर वडालवा का शिव मंदिर, गुलियाणा का स्नानागार, फरल की हवेली, गूहणा का मंदिर, डाचर का शिव मंदिर तथा सालवन के शिव मंदिर आदि।

➢ धोली हवेली का इतिहास :–

धोली हवेली हरियाणा की पारंपरिक स्थापत्य कला और सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण उदाहरण मानी जाती है। ''धोली'' शब्द का अर्थ सफेद या उजला होता है, और इस हवेली का नाम सफेद रंग के कारण पड़ा। यह हवेली केवल एक इमारत नहीं, बल्कि हरियाणा के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिंब भी है।

धोली हवेली का निर्माण मुख्यतः 18वीं से 19वीं शताब्दी के बीच माना जाता है, जब हरियाणा में स्थानीय जमींदारों, व्यापारियों और समृद्ध परिवारों का प्रभाव बढ़ रहा था। उस समय बड़े परिवार एक ही स्थान पर रहते थे, इसलिए हवेलियाँ विशाल और बहु–कक्षीय बनाई जाती थीं। धोली हवेली भी इसी परंपरा का हिस्सा है, जिसमें परिवार के रहने, मेहमानों के ठहरने और सामाजिक कार्यक्रमों के आयोजन के लिए अलग–अलग हिस्से बनाए गए थे।

इस हवेली की सबसे खास बात इसकी वास्तुकला और भित्ति चित्रकला है। इसे पारंपरिक राजस्थानी और हरियाणवी शैली के मिश्रण से बनाया गया है। हवेली के चारों ओर मोटी दीवारें होती थीं, जो गर्मी से बचाव के लिए बनाई जाती थीं। बीच में एक खुला आंगन (चौक) होता था, जहां परिवार के लोग एकत्रित होते थे। आंगन के चारों ओर कमरे, बरामदे और गलियारे बने होते थे। हवेली के दरवाजे और खिड़कियां लकड़ी की नक्काशी से सजी होती थीं, जो उस समय के कारीगरों की उत्कृष्ट कला को दर्शाती हैं।

धोली हवेली की दीवारों पर सुंदर भित्ति चित्र बनाए जाते थे। इन चित्रों में धार्मिक कथाएं, लोककथाएं और उस समय के दैनिक जीवन के दृश्य दर्शाए जाते थे। रंगों का प्रयोग प्राकृतिक स्रोतों से किया जाता था, जिससे चित्र लंबे समय तक सुरक्षित रहते थे। यह कला न केवल सजावट के लिए थी, बल्कि लोगों के लिए शिक्षा और मनोरंजन का माध्यम भी थी।

ऐतिहासिक दृष्टि से धोली हवेली उस समय के समाज की संरचना को भी दर्शाती है। उस दौर में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी, और हवेली का हर हिस्सा परिवार के अलग–अलग सदस्यों के लिए निर्धारित होता था। महिलाओं के लिए अलग ''अंतःपुर'' होता था, जहां वे सुरक्षित और स्वतंत्र जीवन

DO NOT COPY

जी सकती थीं। पुरुषों के लिए बैठक या ''दीवानखाना'' होता था, जहां वे मेहमानों से मिलते और सामाजिक तथा व्यावसायिक चर्चाएं करते थे।

धोली हवेली का उपयोग केवल रहने के लिए ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए भी किया जाता था। यहां शादी–विवाह, त्योहारों और अन्य समारोहों का आयोजन होता था। इन अवसरों पर हवेली को विशेष रूप से सजाया जाता था, और पूरा वातावरण उत्सवमय हो जाता था। इस प्रकार हवेलियां गांव तथा कस्बों के सामाजिक जीवन का केंद्र होती थीं।

समय के साथ आधुनिकता और शहरीकरण के कारण इन हवेलियों का महत्व कम होने लगा। कई हवेलियां जर्जर हो गईं या उन्हें छोड़ दिया गया। हालांकि, कुछ स्थानों पर इन ऐतिहासिक इमारतों को संरक्षित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। धोली हवेली भी आज एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक धरोहर के रूप में देखी जाती है, जो हमें हमारे अतीत की याद दिलाती है।

आज के समय में, धोली हवेली न केवल एक ऐतिहासिक स्थल है, बल्कि यह पर्यटकों और शोधकर्ताओं के लिए आकर्षण का केंद्र भी बन गई है। लोग यहाँ आकर पुराने समय की जीवन शैली, कला और वास्तुकला को समझने की कोशिश करते हैं। सरकार और स्थानीय लोगों द्वारा इसके संरक्षण के लिए कदम उठाए जा रहे हैं, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस धरोहर का अनुभव कर सकें।

अंत में, धोली हवेली हरियाणा की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। यह हमें सिखाती है कि कैसे हमारे पूर्वजों ने अपनी जरूरतों और पर्यावरण के अनुसार सुंदर और उपयोगी भवन बनाए। इस हवेली का इतिहास न केवल एक इमारत की कहानी है, बल्कि यह पूरे समाज के विकास और परंपराओं का दर्पण भी है।

➢ धोली हवेली की भित्ति चित्रकला :–

धोली हवेली की भित्ति चित्रकला हरियाणा की पारंपरिक कला का एक महत्वपूर्ण और आकर्षक रूप है। यह कला केवल दीवारों की सजावट तक सीमित नहीं थी, बल्कि उस समय के समाज, संस्कृति, धर्म और जीवन शैली का जीवंत दस्तावेज भी थी। 'धोली' अर्थात सफेद रंग की पृष्ठभूमि पर बनाए गए ये चित्र विशेष रूप से स्पष्ट और सुंदर दिखाई देते थे, जिससे हवेली का वातावरण भव्य और कलात्मक बन जाता था।

भित्ति चित्रकला की परंपरा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है, जिसका प्रमाण अजंता गुफाओं और एलोरा गुफाओं जैसे ऐतिहासिक स्थलों में मिलता है। धोली हवेली की चित्रकला भी इसी समृद्ध परंपरा का आधुनिक रूप थी, जो 18वीं–19वीं शताब्दी में विशेष रूप से विकसित हुई।

धोली हवेली की भित्ति चित्रकला की सबसे बड़ी विशेषता इसका विषय–वस्तु है। इन चित्रों में धार्मिक कथाएँ जैसे रामायण और महाभारत के प्रसंग, देवी–देवताओं के चित्र तथा लोककथाएँ प्रमुख रूप से दिखाई जाती थीं। इसके अलावा, चित्रों में उस समय के सामाजिक जीवन के दृश्य जैसे विवाह

DO NOT COPY

समारोह, ग्रामीण जीवन, खेती–बाड़ी, पशुपालन और लोक उत्सव भी दर्शाए जाते थे। इससे हमें उस युग के जीवन की झलक मिलती है।

इन चित्रों को बनाने की तकनीक भी अत्यंत विशेष थी। कलाकार प्राकृतिक रंगों का उपयोग करते थे, जो खनिज, पौधों और मिट्टी से प्राप्त होते थे। जैसे – लाल रंग गेरू से, पीला हल्दी या मिट्टी से, और नीला रंग प्राकृतिक पत्थरों से बनाया जाता था। दीवार पर पहले चूने की एक चिकनी परत चढ़ाई जाती थी, फिर उस पर चित्र बनाए जाते थे। इस तकनीक को "फ्रेस्को" कहा जाता है, जिसमें रंग दीवार के साथ स्थायी रूप से जुड़ जाते हैं और लंबे समय तक टिके रहते हैं।

धोली हवेली की चित्रकला में सजावटी तत्व भी महत्वपूर्ण होते थे। फूल–पत्तियाँ, बेल–बूटे, ज्यामितीय आकृतियाँ और सीमा रेखाएँ चित्रों को और आकर्षक बनाती थीं। दरवाजों और खिड़कियों के आसपास विशेष सजावट की जाती थी, जिससे पूरा वातावरण सौंदर्यपूर्ण लगता था। इन चित्रों में स्थानीय संस्कृति और कारीगरों की कल्पनाशक्ति स्पष्ट झलकती है।

भित्ति चित्रकला का सामाजिक महत्व भी बहुत अधिक था। यह कला लोगों को धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने का माध्यम भी थी। जिन लोगों की पढ़ना–लिखना नहीं आता था, वे इन चित्रों के माध्यम से कहानियों और परंपराओं को समझते थे। इसके अलावा, यह कला हवेली के मालिक की सामाजिक स्थिति और समृद्धि को भी दर्शाती थी। जितनी अधिक सुंदर और विस्तृत चित्रकला, उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा।

समय के साथ, आधुनिकता और नई निर्माण तकनीकों के कारण भित्ति चित्रकला का प्रचलन कम होता गया। कई पुरानी हवेलियाँ और उनके चित्र नष्ट हो गए या उपेक्षित हो गए। हालांकि, आज भी कुछ स्थानों पर इस कला को संरक्षित करने और पुनर्जीवित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। कलाकार और इतिहासकार इस विरासत को बचाने के लिए काम कर रहे हैं, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस अद्भुत कला का आनंद ले सकें।

अततः, धोली हवेली की भित्ति चित्रकला केवल दीवारों पर बने चित्र नहीं हैं, बल्कि यह हरियाणा की सांस्कृतिक पहचान, लोक जीवन और कला कौशल का अनमोल खजाना है। यह हमें हमारे अतीत से जोड़ती है और यह सिखाती है कि कला केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति की आत्मा होती है।

➢ स्थानेश्वर (थानेसर) महादेव मंदिर का इतिहास :–

स्थानेश्वर महादेव मंदिर हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले के थानेसर शहर में स्थित एक प्राचीन हिन्दू मंदिर है। यह मंदिर भगवान शिव को समर्पित है और कुरुक्षेत्र के प्राचीन मंदिरों में से एक है। मंदिर के सामने एक छोटा कुंड स्थित है, जिसके बारे में पौराणिक संदर्भ अनुसार यह माना जाता है कि इसकी कुछ बूंदों से राजा बान का कुष्ठ रोग ठीक हो गया था। कहते हैं भगवान शिव की शिवलिंग के रूप में

- **https://hi.wikipedia.org/wiki/स्थानेश्वर महादेव मंदिर**

DO NOT COPY

पहली बार पूजा इसी स्थान पर हुई थी। शिव महापुराण में इस स्थान का वर्णन मिलता है, जिसमें लिखा हुआ है कि एक समय भगवान विष्णु जी और ऋषि दधीचि के बीच युद्ध हुआ, जिसमें शिव भक्त दधीचि की भक्ति की विजय हुई तथा विष्णु जी को अपने अहंकार को त्यागना पड़ा।

विष्णु जी और ऋषि दधीचि ने जिस क्षेत्र में युद्ध हुआ वही स्थान आज स्थानेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। 'स्थाणु' शब्द का अर्थ होता है शिव का निवास। इसी शहर को सम्राट हर्षवर्धन के शासन काल में राजधानी का गौरव मिला, जिसके साथ–साथ इसका नाम बिगड़कर अपभ्रंश रूप में थानेसर हो गया।

इतिहास की कथाओं के अनुसार, ब्रह्मा ने हितेश की सहायता से कुरुक्षेत्र की भूमि पर एक विशाल यज्ञ के बाद ब्रह्मांड की रचना की। यहां स्थित ब्रह्म सरोवर का उल्लेख 11वीं शताब्दी ईस्वी में अल बेरूनी द्वारा रचित ग्रंथ 'किताब–उल–हिंद' नामक ग्रंथ में भी मिलता है। महाभारत में भी इस सरोवर का जिक्र है, जिसमें बताया गया है कि युद्ध के अंतिम दिन दुर्योधन ने स्वयं को पानी में छुपने के लिए इसका उपयोग किया था। ऐसा माना जाता है कि देवी तानिया आज भी जीवित हैं और ब्रह्म सरोवर के पास निवास करती हैं। ऐसा माना जाता है कि यदि कोई देवी के लिए लाल चूड़ियाँ लाता है तो वे उसकी मनोकामना पूरी करती हैं।

ब्रह्म सरोवर हरियाणा के थानेसर में स्थित एक जलकुंड है। हिन्दू धर्म में इसे पवित्र माना जाता है और यह बेहद खूबसूरत है। ऐसा माना जाता है कि इस सरोवर में स्नान करने से मोक्ष प्राप्त होता है। इसका जीर्णोद्धार किया गया है और यह आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित है। ब्रह्म सरोवर कुरुक्षेत्र का सबसे सुंदर और मनोहक स्थल है। यह स्थान रंगीन है और दिन–भर जीवंत बना रहता है, जो पर्यटकों को आकर्षित करता है और उन्हें बार–बार आने के लिए प्रेरित करता है।

जल के भीतर एक सुंदर मंदिर स्थित है, जहाँ कंकरीट के पुल से पहुँचा जा सकता है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय यहाँ होने वाली धार्मिक आरती में शामिल होने से असीम शांति का अनुभव होता है। ब्रह्म सरोवर के मध्य में भगवान शिव का एक छोटा मंदिर भी है, जहाँ एक छोटे पुल से पहुँचा जा सकता है। सूर्य ग्रहण के दौरान बड़ी संख्या में तीर्थयात्री और पर्यटक ब्रह्म सरोवर दर्शन करने आते हैं।

हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार, ब्रह्म सरोवर जिसमें "ब्रह्मा" (अर्थात सृष्टि के रचयिता भगवान ब्रह्मा) और "सरोवर" (अर्थात तालाब) से मिलकर बना है। कुरुक्षेत्र की भूमि में विशाल यज्ञ के बाद ब्रह्मा द्वारा निर्मित यह सरोवर उन्हें समर्पित है। प्राचीन काल में इस सरोवर का नाम 'रामाहारद' और 'समंत पंचक' के नाम से जाना जाता था और कहा जाता है कि यह भगवान विष्णु के अवतार परशुराम से जुड़ा हुआ है। सूर्य ग्रहण से इसके विशेष संबंध के कारण यह सरोवर कुरुक्षेत्र सरोवर के नाम से भी प्रसिद्ध था।

➢ स्थानेश्वर (थानेसर) महादेव मंदिर की भित्ति चित्रकला :–

- **https://www.holidify.com/places/kurukshetra/brahma-sarovar-sightseeing-2550.html**

DO NOT COPY

कुरुक्षेत्र (थानेसर) स्थित प्राचीन स्थानेश्वर मंदिर, जो ब्रह्मसरोवर के पास है, भगवान शिव को समर्पित है। यह मंदिर अपनी ऐतिहासिक भव्यता और भित्ति चित्रों के लिए प्रसिद्ध है, जो महाभारत काल और हिन्दू पौराणिक कथाओं को चित्रण करते हैं। विशेषकर भगवान शिव की तपस्या और महाभारत युद्ध से जुड़ी कथाओं को दर्शाते हैं।

यह मंदिर पवित्र ब्रह्मसरोवर के निकट स्थित होने के कारण धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। भगवान शिव को समर्पित यह मंदिर न केवल अपनी आध्यात्मिक आस्था के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि इसकी भित्ति चित्रकला भी इसे कला और इतिहास का एक जीवंत केंद्र बनाती है।

स्थानेश्वर महादेव मंदिर का उल्लेख महाभारत काल से जुड़ा हुआ माना जाता है। लोक मान्यता के अनुसार, पांडवों ने श्रीकृष्ण की पूजा के साथ–साथ भगवान शिव की आराधना भी की थी। यह माना जाता है कि महाभारत युद्ध से पहले पांडवों ने यहाँ विजय का आशीर्वाद प्राप्त किया था।

"स्थानेश्वर" शब्द का अर्थ ही है "ईश्वर का स्थान", अर्थात वह देवता जो इस क्षेत्र के अधिपति हैं। इसी रूप में भगवान शिव को इस क्षेत्र का क्षेत्रपाल माना जाता है। यह मंदिर महाभारत युद्ध की स्मृतियों से जुड़ा हुआ है, जिससे इसकी धार्मिक प्रतिष्ठा और भी बढ़ जाती है, विशेषकर महाशिवरात्रि के अवसर पर।

इतिहास के अनुसार वर्तमान मंदिर का निर्माण मराठा काल में हुआ था। इसे सदाशिवराव भाऊ ने रघुनाथ राव पेशवा के समय में पुनर्निर्मित करवाया। हालांकि, यह स्थल इससे भी पहले का माना जाता है। प्राचीन काल में थानेसर (कुरुक्षेत्र) एक प्रमुख धार्मिक और सांस्कृतिक केंद्र था। यहाँ अनेक मंदिर और तीर्थ स्थल थे, जिनमें स्थानेश्वर महादेव मंदिर प्रमुख था। मुगल काल और अन्य आक्रमणों के दौरान मंदिर को क्षति पहुँची, लेकिन बाद में मराठों ने इसे पुनः स्थापित किया, जिससे इसकी प्राचीनता जीवित रही।

स्थानेश्वर महादेव मंदिर की सबसे आकर्षक विशेषताओं में से एक इसकी भित्ति चित्रकला है। मंदिर की दीवारों और आंतरिक भागों पर बने चित्र भारतीय कला और संस्कृति की जीवंत झलक प्रस्तुत करते हैं:

- भगवान शिव और माता पार्वती का विवाह
- गणेश और कार्तिकेय की कथाएँ
- महाभारत युद्ध के दृश्य
- विभिन्न देवी–देवताओं की लीलाएँ

इन चित्रों में पारंपरिक रंगों का प्रयोग किया गया है, जो प्राचीन भित्ति चित्रकला की जीवन शैली को दर्शाते हैं। चित्रों में प्राकृतिक रंगों का उपयोग किया गया है, जिससे उनकी चमक और आकर्षण

DO NOT COPY

आज भी बरकरार है। यह कला न केवल धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करती है, बल्कि उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन शैली का भी चित्रण करती है।

स्थानेश्वर महादेव मंदिर की स्थापत्य शैली भारतीय मंदिर वास्तुकला का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती है। मंदिर का गर्भगृह अत्यंत पवित्र है, जो शांति का वातावरण प्रदान करता है। शिखर शैली का पारंपरिक उपयोग मंदिर में किया गया है। पत्थर और ईंटों का उपयोग इसकी मजबूती को दर्शाता है। मंदिर की संपूर्ण बनावट सरल होते हुए भी अत्यंत प्रभावशाली है, जो प्राचीन भारतीय वास्तुकला की विशेषताओं को दर्शाती है।

स्थानेश्वर महादेव मंदिर के भित्ति चित्र न केवल धार्मिक कथाओं का चित्रण करते हैं, बल्कि यह उस समय के इतिहास, कला, संस्कृति और आस्था का संगम हैं। इसकी भित्ति चित्रकला, पौराणिक कथाएँ और ब्रह्म सरोवर के साथ इसका संबंध इसे और भी विशेष बनाते हैं। ये चित्र स्थानीय कलाकारों की प्रतिभा और शिल्प कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण हैं और परंपराओं से जोड़ने का कार्य भी करते हैं।

➢ कनीपला का शिव मंदिर :–

हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले में पेहोवा मार्ग पर स्थित कनीपला गांव का प्राचीन शिव मंदिर एक अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थल है। यह मंदिर न केवल अपनी प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि इसके साथ जुड़ी पौराणिक मान्यताएँ, विशेषकर महाभारत काल से संबंध, इसे और भी विशिष्ट बनाती हैं।

स्थानीय परंपराओं के अनुसार, इस मंदिर का इतिहास महाभारत काल से जुड़ा माना जाता है। मान्यता है कि पांडवों ने युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए यहाँ भगवान शिव की आराधना की थी। यह कथा इस स्थान की धार्मिक आस्था का केंद्र बनाती है। हालांकि इन कथाओं का प्रत्यक्ष ऐतिहासिक प्रमाण सीमित है, फिर भी लोक विश्वास और पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही परंपराएँ इसे जीवंत बनाए रखती हैं।

कनीपला का यह शिव मंदिर आस–पास के क्षेत्रों के लोगों के लिए गहन आस्था का प्रमुख केंद्र है। विशेष अवसरों जैसे महाशिवरात्रि पर यहाँ बड़ी संख्या में श्रद्धालु एकत्रित होते हैं। यह मंदिर कुरुक्षेत्र के अन्य प्राचीन शिवालयों की तरह ही पूजनीय है, जहाँ भक्त भगवान शिव से मनोकामना पूर्ण होने की प्रार्थना करते हैं।

यह मंदिर केवल धार्मिक स्थल ही नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक धरोहर भी है। यहाँ की भित्ति चित्रकला यहाँ की लोककला को समझने का अवसर प्रदान करती है। यह स्थान स्थानीय लोगों की पहचान और परंपराओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह मंदिर कुरुक्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत का एक जीवंत उदाहरण है। इसके संरक्षण और अध्ययन से न केवल इतिहास की जानकारी मिलती है, बल्कि हमारी प्राचीन कला और परंपराओं को भी समझने का अवसर मिलता है।

DO NOT COPY

➢ कनीपला के शिव मंदिर की भित्ति चित्रकला :–

हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले में स्थित कनीपला गांव का प्राचीन शिव मंदिर अपनी धार्मिक महत्ता के साथ–साथ भित्ति चित्रकला (फ्रेस्को) के लिए भी विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यह भित्ति चित्र न केवल मंदिर की शोभा बढ़ाते हैं, बल्कि क्षेत्र की प्राचीन कला, संस्कृति और धार्मिक परंपराओं का जीवंत प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं।

भित्ति चित्रकला दीवारों और छतों पर बनाए जाने वाले चित्रों की वह विधा है, जिनमें प्राकृतिक रंगों का उपयोग किया जाता है। कनीपला मंदिर के भित्ति चित्र इसी पारंपरिक शैली में बनाए गए हैं। ये चित्र मंदिर के आंतरिक भागों विशेषकर गर्भगृह के आस–पास, दीवारों और छतों पर अंकित हैं।

इन भित्ति चित्रों का निर्माण प्राचीन काल में हुआ माना जाता है, यद्यपि सटीक काल निर्धारण कठिन है। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार, मंदिर का संबंध महाभारत काल से जोड़ा जाता है, जिससे यह स्थल और अधिक पवित्र माना जाता है। संभावना है कि इन चित्रों का निर्माण मध्यकालीन या उत्तर–मध्यकालीन समय में हुआ हो, जब मंदिरों की चित्रकला में सजावट की परंपरा प्रचलित थी।

कनीपला मंदिर के भित्ति चित्र मुख्यतः धार्मिक और पौराणिक विषयों पर आधारित हैं। इनमें प्रमुख विषय हैं – भगवान शिव, पार्वती और अन्य देवी–देवताओं के चित्र, रामायण और महाभारत की घटनाएं, साधु–संतों और लोकजीवन के दृश्य तथा धार्मिक अनुष्ठानों का चित्रण। इन चित्रों के माध्यम से उस समय के समाज की धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक जीवन की झलक मिलती है।

इस मंदिर के भित्ति चित्रों में प्राकृतिक रंगों का उपयोग किया गया है, जैसे – लाल, पीला, हरा और काला। ये रंग खनिजों और पौधों से प्राप्त किए जाते थे। चित्रों का रेखांकन सरल होते हुए भी आकर्षक है, जिसमें आकृतियाँ स्पष्ट और सहज हैं। जो लोककला की विशेषता को दर्शाती है। छतों पर बनाए गए चित्रों में ज्यामितीय आकृतियाँ और सजावटी रूपांकन भी दिखाई देते हैं। इन भित्ति चित्रों में हरियाणा की लोकसंस्कृति और ग्रामीण जीवन की झलक भी मिलती है।

कनीपला मंदिर की भित्ति चित्रकला न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह हरियाणा की प्राचीन चित्रकला परंपरा का एक महत्वपूर्ण उदाहरण भी है। यह कला स्थानीय इतिहास को समझने में सहायक है और लोककला तथा धार्मिक परंपराओं के संगम को दर्शाती है। यह क्षेत्रीय पहचान और सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है।

समय के प्रभाव, नमी और उचित संरक्षण के अभाव के कारण कई भित्ति चित्र धुंधले या नष्ट हो चुके हैं। फिर भी उनकी मूल संरचना और कलात्मकता आज भी देखी जा सकती है, जो इनके संरक्षण की अत्यंत आवश्यकता को दर्शाती है।

➢ कैथल के कलायत मंदिरों का इतिहास :–

- **https://en.wikipedia.org/wiki/Kalayat_Ancient_Bricks_Temple_Complex**

DO NOT COPY

कलायत प्राचीन मंदिर परिसर दिल्ली के उत्तर में स्थित एक खंडहर मंदिर परिसर है, जो भारत के हरियाणा राज्य के कैथल जिले के कलायत कस्बे में स्थित है। इसमें कई हिन्दू मंदिर शामिल हैं, जिनमें 8वीं शताब्दी के दो प्राचीन मंदिर कुरुक्षेत्र के 48 कोसों परिक्रमा के महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। परंपरा के अनुसार, ये मंदिर शालिवाहन (राजा सालिवाहन) से संबंधित हैं।

"कलायत" नाम "कपिलायतन" से लिया गया प्रतीत होता है, जिसका अर्थ है 'ऋषि कपिल का घर'। स्थानीय किंवदंतियों के अनुसार प्राचीन काल में पवित्र सरोवर के किनारे पांच मंदिर बने थे। ये मंदिर गुर्जर–प्रतिहार शैली में निर्मित हैं और इन्हें 8वीं शताब्दी ईस्वी का माना जाता है। बचे हुए दो मंदिरों में से एक में भारी बदलाव किए गए हैं।

ये मंदिर गुर्जर–प्रतिहार शैली के नागर शैली में निर्मित हैं। मंदिरों की संरचना से पता चलता है कि मूल रूप से पवित्र कपिलायतन तीर्थ (जलकुंड) के किनारे पंचायतन समूह में पाँच मंदिर थे। पंचायतन में मुख्य गर्भगृह चार सहायक गर्भगृहों से घिरा हुआ था। जो खुजराहो और भुवनेश्वर के मंदिरों के समकालीन है। स्थानीय रूप से निर्मित लाल ईंटें इमारतों और मूर्तियों के लिए मुख्य सामग्री थी। इनका निर्माण बिना किसी प्लास्टर या गारें के किया गया था। केवल दो मंदिर बचे है। एक मंदिर पंच रथ शैली का शिव मंदिर है जिसमें लिंग और नाग की मूर्ति है। इन मंदिरों में बिना गारे के जोड़ी गई नक्काशीदार ईंटों से बना एक वर्गाकार गर्भगृह है। शिखर में ईंटों को मधुमक्खी के छत्ते के पैटर्न में जोड़ा गया है। जो अंजता या एलोरा के शिलाखंड़ में बने चैत्य हाल के सामने, गुप्त शैली (चोथी–छठी शताब्दी ईस्वी) और उत्तर गुप्त वास्तुकला से विकसित हुई।

पीछे की ओर सीढ़ियाँ हैं, जो कपिल मुनि तीर्थ परिसर की ओर जाती हैं, जहाँ तीर्थयात्री पूजा से पहले स्नान करते हैं। तालाब का नाम 'च्यवन गिरि कुंड' रखा गया है। एक अन्य वैदिक ऋषि च्यवन के नाम पर भी, जिन्होंने मेवात जिले के नूह के पा धोसी पहाड़ी पर अपने आश्रम में च्यवनप्राश (राज वेघ जुड़वा अश्विनी कुमार भाइयों द्वारा बनाया गया) का सेवन करके स्वास्थ्य और युवावस्था की पुनः प्राप्ति की कथा जुड़ी है।

➢ कलायत के कपिल मुनि मंदिर की भित्ति चित्रकला :–

हरियाणा के कैथल जिले के कलायत में स्थित प्राचीन कपिल मुनि मंदिर भारतीय धार्मिक, दार्शनिक और स्थापत्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण केंद्र है। 8वीं शताब्दी का यह मंदिर अपने विशिष्ट ईंट–निर्माण शैली, भित्ति चित्रों (फ्रेस्को) और सुंदर नक्काशी के लिए जाना जाता है। इसके अंदर और बाहर की कलाकृतियाँ न केवल धार्मिक आस्था को दर्शाती हैं, बल्कि उस समय की कला और विचारधारा का भी प्रतीक प्रस्तुत करती हैं। मंदिर के भित्ति चित्रों में कपिल मुनि की गहन ध्यान और तपस्या के दृश्य दर्शाए गए हैं। वे सांख्य दर्शन के प्रवर्तक माने जाते हैं। चित्रों में उनकी शांत मुद्रा, योगिक आसन और

DO NOT COPY

आध्यात्मिक ऊर्जा को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो आत्मज्ञान और मोक्ष की ओर संकेत करती है।

मंदिर के भित्ति चित्रों में राजा सागर और उनके 60,000 पुत्रों की कथा का चित्रण भी संभवतः है। कथा के अनुसार, कपिल मुनि के ध्यान में बाधा डालने पर उनके कोप के सागर के पुत्र भस्म हो गए। यह दृश्य धर्म, संयम और तपस्या की शक्ति को दर्शाता है। तथा अंहकार के दुष्परिणाम को समझाता है।

मंदिर में भगवान शिव के कपिल रूप की पूजा की जाती है। भित्ति चित्रों में शिव के विभिन्न रूपों, उनके लिंग स्वरूप तथा अन्य देवी–देवताओं जैसे विष्णु, देवी आदि के चित्र भी मिलते हैं। ये चित्र धार्मिक और सांस्कृतिक आस्था को दर्शाते हैं।

मंदिर की दीवारों पर की गई नक्काशी 8वीं शताब्दी की उत्तम वास्तुकला का उदाहरण है। लाल ईंटों से निर्मित यह संरचना ज्यामितीय आकृतियों, पुष्प अलंकरण और धार्मिक प्रतीकों से सजी हुई है। यह शैली उत्तर भारत की प्रारंभिक मंदिर वास्तुकला की विशेष पहचान मानी जाती है। कपिल मुनि मंदिर के भित्ति चित्र और नक्काशी हरियाणा की सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और भारतीय प्राचीन कला एवं दर्शन को समझने के लिए एक मूल्यवान स्थल है।

➢ कैथल के गुरुद्वारा नीम साहिब का इतिहास :–

कैथल शहर के बीचों–बीच स्थित डोगरा गेट स्तिथत श्री गुरुद्वारा नीम साहिब काफी ऐतिहासिक है। यहाँ मुगलों से युद्व के दौरान सिखों के नौवें गुरु, श्री गुरुतेग बहादुर जी दिल्ली जाते समय रुके थे और उन्होंने नीम के वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान लगाया था।

यह नीम आज भी गुरुद्वारे में स्थित है। यहाँ पर हर अमावस्या के दिन श्रद्धालुओं की भीड़ जुटती है और वह यहाँ शीश नवाते हैं। इस गुरुद्वारे के परिसर में मुख्य भवन के अंदर जहाँ श्री गुरु ग्रंथ साहिब विराजमान हैं, यहा शीशे से निर्माण किया गया है। गुरुद्वारे में स्थित सरोवर में श्रद्धालु अमावस्या के दिन सुबह के समय स्नान करने के लिए पहुँचते हैं।

मान्यता है कि गुरुद्वारे के स्थान पर सिख गुरु तेग बहादुर अपने परिवार के साथ सन् 1723 में पहुँचे थे। कुछ दिनों तक वे यहाँ रुके थे। कहा जाता है कि गुरुद्वारे के स्थान पर नीम के पेड़ के नीचे ध्यान लगाते समय उन्हें उनके अनुयायियों द्वारा देखा गया। उनके एक अनुयायी गंभीर बुखार से पीड़ित हो गया था।

लंबे समय के बाद गुरुद्वारे का निर्माण इस जगह पर हुआ। भवन गुरुद्वारा यहाँ बनाया गया, जिसे गुरुद्वारा नीम साहिब के रूप में जाना जाता है। सभी समुदाय के लोग यहाँ माथा टेकने के लिए पहुँचते हैं। यहाँ गुरुद्वारे में निर्मित सरोवर में पवित्र डुबकी लगाकर पुण्य कमाते हैं।

- **https://www.facebook.com/story.php?story_fbid=4766258670144630&id=100051296273748**

DO NOT COPY

➢ गुरुद्वारा नीम साहिब की भित्ति चित्रकला :–

हरियाणा के कैथल में स्थित गुरुद्वारा नीम साहिब की भित्ति चित्रकला धार्मिक आस्था, ऐतिहासिक घटनाओं और सिख परंपरा का सुंदर संगम प्रस्तुत करती है। यह चित्रकला मुख्य रूप से सिखों के नौवें गुरु, श्री गुरु तेग बहादुर जी के जीवन प्रसंगों और उनके उपदेशों को दृश्य रूप में दर्शाती है। इन भित्ति चित्रों का उद्देश्य केवल सजावट नहीं, बल्कि श्रद्धालुओं को आध्यात्मिक शिक्षा देना और इतिहास से जोड़ना भी है।

गुरुद्वारा परिसर की दीवारों, बरामदों और आंतरिक भागों में बने ये चित्र पारंपरिक सिख शैली और स्थानीय लोक कला के प्रभाव को दर्शाते हैं। चित्रों में सबसे प्रमुख दृश्य वह है जिसमें गुरु तेग बहादुर जी एक नीम के वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान और उपदेश दे रहे हैं। इस दृश्य को अत्यंत भावनापूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है। गुरु जी की शांत, तेजस्वी छवि और उनके आसपास बैठे श्रद्धालुओं के भाव उनकी आध्यात्मिक गरिमा को प्रकट करते हैं।

एक अन्य महत्वपूर्ण दृश्य में गुरु जी द्वारा नीम की पत्तियों से एक बीमार व्यक्ति का उपचार करते हुए दिखाया गया है। इन भित्ति चित्रों में रंगों का प्रयोग सरल किन्तु प्रभावशाली है – लाल, पीला, हरा और नीला रंग प्रमुख रूप से उपयोग किए गए हैं, जो चित्रों की जीवंतता प्रदान करते हैं।

इन चित्रों में रेखांकन स्पष्ट और संतुलित है, जिससे प्रत्येक आकृति और घटना आसानी से समझ में आती है। कलाकारों ने चेहरे के भाव, वस्त्रों की बनावट और धार्मिक वातावरण को सूक्ष्मता से उकेरा है। साथ ही, कुछ चित्रों में सिख परंपरा के प्रमुख सेवकों और भक्तों को भी दर्शाया गया है, जिससे सामूहिक सेवा–भाव को बढ़ावा मिलता है।

वास्तुकला के साथ इन भित्ति चित्रों का सामंजस्य भी उल्लेखनीय है। गुंबद, मेहराब और दीवारों की संरचना के अनुरूप चित्रों को सजाया गया है, जिससे पूरा परिसर एक आध्यात्मिक कला दीर्घा जैसा प्रतीत होता है। गुरुद्वारा नीम साहिब की भित्ति चित्रकला न केवल धार्मिक कथाओं का चित्रण करती है, बल्कि सिख धर्म के मूल सिद्धांत सेवा, त्याग और मानवता को भी सजीव रूप में प्रस्तुत करती है। यह कला शैली हरियाणा की सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा है और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है।

➢ अंबिकेश्वर महादेव मंदिर :–

हरियाणा के कैथल शहर में प्रताप गेट के पास स्थित अंबिकेश्वर महादेव मंदिर एक अत्यंत प्राचीन, पौराणिक तथा धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण शिव मंदिर है। यह मंदिर न केवल श्रद्धा और आस्था का केंद्र है, बल्कि हरियाणा की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत का भी एक प्रमुख प्रतीक है। "छोटी काशी" के नाम से प्रसिद्ध कैथल में स्थित यह मंदिर सदियों से भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करता आया है।

- **https://www.amarujala.com/haryana/kaithal/historical-place-kaithal-news-knl51465197**

DO NOT COPY

भारत में शिव मंदिरों का विशेष महत्व है, क्योंकि भगवान शिव को सृष्टि के संहारक और पुनर्निर्माता के रूप में पूजा जाता है। अंबिकेश्वर महादेव मंदिर इसी आस्था का जीवंत उदाहरण है। यहाँ स्थित शिवलिंग स्वयंभू माना जाता है, अर्थात यह किसी मानव द्वारा स्थापित नहीं, बल्कि स्वयं प्रकट हुआ है। इस कारण इस मंदिर की महिमा और भी बढ़ जाती है।

इस मंदिर का संबंध महाभारत काल से जोड़ा जाता है। मान्यता है कि पांडवों ने अपने वनवास अथवा युद्ध के पश्चात इस स्थान पर आकर भगवान शिव की आराधना की थी। कैथल को "छोटी काशी" कहा जाता है क्योंकि यहाँ अनेक मंदिर और तीर्थ स्थल स्थित हैं, जिनमें अंबिकेश्वर महादेव मंदिर का स्थान सर्वोपरि है। सावन के महीने में यहाँ विशेष पूजा–अर्चना होती है और दूर–दूर से श्रद्धालु जलाभिषेक करने आते हैं।

इस मंदिर की सबसे प्रमुख विशेषता इसका स्वयंभू शिवलिंग है, जिसे "पाटलेश्वर" भी कहा जाता है। यह शिवलिंग प्राकृतिक रूप से प्रकट हुआ माना जाता है और इसकी आकृति तथा संरचना सामान्य शिवलिंग से भिन्न बताई जाती है। भक्तों का विश्वास है कि यहाँ पूजा करने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

अंबिकेश्वर महादेव मंदिर का इतिहास मध्यकालीन काल से भी जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि पृथ्वीराज चौहान ने यहाँ आकर पूजा की थी। उनके और मोहम्मद गौरी के बीच युद्ध के दौरान उनकी सेना ने कुछ समय के लिए यहाँ पड़ाव डाला था। यह घटना इस मंदिर के ऐतिहासिक महत्व को और भी बढ़ाती है, क्योंकि यह स्थान केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि राजनीतिक घटनाओं का भी साक्षी रहा है।

मंदिर से जुड़ी कई चमत्कारिक कथाएँ भी प्रचलित हैं। सबसे प्रसिद्ध कथा यह है कि मुगल काल में जब कुछ लोगों ने इस शिवलिंग को हटाने का प्रयास किया, तो उसमें से रक्त की धारा बहने लगी। इस घटना के बाद उस प्रयास को तुरंत रोक दिया गया और मंदिर की पवित्रता को स्वीकार किया गया। ऐसी कथाएँ भक्तों के विश्वास को और अधिक गहरा बनाती हैं।

➢ अंबिकेश्वर महादेव मंदिर की भित्ति चित्रकला :–

हरियाणा के कैथल में स्थित अंबिकेश्वर महादेव मंदिर केवल एक प्राचीन धार्मिक स्थल ही नहीं, बल्कि चित्रकला की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस मंदिर की दीवारों पर अंकित चित्र उस समय की धार्मिक आस्था, लोक संस्कृति और कलात्मक परंपरा का सुंदर दस्तावेज प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय मंदिरों में भित्ति चित्रों की परंपरा बहुत प्राचीन रही है। इन चित्रों के माध्यम से धर्म, शिक्षा और संस्कृति का प्रसार किया जाता था। अंबिकेश्वर महादेव मंदिर की भित्ति चित्र भी इसी परंपरा का हिस्सा हैं, जो स्थानीय कलाकारों की कल्पनाशक्ति और धार्मिक आस्था को दर्शाते हैं।

DO NOT COPY

मंदिर की दीवारों पर बनाए गए चित्र मुख्यतः धार्मिक और पौराणिक विषयों पर आधारित हैं। इनमें से भगवान शिव के विभिन्न रूप, माता पार्वती, गणेश, नंदी का चित्रण, शिव परिवार का दृश्य और पौराणिक कथाएं जैसे शिव–विवाह, तांडव नृत्य आदि ये चित्र भक्तों को आध्यात्मिक भावनाओं से जोड़ते हैं और आध्यात्मिक वातावरण निर्मित करते हैं।

➢ जींद के पांडू पिंडारा तीर्थ का इतिहास :–

हरियाणा की पवित्र भूमि सदियों से धर्म, इतिहास और संस्कृति का संगम रही है। इसी भूमि पर स्थित है पांडू पिंडारा, जो एक अत्यंत प्राचीन तीर्थ स्थल है, जो महाभारत काल से जुड़ा हुआ है। यह स्थल जींद शहर से लगभग 6.5 किमी दूर जींद–गोहाना मार्ग पर स्थित है। यह तीर्थ न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि भारतीय संस्कृति में पितृ श्रद्धा, कर्म और मोक्ष की भावना का भी प्रतीक है।

पांडू पिंडारा का इतिहास सीधे तौर पर महाभारत युद्ध से जुड़ा हुआ है। युद्ध के बाद पांडवों को अपने ही कुल और रिश्तेदारों की हत्या का गहरा पश्चाताप हुआ। वे इस पाप से मुक्ति पाने के उपाय ढूंढने लगे। तब भगवान कृष्ण ने उन्हें सलाह दी कि वे एक पवित्र स्थान पर अमावस्या के दिन अपने पितरों का पिंडदान करें। पांडवों ने इसी स्थान पर लंबे समय तक तपस्या की और अंततः विधि–विधान से पिंडदान किया।

"पांडु पिंडारा" नाम दो शब्दों से मिलकर बना है –

- पांडू / पांडव : महाभारत के वीर योद्धा
- पिंडारा : पिंडदान करने का स्थान

इस प्रकार यह स्थान "पांडवों द्वारा पिंडदान किया गया तीर्थ" कहलाया। मान्यता है कि यहां पिंडदान करने से मुक्ति प्राप्त होती है।

पांडू पिंडारा का उल्लेख वामन पुराण और पद्म पुराण में मिलता है। इन ग्रंथों में इसे एक पवित्र तीर्थ बताया गया है, जहां स्नान और पिंडदान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। पांडु पिंडारा के पास स्थित जयंती देवी मंदिर का भी विशेष महत्व है। मान्यता है कि पांडवों ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए यहां देवी की आराधना की थी। इसी "जयंती" शब्द से आगे चलकर इस क्षेत्र का नाम "जींद" पड़ा।

➢ पांडू पिंडारा मंदिर के भित्ति चित्र :–

हरियाणा के पांडू पिंडारा तीर्थ में स्थित मंदिर अपने प्राचीन भित्ति चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। ये चित्र न केवल धार्मिक आस्था को दर्शाते हैं, बल्कि उस समय की कला, संस्कृति और लोक–जीवन की झलक भी प्रस्तुत करते हैं।

- **https://www.jagran.com/haryana/jind/jind-pandu-pindara-pilgrimage-related-with-mahabharata-special-importance-of-pind-daan-23222921.html**

DO NOT COPY

पांडू पिंडारा के भीतर बने चित्र मुख्यतः धार्मिक और पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। महाभारत से जुड़े दृश्य जैसे – पांडवों द्वारा पिंडदान, युद्ध के प्रसंग, देवी–देवताओं के चित्र, भगवान शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि, तीर्थ और कर्मकांड, श्राद्ध और पूजा के दृश्य, लोक जीवन, साधु–संत, तीर्थयात्रियों की झलक आदि के दृश्य पांडू पिंडारा के इतिहास, श्रद्धा तथा संस्कृति को दर्शाते हैं। ये भगवान के प्रति अटूट प्रेम को दर्शाने का एक माध्यम भी बने हुए हैं।

मंदिर में बने भित्ति चित्र फ्रेस्को या चूने की दीवारों पर प्राकृतिक रंगों से बनाए गए हैं। रंगों में लाल, पीला, हरा और नीला प्रमुख हैं। आकृतियां सरल लेकिन भावपूर्ण होती हैं, जिससे कथा स्पष्ट रूप से समझ आती है। ये आकृतियां ऐतिहासिक घटनाओं को स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयास करती हैं। रेखांकन मजबूत और पारंपरिक है, जिससे चित्रों की बारीकियां उभरती हैं तथा चित्रों की सुंदरता प्रकट होती है।

इन भित्ति चित्रों का उद्देश्य केवल सजावट नहीं, बल्कि धार्मिक शिक्षा देना भी है। ये चित्र श्रद्धालुओं को महाभारत की घटनाओं और पिंडदान के महत्व के बारे में बताते हैं। मंदिर में आने वाले लोग इन चित्रों को देखकर धर्म और परंपराओं को समझते हैं।

समय के साथ कुछ चित्र फीके पड़ गए हैं, लेकिन स्थानीय प्रशासन और श्रद्धालु इनके संरक्षण का प्रयास कर रहे हैं। ये चित्र हरियाणा की लोक कला और विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

DO NOT COPY

चतुर्थ अध्याय

- भित्ति चित्रण
- भित्ति चित्रण की सामग्री
- भित्ति चित्रण की तकनीक
- भित्ति चित्रों की क्षति के कारण व प्रकार
- भित्ति चित्रों की सुरक्षा के लिए पदार्थ

भित्ति चित्रण

भित्ति चित्र किसी भी प्रकार की ग्राफिक कलाकृति होती है जिसे सीधी दीवार, छत या किसी अन्य स्थायी सतह पर चित्रित या लगाया जाता है। भित्ति चित्र बनाने की तकनीकों में फ्रेस्को, मोजेक, ग्रैफिटी और मारोफ्लेज शामिल हैं।

'म्यूरल' शब्द स्पेनिश भाषा का एक विशेषण है जिसका प्रयोग दीवार पर लगी किसी वस्तु के लिए किया जाता है। 'म्यूरल' धीरे–धीरे एक शब्द के रूप में विकसित हुआ। कला में 'म्यूरल' शब्द का प्रयोग सबसे पहले 20वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ था। डॉ. एटल ने 1906 में प्रकाशित अपने एक घोषणापत्र में मेक्सिको में एक विशाल सार्वजनिक कला आन्दोलन के विकास का प्रस्ताव रखा था और इस आन्दोलन को स्पेनिश में 'पिंटुरा म्यूरल' के नाम से जाना जाता था।

अजंता गुफाओं से प्राप्त जातक कथाएं, जो अब महाराष्ट्र, भारत में स्थित हैं, सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व की हैं। बॉर्नियो की लुबांग जेरिजी सालेह गुफा (40,000–52,000 ईसा पूर्व) और दक्षिणी फ्रांस के अर्देश विभाग की चौवेट गुफा में पाए गए दोनों भित्ति चित्र ऊपरी पुरापाषाण काल (लगभग 32,000 ईसा पूर्व) के दो उदाहरण हैं। पोम्पेई (लगभग 1200–900 ईसा पूर्व), मेक्सिको की ओक्सोटिट्लान गुफा और जुक्स्टलाहुआका (लगभग 3150 ईसा पूर्व), मिनोअन महलों (नव–महल काल के तीसरे मध्य काल, 1700–1600 ईसा पूर्व) और प्राचीन मिस्र के मकबरों (लगभग 3150 ईसा पूर्व) में भी अनेक प्राचीन भित्ति चित्र खोदे गए हैं। मध्ययुग में भित्ति चित्र अक्सर सूखे प्लास्टर (सेको) पर बनाए जाते थे। सिको भित्ति चित्रों के उदाहरण में चौदहवीं शताब्दी के केरल के भित्ति चित्रों का विशाल संग्रह शामिल है। लगभग 1300 ईस्वी में इटली में गीले प्लास्टर पर भित्ति चित्र बनाने की प्रथा पुनर्जीवित हुई, जिससे भित्ति कला का स्तर काफी ऊँचा हो गया।

आधुनिक कला :– डिएगो रिवेरा, डेविड सिकीरोस और जोस ओरोज्को जैसे कलाकारों वाले मैक्सिकन भित्ति चित्रकला आन्दोलन ने भित्ति चित्र शब्द के बढ़ते उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रॉबर्ट मोंटेनेग्रो द्वारा बनाया गया "एल आर्बोल डे ला विदा" 20वीं शताब्दी में निर्मित पहला भित्ति चित्र था। इसकी शैलियों और विधियों में अनेक विविधताएं हैं। अधिकांश लोग शायद फ्रेस्को से परिचित हैं, जिसमें पानी में घुले रंगों को गीले चूने के लेप के साथ मिलाकर एक विशाल सतह पर जल्दी से लगाया जाता है, और इसे टुकड़ों में (लेकिन समग्रता की भावना के साथ) बनाया जाता है।

बाहरी भित्ति चित्रकला :– शहरीकरण, भित्ति चित्रकला में वृद्धि, राजनीतिक दबाव संगठनों और अन्य कारकों के परिणामस्वरूप शहरों की बाहरी दीवारों पर भित्ति चित्र अधिक से अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं। ये भित्ति चित्रकार के लिए विशेष चुनौतियों को प्रस्तुत करते हैं। अपेक्षाकृत शुष्क जलवायु में भी कुछ ही भित्ति पेंट बाहरी भित्ति चित्रों के लिए आवश्यक स्थायित्व प्रदान करते हैं। इस कारण, बाहरी

- **https://www.muralpaintingvalour.com/mural-painting-valour.php (Google Translate** लिंक के माध्यम से**)**

DO NOT COPY

दीवार भित्ति चित्र आमतौर पर रंगीन सीमेंट, मोजेक ग्लास या सिरेमिक टेसेरा या टेराकोटा टाइल का उपयोग करके बनाए जाते रहे हैं।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में भित्ति चित्रों का महत्वपूर्ण पद है। भित्ति चित्रों की ख्याति से ही भारतीय चित्रकला के जीवित इतिहास का पता चलता है। भारत के जितने भी आवश्यक राजवंश हुए हैं, उन सभी राजवंशों के योगदान द्वारा ही भित्ति चित्रों के निर्माण में सफलता मिलती है। कई प्रकार के भित्ति चित्र जैसे बाघ, सित्तनावासल, जोरीमरा, अजंता, बदामी, एलोरा आदि की गुफाओं में देखने को मिलते हैं। भारत में ही नहीं, इसी प्रकार ललित दृश्य कला को देखने के लिए देश–विदेश के लोग भी यहाँ भ्रमण करने आते हैं। देश–विदेश से आए जो भी व्यक्ति इन चित्रों को देखते हैं, वहीं मुग्ध होकर रह जाते हैं और कलाकारों की प्रशंसा करते हुए रुकते नहीं। वास्तव में भित्ति चित्रों के निर्माण के वे कलाकार धन्य थे, जिनके दैहिक शरीर तो कालांतरित हो गए, किंतु उनका चेहरा उनके महान कृतित्व में अमर है। समय के साथ–साथ भित्ति चित्रण की तकनीक में परिष्कार होता गया और उसमें नई–नई विधियों का निर्माण होता गया। आज के समय में भित्ति चित्रण में बहुत सी विधियाँ विकसित हो चुकी हैं।

➢ भित्ति चित्रण की सामग्री :–

चट्टानों पर व जगह–जगह सज्जित दीवारों पर चित्रकारी का प्रचलन बहुत पहले से चलता आ रहा है। भित्ति चित्र के निर्माण में प्रयोग की जाने वाली ऐसी बहुत सी सामग्रियाँ व तकनीकें हैं, जिनके बारे में हम इस अध्याय में पढ़ेंगे। कुछ सामग्री निम्नलिखित हैं – प्लस्तर, रंजक एवं स्तम्भन, माध्यम और संरचना तकनीकें। यह सभी सामग्रियाँ अलग–अलग स्थानों और उस क्षेत्र के कलाकारों को सामग्री की उपलब्धता के अनुसार अपनाई गईं। इसमें उन तकनीकों का भी वर्णन है, जो प्राचीन शास्त्रों में बताई गई हैं। भित्ति चित्र को अच्छी तरह से स्पष्ट रूप से समझने के लिए उसकी सामग्रियों के बारे में जानना बहुत आवश्यक है, जिनसे उनकी रचना होती है। प्रयोग में लाई गई चित्रकारी की तकनीकें प्रचलन में रही हैं और बहुत सी तकनीकों का वर्णन प्राचीन शास्त्रों में मिलता है। इन्हें मुख्य रूप से निम्न प्रकार की सामग्रियों की वर्गों में बाँटा गया है –

1 प्लास्टर
2 रंगक और ब्लॉक
3 स्नेहक (रंगों के लिए)

भित्ति चित्रों की संरचना के लिए सर्वप्रथम ईंटें या मिट्टी, दीवार, पत्थर के ब्लॉक हो या चट्टान हो उसे रंग लगाने के योग्य बनाया जाता है। चट्टान पर चित्रकारी करने के लिए पेंट लगाने से पहले चट्टान को पानी में भिगो दिया जाता है और उसके बाद सीधे पेंट की सामग्री का प्रयोग किया जाता है। चट्टान पर चित्रकारी व रंगों को प्रभावी बनाने के लिए प्लास्टर नहीं किया जाता। समय के

DO NOT COPY

साथ–साथ चित्रकारी की कला का विकास हुआ, जिसके पश्चात दीवार पर प्लास्टर किया जाने लगा। तत्पश्चात उस पर चित्रों की चित्रकारी की जाती थी। भित्ति चित्र को बनाने के लिए विभिन्न पदार्थों को प्रयोग में लाया जाता है। वे इस प्रकार निम्नलिखित हैं –

- प्लास्टर :–

भित्ति चित्रकला में प्लास्टर की सामग्री अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यही चित्र का आधार तैयार करती है। यदि प्लास्टर की सामग्री सही और संतुलित हो, तो चित्र लंबे समय तक सुरक्षित, सुंदर और टिकाऊ रहता है। पारंपरिक फ्रेस्को तकनीक में विशेष रूप से प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग किया जाता है, जो दीवार और रंगों के बीच मजबूत संबंध स्थापित करती हैं। नीचे प्लास्टर की मुख्य सामग्रियों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है।

1) चूना : –

चूना प्लास्टर की सबसे प्रमुख और पारंपरिक सामग्री है। इसे चूना पत्थर को जलाकर तैयार किया जाता है और फिर पानी मिलाकर "लाइम पुट्टी" बनाई जाती है। हवा के संपर्क में आकर यह कठोर हो जाता है, जिसे कार्बोनेशन प्रक्रिया कहते हैं। चूना प्राकृतिक रूप से सफेद और चिकना होता है तथा रंगों को अच्छी तरह अवशोषित करता है। भित्ति चित्रकला में चूना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह रंगों को दीवार में स्थायी रूप से बाँध देता है। विशेषकर फ्रेस्को तकनीक में चूना सबसे उपयुक्त माना जाता है।

2) जिप्सम :–

जिप्सम एक खनिज है, जिसका उपयोग आधुनिक प्लास्टर में अधिक किया जाता है। यह पाउडर के रूप में मिलता है। यह जल्दी सूखने वाला पदार्थ है। जिप्सम हल्का और चिकना होता है, जिससे इसका उपयोग करना आसान हो जाता है। जिप्सम का उपयोग उन भित्ति चित्रों में किया जाता है, जहाँ तेजी से काम करना होता है। हालाँकि, यह पारंपरिक फ्रेस्को जितना टिकाऊ नहीं होता। रासायनिक रूप में इसे कैल्शियम सल्फेट डाइहाइड्रेट कहा जाता है।

3) रेत :–

रेत प्लास्टर को मजबूती देने के लिए आवश्यक सामग्री है। यह चूना या जिप्सम के साथ मिलकर प्लास्टर को मजबूती, संतुलन और स्थायित्व प्रदान करती है। बिना रेत के प्लास्टर कमजोर, भुरभुरा और जल्दी टूटने वाला हो सकता है। इसलिए यह प्लास्टर का अनिवार्य घटक मानी जाती है।

DO NOT COPY

रेत छोटे–छोटे पत्थरों (खनिज कणों) से बनी होती है, जो प्राकृतिक रूप से नदियों, समुद्र तटों और पहाड़ियों से प्राप्त होती है। रेत भित्ति चित्र को सिकुड़ने से रोकती है और दरारें आने से बचाती है।

4) रेशे :–

भित्ति चित्रकला में रेशे प्लास्टर की मजबूती और टिकाऊपन बढ़ाने के लिए मिलाए जाते हैं। ये प्राकृतिक या कृत्रिम हो सकते हैं। लेकिन पारंपरिक कला में मुख्यतः प्राकृतिक रेशों – जैसे कपास, सन और भूसे का उपयोग किया जाता है। ये प्लास्टर को दरारों से बचाते हैं और उसे लचीला बनाते हैं। रेशे पतले, लंबे और मजबूत तंतु होते हैं, जिन्हें पौधों, जानवरों या कृत्रिम स्रोतों से प्राप्त किया जाता है। प्लास्टर में मिलने पर ये एक जाल बनाते हैं, जो पूरी संरचना को मजबूती देता है।

5) प्लास्टर ऑफ पेरिस :–

प्लास्टर ऑफ पेरिस एक सफेद, महीन पाउडर होता है, जो जिप्सम को गर्म करके बनाया जाता है। पानी मिलने पर यह जल्दी सख्त हो जाता है और एक चिकनी, मजबूत सतह तैयार करता है। इसी कारण इसे भित्ति चित्रकला, मूर्तिकला और सजावटी कार्यों में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। इसका नाम फ्रांस के "पेरिस" क्षेत्र से पड़ा, जहाँ यह बड़े पैमाने पर बनाया जाता था। यह दीवार पर लगाने पर अधिक भार नहीं डालता, इसलिए इसका उपयोग आसानी से किया जाता है।

6) मिट्टी :–

भित्ति चित्रकला में मिट्टी एक प्राचीन और प्राकृतिक सामग्री है। विशेषकर ग्रामीण और लोक कला में दीवारों को तैयार करने के लिए मिट्टी का उपयोग किया जाता है। यह सस्ती, आसानी से उपलब्ध और पर्यावरण के अनुकूल होती है, इसलिए पारंपरिक भित्ति चित्रों में इसका बहुत महत्व है। मिट्टी प्राकृतिक रूप से प्राप्त एक महीन पदार्थ है, जो छोटे–छोटे खनिज कणों से बनी होती है। यह गीली होने पर नरम और लचीली तथा सूखने पर कठोर हो जाती है, जिससे यह प्लास्टर बनाने के लिए उपयुक्त बनती है। मिट्टी का उपयोग दीवार की पहली परत बनाने में किया जाता है, जिससे मजबूत आधार तैयार होता है। भारत की लोक कलाओं – जैसे मधुबनी, वारली में मिट्टी की दीवारों पर चित्र बनाए जाते हैं।

7) सिलवंडी मिट्टी :–

सिलवंडी मिट्टी एक प्रकार की प्राकृतिक चिकनी मिट्टी होती है, जिसका उपयोग पारंपरिक भित्ति चित्रकला में प्लास्टर के रूप में किया जाता है। यह मिट्टी आसानी से उपलब्ध, सस्ती और पर्यावरण के अनुकूल होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में दीवारों को तैयार करने और उन पर चित्र बनाने के लिए इसका

DO NOT COPY

व्यापक उपयोग किया जाता है। सिलवंडी मिट्टी वह चिकनी, महीन और लचीली मिट्टी होती है, जिसमें जल धारण करने की क्षमता अधिक होती है। यह गीली होने पर नरम और सूखने पर कठोर हो जाती है, इसलिए प्लास्टर बनाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

8) गोंद या बाइंडर :–

गोंद या बाइंडर वह पदार्थ होता है जो प्लास्टर और रंगों को आपस में जोड़कर रखता है। भित्ति चित्रकला में बाइंडर का उपयोग रंगों की पकड़ बढ़ाने और चित्र को लंबे समय तक टिकाऊ बनाने के लिए किया जाता है। बाइंडर एक चिपचिपा पदार्थ होता है, जो विभिन्न सामग्रियों – जैसे मिट्टी, चूना, रंग आदि को बाँधकर मजबूत परत बनाता है। बाइंडर के प्रकार हैं – गोंद, लई, केसिन जो प्राकृतिक रूप से प्राप्त होते हैं तथा सिंथेटिक गोंद और आधुनिक पेंट्स में उपयोग होने वाले रासायनिक बाइंडर कृत्रिम रूप से प्राप्त किए जाते हैं।

➢ रंजक :–

भित्ति चित्रकला एक प्राचीन कला है, जिसमें दीवारों पर चित्र बनाए जाते हैं। इस कला में रंजकों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यही रंग चित्र को जीवंतता, आकर्षण और स्थायित्व प्रदान करते हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक, विभिन्न प्रकार के रंजकों का उपयोग किया जाता रहा है। मुख्य रूप से रंजकों को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया जाता है –

- प्राकृतिक रंजक
- खनिज रंजक
- प्राकृतिक कार्बोनेट रंजक
- सिंथेटिक कार्बनिक रंजक
- धातु रंजक

1) प्राकृतिक रंजक :–

प्राकृतिक रंजक वे होते हैं जो सीधे प्रकृति से प्राप्त किए जाते हैं। ये मुख्यतः वनस्पतियों, मिट्टी और जैविक स्रोतों से मिलते हैं। प्राकृतिक रंजक पर्यावरण के अनुकूल होते हैं तथा हल्के और मध्यम रंग प्रदान करते हैं। ये रंजक प्राचीन काल में सर्वाधिक उपयोग किए जाते थे। इन रंगों के निर्माण के लिए इन प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है – हल्दी से पीला रंग, नील से नीला रंग, मेहंदी से हरा रंग तथा केसर से नारंगी रंग। प्राकृतिक रंगकों का उपयोग विशेष रूप से प्रारांभिक गुफा चित्रों

DO NOT COPY

और लोक कला में किया जाता था। ये रंग सरलता से उपलब्ध होते थे, परंतु इनकी स्थायित्व क्षमता खनिज रंगों की तुलना में कम होती है।

2) खनिज रंजक :–

खनिज रंजक पृथ्वी के खनिज पदार्थों से प्राप्त होते हैं। ये भित्ति चित्रकला में सबसे अधिक टिकाऊ और लोकप्रिय माने जाते हैं। खनिज रंजक तेज और टिकाऊ रंग उत्पन्न करते हैं। ये रंजक प्रकाश और नमी से कम प्रभावित होते हैं, जिससे इनके रंग अधिक टिकाऊ होते हैं। खनिज रंजक मुख्यतः इन पदार्थों से बनाए जाते हैं – हेमेटाइट से लाल रंग, गेरू से लाल/भूरा, मालाकाइट से हरा और अजुराइट से नीला। भीमबेटका गुफाओं के प्राचीन चित्रों में खनिज रंजकों का व्यापक उपयोग हुआ है। ये रंग हजारों वर्षों तक सुरक्षित रहते हैं।

3) प्राकृतिक कार्बोनेट रंजक :–

प्राकृतिक कार्बोनेट रंजक मुख्यतः कार्बोनेट यौगिकों से बने होते हैं, जैसे कैल्शियम कार्बोनेट। ये रंजक हल्के रंग (विशेषकर सफेद) प्रदान करते हैं। कार्बोनेट रंजक प्लास्टर और प्रेस्को तकनीक में अत्यंत उपयोगी होता है। यह भित्ति चित्रों के आधार को रंगने में भी काम आता है। ये रंजक मुख्यतः इन पदार्थों से बनाए जाते हैं – चूने से सफेद रंग, खड़िया से सफेद रंग तथा शंख चूर्ण से हल्का सफेद रंग। ये रंजक दीवार की सतह तैयार करने और पृष्ठभूमि को रंग देने में उपयोग किए जाते हैं। फ्रेस्को तकनीक में इनका विशेष महत्व है।

(4) सिंथेटिक कार्बनिक रंजक :–

सिंथेटिक कार्बनिक रंजक आधुनिक विज्ञान द्वारा कृत्रिम रूप से बनाए जाते हैं। ये रासायनिक प्रक्रियाओं से तैयार किए जाते हैं। इस रंजक के रंग अधिक चमकीले और विविध होते हैं। ये रंग सस्ते और आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। आधुनिक भित्ति चित्रकला में इन्हीं रंगों का अधिक उपयोग किया जाता है, जैसे – एक्रेलिक रंग, पोस्टर रंग तथा सिंथेटिक डाई आदि। आज के समय में कलाकार इन रंगों का उपयोग बड़े पैमाने पर करते हैं, क्योंकि ये जल्दी सूखते हैं और लंबे समय तक रंग बनाए रखते हैं।

(5) धातु रंजक :–

धातु रंजक वे रंगद्रव्य होते हैं जो विभिन्न धातुओं या उनके यौगिकों से प्राप्त होते हैं। भित्ति चित्रकला में इनका उपयोग विशेष रूप से चमक, वैभव और आकर्षण बढ़ाने के लिए किया जाता है। कुछ धातुओं का उपयोग चित्रकारी में सजावट, विशेषतः आभूषणों और पोशाकों के लिए भी किया जाता

DO NOT COPY

है। उनमें से सोने का सबसे अधिक महत्व है। इसे सोने के पाउडर या सोने की पत्तियों के रूप में भित्ति चित्रों में उपयोग किया जाता है। सोने धातु का प्रयोग सुनहरे रंग के लिए किया जाता है और इसके अलावा चाँदी से सफेद चमकीला तथा ताँबे से लाल/हरी आभा तथा काँसे से भूरा/सुनहरा रंग मिलता है। धातु रंजक अत्यधिक चमकदार होता है जो दीवारों पर आकर्षक और शाही प्रभाव डालता है। यह लंबे समय तक रहता है और प्रकाश में अलग–अलग प्रभाव दिखाता है।

➢ स्तम्भक :–

भित्ति चित्रकला में स्तम्भक वे माध्यम होते हैं जो रंजकों को आपस में जोड़कर दीवार या सतह से चिपकाते हैं। बिना स्तम्भक के रंग टिक नहीं पाते। यह चित्र की स्थायित्व, मजबूती और चमक के लिए अत्यंत आवश्यक तत्व है। सामान्यतः स्तम्भकों को चार मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है –

- प्राणी स्तम्भक
- खनिज स्तम्भक
- वनस्पति स्तम्भक
- तेल (तैलीय) स्तम्भक

1) प्राणी स्तम्भक :–

प्राणी स्रोतों से प्राप्त स्तम्भक प्राचीन काल से उपयोग में लाए जाते रहे हैं। ये प्रोटीन आधारित होते हैं और अच्छी चिपकने की क्षमता रखते हैं। इन स्तम्भकों की सामग्री प्राणियों के अंगों से प्राप्त होती है, जैसे – गोंद, हड्डियों, चमड़ी से जिलेटिन, और अंडे की जर्दी (टेम्परा तकनीक में), केसिन (दूध से प्राप्त) आदि। इनकी पकड़ मजबूत होती है और लंबे समय तक बनी रहती है। इनका उपयोग प्राचीन भित्ति चित्रों में, टेम्परा पेंटिंग तकनीक तथा धार्मिक और पारंपरिक चित्रों में किया जाता है।

2) खनिज स्तम्भक :–

सभी स्तम्भकों में से खनिज स्तम्भक सबसे महत्वपूर्ण माने जाते हैं क्योंकि ये प्राकृतिक रूप से पृथ्वी से प्राप्त होते हैं और अत्यधिक टिकाऊ होते हैं। खनिज स्तम्भक भित्ति चित्रों की नींव को मजबूत बनाते हैं और चित्रों को लंबे समय तक सुरक्षित रखते हैं। खनिज वे पदार्थ हैं जो खनिज या पृथ्वी से प्राप्त पदार्थों जैसे – चूना, जिप्सम, सीमेंट आदि से बने होते हैं और रंजकों को दीवार की सतह से स्थायी रूप से जोड़ने का कार्य करते हैं।

3) वनस्पति स्तम्भक :–

DO NOT COPY

ये स्तम्भक पेड़–पौधों से प्राप्त होते हैं और प्राकृतिक रूप से सुरक्षित माने जाते हैं। प्राचीन काल में मानव ने सबसे पहले प्राकृतिक वनस्पति पदार्थो का ही उपयोग चित्रकला में किया था। वनस्पति स्तम्भक पदार्थ जैसे पेड़–पौंधों, बीज, रस, गोंद, स्टार्च और रेशों से प्राप्त हाते है तथा रंजकों को दीवार या सतह से जोड़नें का कार्य करते है।

4) तेल (तैलीय) स्तम्भक :–

तेल आधारित स्तम्भक आधुनिक चित्रकला में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये चित्रों को न केवल मजबूती प्रदान करते हैं बल्कि उन्हें चमकदार और आकर्षक भी बनाते हैं। तेल आधारित स्तम्भक वे पदार्थ हैं, जो विभिन्न प्राकृतिक या संशोधित वनस्पति तेलों से प्राप्त होते हैं और रंजकों को घोलकर उन्हें दीवार या कैनवास पर स्थायी रूप से चिपकाने का कार्य करते हैं।

➢ भित्ति चित्रण की तकनीक :–

प्लास्टर, रंग और स्नेहकों के अतिरिक्त वे तकनीकें हैं जिनसे भित्ति चित्रकारी की संरचना की जाती है। वे भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसके लक्षण, गुणवत्ता, टिकाऊपन और इसका प्रदर्शन निश्चित करता है कि वर्तमान समय तक आते–आते इसकी कई विधियाँ विकसित हो चुकी हैं।

1) टेम्परा (Tempera) :–

टेम्परा (**Tempera**) चित्र बनाने का एक परपंरागत विधान है और आज भी बहु–प्रचलित है। टेम्परा चित्रण की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें किसी प्रकार के संष्लेषयुक्त पदार्थ के साथ जलीय रंगों का प्रयोग करते हैं। यह पदार्थ गोंद, अंडा, केसिन आदि हो सकता है। इसमें रंगों का पारदर्शी रूप में उपयोग नहीं होता, जबकि शुद्ध जलीय रंग–विधान में रंग पारदर्शी होते हैं। परंतु यह विधान दो–ढाई हजार वर्षों से भी चला आ रहा है। टेम्परा प्रणाली सभी देशों में प्रचलित है। इसके लिए दीवार, कपड़ा, काष्ठफलक, रेशम, कागज, भोजपत्र आदि कोई भी वस्तु आधार हो सकती है। उस पर टेम्परा प्रणाली से रंग बनाकर चित्र बनाया जा सकता है। टेम्परा प्रणाली से भित्तिचित्रों के निर्माण में उसके ऊपर एक विशेष प्रकार की जमीन तैयार करनी पड़ती है।

उदाहरण के लिए अजंता में भी चट्टान को खुरदरा कर उस पर गोबर, कपड़े की महीन लुग्दी, छनी हुई मिट्टी, धान की भूसी और अलसी का लेप (प्लास्टर के रूप में) किया गया। इसमें कई स्तर एक के ऊपर एक करके लगाए गए ताकि वह शीशे के समान समतल हो जाये। इस आधार या जमीन पर रंग लगाए गए, जो कुल खनिज रंग थे जैसे गेरू, हिरौंजी, रामरज, कुछ पत्थरों को पीसकर बनाए गए रंग जैसे लालवर्द और दहने फिरंग, कुछ रासायनिक जैसे हरा ढाबा, आलतां, शंख या जस्ते से बना सफेदा आदि। भारत में इसी परंपरा का उपयोग अन्य गुफाचित्रों में तथा बादामी, सित्तन्नवासल,

- **https://hi.wikipedia.org/wiki/**टेम्परा

DO NOT COPY

तंजौर, केचीन आदि में हुआ है। इसी प्रकार राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी शैलियों में भी इसी एक विभेद प्रयोग हुआ जिसे गुआश शैली कहते हैं। इसमें रंगों की कई परतें लगाई जाती हैं, परंतु प्रत्येक दो तहों के बीच सफेदी की एक तह अवश्य दे देते हैं। इससे रंगों में मोती जैसी चमक आ जाती है और उसकी तह मोटी हो जाती है। परंतु प्रायः सफेदे में गोंद अधिक होने से ये रंग तड़ककर टूट गए।

चीन में चाऊ, तांग, सुंग, मिंग आदि कालों में भी टेम्परा प्रणाली का उपयोग हुआ। यहाँ जमीन पर सरेस का अस्तर दिया जाता और कभी–कभी फिटकरी के पानी का भी। जपान में भी इस विधान का प्रयोग हुआ। उदाहरणार्थ, होरियुजी के मंदिर में चित्रित अवलोकितेश्वर की आकृति इसी प्रणाली में है। यूरोप में एत्रुस्कुल चित्र, माइकीनी ग्रीक के चित्र या प्राचीन मिस्र के पिरामिडों के चित्र इसी प्रणाली में बने हैं। रैनेसां युग के जिओत्तों, मासाच्चिओं, पिअरो देला फ्रांसेस्का, माइकेल एंजेलो आदि के भित्ति चित्र इसी विधान में बनाए गए हैं। तेल–चित्र विधान लगभग 500 वर्षों से ही चल रहा है, उसके पूर्व टेम्परा का विधान था। अब भी कुछ चित्रकार इस शैली को पसंद करते हैं क्योंकि इसमें तूलिका बेरोक–टोक चलती है (रंग माध्यम के कारण रुकती नहीं) और रंगों का भी अधिक सामंजस्य संभव है।

2) फ्रेस्को (Fresco) :–

फ्रेस्को दीवार या छत पर सीधे चित्रकारी करने की पारंपरिक विधि है। यह सबसे पुराना ज्ञात चित्रकारी माध्यम है, जो प्रागैतिहासिक गुफा भित्तिचित्रों में मिलता है और 16वीं शताब्दी में इटली में बून प्रेस्को पद्वति में इसे और भी परिष्कृत किया गया।

फ्रेस्को चित्र, दीवारों पर चित्रकारी करने की एक विधि है, जिसमें आमतौर पर पानी आधारित रंगों को ताजी सतहों पर लगाया जाता है। प्लास्टर या चूने के पानी से भीगी हुई सतहों पर चित्रकारी की जाती है। फ्रेस्को पेंटिंग एक प्राचीन तकनीक है, जो पुनर्जागरण काल में लोकप्रिय थी और 20वीं शताब्दी में विशेष रूप से मेक्सिको में थोड़े समय के लिए पुनर्जीवित हुई थी। यह चित्रकारी के लिए आदर्श है। भित्तिचित्रों का चयन इसलिए भी बेहतर है क्योंकि यह एक अन्य शैली के लिए उपयुक्त है, टिकाऊ है और इसकी सतह सुंदर है।

बुओन या "सच्ची" फ्रेस्को, सबसे टिकाऊ तकनीक है और इसमें निम्नलिखित प्रक्रिया शामिल है। विशेष रूप से तैयार किए गए प्लास्टर, रेत और कभी–कभी संगमरमर के चूर्ण की तीन क्रमिक परतें दीवार पर लगाई जाती हैं। पहली दो खुरदरी परतों को लगाने के बाद उन्हें सूखने और सख्त होने दिया जाता है। इस दौरान कलाकार चित्रित की जाने वाली छवि का पूर्ण आकार का कार्टून (प्रारंभिक रेखाचित्र) बनाकर उसकी रूपरेखा तैयार करता है। अंतिम, चिकनी परत को दीवार के उतने हिस्से पर लगाया जाता है, जितना एक बार में रंगा जा सके। इस क्षेत्र की सीमाएँ कंटूर रेखाओं के स्थान पर सावधानीपूर्वक निर्धारित की जाती हैं ताकि प्लास्टर की प्रत्येक परत के किनारे या जोड़ दिखाई न दें। इन खंडों को जियोर्नेटा कहा जाता है, जिसका अर्थ है "एक दिन का काम"। फिर ट्रेसिंग को ताजे

- **https://www.britannica.com/art/painting/Fresco**

DO NOT COPY

इंटोनाको के सामने रखकर रंगे हुए दीवार के आस–पास के खंडों के साथ सावधानीपूर्वक मिलाया जाता है और इसकी प्रासंगिक कंटूर और आंतरिक रेखाओं को ताजे प्लास्टर पर उकेरा जाता है। यह हल्की लेकिन सटीक रेखाचित्र रंग भरने के लिए एक मार्गदर्शिका के रूप में कार्य करती है। सटीक रेखा से तैयार किए गए कार्टून कई वर्षों तक अपनी नमी बनाए रखते हैं।

3). सेक्को (Secco) :–

सेक्को एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें गीले प्लास्टर से दीवार को तैयार करने की तात्कालिक प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती। इसके बजाय, सूखी, तैयार दीवारों को चूने के पानी से भिगोया जाता है और गीली अवस्था में ही रंग किया जाता है। रंग प्लास्टर में प्रवेश नहीं करते बल्कि किसी अन्य रंग की तरह सतह पर एक पतली परत बनाते हैं। सेक्को बारीक चित्रकारी और असली फ्रेस्को में सुधार करने के लिए उपयोगी है। सेक्को चित्रों को फ्रेस्को–सेक्को नाम से भी जाना जाता है।

4). एनकॉस्टिक (Encaustic) :–

एनकॉस्टिक चित्र एक ऐसी चित्र तकनीक है, जिसमें रंगद्रव्य को गर्म तरल के साथ मिलाया जाता है, जिसमें मोम का उपयोग सबसे महत्वपूर्ण है। कलाकार मोम में राल या तेल (कैनवास पर उपयोग के लिए तेल) मिलाकर पेंट का गाढ़ापन बदल सकता है। पेंट को सतह पर लगाने के बाद, जो आमतौर पर लकड़ी, प्लास्टर या कैनवास से बनी होती है, एक हीटिंग उपकरण की सतह पर तब तक घुमाया जाता है जब तक कि ब्रश या स्पैटुला के अलग–अलग निशान एक समान परत में विलीन न हो जाएँ। रंगों को इस तरह से "पक्का करना" एनकॉस्टिक तकनीक का एक अनिवार्य तत्व है।

एनकॉस्टिक मोम में तेल रंगों के कई गुण होते हैं। यह बहुत ही चमकदार और आकर्षक प्रभाव दे सकता है और सुंदर तथा अभिव्यंजक ब्रशवर्क कार्यों के लिए व्यापक संभावनाएँ प्रदान करता है। हालांकि, ऐसे माध्यम का उपयोग करने में व्यावहारिक कठिनाइयाँ काफी हैं क्योंकि इसे गर्म रखना पड़ता है। आधुनिक ताप विधियों की अधिक परिष्कृतता के अलावा, वर्तमान तकनीक पहली शताब्दी ईस्वी की रोमन विद्वान "प्लिनी द एल्डर" द्वारा वर्णित तकनीक के समान है। एनकॉस्टिक पेंटिंग का आविष्कार प्राचीन यूनानियों ने किया था और शैली चित्रकारों ने इसे तकनीकी पूर्णता के शिखर तक पहुँचाया है। पोम्पियस, चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में।

5). मोजेक (Mosaic) :–

मोजेक एक कला शैली है जिसमें पत्थर, खनिज, काँच, धातु या शंख जैसी विभिन्न रंगों की छोटी–छोटी टुकड़ियों को पास–पास रखकर डिजाइन बनाया जाता है। जड़ाई के विपरीत, जिसमें डिजाइन बनाने के लिए खोखली की गई सतह में टुकड़े जड़े जाते हैं, मोजेक के टुकड़े एक चिपकने

- **https://www.britannica.com/art/encaustic-painting**

DO NOT COPY

वाले पदार्थ से तैयार की गई सतह पर लगाए जाते हैं। मोजेक अन्य कलाओं से भी भिन्न है। मोजेक के टुकड़े डिजाइन के अलग–अलग हिस्से होते हैं और उनका आकार अक्सर इंटार्सिया (लकड़ी की जड़ाई) के टुकड़ों जितना बड़ा नहीं होता। इंटार्सिया का काम अक्सर किसी आकृति या पैटर्न के पूरे हिस्सों को दर्शाना होता है। एक बार अलग कर दिए जाने पर, मोजेक को उसके अलग–अलग टुकड़ों के आकार के आधार पर दोबारा नहीं जोड़ा जा सकता।

मोजेक कला के निर्माण और उसकी सराहना दोनों के लिए तकनीकी अंतर्दृष्टि अत्यंत महत्वपूर्ण है, और इस कला के तकनीकी पहलुओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। मोजेक के महत्वपूर्ण शेलीगत, धार्मिक और सांस्कृतिक पहलू भी हैं, जिन्होंने पश्चिमी कला में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और अन्य संस्कृतियों में भी दिखाई दिए हैं। हालांकि मोजेक एक ऐसी कला शैली है जो इतिहास में अलग–अलग स्थानों और समयों में पाई जाती है, लेकिन केवल एक ही स्थान बीजान्टियम में और एक ही समय चौथी से चौदहवीं शताब्दी में यह प्रमुख चित्रकला शैली के रूप में उभरी।

रोमन साम्राज्य काल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। तब मोजेक ने धीरे–धीरे अपने स्वयं के सौंदर्य संबंधी नियम विकसित किए। फिर भी मूल रूप से यह एक माध्यम है जिसका उपयोग किया जाता था। फर्शों के लिए इसकी स्थापना के कुछ नियम एक अवधारणा द्वारा नियंत्रित थे। दीवार की सजावट से अलग परिप्रेक्ष्य और देखने का तरीका भी अलग था। इसी दौरान, चटख रंगों वाली सामग्रियों के बढ़ते उपयोग ने पेंटिंग से मोजेक की स्वतंत्रता को भी बढ़ावा दिया।

6). आला–गीला (Ala- gila) :–

भारत की आला–गीता पद्धति राजस्थान की एक अत्यंत गौरवशाली और प्राचीन भित्ति चित्रकला तकनीक है, जिसे मुख्य रूप से 'आरायश' या 'पणा' के नाम से भी जाना जाता है। इस तकनीक का शाब्दिक अर्थ "गीले पर गीला" होता है, जिसका सीधा तात्पर्य यह है कि इसमें दीवार पर ताजे चूने और प्लास्टर की पूरी परत सूखने से पहले ही उस पर रंगों से चित्रकारी की जाती है। यह कला न केवल अपनी अद्भुत चमक के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि इसकी स्थायित्व क्षमता भी आश्चर्यजनक है, क्योंकि समय बीत जाने के बाद भी इसके रंगों और चमक में कमी नहीं आती। इस कला की प्रक्रिया काफी जटिल और धैर्यपूर्ण होती है। इसमें सबसे पहले दीवार पर बुझे हुए चूने, संगमरमर के चूरे और रेत का बारीक लेप लगाया जाता है। जब यह लेप हल्का नमीयुक्त रहता है, तभी कलाकार खनिज रंगों और प्राकृतिक पिगमेंट का उपयोग करके उस पर सुंदर आकृतियाँ उकेरता है। इस तकनीक की सबसे बड़ी विशेषता इसकी 'पॉलिश' प्रक्रिया है, जिसमें एक विशेष चिकने पत्थर, जिसे अकीक कहा जाता है, से दीवार की जोर–जोर से घिसाई की जाती है। इस घिसाई के कारण रंग चूने के साथ मिलकर रासायनिक रूप से दीवार का ही एक हिस्सा बन जाते हैं और सतह पर दर्पण जैसी प्राकृतिक चमक आ जाती है। ऐतिहासिक रूप से इस कला ने मुगल और राजस्थानी दरबारों में बहुत सम्मान पाया,

DO NOT COPY

जिसके उत्कृष्ट उदाहरण हमें जयपुर के सिटी पैलेस, आमेर के किले और उदयपुर की भव्य हवेलियों में देखने को मिलते हैं। इन चित्रों के विषय अक्सर शाही जीवन, वीरता, प्रकृति और दरबारी जीवन के दृश्य होते हैं। यद्यपि आज के समय में आधुनिक संसाधनों और पेंट के कारण यह पारंपरिक विधि दुर्लभ होती जा रही है, फिर भी यह भारतीय वास्तुकला और हस्तशिल्प के वैज्ञानिक कौशल का एक बेजोड़ प्रमाण है। इस कला की सुरक्षा न केवल राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत को बचाना है, बल्कि प्राचीन भारतीय सौंदर्यशास्त्र को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाना भी है।

7). रंगीन काँच की खिड़कियाँ (Stained Glass Window) :–

भित्ति चित्रकला में रंगीन काँच का उपयोग सजावटी खिड़कियाँ और अन्य प्रकाश–पारगम्य वस्तुएँ बनाने में किया जाता है। यह शब्द सजावटी या चित्रमय खिड़कियों में प्रयुक्त काँच को संदर्भित करता है। रंगीन काँच की खिड़कियों के आकर्षक रंग सामंजस्य किसी विशेष काँच रंगाई तकनीक के कारण नहीं, बल्कि प्रसारित प्रकाश के उपयोग और मानव दृष्टि के प्रकाश–अनुकूल व्यवहार के कारण हैं। 12वीं और 13वीं शताब्दी के आरंभिक काल की महान रंगीन काँच की खिड़कियाँ काँच बनाने की कला में हुई महत्वपूर्ण तकनीकी प्रगति से लगभग आधी शताब्दी पहले की हैं।

पिघले हुए काँच को धात्विक ऑक्साइडों से रंगा जाता था, जैसे माणिक रंग के लिए तांबा, नीले रंग के लिए कोबाल्ट और हरे रंग के लिए लोहा। मध्ययुगीन काँच की चादरें बनाने के लिए, काँच के बुलबुले को फुलाया जाता था, उसे नली का आकार दिया जाता था। सिरों को काटकर बेलनाकार बनाया जाता था। बेलनाकार भाग को लंबाई में चीरा जाता था और जब वह अभी भी लाल गर्म होता था, तब उसे चपटा करके चादर बना दी जाती थी। रंगीन काँच का उपयोग आमतौर पर चर्चों और धार्मिक भवनों में किया जाता था। रंगीन काँच की खिड़कियों के सबसे पुराने पूर्ण उदाहरण प्रारम्भिक ईसाई बेसिलिकाओं में पाए गए हैं। रोमनस्क्यू और गॉथिक काल के उत्तरार्ध में रंगीन काँच एक प्रमुख कला रूप और चर्च की सजावट का एक महत्वपूर्ण तत्व बन गया, विशेष रूप से उत्तरी यूरोप में।

8) केसिन टेम्परा (Casein Tempera) :–

कैसिन टेम्परा चित्रकला की एक बहुत पुरानी और मजबूत तकनीक है। आसान शब्दों में समझें तो इसमें रंगों को घोलने या चिपकाने के लिए केसिन का इस्तेमाल किया जाता है, जो दूध से निकाला गया एक प्रोटीन होता है। यह एक प्राकृतिक गोंद की तरह काम करता है। केसिन को दूध के फटने या पनीर बनाने की प्रक्रिया से तैयार किया जाता है। चित्रकला में इसका उपयोग एक बाइंडिंग (चिपकाने वाले पदार्थ) के रूप में होता है। तब सूखे रंगों के पाउडर में केसिन मिलाया जाता है। यह तकनीक अपनी मजबूती के लिए जानी जाती है। एक बार जब यह पेंट सूख जाता है, तो यह पत्थर

- **https://www.britannica.com/art/stained-glass**

DO NOT COPY

जैसा सख्त हो जाता है और इस पर पानी का असर नहीं होता। पुराने समय में इसका उपयोग दीवारों पर चित्र (भित्ति चित्र) बनाने और लकड़ी के पैनलों पर पेंटिंग करने के लिए खूब किया जाता था।

9) चूना सैको (Fresco Secco) :–

चूना सैको भित्ति चित्रकला की एक अत्यंत प्रभावशाली और वैज्ञानिक विधा है, जो अपनी सादगी और स्थायित्व के लिए प्रसिद्ध है। सामान्यतः सूखे प्लास्टर पर चित्रकारी करते समय रंगों को सतह पर चिपकाने के लिए किसी बाहरी माध्यम या बाइंडर, जैसे कि गोंद, अंडे की जर्दी या केसिन की आवश्यकता होती है। परंतु चूना सैको की वास्तविक विशेषता इसकी वह शुद्धता है जिसमें किसी भी अतिरिक्त बाइंडिंग एजेंट का उपयोग नहीं किया जाता। इस तकनीक में सारा जादू चूने की अपनी प्राकृतिक रासायनिक शक्ति और पानी के साथ संतुलन में छिपा होता है।

इस कला की प्रक्रिया में सबसे पहले सूखी दीवार या पुराने प्लास्टर को पानी से अच्छी तरह भिगोकर नम किया जाता है ताकि वह रंगों को सोखने के लिए तैयार हो जाए। इसके बाद, खनिज रंजकों को केवल शुद्ध चूने के पानी के साथ मिलाकर पेंट तैयार किया जाता है। जब इस मिश्रण को नम दीवार पर लगाया जाता है, तो चूना हवा में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड के साथ मिलकर कार्बोनेशन की प्रक्रिया शुरू करता है। यह प्रक्रिया दीवार की सतह पर कैल्शियम कार्बोनेट की एक अत्यंत सूक्ष्म और पारदर्शी परत बना देती है, जो रंगों को बिना किसी गोंद के दीवार के रेशों के साथ स्थायी रूप से जोड़ देती है। बिना पीटेज के इस तकनीक का उपयोग करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें रंगों की मौलिक चमक और गहराई सुरक्षित रहती है। चूँकि इसमें कोई चिपचिपा बाहरी पदार्थ नहीं होता, इसलिए दीवार के सूक्ष्म छिद्र बंद नहीं होते और दीवार प्राकृतिक रूप से "साँस" ले पाती है। अततः चूना सैको तकनीक यह सिद्ध करती है कि प्रकृति के सरल तत्वों के सही ज्ञान से बिना किसी कृत्रिम माध्यम के भी ऐसी कलाकृतियाँ बनाई जा सकती हैं, जो सदियों तक अपनी जीवंतता और सुंदरता को बरकरार रखती हैं।

10) सिंथेटिक रंगों की चित्रकारी :–

सिंथेटिक रंगों (जैसे एक्रेलिक) से चित्रकारी करना आज के समय में बहुत लोकप्रिय है क्योंकि ये रंग पानी में घुलनशील होने के साथ–साथ सूखने के बाद पूरी तरह से वाटरप्रूफ हो जाते हैं। इनका सबसे बड़ा फायदा यह है कि ये बहुत जल्दी सूखते हैं, जिससे कलाकार को अगली परत चढ़ाने के लिए लंबे इंतजार नहीं करना पड़ता। आप इन्हें कैनवास, लकड़ी, कागज या यहाँ तक कि कपड़ों पर भी आसानी से इस्तेमाल कर सकते हैं। इन रंगों की बनावट गाढ़ी होती है, जिससे चित्र में गहराई और अलग–अलग टेक्सचर देना आसान हो जाता है। अगर आप इन्हें पानी के साथ मिलाते हैं, तो ये

DO NOT COPY

वॉटरकलर जैसा हल्का प्रभाव देते हैं, और अगर बिना पानी के सीधे इस्तेमाल करते हैं, तो ये ऑयल पेंट जैसी चमक और मजबूती प्रदान करते हैं।

11) तेल (Oil) तकनीक :–

कभी–कभी भित्ति चित्रों में तैलीय रंगों का उपयोग किया जाता है। इसे तेल सेक्को (**Oil Secco**) कहा जाता है, जहाँ तेल का प्रयोग एक माध्यम के रूप में होता है। अंजता और ऐलोरा के कुछ चित्रों में इस तकनीक के प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं। तेल का संबंध है, अलसी और पेस्ट का तेल भित्ति चित्रों में प्रयोग किया गया है।

12) स्फौफितो (Sgraffito) तकनीक :–

स्फौफितो एक प्राचीन और आकर्षक कला तकनीक है, जिसमें रंगों की परतों को खुरचकर चित्र बनाया जाता है। स्फैफितो नाम इतालवी शब्द "स्फैफिसियारे" से आया है, जिसका अर्थ होता है "खुरचना"। इस तकनीक में सबसे पहले सतह पर रंग की एक गहरी परत लगाई जाती है और उसे पूरी तरह सूखने दिया जाता है। उसके बाद, उस पर एक–दूसरे और अक्सर विपरीत रंगों की परत चढ़ाई जाती है। जब ऊपर वाली परत अभी थोड़ी गीली होती है, तब कलाकार किसी नुकीले औजार या चाकू से ऊपरी सतह को खुरचकर नीचे का रंग बाहर निकालता है, जिससे सुंदर डिजाइन और आकृतियाँ बन जाती हैं। यह तकनीक न केवल भित्ति चित्रों में इस्तेमाल होती है, बल्कि मिट्टी के बर्तनों और आधुनिक पेंटिंग में भी काफी लोकप्रिय है। पुराने समय में महलों और मंदिरों की दीवारों को सजाने के लिए इसका खूब उपयोग किया गया है, क्योंकि यह तकनीक बहुत टिकाऊ होती है।

➢ भित्ति चित्रों के क्षति के कारण :–

भित्ति चित्रकला न केवल एक कला है, बल्कि यह हमारे इतिहास और संस्कृति का जीवंत प्रमाण है। हालांकि, समय के साथ ये बहुमूल्य कलाकृतियाँ विभिन्न कारणों से नष्ट हो रही हैं। इन चित्रों की क्षति का सबसे प्रमुख प्राकृतिक कारण नमी है। जब दीवारों में पानी का रिसाव होता है या वातावरण में आर्द्रता बढ़ जाती है, जिससे पेंट की परतें पपड़ी बनकर झड़ने लगती हैं। इसके अतिरिक्त, समय और तापमान में होने वाले निरंतर बदलावों से दीवारों में दरारें पड़ जाती हैं, जो चित्र की अखंडता को तोड़ देती हैं। प्राकृतिक कारणों के अलावा, आधुनिक युग में बढ़ता वायु प्रदूषण एक गंभीर खतरा बन गया है। हवा में मौजूद सल्फर डाइऑक्साइड और कार्बन जैसे तत्व रंगों के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया करती हैं, जिससे प्राचीन चित्रों की चमक फीकी पड़ जाती है और वे काले दिखने लगते हैं। प्रकाश का प्रभाव, विशेषकर सूर्य की पराबैंगनी किरणें, प्राकृतिक रंगों के पिगमेंट को नष्ट कर देती हैं, जिससे चित्र

DO NOT COPY

समय के साथ पूरी तरह धुंधले हो जाते हैं। जैविक कारक जैसे कि फफूंद, काई और सूक्ष्मजीवों का बढ़ना भी इन चित्रों को रासायनिक रूप से नुकसान पहुँचाता है।

अंततः मानव गतिविधियाँ भी इस विनाश में बड़ी भूमिका निभाती हैं। अनियंत्रित पर्यटन, चित्रों को छूना और ऐतिहासिक स्थलों पर तोड़–फोड़ करना इन कलाकृतियों को अपूरणीय क्षति पहुँचाता है। यदि समय रहते इन कारणों को नियंत्रित नहीं किया गया, तो हम अपनी इस अमूल्य सांस्कृतिक विरासत को हमेशा के लिए खो देंगे।

➢ भित्ति चित्रों की क्षति के प्रकार :–

भित्ति चित्रकला की क्षति के पीछे कई संरचनात्मक और पर्यावरणीय कारण जिम्मेदार होते हैं, जिनमें दीवार की कमजोर संरचना और पर्यावरण में मौजूद उच्च आर्द्रता प्रमुख हैं। इसके अलावा तरल स्थिति में पानी की अधिक गति, भारी वर्षा, पाला और वनस्पतियों या पक्षियों की उपस्थिति भी चित्रों को क्षति पहुँचाती है। वायुमंडलीय प्रदूषण, धूल, कंपन, बाढ़ और दोषपूर्ण निर्माण तकनीकों के साथ–साथ आग जैसे कारणों से भी भित्ति चित्रों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।

इन कारणों से होने वाली क्षति कई रूपों में दिखाई देती है। जैसे कि कमजोर दीवार के कारण प्लास्टर का विस्थापित होकर गिरना या दीवार की सतह का चूर्णयुक्त और धुँधला हो जाना। रंगों के स्तर पर भी काफी विकृति आती है, जिसमें रंग पपड़ी बनकर झड़ने लगते हैं, पानी में घुलकर बह जाते हैं या समय के साथ उड़ जाते हैं। सतह का पीला पड़ना, प्राचीन चित्रों पर चूने की पुताई या नई चित्रकारी कर देना और धुएँ का जमाव भी भित्ति चित्रों की गहराई से क्षति ग्रस्त कर देता है।

➢ भित्ति चित्रकला की सुरक्षा के लिए पदार्थ :–

भित्ति चित्रों की एक पारदर्शी और अतिजलरोधी परत से संरक्षित करने के लिए एक चरण वाली स्प्रे प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है, जो भित्ति चित्रों की सुरक्षा को बनाए रखती है। धूल से भी दूर रखती है।

भित्ति चित्रों को संरक्षण के लिए अतिजलरोधी परतों का अनुप्रयोग अभी भी एक नया दृष्टिकोण है। इस परत में ऐक्रेलिक रेजिन, नैनो–सिलिका और पॉलीडाइमिथाइल सिलोक्सेन शामिल होते हैं। इन दोनों को मिलाकर जो घोल तैयार होता है, उसे ऐक्रेलिक रेजिन वाले मूल घोल में मिलाया जाता है। इस मिश्रित परत में जल से बचाव की क्षमता होती है, जिससे वायु में नमी के कारण तथा पर्यावरण की धूल, प्रदूषण से प्रभावित नहीं होते तथा अपनी सुरक्षा बनाए रखते हैं।

- **https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S0927775724006113**

DO NOT COPY

पंचम अध्याय

- वर्तमान समय में भित्ति चित्रों की दुर्दशा व संरक्षण

वर्तमान समय में भित्ति चित्रों की दृष्टि

प्राचीन काल से ही भित्ति चित्रों का विशेष महत्व रहा है। मंदिरों एवं महलों को आकर्षक बनाने में भित्ति चित्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जब लोग किसी मंदिर या पौराणिक स्थल के दर्शन को जाते हैं, तो मंदिर की दीवारों, गुंबद व अंदरूनी हिस्सों में बने देवी–देवताओं के भित्ति चित्र देखने के बाद उनसे संबंधित पूरी घटना मन में अंकित हो जाती है।

विडंबना है कि पौराणिक मंदिरों के नवीनीकरण के नाम पर इन भित्ति चित्रों को नष्ट किया जा रहा है, जो बचे हैं वे भी नष्ट होने के कगार पर हैं। इन भित्ति चित्रों को बचाकर मंदिरों और पुरातन स्थलों के आकर्षण का केंद्र होंगे। चित्रकला मानव की कलात्मक अभिव्यक्ति का सबसे प्राचीन माध्यम माना जाता है। प्राचीन काल से ही मानव ने उन गुफाओं की भित्तियों पर चित्र बनाना शुरू किए जिनमें वह निवास करता थे। बाद में उसने शिलाओं एवं पत्थरों पर कोयले या गेरू जैसे प्राकृतिक रंगों की सहायता से चित्र बनाए। इनमें मुख्यतः आखेट के दृश्य, सामूहिक भोजन, नृत्य आदि की प्रधानता विद्यमान है।

कालांतर में मानव सभ्यता के विकास के साथ उसने अन्य प्राकृतिक रंगों से शिलाओं की सतह को समतल बनाकर चित्र बनाने शुरू किए। यह चित्र आज शिलाचित्र कहलाते हैं। भारत में भी भित्ति चित्रकला प्राचीन काल से ही अस्तित्व में आ गई थी। भीमबेटका तथा मिर्जापुर में भी इस प्रकार के कई चित्र मिले हैं। सभ्यता के विकास के साथ भित्ति चित्रों के निर्माण में भी नई तकनीकें अपनाई जाने लगीं। ऐतिहासिक काल में राजमहलों, मंदिरों, मानव निर्मित गुफाओं व अन्य व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक भवनों की भित्तियों व छतों पर धार्मिक व धर्मनिरपेक्ष चित्र बनाने की परंपरा चल पड़ी, जो समय व स्थान विशेष की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक परंपराओं को स्वयं में समेटती रही है।

कुरुक्षेत्र भूमि जिसे आज महाभारत की रणस्थली तथा धर्मक्षेत्र–कुरुक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक कालों में कलात्मक गतिविधियों के केंद्र के रूप में भी प्रसिद्ध थी। स्थापत्य कला के साथ यहाँ के मंदिरों, हवेलियों, चौपालों आदि की भित्तियों व छतों पर भित्ति चित्र बनाने की परंपरा रही है। कुरुक्षेत्र भूमि जो कि आज हरियाणा के कुरुक्षेत्र, कैथल, करनाल, जींद व पानीपत जिलों में विस्तृत है, जिन मंदिरों में उत्तर–मध्य कालीन भित्ति चित्र आज भी देखने को मिलते हैं, लेकिन मंदिरों के आधुनिकीकरण के नाम पर कई मंदिरों की यह धरोहर नष्ट होने के कगार पर है। यही स्थिति तीर्थ मंदिरों के भित्ति चित्रों में रामायण, महाभारत एवं पौराणिक आख्यानों की प्रधानता है। इन तीर्थों में कई महत्वपूर्ण मंदिर उत्तर मध्यकालीन वास्तुशिल्प के सुंदर एवं सजीव उदाहरण हैं। इनमें से कुछ मंदिरों में मूर्तिकला के साथ–साथ उत्तर मध्यकालीन भित्ति चित्र भी मिलते हैं। इनमें से दशाश्वमेघ तीर्थ, सालवन के बहुस्तंभीय घाट कक्ष में 18वीं सदी के भित्ति चित्रों में रामायण से संबंधित चित्रों का अंकन एवं पराशर तीर्थ, भलोलपुर के भित्ति चित्रों में विविध व मुख्यतः शिव से जुड़े अनेक प्रसंगों का चित्रण है।

- **https://www.jagran.com/haryana/kurukshetra-11841448.html**

DO NOT COPY

इसी भूमि में स्थित कुछ हवेलियों की दीवारों पर निर्मित भित्ति चित्रों में धार्मिक एवं लौकिक दोनों विषयों की कथावस्तु पर आधारित चित्रण समसामयिक हरियाणवी भित्ति चित्रकला के अनूठे उदाहरण हैं। अतः महान सांस्कृतिक धरोहर के इस अपूर्ण कोष की रक्षा करना हम सबका नैतिक कर्तव्य बन जाता है। कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड की बात करें तो वह तीर्थों के सरोवरों के रखरखाव की ही जिम्मेदारी ठीक से नहीं निभा पा रहा, ऐसे में मंदिरों में बने भित्ति चित्रों की तरफ कहाँ से ध्यान देगा। बहुत से पौराणिक मंदिर ऐसे भी हैं, जिनके देखरेख की जिम्मेदारी वहाँ के पुजारियों व धार्मिक संस्थाओं की है। ऐसे में कोताही की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है।

इस सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण संग्रहालय में आयोजित निःशुल्क हॉबी कक्षाओं में स्कूली विद्यार्थियों द्वारा संग्रहालय एवं नगर के कलाकारों के मार्गदर्शन व संरक्षण में चित्रकला की शिक्षा दी जाती है। इस चित्रकला को काली कमली परिसर व संग्रहालय परिसर के बीच की दीवार पर चित्रित किया गया है। यह एक सराहनीय प्रयास है और प्रशासन की जिम्मेदारी बनती है कि वह इस तरह के प्रयासों को प्रोत्साहन दे ताकि और भी कला संस्थाएँ आगे आएँ जो लुप्त होती इस कला को जीवन प्रदान करने का कार्य करें। यदि इस कला को प्रोत्साहन दिया जाए तो जहाँ भित्ति चित्र परंपरा को बचाया जा सकता है, वहीं इससे जुड़े लोगों को रोजगार भी दिया जा सकता है।

➢ भित्ति चित्रण के संरक्षण की जरूरत :–

इन ऐतिहासिक स्मारकों का एक अत्यंत नाजुक और मनमोहक पहलू उनकी भित्ति चित्रकारी है। लद्दाख के अल्ची मठ से लेकर तमिलनाडु के बृहदेश्वर मंदिर तक, हमारे देश में भव्य भित्ति चित्रकारी का समृद्ध इतिहास रहा है। इनमें से कुछ प्राचीन चित्रकारी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थायी सुरक्षा में हैं, लेकिन कुछ अन्य कम प्रसिद्ध हैं और उपेक्षित समय की मार झेल रहे हैं। इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण शेखावाटी है, जिसे भारत की भित्ति चित्रकारी राजधानी कहा जाता है, जिसमें भारतीय इतिहास की कुछ बेहतरीन भित्ति चित्रकारी वाली भव्य हवेलियाँ हैं। हालाँकि, इनमें से अधिकांश निजी स्वामित्व में हैं और अब उपेक्षित हैं। वर्तमान कानून, हालांकि कानून द्वारा इन्हें संरक्षित करने के लिए सक्षम हैं, इसके बजाय अनदेखी कर रहे हैं।

पश्चिम में विरासत का परिप्रेक्ष्य रैखिक है, जबकि भारत में विश्व–चक्रिय है, जहाँ इमारतों की तुलना में स्थल का अधिक सम्मान किया जाता है। भारतीय दृष्टिकोण न्यूनतम हस्तक्षेप और अतीत एवं वर्तमान के बीच स्पष्ट अंतर बनाए रखने का है। यही कारण है कि संरक्षणकर्ताओं को चित्रकला के विभिन्न चरणों के संदर्भ में उसका विस्तृत फोटोग्राफिक दस्तावेजीकरण करना अनिवार्य है।

भारत में भित्ति चित्रों के संरक्षण का पहला प्रयास हैदराबाद के निजाम ने किया था। उन्होंने 1920 में जीर्ण – शीर्ण हो रहे अजंता चित्रों के उपचार के लिए दो इतालवी संरक्षकों एल. सेकोनी और काउंट ओरसिनी को आमंत्रित किया। उन्होंने चित्रों को संरक्षित करने के लिए उन पर शेलैक का लेप लगाया,

- **https://blog.ipleaders.in/legal-framework-for-conservation-of-mural-paintings-in-india**

DO NOT COPY

लेकिन बाद में लेप में परिवर्तन आया और वह पीला पड़ गया, और कुछ स्थानों पर तो भूरा भी हो गया, जिससे मूल रंग योजना पूरी तरह से छिप गई और विकृत हो गई। आज संरक्षण दल को उस शेलैक लेप को हटाने में काफी कठिनाई हो रही है। उचित नियम लागू होने से इस भारी क्षति को रोका जा सकता था।

आधुनिक युग में एक और चुनौती सामने आई है – इन धरोहर स्थलों के संरक्षण और ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के निरंतर विकास के बीच उचित संतुलन बनाए रखना। हालाँकि, नियमन से किसी धरोहर भवन को उसकी मूल भव्यता में बहाल करना संभव नहीं है। लेकिन यह उनके लिए सबसे बड़े भौतिक खतरे, यानी विध्वंस को रोक सकता है। शहरी विकास के चलते हाल ही में नष्ट हुए कुछ इमारतों में कोलकाता का केनिलवर्थ होटल, कलकत्ता विश्वविद्यालय का सीनेट हॉल और बड़ौदा के पास नजरबाग पैलेस शामिल हैं। शायद अगला नंबर शेखावाटी हवेलियों का हो।

सूर्य के प्रकाश, धूल, गंदगी, तैलीय पदार्थों और कार्बन डाइऑक्साइड या सल्फर डाइऑक्साइड जैसे वायुमंडलीय प्रदूषकों के कारण रासायनिक क्षरण होता है। बंद स्थानों में इन चित्रों को देखने आने वाले आगंतुकों द्वारा छोड़ी गई Co_2 दीवारों के चूने के साथ प्रतिक्रिया करके इन चित्रों पर एक सफेद परत बना सकती है। यही कारण है कि प्रसिद्ध प्रागैतिहासिक भित्ति चित्रों वाली लास्कॉक्स की चूना पत्थर की गुफाओं में आगंतुकों की संख्या पर सख्त प्रतिबंध है।

भारत के संविधान का अनुच्छेद 49 राज्य सरकारों के लिए राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों और विशिष्ट स्थलों की रक्षा करना अनिवार्य बनाता है। अनुच्छेद 51(एफ) भारत के नागरिकों पर देश की समृद्ध विरासत की रक्षा और संरक्षण का मौलिक कर्तव्य डालता है। समय के साथ, इन ऐतिहासिक स्मारकों की सुरक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में कई जनहित याचिकाएँ और रिट याचिकाएँ दायर की गई हैं। ऐसा ही एक मामला ताज ट्रेपेजियम मामला (1986) में था। यह याचिका आस–पास के उद्योगों द्वारा फैलाए गए वायु प्रदूषण के कारण ताजमहल के संगमरमर के क्षरण को बचाने के लिए दायर की गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने सख्त कार्रवाई करते हुए उन उद्योगों को चरणबद्ध तरीके से उस क्षेत्र से स्थानांतरित करने का आदेश दिया।

इन भित्ति चित्रों के संरक्षण के लिए प्राथमिक कानून प्राचीन स्मारक एवं पुरातत्व स्थल एवं अवशेष अधिनियम, 1958 है। इस अधिनियम के तहत केंद्र सरकार को किसी भी प्राचीन स्मारक या स्थल को राष्ट्रीय महत्व का घोषित करने का अधिकार है। राष्ट्रीय महत्व के स्मारक और स्थल भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा सूचीबद्ध और संरक्षित हैं तथा उनकी अनुमानित संख्या 3,691 है।

इस अधिनियम में कई ऐसे तरीके सुझाए गए हैं, जिनके माध्यम से एएसआई वास्तविक स्वामी द्वारा किसी स्मारकों का संरक्षणत्व ग्रहण कर सकता है, उन्हें पट्टे पर दे सकता है या उपहार स्वरूप ले सकता है। अधिनियम की धारा 6 में भी संरक्षित स्मारकों के रखरखाव के लिए स्वामी और सरकार के बीच एक समझौते का प्रावधान है, जिसमें स्मारकों के रखरखाव के लिए निधि जुटाने हेतु एक बंदोबस्ती

DO NOT COPY

निधि बनाई जा सकती है। केंद्र सरकार जीर्ण–शीर्ण अवस्था में पहुँचे संरक्षित स्मारक का उचित रखरखाव करने के लिए भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत उसका अधिग्रहण भी कर सकती है। राष्ट्रीय संरक्षण नीति, 2014 ने अधिनियम की कुछ प्रमुख कमियों को दूर किया है और संरक्षण के विषय पर विस्तृत और पूर्ण जानकारी प्रदान करती है।

भारत विश्व सांस्कृतिक और प्राकृतिक धरोहर संरक्षण सम्मेलन, 1972 का हस्ताक्षरकर्ता देश है। 2009 में केंद्र सरकार ने इस सम्मेलन के प्रावधानों का अनुपालन करने के लिए राष्ट्रीय धरोहर स्थल आयोग विधेयक, 2009 का प्रस्ताव रखा था। दुर्भाग्यवश, विभिन्न हितधारकों और आयोगों से सिफारिशें प्राप्त करने के बावजूद यह विधेयक संसद में कभी प्रस्तुत नहीं किया गया और अंततः 2015 में वापस ले लिया गया।

केंद्रीय लोक निर्माण विभाग ने हाल ही में **INTACH** की मदद से राष्ट्रपति भवन के परिसर में भित्ति चित्र संरक्षण कार्य करते हुए अंतरराष्ट्रीय स्मारक और स्थल परिषद (**ICOMOS**) के वेनिस चार्टर (1964) में निर्धारित मानकों को मान्यता दी है और उनका पालन किया है।

आईकॉमोस के पास "दीवार चित्रों के संरक्षण और संवर्धन/पुनर्स्थापन के सिद्धांत" नामक एक दस्तावेज भी है, जो भित्ति चित्रों के संरक्षण पर अधिक गहन और विस्तृत सिद्धांतों को निर्धारित करता है।

DO NOT COPY

षष्ट्म अध्याय

- कलाकृतियों का विवरण

प्राचीन कलाकृतियों का विवरण

1. चित्र – सेठ परशुराम की हवेली :–

भिवानी जिले के बड़वा गांव में स्थित सेठ परशुराम की हवेली का इतिहास 200 साल से भी अधिक पुराना है। इसका निर्माण ब्रिटिश काल के दौरान लगभग 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध या 20वीं शताब्दी की शुरुआत में सेठ परशुराम द्वारा हुआ था। इस हवेली की मुख्य विशेषता इसकी भित्ति चित्रकला है, जिसमें भारतीय धार्मिक, पौराणिक और सामाजिक जीवन की ऐतिहासिक छाप दिखाई देती है। यह भित्ति चित्र अपनी राजस्थानी शेखावाटी शैली और मुगल कला के लिए प्रसिद्ध है। सेठ परशुराम ने केसर तालाब को पक्का करवाया और उस पर चित्रकारी बनवाई।

2. चित्र – यह चित्र भारतीय भित्ति चित्रकला की प्राचीन और धार्मिक परंपरा को दर्शाता है। इस चित्र के बाएँ भाग में भगवान श्री गणेश का चित्र है, जो शुभारंभ और समृद्धि के देवता हैं। मध्य भाग में एक स्त्री का चित्र है, जो चंवर झुला रही है। उसकी वेशभूषा, गहने एवं राजस्थानी लोक संस्कृति और दरबारी जीवन को दर्शाती है। दाईं और स्वास्तिक का चित्र बना हुआ है, जो मंगल और शांति का प्रतीक है। आकृतियां सरल रेखाओं और हल्के रंगों से निर्मित है।

3. चित्र – प्रस्तुत चित्र सेठ परशुराम द्वारा निर्मित केसर तालाब के किनारे के ऊपर की छत पर गुंबद बने हुए हैं। इनमें राधा–कृष्ण की रासलीला को चित्रों के माध्यम से दर्शाया गया है। इसमें राधा–कृष्ण एक दूसरे का हाथ पकड़े घेरे में नृत्य कर रहे हैं। गुंबद के बीच में वृत्ताकार ज्यामितीय अलंकरण किया गया है। सुंदर नक्काशी और लाल, पीले, नीले रंगों का प्रयोग किया गया है। इन आकृतियों के पीछे पशु–पक्षियों को दिखाया गया है।

4. चित्र – यह चित्र भी केसर तालाब के किनारे बने गुंबद के भीतर बने है। भित्ति चित्र की यह तकनीक राजस्थानी कला शैली और मुगल कला को स्पष्टता से दर्शाती है। इस चित्र में सेठ परशुराम ने स्वंयं को बैठे दिखाया है, जो उनकी भव्यता को दर्शाता है। साथ में फूल–पत्तियों और कलश आदि सजावटी आकृतियों को दिखाया गया है।

5. चित्र – धोली हवेली के भित्ति चित्र –

धोली हवेली की चित्रकारियाँ राजस्थान की पारंपरिक शेखावाटी हवेली वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन चित्रों और भवन संरचना में राजस्थानी, मुगल तथा लोक कला का सुंदर समन्वय

DO NOT COPY

दिखाई देता है। हवेली की बाहरी दीवारों, मेहराबों और झरोखों पर तथा भीतर बने हुए ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक चित्र भारतीय भित्ति चित्रकला परंपरा को संजोये हुए हैं।

6. चित्र – इस हवेली को धोली हवेली के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसे सफेद रंग से रंगा गया है। हवेली में मेहराबदार द्वार और खिड़कियाँ दिखाई देती हैं। दीवारों पर लोक जीवन, धार्मिक कथाएँ तथा राजसी जीवन के दृश्य अंकित हैं। चित्रों में लाल, पीला, हरा और नीला जैसे प्राकृतिक रंगों का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक खंड की सतहों को बॉर्डर द्वारा विभाजित किया गया है। चित्रों की रेखाएँ सुक्ष्म एवं सजावटी हैं। यह हवेली भित्ति चित्रकला के माध्यम से ऐतिहासिक और सामाजिक जीवन का दस्तावेजीकरण करती है। यह हवेली राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत तथा राजपूत वेशभूषा और लोक परंपराओं की जानकारी देती है। यह स्थापत्य शैली का सुंदर संगम है।

7. चित्र – इस विशिष्ट भित्ति चित्र में हिंदू पौराणिक कथाओं का विशेष महत्व और प्रसिद्ध प्रसंगों का चित्रण किया गया है। महिषासुर मर्दिनी (देवी दुर्गा द्वारा महिषासुर का वध) को दिखाया गया है। इस विशिष्ट पेंटिंग फलक में मुख्य रूप से देवी दुर्गा, उनका वाहन सिंह, भैंसा रूपी असुर महिषासुर और उसका छुपा हुआ वास्तविक मानवीय रूप दर्शाया गया है। देवी के हाथों में त्रिशूल, खड्ग और चक्र जैसे दिव्य अस्त्र हैं। इस चित्र के ऊपर बने फूलों की चित्रकारी कला की भारतीय परंपरा में 'हाशिया' या ' बेल–बूटा' कहा जाता है। चित्र में प्राकृतिक रंगों जैसे लाल–गेरू, पीला–हल्दी, काला–काजल का प्रयोग हुआ है। इन रंगों को पत्थरों को पीसकर और पौधों के अर्क से तैयार किया जाता था। चित्र आकृतियों की वेशभूषा राजपूत एवं कागड़ा शैली से प्रभावित है। यह भारतीय लोक कला और पौराणिक तथ्यों को समझने से सहायक है।

8. चित्र – यह चित्र कुरुक्षेत्र के पेहोवा (हरियाणा) में स्थित ऐतिहासिक धोली हवेली का भित्ति चित्र है। इसमें भगवान हनुमान की अनेक अत्यंत शक्तिशाली गतिशील वीर रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें हनुमान जी के एक हाथ में संजीवनी पर्वत की तरह कोई वस्तु और दूसरे हाथ में हनुमान जी की गदा है। इस पेंटिंग में गदा का आकार नीचे से पतला और ऊपर की ओर गोलाकार है। यह पारपंरिक हरियाणवी–राजस्थानी लोक कला शैली में गदा को दर्शाने का विशिष्ट तरीका है।

9. चित्र – कनिपला के शिव मंदिर के भित्ति चित्र :–

हरियाणा के कुरूक्षेत्र जिले के कनिपला गाँव स्थित शिव मंदिर की भित्ति चित्रकला हरियाणा की लोक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक कला परंपरा के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। इन चित्रों में मंडलाकार

DO NOT COPY

संरचना, पुष्पीय अलंकरण, मानव आकृतियों का सुंदर अंकन तथा संतुलित रंग–योजना देखने को मिलती है। शैलीगत दृष्टि से इनमें लोककला, राजस्थानी चित्रकला तथा उत्तर भारतीय मंदिर भित्ति चित्र परंपरा का समन्वय दिखाई देता है। ये चित्र कनिपला मंदिर में बने भित्ति चित्रकला के निर्माण की सटीक जानकारी उपलब्ध नहीं है, लेकिन इन्हें लगभग 250 से 300 वर्षों पुराना माना गया है।

10. चित्र – प्रस्तुत चित्र कनिपला शिव मंदिर की छत पर अंकित भित्ति–चित्र का उदाहरण है। इस चित्र में वृत्ताकार संरचना के भीतर विभिन्न मानव आकृतियों, पुष्प–अलंकरणों तथा प्राकृतिक तत्वों का चित्रण किया गया है। चित्र के मध्य भाग में सुंदर पुष्प–मंडल बनाया गया है, जिसके चारों ओर स्त्री एवं पुरुष आकृतियाँ पारंपरिक वेशभूषा में दर्शाई गई हैं। रंगों का उपयोग सौम्य तथा सजावटी शैली में किया गया है, जो स्थानीय लोककला और धार्मिक कला–परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। यह चित्र मंदिर की कलात्मक समृद्धि, सांस्कृतिक चेतना तथा तत्कालीन समाज की सौंदर्यबोधात्मक अभिरुचि का परिचायक है।

11. चित्र – प्रस्तुत चित्र कनिपला के प्राचीन शिव मंदिर की आंतरिक भित्ति–चित्रकला को दर्शाता है। इसमें धार्मिक या पौराणिक प्रसंगों का चित्रण किया गया है, जिसमें दोनों और मानव आकृतियों तथा मध्य में एक प्रमुख पूजनीय पात्र दिखाई देता है। चित्र के चारों ओर नीले, लाल और श्वेत रंगों की सुंदर पुष्प एवं बेल–बूटेदार सजावट की गई है। चित्रकला की शैली स्थानीय पारंपरिक कला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। यद्यपि समय के प्रभाव से रंग कुछ फीके पड़ गए हैं, फिर भी इसकी कलात्मकता और ऐतिहासिक महत्ता स्पष्ट दिखाई देती है।

12. चित्र – यह प्राचीन शिव मंदिर की आंतरिक दीवार पर बना पारंपरिक भित्ति–चित्र है। चित्र में मध्य भाग में एक देवी–देवता संबंधी पौराणिक दृश्य अंकित दिखाई देता है। केंद्र में बहु–फणधारी नाग (शेषनाग) की आकृति के भीतर एक दिव्य पात्र तथा उसके आसपास मानव आकृतियाँ दर्शाई गई हैं। चित्र के दोनों ओर पारंपरिक वेशभूषा में स्त्री–पुरुष पात्र चित्रित हैं। कुछ स्थानों पर देवनागरी लिपि में लेख भी दिखाई देते हैं, जो संभवतः पात्रों या प्रसंग की पहचान बताते होंगे। लाल, नीले, सफेद और गेरुए रंगों का उपयोग किया गया है। मंदिर की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत को दर्शाने वाले यह कला भारतीय परंपरा को दर्शाती हैं।

13. चित्र – यह भित्ति–चित्र लोकधर्मी धार्मिक कला का सुंदर उदाहरण है। चित्र में देवता और मानव आकृतियाँ एक केंद्रीय पवित्र प्रतीक की ओर उन्मुख दिखाई गई हैं, जो श्रद्धा, उपासना तथा आध्यात्मिक समर्पण का भाव प्रकट करती हैं। चित्र के ऊपर देवनागरी लिपि में लेख अंकित हैं, जो

DO NOT COPY

किसी धार्मिक प्रसंग या अनुष्ठान से संबंधित प्रतीत होते हैं। रेखांकन प्रधान शैली, सीमित रंगों का प्रयोग तथा पुष्प–अंलकरण इसकी लोककलात्मक विशेषताओं को दर्शाते है। यह भित्ति–चित्र मंदिर की धार्मिक एंव सांस्कृतिक पंरपराओं का महत्वपुर्ण साक्ष्य है। स्थानीय धार्मिक मान्यताओं और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

14. चित्र – स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर के भित्ति चित्र –

स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर की धार्मिक परंपरा अत्यंत प्राचीन मानी जाती है। मान्यता है कि महाभारत युद्ध से पूर्व भगवान श्रीकृष्ण और पांडवों ने यहाँ भगवान शिव की आराधना की थी और विजय का आशीर्वाद प्राप्त किया था। "थानेसर" नाम "स्थानेश्वर" (ईश्वर का स्थान) से निकला माना गया है। मंदिर में स्थित शिवलिंग को अत्यंत प्राचीन और पूजनीय माना जाता है। मंदिर के भित्ति–चित्र, नाग, कलश, दीपक, पुष्प–बूटियाँ एंव घटियों जैसी सजावटी तथा प्रमुख भित्ति–रूप या आकृतियों के माध्यम से शिव–भक्ति, मंगलकामना तथा भारतीय लोक–सांस्कृतिक परंपराओं का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करते हैं। मंदिर में बने भित्ति चित्रों का नवीनीकरण भी किया गया है।

15. चित्र – इस भित्ति चित्र का निर्माण मंदिर के प्रवेश–द्वार के ऊपरी भाग (तोरण) पर किया गया है। चित्र के मध्य भाग में दो सर्प (नाग) दर्शाए गए हैं, जो एक पवित्र कलश अथवा शिवलिंगाकार प्रतीक के दोनों ओर स्थित हैं। भारतीय धार्मिक परंपरा में नाग शक्ति, संरक्षण, उर्वरता तथा दिव्य ऊर्जा के प्रतीक माने जाते हैं। मध्य भाग में स्थित कलश समृद्धि, मंगल और जीवन के स्रोत का प्रतीक है। द्वार के ऊपर दीपकों की श्रृंखला बनाई गई है। तोरणाकार मेहराब से लटकती हुई घाटियाँ दिखाई देती हैं। चित्र के चारों ओर रंगीन पुष्प और लताएँ अंकित हैं। ये सजावटी तत्व राजस्थानी, मुगल तथा भारतीय लोककला परंपरा से प्रभावित प्रतीत होते हैं। शैलीगत विश्लेषण के आधार पर ये चित्र आधुनिक काल में निर्मित अथवा पुनः रंगांकित प्रतीत होते हैं। मंदिर में समय–समय पर हुए जीर्णोद्धार एवं सौंदर्यीकरण कार्यों के दौरान उनका नवीनीकरण भी किया गया होगा। ये भित्ति–चित्र मंदिर की धार्मिक गरिमा, सौंदर्यबोध तथा लोककलात्मक परंपराओं को अभिव्यक्त करते हैं।

16. चित्र – यह भित्ति–चित्र थानेसर मंदिर की छत पर अंकित एक सुंदर सजावटी एवं धार्मिक चित्रण है। चित्र के मध्य में कमलाकार मंडल बनाया गया है, जिसके चारों ओर घटियों, पुष्प–बेलें तथा नृत्यरत स्त्री–पुरुष आकृतियाँ दर्शाई गई हैं। ये आकृतियाँ भक्ति, उत्सव और सांस्कृतिक जीवन का प्रतीक हैं। चित्र में लाल, हरे, पीले और नीले रंगों का संतुलित प्रयोग किया गया है। चित्र में आधुनिक नवीनीकरण के चिह्न दिखाई देते हैं, जिससे रंग अपेक्षाकृत नवीन और जीवंत प्रतीत होते हैं। यह चित्रों के संरक्षण

DO NOT COPY

हेतु किया गया है। यह भित्ति–चित्र मंदिर की धार्मिक आस्था, लोक–सांस्कृतिक परंपरा तथा सौंदर्यबोध को अभिव्यक्त करता है।

17. चित्र – प्रस्तुत भित्ति चित्र स्थानेश्वर महादेव मंदिर, कुरुक्षेत्र में स्थापित है। इसमें महामृत्युंजय महादेव का स्वरूप अंकित किया गया है। भगवान शिव कमलासन पर ध्यानमग्न मुद्रा में विराजमान हैं। भित्ति चित्र में दर्शाई गई जलधारा शिव की जटाओं (केशों) से प्रवाहित होती दिखाई गई है, जो पवित्र गंगा के अवतरण का प्रतीक है। पृष्ठभूमि में पर्वत, वृक्ष एवं प्राकृतिक दृश्य अंकित हैं, जो कैलाश पर्वत का आभास कराते हैं। यह चित्र शिव की आध्यात्मिक शक्ति, जीवनदायिनी ऊर्जा तथा लोककल्याणकारी स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। रंगों का संतुलित प्रयोग चित्र को आकर्षक एवं भावपूर्ण बनाता है।

18. चित्र – यह चित्र कुरुक्षेत्र के स्थानेश्वर महादेव मंदिर में अंकित भगवान शिव और कामदेव की कथा का चित्रण है। चित्र में भगवान शिव ध्यानमग्न अवस्था में विराजमान हैं। दाहिनी ओर कामदेव को दर्शाया गया है, जिसने शिव की तपस्या भंग करने का प्रयास किया। पौराणिक मान्यता के अनुसार शिव अपनी पत्नी सती के देहत्याग के पश्चात गहन तपस्या में लीन हो गए थे। उसी समय तारकासुर के अत्याचार बढ़ गए। देवताओं को ज्ञात था कि शिव और पार्वती के पुत्र ही तारकासुर का वध कर सकते हैं। इसलिए देवताओं ने कामदेव को शिव की तपस्या भंग करने के लिए भेजा। कामदेव ने अपने पुष्पबाण से शिव पर प्रहार किया, जिससे उनकी समाधि भंग हो गई। क्रोधित होकर भगवान शिव ने अपना तृतीय नेत्र खोला और उसके दिव्य अग्नि–तेज से कामदेव भस्म हो गए। बाद में कामदेव की पत्नी रति के अनुरोध पर शिव ने उन्हें सूक्ष्म रूप में पुनर्जीवन प्रदान किया। यह चित्र भगवान शिव की तपस्या, उनके क्रोध तथा कामदेव की इस प्रसिद्ध पौराणिक घटना का चित्रण करता है।

19. चित्र – यह चित्र थानेसर स्थित श्री स्थानेश्वर महादेव मंदिर में अंकित एक धार्मिक भित्ति चित्र है, जिसके नीचे "हरिहर की जल–क्रीड़ा" लिखा हुआ है। चित्र में भगवान शिव (हर) और भगवान विष्णु (हरि) की जल में क्रीड़ा करते हुए दर्शाया गया है। दोनों देवताओं की मुद्रा सौहार्द, एकता और आनंद का प्रतीक है। चित्र का मुख्य उद्देश्य शिव और विष्णु के आंतरिक संबंध को प्रदर्शित करना है। हिंदू धर्म में हरिहर की अवधारणा शैव और वैष्णव परंपराओं के समन्वय का प्रतीक मानी जाती है। जल की गतिशील लहरें, प्राकृतिक पृष्ठभूमि तथा देवमूर्तियों के सौम्य भावों के माध्यम से कलाकार ने आध्यात्मिक सौंदर्य और दिव्य लीला का प्रभावशाली चित्रण किया है। कलात्मक दृष्टि से यह चित्र आधुनिक धार्मिक भित्ति चित्र शैली का उदाहरण है, जिसमें चमकीले रंगों, स्पष्ट रेखांकन तथा प्रभावपूर्ण आकृतियों का उपयोग किया गया है।

DO NOT COPY

20. चित्र – कलायत के कपिल मुनि मंदिर के भित्ति चित्र :–

कलायत (कैथल) का कपिल मुनि मंदिर परिसर के प्राचीन ईंटों से बने मंदिर लगभग 1300 से 1400 साल पुराने हैं। भारतीय पुरातत्व और इतिहासकारों के अनुसार, ये मंदिर 7वीं से 8वीं शताब्दी ईस्वी के दौरान बनाए गए थे। परंतु मंदिर की दीवारें जितनी पुरानी हैं, उसके अंदर के भित्ति चित्र उतने पुराने नहीं हैं। वर्तमान में दिखाई देने वाले भित्ति चित्र उत्तर–मध्यकाल, अर्थात लगभग 150 से 250 वर्ष पुराने (18वीं एवं 19वीं शताब्दी के बीच) माने जाते हैं। प्राचीन समय में विदेशी आक्रमणों और मौसम के प्रभाव के कारण मूल चित्र नष्ट हो गए थे। बाद में स्थानीय राजाओं और मराठा, सिख काल के दौरान इन मंदिरों का जीर्णोद्धार किया गया, जिसमें गर्भगृह और दीवारों पर नए सिरे से चित्रकारी की गई।

21. चित्र – यह चित्र कपिल मुनि मंदिर परिसर (कलायत) के प्राचीन मंदिर के गर्भगृह की छत का आंतरिक दृश्य है। गुंबद के ठीक केंद्र में एक बेहद सुंदर गोलाकार ज्यामितीय कमल का फूल उकेरा गया है। केंद्र के चारों ओर जो गहरा वृत्ताकार भाग है, उसके भीतर कुछ मानव आकृतियाँ दिखाई दे रही हैं। जो धुएं की परत से छिपी हुई है। ये सुक्ष्म आकृतियाँ श्रीकृष्ण की रासलीला या लोक कला के कथानकों के रूपांकनों को दर्शाती हैं। वृत्ताकार भाग के बाहर बारीक और पारंपरिक बेल–बूटे, फूल–पत्तियों आदि की चित्रकारी की गई है। इस चित्र में भारतीय राजपूती और हरियाणवी लोक कला की झलक मिलती है।

22. चित्र – यह चित्र कपिल मुनि मंदिर की प्राचीन चित्रकला का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रतीत होता है। यह चित्र धार्मिक, लोक एवं धार्मिक प्रतीकों का मिश्रण दर्शाता है। इस भित्ति–चित्र के बीच में एक मानव आकृति दिखाई दे रही है, जिसके दोनों हाथों में हाथी बने हुए हैं। चित्र के दोनों ओर पशु आकृतियाँ हैं, एक तरफ सिंह/बाघ जैसा पशु तथा दूसरी ओर हिरण या मृग। चित्र की रेखाएँ सरल हैं, रंग सीमित हैं और आकृतियाँ प्रतीकात्मक हैं। समय के परिवर्तन से यह धुंधली भी हुई है। यह शैली हरियाणा, राजस्थान और उत्तर भारत की लोक एवं मंदिर चित्रकला परंपरा से जुड़ी हुई है।

23. चित्र – यह चित्र कलायत के ऐतिहासिक शिव मंदिर के गर्भगृह का मुख्य प्रवेश द्वार (चौखट) है। इस द्वार पर बेहद सुंदर और प्राचीन नक्काशी की गई है। यह गर्भगृह और प्रवेश द्वार मंदिर के निर्माण के समय लगभग 7वीं से 8वीं शताब्दी ईस्वी के दौरान बना था। द्वार के सबसे बाहरी और आंतरिक हिस्सों पर वृत्ताकार लताएँ, फूलों और पत्तियों के सुंदर चित्र बने हैं, जो समृद्धि का प्रतीक हैं। ध्यान से देखने पर प्रवेश द्वार के ऊपर और बगल के हिस्सों में छोटी–छोटी मानवीय और दिव्य आकृतियाँ (जैसे गंधर्व या यक्ष) नक्काशी के रूप में दिखाई देती हैं। कलायत का मंदिर मुख्य रूप से लाल ईंटों और

DO NOT COPY

पत्थरों का भित्ति शिल्प है, जिसे बारीकी से तराशा गया है। इस द्वार के अंदर मंदिर का मुख्य शिवलिंग स्थापित है।

24. चित्र – यह चित्र कलायत के कपिल मुनि शिव मंदिर के गर्भगृह की सजावट और काँच कला का सुंदर उदाहरण है। इसमें जो भी काँच का चित्रण दिखाई देता है, वह केवल सजावट नहीं बल्कि धार्मिक और आध्यात्मिक प्रतीकों का भी प्रदर्शन करता है। चित्र के भीतर गणेश जी की प्रतिमा स्थापित है, जो शुभता और विघ्नहर्ता के प्रतीक हैं। बाहरी भाग में छोटे–छोटे रंगीन और चमकीले काँच के टुकड़ों से सजावट की गई है। इसे शीशा मोजेक कला कहा जाता है। प्रवेश द्वार के ऊपर लाल रंग की मेहराब राजस्थानी और भारतीय मंदिर शैली का प्रभाव दिखाती है।

25. चित्र – गुरुद्वारा नीम साहिब के भित्ति चित्र –

गुरुद्वारा नीम साहिब की स्थापना का संबंध सिखों के नौवें गुरु, गुरु तेग बहादुर जी की यात्रा से माना जाता है। परंपरा के अनुसार गुरु तेग बहादुर जी यहाँ लगभग संवत 1723 (लगभग 1666–1667 ई.) में आए थे। बाद में उसी स्थान पर गुरुद्वारे की स्थापना हुई। हालांकि वर्तमान भवन और अंदर की काँच सजावट बाद के समय में कई चरणों में बनी, जो लगभग 100 से 150 वर्ष पुरानी है। यह कला 20वीं शताब्दी में हाथों से काँच के रंगीन टुकड़ों से बनाई गई।

26. चित्र – यह चित्र गुरुद्वारा नीम साहिब के भीतरी भाग की सजावटी भित्ति एवं काँच–जड़ित कला का सुंदर उदाहरण है। इसमें सिख स्थापना कला, धार्मिक प्रतीक और पुष्पीय अलंकरण शैली का मिश्रण दिखाई देता है। दीवारों और मेहराबों पर छोटे–छोटे काँच के टुकड़ों को ज्यामितीय रूप में सजाया गया है। चित्र में "सतनाम वाहेगुरु" शब्द सिख धर्म में नाम–स्मरण की परंपरा को दर्शाते हैं तथा खंडा चिन्ह सिख धर्म की आध्यात्मिक शक्ति, सत्य, एकता और साहस का प्रतीक माना जाता है। गुरुद्वारा नीम साहिब, कैथल की यह भित्ति सज्जा सिख धार्मिक स्थापत्य, काँच कला और पारंपरिक भारतीय अलंकरण शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है।

27. चित्र – यह भित्ति चित्र धार्मिक स्थापत्य में प्रयुक्त सजावटी कला का उदाहरण है। इस भित्ति चित्र में एक फूलदान से निकलती हुई पुष्प–बेलों को अत्यंत संतुलित और सजावटी शैली में दर्शाया गया है। चारों ओर छोटे – छोटे पुष्पीय पैटर्न पूरे पृष्ठ को भरते है। यह शैली भारतीय, मुगल और पंजाबी सजावटी कला का मिश्रण प्रतीत होती है। नीले, हरे, और भूरे रंग के छोटे पुष्प रूपांकन, किनारों पर ज्यातिमीय बॉर्डर डिजाइन और पृष्टभूमि में कांच या टाइल जैसी जड़ाई का प्रभाव भारतीय भित्ति चित्र परंपरा को विष्टित बनाता है।

DO NOT COPY

28. चित्र – यह एक अत्यंत सुंदर काँच जड़ाई का सजावटी चित्र दिखाई देता है, जो संभवतः गुरुद्वारे की छत पर बनाया गया है। इसमें भारतीय सजावटी कला, ज्यामितीय विन्यास और पुष्प अलंकरण का अद्भुत संयोजन है। चित्र के केंद्र में एक बड़ा पुष्पाकार मंडल बनाया गया है। इसके भीतर छोटे–छोटे त्रिकोणीय काँच के टुकड़ों को जोड़कर ज्यामितीय आकृतियाँ बनाई गई हैं। नीले, सुनहरे, भूरे और हरे रंगों का उपयोग इसे राजस्थानी और मुगल शैली की सजावटी परंपरा से जोड़ता है। चारों ओर बेल–बूटे और छोटे फूलों की सजावट इसे और सौंदर्य प्रदान करती है।

29. चित्र – यह चित्र गुरुद्वारा नीम साहिब परिसर के मुख्य प्रवेश द्वार की मेहराब पर की गई पारंपरिक कलाकारी और भित्ति चित्र को दर्शाता है। इस भव्य मुख्य प्रवेश द्वार पर की गई पारंपरिक चित्रकारी लगभग 150 से 200 वर्ष पुरानी मानी जाती है। यह चित्र धार्मिक वास्तुकला, सजावटी शिल्प तथा सिख परंपरा के सौंदर्यबोध का उत्कृष्ट उदाहरण है। द्वार का निर्माण मेहराबदार शैली में किया गया है, जो मुगल तथा सिख स्थापत्य कला के समन्वय को प्रदर्शित करता है। मेहराब के चारों ओर पुष्प एवं बेल–बूटों की रंगीन सजावट दिखाई देती है। इस चित्र में भित्ति चित्रों की उभरी हुई नक्काशी और स्थापत्य अलंकरण अधिक प्रमुख हैं। दीवारों पर बनी पुष्पाकृतियाँ, पत्तियाँ तथा सजावटी पैटर्न भवन को आध्यात्मिक गरिमा प्रदान करते हैं। दोनों ओर बने सजावटी पैनलों में सिख धर्म से संबंधित प्रतीकात्मक आकृतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं।

30. चित्र – अंबिकेश्वर महादेव मंदिर के भित्ति चित्र –

यह चित्र अंबिकेश्वर महादेव मंदिर कैथल की ऐतिहासिक धरोहर है। अंबिकेश्वर महादेव मंदिर लगभग 3000 वर्ष पुराना माना जाता है। प्रताप गेट के पास स्थित इस प्राचीन शिव मंदिर का इतिहास महाभारत काल से जुड़ा हुआ माना गया है। यहाँ स्थापित शिवलिंग को स्वयंभू (स्वयं प्रकट हुआ) माना जाता है। यद्यपि मंदिर हजारों वर्ष पुराना है, लेकिन इसकी बाहरी संरचना का यह श्रृंगार और भित्ति चित्रकारी मुख्य रूप से 18वीं से 19वीं शताब्दी के दौरान की वास्तुकला से प्रेरित है। इन कलाकृतियों की चमक बनाए रखने के लिए समय–समय पर आधुनिक काल में उनकी मरम्मत और री–पेंटिंग की जाती रही है।

31. – चित्र – इस मंदिर की मुख्य पहचान इसकी सामने वाली लाल दीवार पर बनी भित्ति चित्रकारी और झरोखे हैं। मंदिर का अग्रभाग लाल रंग से रंगा हुआ है, जो शक्ति, भक्ति तथा धार्मिक उत्साह का प्रतीक माना जाता है। मुख्य द्वार के दोनों ओर तथा ऊपरी भाग में विभिन्न देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। ये प्रतिमाएँ मंदिर की धार्मिक महत्ता को प्रकट करती हैं तथा आगंतुकों का आध्यात्मिक स्वागत करती हैं। द्वार के ऊपर धार्मिक प्रतीक "ॐ" अंकित है, जो सनातन धर्म की आध्यात्मिक परंपरा

DO NOT COPY

का प्रतीक है। मंदिर के मुखभाग में बने झरोखे एवं बालकनी राजस्थानी और उत्तर भारतीय स्थापत्य शैली के प्रभाव को दर्शाते हैं।

32. चित्र – यह चित्र अम्बिकेश्वर महादेव मंदिर के भीतर स्थित एक सजावटी धार्मिक भित्ति /काँच–जड़ाई चित्रकला का उत्कृष्ट प्रतीत होता है। चित्र की पृष्ठभूमि तथा सीमा (बॉर्डर) में छोटे–छोटे काँच के टुकड़ों का प्रयोग किया गया है। यह शैली राजस्थान, हरियाणा और पंजाब के मंदिरों एवं हवेलियों में विशेष रूप से प्रचलित रही है। सुर्यदेव का चित्रांकन स्वरूप यथार्थवादी न होकर प्रतीकात्मक एवं प्रयोगात्मक है। चमकीले रंग, स्पष्ट रेखांकन तथा धार्मिक प्रतीकों का उपयोग लोकचित्र परम्परा की विशेषता है। स्वस्तिकों की रंगीन सजावटी पट्टी, सुनहरी रेखाओं का उपयोग है, जो सूर्य, तेज, प्रकाश और ऊर्जा का प्रतीक है। नीचे सात घोड़ों का रथ दिखाई देता है, जो सूर्यदेव के सारथी अरुण देव द्वारा चलाया जा रहा है।

33. चित्र – यह चित्र अम्बिकेश्वर महादेव मंदिर की छत के मध्य भाग की भित्ति एवं काँच–जड़ाई अलंकरण है। काँच–जड़ाई कला, भित्ति अलंकरण तथा लोक–सजावटी मंदिर कला का मिश्रित उदाहरण है। चित्र के मध्य भाग में एक बड़ा लाल पुष्प दिखाई देता है, जिसकी पंखुड़ियाँ वृत्ताकार रूप में फैली हुई हैं। यह कमल अथवा सूर्य प्रतीक की शैली में निर्मित है। पूरे चित्र में छोटे–छोटे काँच के टुकड़ों को ज्यामितीय रूपों से सजाया गया है। यह शैली राजस्थानी परम्परा से प्रभावित दिखाई देती है तथा पंजाब और उत्तर भारत की शीशमहल परम्परा से भी। पुष्प के चारों ओर त्रिभुज, हीराकार तथा बहुभुज आकृतियाँ दिखाई देती हैं। चित्र के चारों ओर मोतियों जैसी गोलाकार सज्जा बनी हुई है। यह अलंकरण मुगल एवं राजस्थानी प्रभाव वाली सजावटी शैली का संकेत देता है।

34. चित्र – पाण्डु पिंडारा के भित्ति चित्र –

पाण्डु पिंडारा एक पवित्र स्थल है जो हरियाणा के जींद जिले में स्थित है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, महाभारत युद्ध के बाद पाण्डवों ने अपने दिवंगत पूर्वजों की आत्मा की शांति के लिए यहाँ पिंडदान (तर्पण) किया था। पाण्डवों के यहाँ स्नान और तर्पण के लिए लगातार 12 वर्षों तक सोमवती अमावस्या के आने की प्रतीक्षा की थी, जिसके कारण इसे ' सोम तीर्थ ' भी कहा जाता है। पाण्डु पिंडारा में कई मंदिरों की स्थापना की गई है। इनमें से केवल 200 से 300 साल या इससे भी कम समय पहले बनाए गए हैं। कई मंदिरों की स्थापना से पुराने मंदिरों की विशेषता कम हो गई है, क्योंकि अधिकांश पुराने बने मंदिरों का बड़े स्तर पर नवीनीकरण किया गया। नए नवीनीकरण के कारण मंदिर की दीवारों और दरवाजों पर बने भित्ति चित्रों में सकारात्मक बदलाव आया है, परन्तु कुछ चित्र अभी भी अपनी प्राचीनता को कायम किए हुए हैं।

DO NOT COPY

35. – चित्र – यह चित्र पाण्डु पिंडारा तीर्थ के मुख्य प्रवेश द्वार का है। यह द्वार केवल प्रवेश का साधन नहीं, बल्कि भारतीय धार्मिक प्रतीकों और लोक चित्रण परम्परा का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। द्वार पर अंकित भित्ति चित्र मंदिर की आध्यात्मिक गरिमा तथा भारतीय संस्कृति के मंगलमय प्रतीकों को प्रदर्शित करते हैं। चित्र के मध्य भाग, ऊपरी भाग और दोनों ओर त्रिशूल का चित्रण किया गया है। त्रिशूल भगवान शिव का प्रमुख आयुध माना जाता है, जो सृष्टि, पालन और संहार की शक्ति का प्रतीक है। त्रिशूल के साथ सूर्य रूप का अंकन शिव–तत्व, ऊर्जा और आध्यात्मिक शक्ति को दर्शाता है। निचले भाग में दोनों तरफ पुष्प–पात्र (फूलदान) और लताओं का चित्रण किया गया है। इसकी रंग–वर्णना लगभग कुछ समय ही की गई लगती है, जो इसके संरक्षण के लिए की गई है। चित्रकला की दृष्टि से यह रचना लोक शैली तथा सजावटी भित्ति एवं द्वार–चित्रण कला का उदाहरण है।

36. – चित्र – यह पांडु–पिंडारा के भगवान विश्वकर्मा मंदिर के बाहरी भाग की छत बना एक भित्ति चित्र है, जो 1983 में बना लगभग 124 वर्ष पुराना है। इस मंदिर के निर्माण के समय ही इसे बनाया गया था। इस चित्र में दिखाई दे रही कला को वास्तुकला, भित्ति–शिल्प और छत चित्रकारी के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह केवल एक साधारण पेंटिंग नहीं है, बल्कि उभरी हुई नक्काशी और रंगों का सुंदर संयोजन है। छत के केंद्र में एक गोलाकार डिजाइन है जो खिले हुए कमल के फूल या एक प्राकृतिक चक्र जैसा दिखता है। इसमें जीवंत हरे रंग की पत्तियों की आकृतियाँ बनाई गई हैं, जिनके बीच में क्रीम या हल्के पीले रंग के बिंदुओं जैसे डिजाइन भी उकेरे हुए हैं। कई गोलाकार फूलों में गुलाबी, पीले और सफेद पट्टियों का उपयोग करके एक ज्यामितीय संतुलन बनाया गया है। बाहरी बॉर्डर पर लहरेदार और दानेदार नक्काशी की गई है। छत के कोनों में भी हरे रंग की पत्तियों और फूलों की आकृतियाँ बनाई गई हैं। यह कलाकृति भारत की पारंपरिक लोक और मंदिर शिल्पकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

37. – चित्र – यह चित्र भगवान विश्वकर्मा मंदिर की छत पर बने एक कमरे या हॉल के भीतरी दीवार पर बनवाया गया है। इस हॉल का निर्माण सन् 1995 में सावित्री देवी द्वारा अपने स्वर्गीय पति श्री रामधारी पांचाल की पावन स्मृति (याद) में दान स्वरूप करवाया गया था। दीवार पर एक पारंपरिक आले या द्वार की बैंगनी और नीले रंगों का सुंदर बॉर्डर वाला भित्ति चित्र बनाया गया है। फ्रेम के नीचे में एक गहरे रंग का शिलालेख है, जिस पर कमरे के निर्माण की ऐतिहासिक जानकारी अंकित है। पट्टिका के चारों ओर सफेद टाइल्स पर नीले रंग के फूल बने हैं। फ्रेम के ठीक नीचे काले रंग में एक छोटे हाथी की आकृति बनी है। हिंदू मंदिर वास्तुकला में हाथी को सौभाग्य, शक्ति और पवित्रता का प्रतीक माना जाता है। चित्र में ठीक ऊपर एक फूलदान जैसी आकृति है, जिसके बीच में एक बड़े फूल और कोनों ओर उसकी पत्तियाँ बनाई गई हैं। यह एक सुंदर भारतीय भित्ति शिल्प कला है।

DO NOT COPY

38. — चित्र — यह चित्र पांडु पिंडारा के प्राचीन हनुमान मंदिर का है। इस भित्ति चित्र का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इसमें लोक एवं धार्मिक भित्ति चित्रकला की परंपरा दिखाई देती है। चित्र समय के साथ काफी धूमिल और क्षतिग्रस्त हो चुका है, इसलिए सभी आकृतियों की निश्चित पहचान करना कठिन है, फिर भी इसके प्रमुख तत्वों का वर्णन किया जा सकता है। यह मंदिर भित्ति चित्रकला मंदिर के भीतरी भाग की दीवार पर बनाई गई है। इस चित्र का निर्माण समय कहीं उपलब्ध नहीं है, परंतु हनुमान मंदिर हजार वर्ष पुराना माना जाता है। चित्र के बाँए भाग में अंकित देव आकृति के चेहरे और हाथों के विवरण स्पष्ट नहीं रह गए हैं। मध्य भाग में पुष्प–अलंकरण अपेक्षाकृत सुरक्षित है, किन्तु उसके रंग भी फीके पड़ चुके हैं। दाएँ भाग में बने कमलाकार अथवा मंडलाकार चित्रण के कई दृश्य नष्ट हो चुके हैं, जिससे मूल कथा या विषय–वस्तु की पहचान कठिन हो गई है।

39. — चित्र — यह चित्र हरियाणा के प्राचीन तीर्थ स्थल पांडु पिंडारा स्थित हनुमान मंदिर के भित्ति चित्रों का एक सुंदर उदाहरण है। इस भित्ति चित्र में धार्मिक, लोक तथा राजस्थानी–प्रभावित भित्ति चित्रकला शैली का समन्वय दिखाई देता है। मंदिर की दीवारों पर बने ये चित्र केवल सजावट नहीं हैं, बल्कि धार्मिक कथाओं, भक्ति और सांस्कृतिक परंपराओं को व्यक्त करते हैं। इस चित्र के तीन भाग हैं। पहले भाग में बाएं ओर हनुमान जी को बलवान और गतिमान चित्रित किया गया है, जिसमें उन्होंने अपनी वीर भुजाओं पर दो वीर पुरुषों को बिठाया हुआ है। हनुमान जी के एक हाथ में गदा है तथा दोनों वीर पुरुषों के हाथों में धनुष है, जो भारत की पौराणिक कथा रामायण से जुड़ा प्रतीत होता है। यह चित्र रामायण के रावण युद्ध से जुड़ा दृश्य दर्शाता है। इस चित्र में श्रीराम की अश्वारूढ यात्रा का वर्णन किया गया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि दोनों वीर पुरुष श्रीराम और लक्ष्मण जी हैं। दूसरे भाग में बीच में पुष्पों और बेल–बूटों का अत्यंत सुंदर अलंकरण अंकित है। यह भारतीय सजावटी कला का प्रमुख तत्व है। तीसरे भाग में तीन स्त्रियाँ पारंपरिक परिधान पहनकर किसी धार्मिक अथवा सांस्कृतिक आयोजन में भाग लेती हुई प्रतीत होती हैं। इस चित्र में जिस देव स्वरूप की पुजा की जा रही है, वह भगवान विष्णु जी हैं। हिंदू परंपरा में भगवान विष्णु विश्व के पालनहार माने जाते हैं। भगवान विष्णु को शाही भाव–स्वरूप में दर्शाया गया है, जो अलंकृत मुकुट, आभूषण तथा भव्य वस्त्र धारण किए हुए हैं। उनके वस्त्रों और आकृतियों के चेहरों में राजस्थानी प्रभाव दिखाई देता है।

DO NOT COPY

उपसंहार

प्रस्तुत लघु शोध के समापन स्वरूप में यह कहा जा सकता है कि कला मानव सभ्यता के विकास की वह अनमोल कड़ी है, जो शब्दों के अभाव में भी इतिहास की जीवंत गाथाएँ सुनाने का सामर्थ्य रखती है। इस अध्ययन के माध्यम से हमने यह समझने का प्रयास किया है कि 'कला' केवल कल्पना की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समाज का दर्पण और हमारी सांस्कृतिक धरोहर का आधार है। शोध के प्रारंभ चरण में कला की परिभाषा, इसके अर्थ और समाज के साथ उसके अटूट संबंधों का विश्लेषण किया गया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कला और समाज एक–दूसरे के पूरक हैं। भारतीय भित्ति चित्रकला का इतिहास केवल रेखाओं और रंगों का मेल नहीं है, बल्कि यह हमारी प्राचीन परंपराओं, धार्मिक मान्यताओं और कलात्मक गौरव का एक विस्तृत दस्तावेज है, जो प्रागैतिहासिक काल की गुफाओं से शुरू होकर आधुनिक युग तक अपनी निरंतरता बनाए हुए है।

विशेष रूप से हरियाणा राज्य के संदर्भ में किया गया यह शोध इस क्षेत्र की विलुप्त होती कलात्मक संपदा को उजागर करने का एक विनम्र प्रयास है। हरियाणा की मिट्टी में जहाँ शौर्य और कृषि की पहचान रही है, वहीं भिवानी के बड़वा गाँव, कुरुक्षेत्र के ऐतिहासिक भू–भाग, कैथल के कलायत और जींद के पांडु–पिंडारा जैसे धार्मिक स्थलों पर मिलने वाले भित्ति चित्र यहाँ के लोगों की उच्च कलात्मक अभिरुचि और आध्यात्मिक गहराई के साक्ष्य हैं। इन चित्रों का निर्माण, उनमें प्रयुक्त सामग्री और चित्रण की विशिष्ट तकनीकों का अध्ययन यह सिद्ध करता है कि हमारे पूर्वजों को धरातल विज्ञान और प्राकृतिक रंगों के संरक्षण का अद्‌भुत ज्ञान था।

शोध का चौथा पक्ष भित्ति चित्रों के क्षरण के कारणों पर प्रकाश डालता है, जो आज के समय में एक गंभीर चिंता का विषय है। शोध के अंतिम पक्ष में वर्तमान समय में भित्ति चित्रों की होती उपेक्षा और इनके संरक्षण हेतु किए गए कार्यों का वर्णन प्रस्तुत होता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि इन बहुमूल्य भित्ति चित्रों का संरक्षण और संवर्धन केवल एक कला रूप को बचाना नहीं है, बल्कि अपनी सांस्कृतिक जड़ों और पहचान को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखना है। यह शोध भविष्य के जिज्ञासुओं के लिए एक मार्गदर्शक सिद्ध होगा, ताकि वे क्षेत्रीय कला के इन अनछुए पहलुओं को वैश्विक पटल पर ला सकें।

DO NOT COPY

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 **https://thekarachicollective.com/art/ (10-03-2026) (1:25 p.m.)**

2 कला दर्शन (प्रकाश वीरेंद्र, नुपूर शर्मा), **ISBN-81-8283-206-3, (Page-3)**

3 **https://bishwajeetverma.wordpress.com (**कला का अर्थ एवं परिभाषा**), (10-03-2026), (1:34 p.m.)**

4 **https://www.mpboardonline.com/answer/xamstudy/b-ed-drama-and-art-in-education/1.html, (11-03-2026), (11:40 a.m.)**

5 **https://drgtgmmv.blogspot.com/2010/08/blog-post-5034.html?m-1,(11-03-2026), (6:30 p.m.)**

6 **https://greygallery.com/blog/articles/when-art-was-conceived-the-history-of-art, (12-03-2026), (12:02 p.m.)**

7 **https://www.bartleby.com/essay/Art-In-Society-The-Relationship-of-Art-PJHJ5J663R6, (17-03-2026), (10:54 a.m.)**

8 **https://www.artsindia.com/blogs/news/types-of-art,(17-03-2026),(11:49 a.m.)**

9 **https://www.exoticindiaart.com/ —** भारतीय भित्ति चित्रकला (डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी और डॉ. मनीष कुमार द्विवेदी), **ISBN-9788189921934, (Page 3, 4, 5, 6, 9, 10), 2010, (21-03-2026), (10:45 a.m.)**

10 **https://encyclopediaofjainism.com, (21-03-2026), (06:11 p.m.)**

11 **https://www.apnimaati.com/2024/12/blog-post-33.html, (20-03-2026), (10:43 a.m.)**

12 **https://hi.wikipedia.org/wiki/** भित्ति चित्रकला, **(27-03-2026), (02:13 p.m.)**

13 **https://www.ijhssi.org/ —** "आधुनिक भारतीय भित्ति चित्रकला का स्वरूप" **(**डॉ. अलका तिवारी**), DOI: 10.35629/7722-0708037677, (Page-76, 77), (27-03-2026), (5:48 p.m.)**

14 **https://www.memeraki.com/blogs/posts/bhittichitra-the-wall-art-tradition-of-india, (28-03-2026), (10:27 a.m.)**

15 **https://artandculturalaffairshry.gov.in/painting/#:~:text (**हरियाणा के भित्ति चित्रकला का इतिहास**), (08-04-2026), (10:55 a.m.)**

16 **https://www.ijrar.org/ —** "हरियाणा के सांस्कृतिक एंव सामाजिक धरोहर (शौधार्थी सुमन सैनी और डॉ. सुषमा सिंह**), (Page- 268, 269, 270, 271, 272, 273, 274, 275), (IJRAR2001453)**

DO NOT COPY

17 **https://www.exoticindiaart.com/ — कुरूक्षेत्र भू – भाग के भित्तिचित्र (Page-1, 2, 58, 59), 2008, (21-04-2026), (10:51 a.m.)**

18 **https://hi.wikipedia.org/wiki/स्वानेश्वर महादेव मंदिर , (22-04-2026), (10:49 a.m.)**

19 **https://www.holidify.com/places/kurukshetra/brahma-sarovar-sightseeing-2550.html, (22-04-2026), (11:36 a.m.)**

20 **https://en.wikipedia.org/wiki/Kalayat_Ancient_Bricks_Temple_Complex, (23-04-2026), (12:30 p.m.)**

21 **https://www.facebook.com/story.php?story_fbid=4766258670144630&id=100051296273748, (24-04-2026), (11:45 a.m.)**

22 **https://www.amarujala.com/haryana/kaithal/historical-place-kaithal-news-knl51465197, (27-04-2026), (07:45 p.m.)**

23 **https://www.jagran.com/haryana/jind/jind-pandu-pindara-pilgrimage-related-with-mahabharata-special-importance-of-pind-daan-23222921.html, (27-04-2026), (09:23 p.m.)**

24 **https://www.muralpaintingvalour.com/mural-painting-valour.php (Google Translate लिंक के माध्यम से), (28-04-2026), (03:29 p.m.)**

25 **https://acrobat.adobe.com/id/urn:aaid:AP:4ffOa835_348a-41d9-ba03-f4cd4Oc6, (29-04-2026), (11:03 a.m.)**

26 **https://hi.wikipedia.org/wiki/टेम्परा , (30-04-2026), (10:05 a.m.)**

27 **https://www.britannica.com/art/painting/Fresco, (30-04-2026), (11:45 a.m.)**

28 **https://www.britannica.com/art/encaustic-painting, (01-05-2026), (09:46 a.m.)**

29 **https://www.britannica.com/art/stained-glass, (01-05-2026), (11:30 a.m.)**

30 **https://www.jagran.com/haryana/kurukshetra-11841448.html, (02-05-2026), (07:58 p.m.)**

31 **https://blog.ipleaders.in/legal-framework-for-conservation-of-mural-paintings-in-india, (02-05-2026), (10:13 p.m.)**

32 **https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S0927775724006113, (03-05-2026), (09:30 a.m.)**

DO NOT COPY

चित्र सूची

क्र. न0.	चित्र का नाम	चित्र संख्या
1	सेठ परशुराम की हवेली का चित्रण (भिवानी)	चित्र 01
2	सेठ परशुराम की हवेली का चित्रण (भिवानी)	चित्र 02
3	सेठ परशुराम की हवेली का चित्रण (भिवानी)	चित्र 03
4	धोली हवेली का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 01
5	धोली हवेली का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 02
6	धोली हवेली का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 03
7	कनीपला के शिव मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 01
8	कनीपला के शिव मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 02
9	कनीपला के शिव मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 03
10	कनीपला के शिव मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 04
11	स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 01
12	स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 02
13	स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 03
14	स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 04
15	स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र)	चित्र 05
16	कलायत के कपिल मुनि मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 01
17	कलायत के कपिल मुनि मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 02
18	कलायत के कपिल मुनि मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 03
19	कलायत के कपिल मुनि मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 04
20	गुरूद्वारा नीम साहिब का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 01
21	गुरूद्वारा नीम साहिब का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 02
22	गुरूद्वारा नीम साहिब का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 03
23	गुरूद्वारा नीम साहिब का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 04
24	अंबिकेश्वर महादेव मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 01
25	अंबिकेश्वर महादेव मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 02
26	अंबिकेश्वर महादेव मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल)	चित्र 03
27	पाण्डू पिंडारा रूद्रपुरी जी महाराज भवन का भित्ति चित्रण (जींद)	चित्र 01
28	पाण्डू पिंडारा के भगवान विश्वकर्मा मंदिर का भित्ति चित्रण (जींद)	चित्र 01
29	पाण्डू पिंडारा के भगवान विश्वकर्मा मंदिर का भित्ति चित्रण (जींद)	चित्र 02
30	पाण्डू पिंडारा का प्राचीन हनुमान मंदिर का भित्ति चित्रण (जींद)	चित्र 01
31	पाण्डू पिंडारा का प्राचीन हनुमान मंदिर का भित्ति चित्रण (जींद)	चित्र 02

DO NOT COPY

चित्र

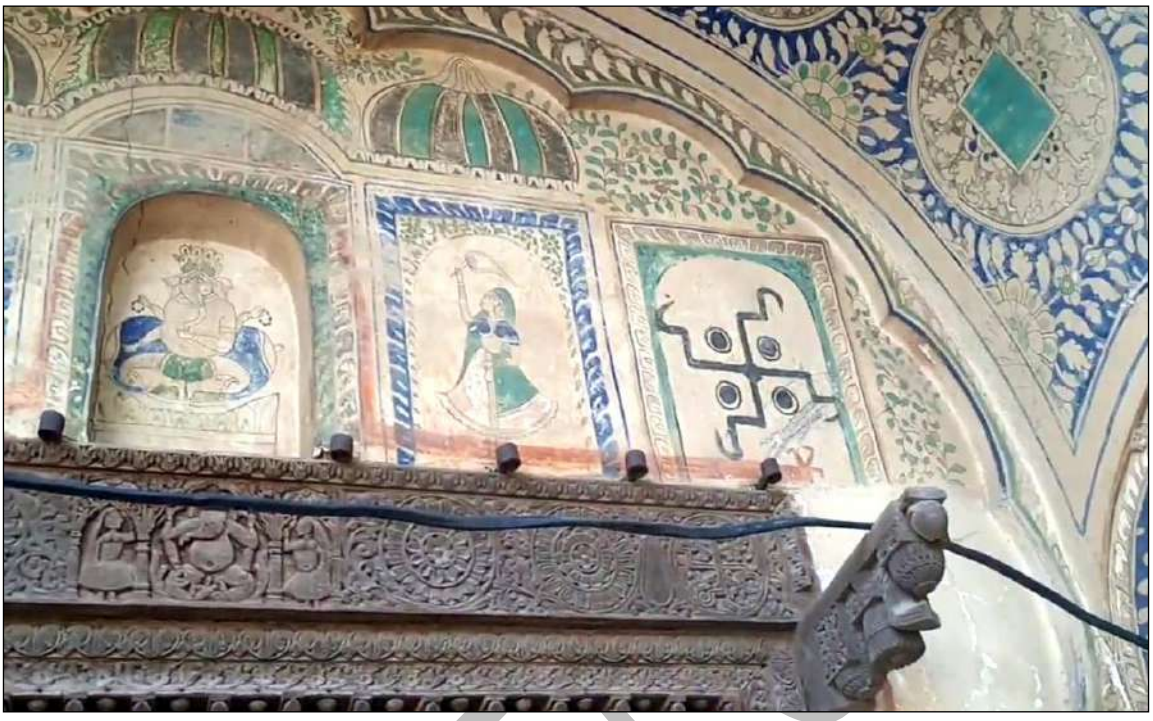



सेठ परशुराम की हवेली का चित्रण (भिवानी) – चित्र 01, 02



सेठ परशुराम की हवेली का चित्रण (भिवानी) – चित्र 03

DO NOT



धोली हवेली का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र) – चित्र 01

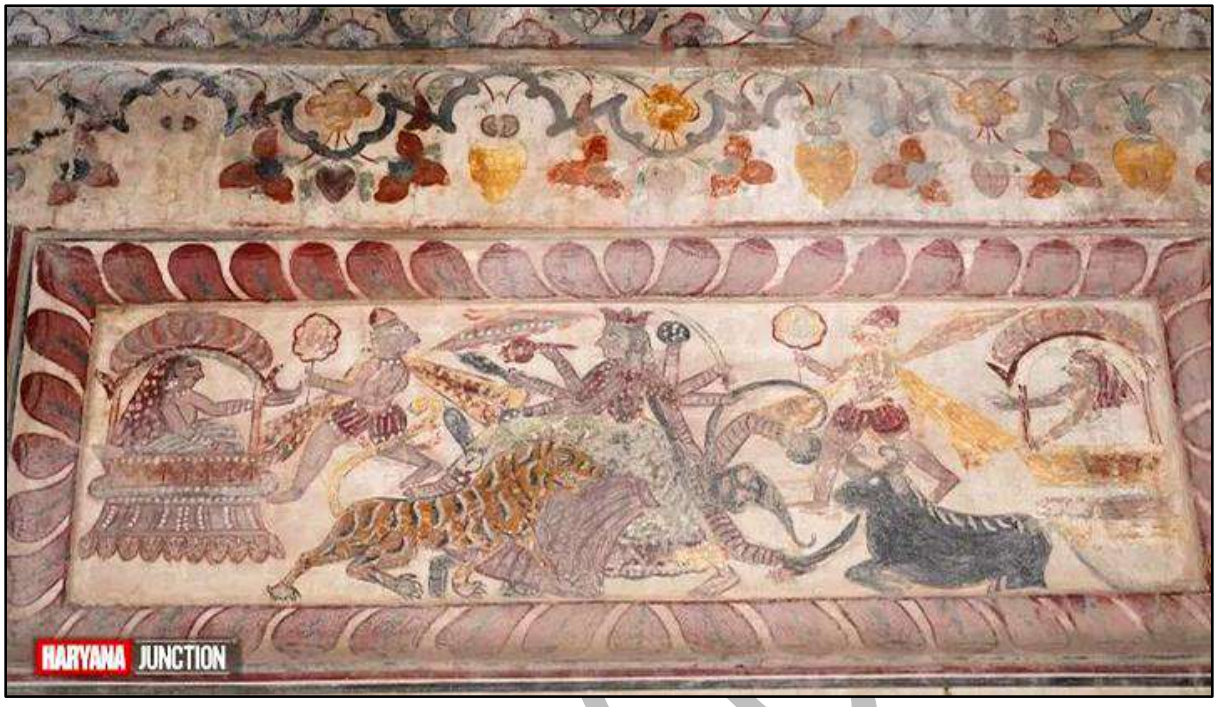



धोली हवेली का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र) – चित्र 02, 03





कनीपला के शिव मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र) – चित्र 01, 02

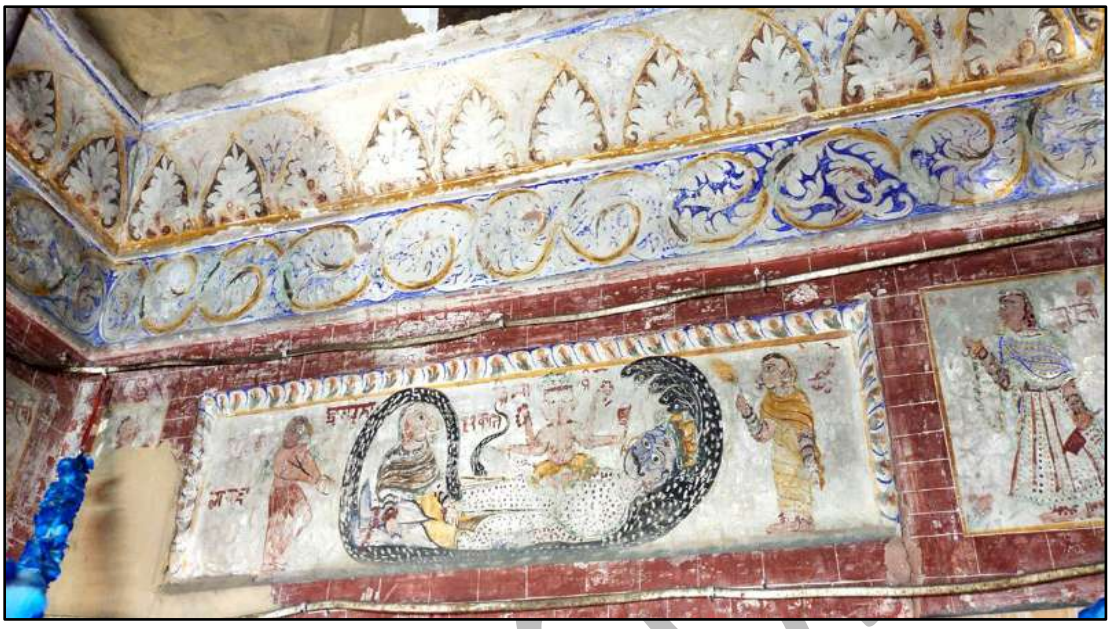

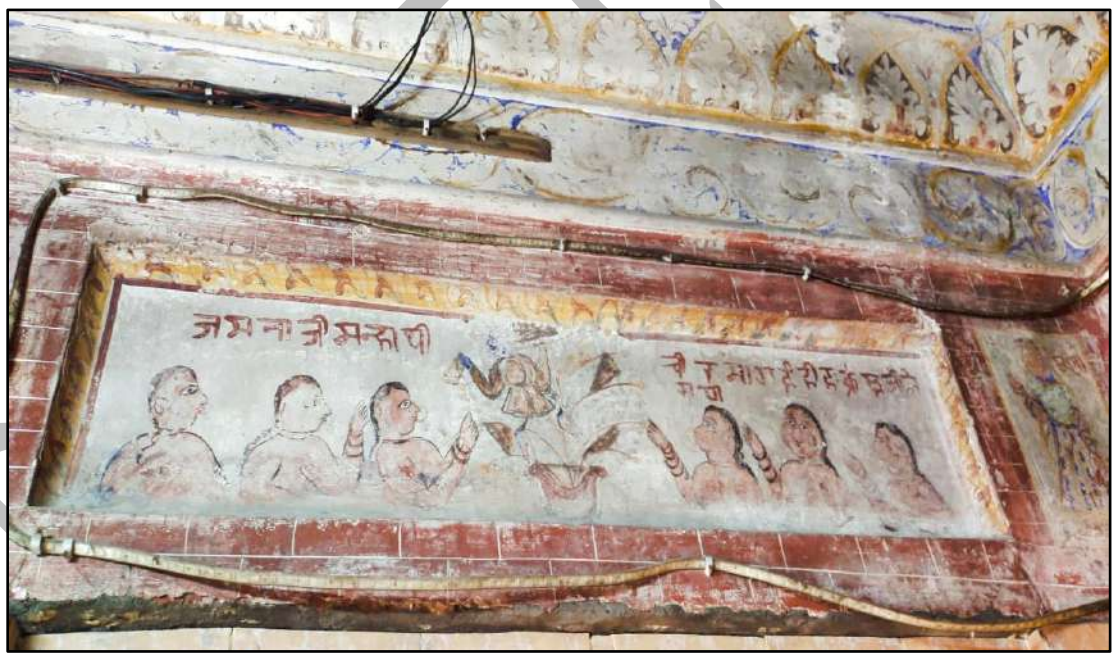

कनीपला के शिव मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र) – चित्र 03, 04

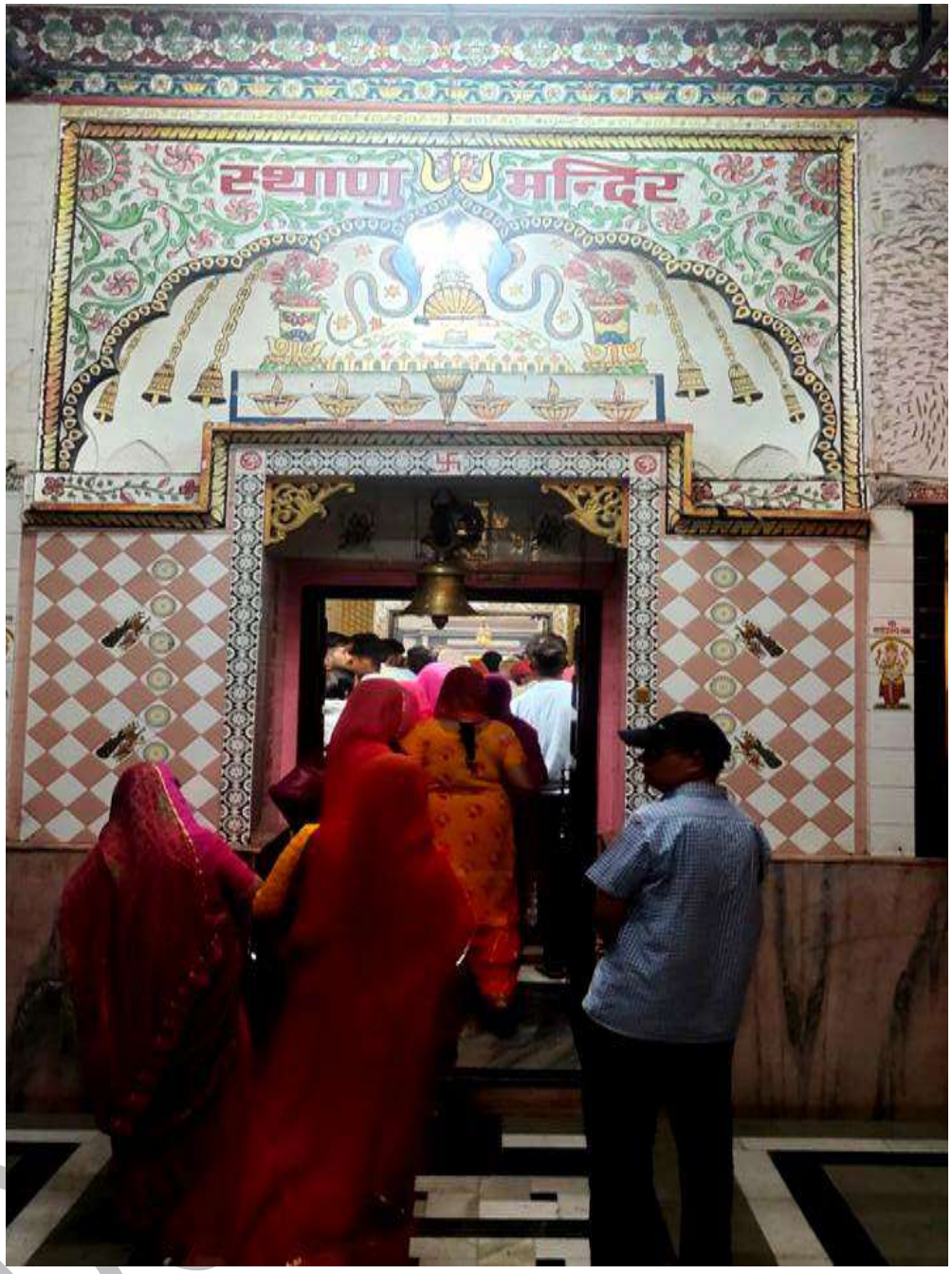

स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र) – चित्र 01





स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र) – चित्र 02, 03





स्थानेश्वर महादेव (थानेसर) मंदिर का भित्ति चित्रण (कुरूक्षेत्र) – चित्र 04, 05





कलायत के कपिल मुनि मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल) – चित्र 01, 02



कलायत के कपिल मुनि मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल) – चित्र 03, 04





गुरूद्वारा नीम साहिब का भित्ति चित्रण (कैथल) – चित्र 01, 02



गुरूद्वारा नीम साहिब का भित्ति चित्रण (कैथल) – चित्र 03, 04



अंबिकेश्वर महादेव मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल) – चित्र 01

DO NOT

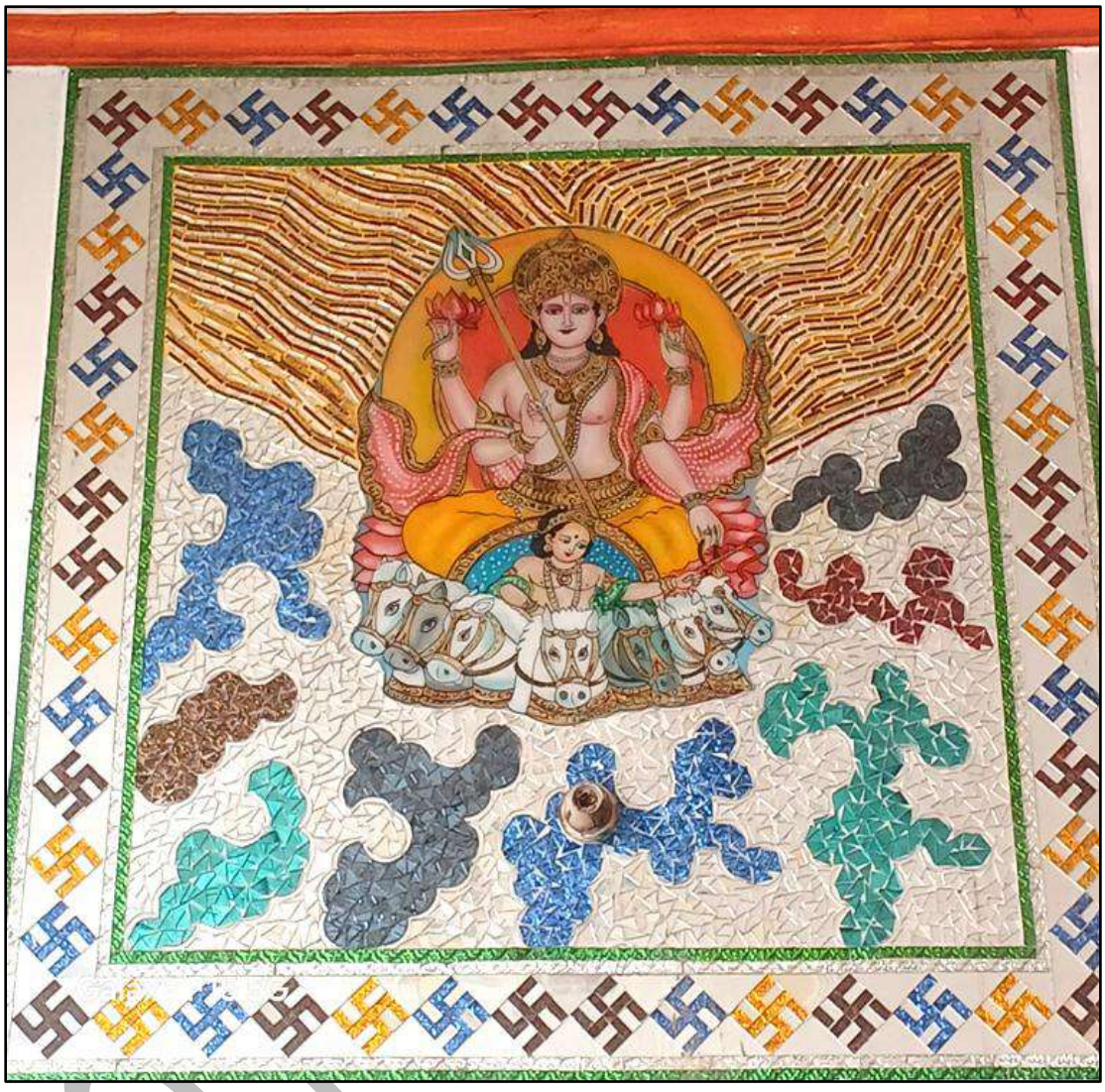

अंबिकेश्वर महादेव मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल) – चित्र 02

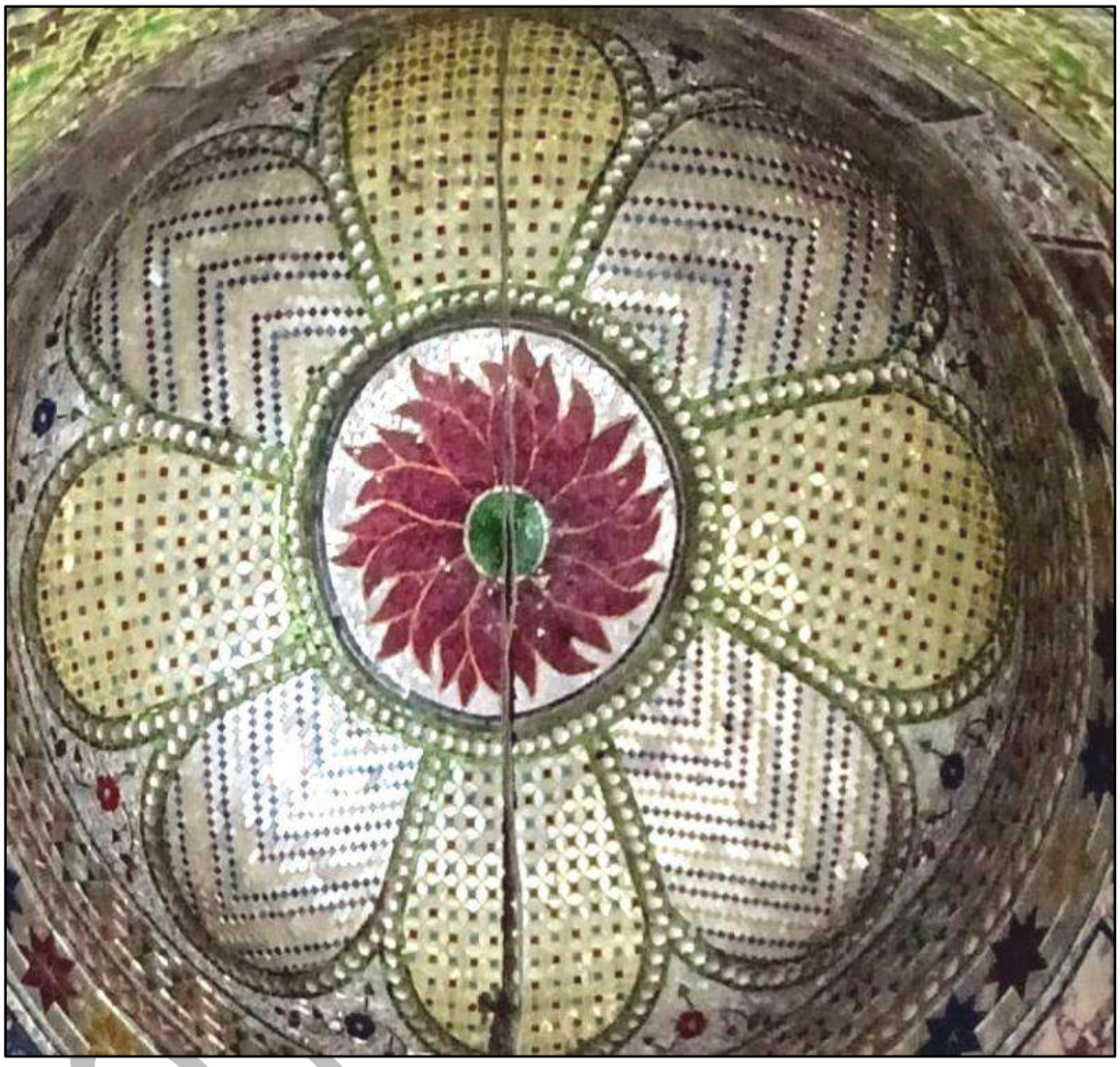

अंबिकेश्वर महादेव मंदिर का भित्ति चित्रण (कैथल) – चित्र 02



पाण्डू पिंडारा रूद्रपुरी जी महाराज भवन का भित्ति चित्रण (जींद) – चित्र 01

DO NOT

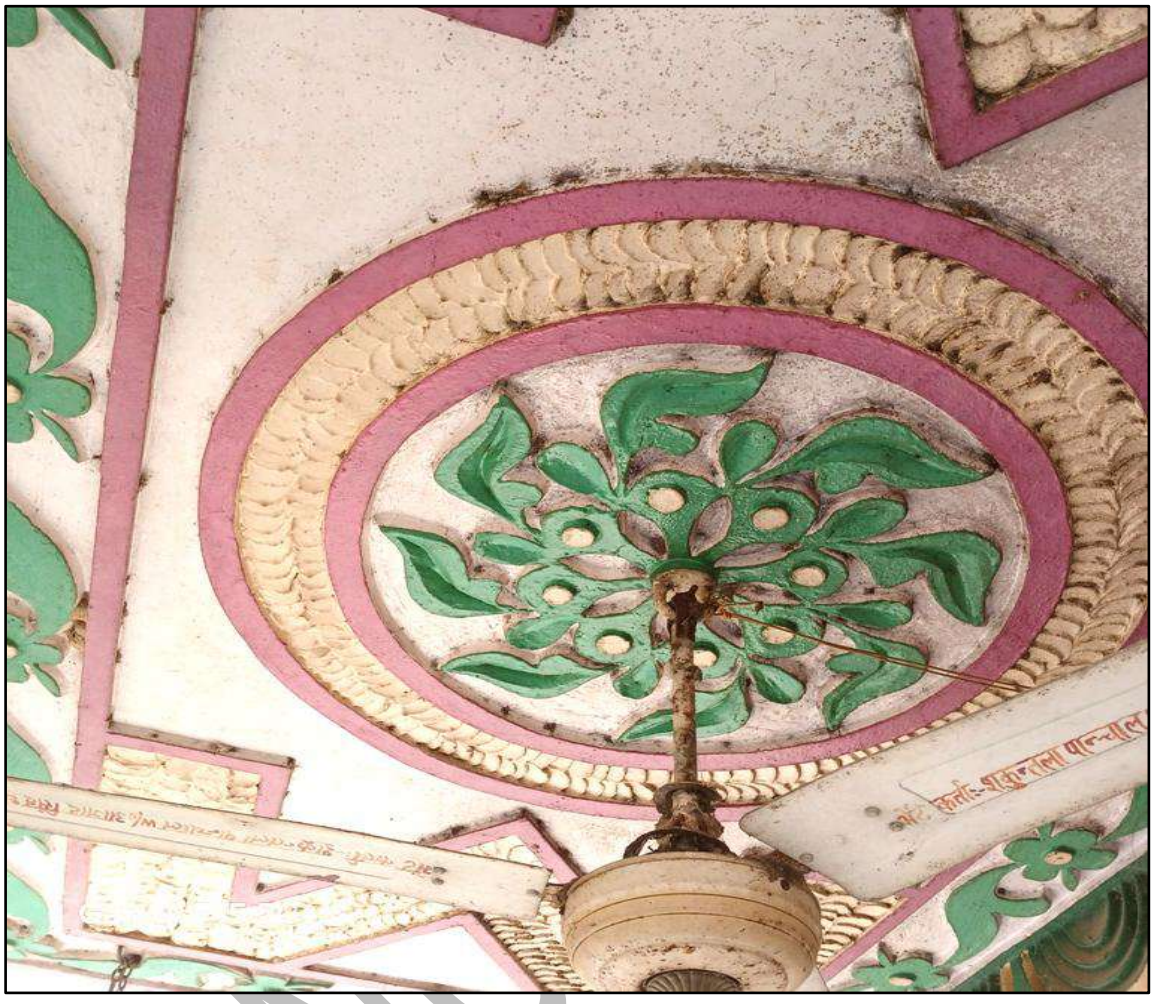

पाण्डू पिंडारा के भगवान विश्वकर्मा मंदिर का भित्ति चित्रण (जींद) – चित्र 01

DO NOT

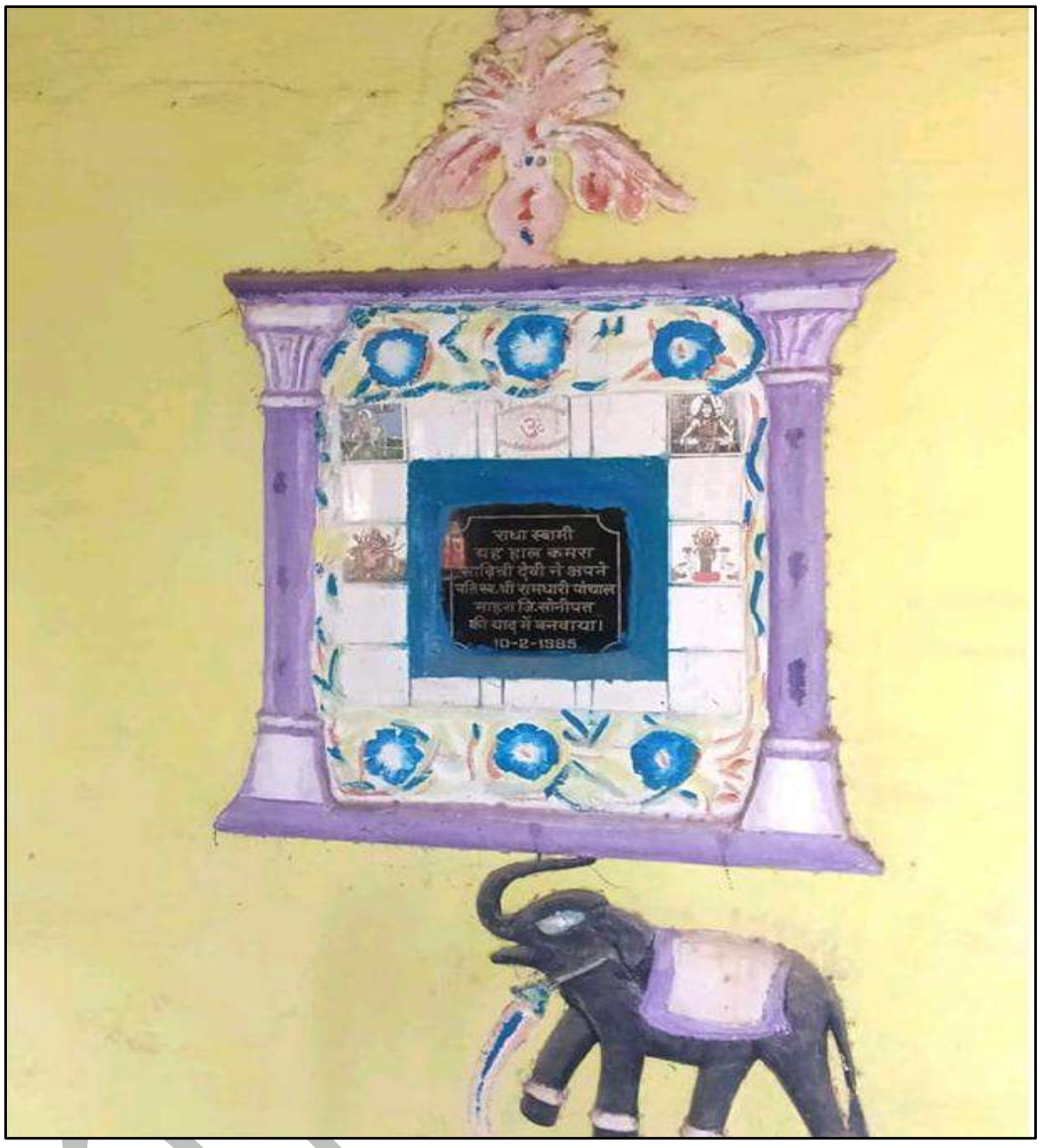

पाण्डू पिंडारा के भगवान विश्वकर्मा मंदिर का भित्ति चित्रण (जींद) – चित्र 02





पाण्डू पिंडारा का प्राचीन हनुमान मंदिर का भित्ति चित्रण (जींद) – चित्र 01, 02